स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01
व्यावसायिक संगठन

प्रथम खण्ड : व्यावसायिक संगठन की मूलभूत संकल्पनाएँ तथा रूप

द्वितीय खण्ड : व्यवसाय की वित्त व्यवस्था

तृतीय खण्ड : विपणन

चतुर्थ खण्ड : व्यावसायिक संयोजन

पंचम खण्ड : सरकार और व्यवसाय

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01
व्यावसायिक संगठन

खंड

1

व्यावसायिक संगठन की मूलभूत संकल्पनाएँ तथा रूप

इकाई 1

मूलभूत संकल्पनाएँ 5

इकाई 2

व्यावसायिक संगठनों के रूप I 25

इकाई 3

व्यावसायिक संगठनों के रूप II 51

इकाई 4

व्यावसायिक प्रवर्तन 61

खंड 1 व्यावसायिक संगठन की मूलभूत संकल्पनाएँ तथा रूप

यह वाणिज्य के एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम व्यावसायिक संगठन के लिए प्रारंभिक खंड है। इसमें मुख्य रूप से व्यवसाय के स्वरूप तथा उद्देश्य, व्यावसायिक कार्यकलाप के वर्गीकरण व्यावसायिक संगठनों के विविध रूपों और उद्यम-कार्य तथा व्यवसाय प्रवर्तन की संकल्पनाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 1 इस इकाई में व्यवसाय का स्वरूप एवं उद्देश्य स्पष्ट किए गए हैं, व्यावसायिक कार्यकलाप का वर्गीकरण बताया गया है तथा व्यावसायिक संगठन का अर्थ स्पष्ट किया गया है।

इकाई 2 इस इकाई में व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूप बताए गए हैं और प्रत्येक रूप के लक्षणों, गुणों तथा सीमाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 3 इस इकाई में व्यावसायिक संगठन के सभी रूपों की परस्पर तुलना की गई है और उन घटकों का विश्लेषण किया गया है जिनका प्रस्तावित व्यवसाय के लिए चुने जाने वाले रूप पर प्रभाव पड़ता है।

इकाई 4 इस इकाई में यह बताया गया है कि व्यवसाय में उद्यमकर्ता की क्या भूमिका है और साथ ही विभिन्न प्रकार के स्वामित्व वाले व्यवसाय के प्रवर्तन की प्रक्रिया पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 1 मूलभूत संकल्पनाएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 मानवीय कार्यकलाप
1.3 व्यवसाय
1.3.1 व्यवसाय के मूलभूत लक्षण
1.3.2 व्यवसाय के उद्देश्य
1.3.3 व्यवसाय की वृत्ति तथा रोज़गार से भिन्नता
1.3.4 व्यवसाय का वर्गीकरण
1.4 उद्योग
1.5 वाणिज्य
1.5.1 व्यापार
1.5.2 व्यापार में सहायक कार्य
1.6 संगठन
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.11 स्वपरख प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- मानवीय कार्यकलाप के स्थूल वर्गों को पहचान सकेंगे,
- "व्यवसाय क्या है" इसका वर्णन कर सकेंगे,
- व्यवसाय के लक्षणों तथा उद्देश्यों को सूचीबद्ध कर सकेंगे,
- व्यावसायिक कार्यकलाप का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- व्यावसायिक संगठन के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हम अपने दैनिक जीवन में व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग आदि शब्दों का बहुत बार प्रयोग करते हैं। व्यावसायिक संगठन में इन शब्दों का एक निश्चित अर्थ होता है। इस परिचयात्मक इकाई के अध्ययन से आप इन शब्दों के सही अर्थ समझ सकेंगे। इस इकाई में आप आर्थिक एवं गैर-आर्थिक कार्यकलाप के अंतर व्यवसाय के उद्देश्यों, व्यावसायिक कार्यकलाप के वर्गीकरण, संगठन के महत्व तथा व्यवसाय में उद्यमकर्त्ता की भूमिका के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 मानवीय कार्यकलाप (Human Activities)

सुबह बिस्तर से उठने से लेकर रात को सोने तक हम सब लोग कई प्रकार के कार्य करते हैं। सुबह हम बिस्तर से उठते हैं, दाँत साफ करते हैं, स्नान करते हैं और नाश्ता करते हैं। उसके बाद बच्चे पढ़ने के लिए स्कूल या कालेज जाते हैं, बड़े लोग काम करने के लिए कार्यालय, कारखाना, दुकान या खेत में जाते हैं तथा गृहणियाँ घर पर काम करती हैं। शाम को हम सब

लोग घर वापस आते हैं, भोजन करते हैं और सो जाते हैं। इस प्रकार हम सुबह से शाम तक जिन कार्यों में लगे रहते हैं, वे सब मानवीय कार्यकलाप कहलाते हैं। यदि आप इन मानवीय कार्यकलाप का ध्यान से अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि इनमें से कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें करने से हमें आर्थिक लाभ होता है जैसे कारखाने, कार्यालय या खेत में किए गए काम। कुछ अन्य कार्य करने से हमें कोई प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ नहीं होता। जैसे—दाँत साफ करना, नाश्ता करना, स्कूल जाना, खेलना, गृहणी द्वारा भोजन पकाया जाना आदि। इस प्रकार हम मानवीय कार्यकलाप को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(1) गैर-आर्थिक कार्यकलाप तथा (2) आर्थिक कार्यकलाप।

1 **गैर-आर्थिक कार्यकलाप (Non-economic Activities) :** ये वे कार्य होते हैं जो मनुष्यों द्वारा स्नेह, प्रेम, सामाजिक कर्त्तव्य, धार्मिक कर्त्तव्य, शारीरिक आवश्यकता, देश भक्ति आदि भावनाओं से प्रेरित होकर संपन्न किए जाते हैं न कि धनोपार्जन के लिए। गृहिणी द्वारा परिवार के लिए भोजन बनाया जाना, बच्चों का स्कूल जाना, या विभिन्न खेल खेलना, लोगों का मंदिर या मस्जिद में प्रार्थना के लिए जाना, एक समाज सेवक द्वारा गरीबों के उत्थान के लिए कार्य करना आदि गैर-आर्थिक कार्यों के कुछ उदाहरण हैं। इन कार्यों में भाग लेने वाले व्यक्तियों को कोई प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं होता।

2 **आर्थिक कार्यकलाप (Economic Activities) :** ये वे कार्य हैं जो मनुष्यों द्वारा जीविका या धन कमाने के लिए किए जाते हैं। ये आर्थिक कार्यकलाप वस्तुओं के उत्पादन विनिमय एवं वितरण और सेवाओं से संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए, एक डाक्टर का अस्पताल में काम करना, एक अध्यापक का स्कूल में काम करना, एक कर्मचारी का कार्यालय जाना, एक किसान का खेत में काम करना आदि। ये सब लोग जीविकोपार्जन के लिए या धन प्राप्त करने के लिए ही ऐसा करते हैं।

इन आर्थिक कार्यकलापों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(क) व्यवसाय (ख) वृत्ति तथा (ग) रोजगार । मानवीय कार्यकलाप के वर्गीकरण के लिए चित्र 1.1 देखिए।

चित्र : 1.1 मानवीय कार्यकलाप का वर्गीकरण

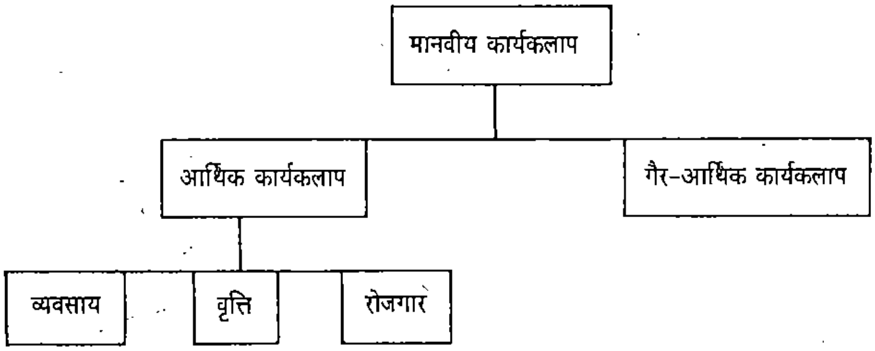

व्यवसाय (Business) : ऐसा कोई भी कार्य जो मुख्य रूप से लाभ कमाने के उद्देश्य से किया जाता है, व्यावसायिक कार्य कहलाता है। लाभ अर्जित करने के इस उद्देश्य की पूर्ति आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं द्वारा की जाती है अथवा विनिमय द्वारा अथवा दोनों के द्वारा सम्मिलित रूप से। अतः हम व्यवसाय को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—ऐसा कोई भी कार्य जिसका संबंध लाभ कमाने के उद्देश्य से आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं से होता है। साबुन का उत्पादन, अंडों का विक्रय, टेलीविजन सेटों का उत्पादन, परिवहन आदि सब व्यवसाय के उदाहरण हैं। जो व्यक्ति व्यवसाय में संलग्न होता है वह व्यावसायी अथवा उद्यमकर्त्ता के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार किसी व्यावसायिक कार्य के निष्पादन के लिए संगठित की गई फर्म व्यावसायिक उद्यम या व्यावसायिक फर्म कहलाती है। व्यवसाय के बारे में और अधिक जानकारी आप इस इकाई में आगे प्राप्त करेंगे।

वृत्ति (Profession) : ऐसा कोई भी कार्य जिसका संबंध वृत्तिक ज्ञान, शिक्षण एवं प्रशिक्षण पर आधारित विशेष प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएं प्रदान करना है वृत्ति कहलाता है। डॉक्टरों, वकीलों तथा चार्टर्ड एकाउंटेंटों द्वारा प्रदान की गई सेवाएं इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। साधारणतया प्रत्येक वृत्ति वर्ग के लिए एक वृत्तिक संस्था बनी होती है। उदाहरण के लिए बार कौंसिल आफ इंडिया वकीलों की एक ऐसी ही वृत्तिक संस्था है जो भारत में वकालत की वृत्ति का मार्गदर्शन तथा नियमन करती है। ऐसी वृत्तिक संस्था संबंधित वृत्ति को अपनाने के

लिए आवश्यक शिक्षण व प्रशिक्षण के स्वरूप तथा प्रकार निर्धारित करती है। प्रत्येक वृत्तिक का संबंधित वृत्तिक संस्था का सदस्य बनना आवश्यक है तथा उसे इस प्रकार की संस्था द्वारा निर्धारित आचार-संहिता का पालन करना चाहिए। वृत्तिक प्रदान की गई सेवाओं के लिए कुछ शुल्क वसूल करते हैं।

रोज़गार (Employment) : नियोक्ता द्वारा किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी व्यक्ति को सौंपा गया कार्य "रोज़गार" वर्ग के अंतर्गत आता है। वह व्यक्ति जो इस प्रकार के कार्य का दायित्व ग्रहण करता है कर्मचारी कहलाता हैं। इस प्रकार सौंपे गए कार्य को पूरा करने के बदले में कर्मचारी नियोक्ता से मजदूरी अथवा वेतन-भत्ता, लाभांश आदि के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त करता है। "रोज़गार" को नौकरी भी कहते हैं। कारखाने में काम करना, कार्यालय में काम करना, होटल में काम करना, कालेज में काम करना "रोज़गार" के कुछ उदाहरण हैं। वृत्ति की दृष्टि से योग्य व्यक्ति भी विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के कर्मचारियों की तरह काम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए सरकारी/निजी अस्पतालों में काम करने वाले डॉक्टर, कारखाने में काम करने वाले इंजीनियर आदि।

यद्यपि व्यवसाय, वृत्ति एवं रोजगार में कुछ अंतर है फिर भी इनका आपस में संबंध है। व्यावसायिक उद्यम देश में एक बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं। इसी प्रकार वृत्तिक जैसे इंजीनियर, चार्टर्ड एकाउंटेंट, लागत लेखाकार प्रबंध परामर्शी, कानूनी विशेषज्ञ, डॉक्टर आदि जटिल तकनीकी समस्याओं के समाधान के लिए व्यावसायिक फर्मों में काम करते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक उद्यम वृत्तिकों तथा साधारण जनता को रोज़गार के अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही व्यवसाय की सफलता भी व्यवसाय में काम करने वाले वृत्तिकों तथा कर्मचारियों पर निर्भर करती है।

1.3 व्यवसाय (Business)

अभी तक आपने पढ़ा कि मनुष्यों के आर्थिक कार्यकलाप को व्यवसाय, वृत्ति और रोजगार में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन तीन वर्गों में वृत्ति और रोजगार इस पाठ्यक्रम के कार्यक्षेत्र के बाहर हैं, यद्यपि वे भी काफी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ मुख्य रूप से हमारा संबंध व्यवसाय से है। अतः आइए हम व्यवसाय के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा करें।

1.3.1 व्यवसाय के मूलभूत लक्षण

आप पढ़ चुके हैं कि व्यवसाय का संबंध लाभ अर्जित करने की इच्छा से आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं में किए गए मानवीय कार्यकलाप से है। आइए, अब हम व्यवसाय की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करें। व्यवसाय के निम्नलिखित पाँच प्रमुख लक्षण होते हैं।

1 **वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार** : व्यवसाय में वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार होता है। ये वस्तुएँ उपभोक्ता वस्तुएँ हो सकती हैं जैसे मिठाई, डबलरोटी, कपड़े, जूते आदि। ये वस्तुएँ उत्पादक वस्तुएँ भी हो सकती हैं जिनका प्रयोग उपभोग के लिए अन्य वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है जैसे मशीनरी, उपस्कर, आदि। व्यवसाय में सेवाओं का भी कारोबार होता है जैसे परिवहन, भंडारण, बैंक सेवा, बीमा आदि जो अमूर्त तथा अदृश्य वस्तुएँ होती हैं।

2 **उत्पादन तथा/अथवा विनिमय** : आप किसी आर्थिक कार्य को व्यवसाय तभी कह सकते हैं जब उसका संबंध मूल्य के बदले वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं, हस्तांतरण, विनिमय अथवा विक्रय से हो। यदि वस्तुओं का उत्पादन स्वयं के उपभोग के लिए या किसी को उपहार में देने के लिए किया जाता है, तो इन कार्यकलाप का व्यवसाय नहीं माना जाता। किसी भी व्यावसायिक कार्यकलाप में दो पक्षों का होना आवश्यक है—एक क्रेता तथा दूसरा विक्रेता। इस प्रकार के कार्यकलाप का संबंध क्रेता और विक्रेता के बीच वस्तुओं के हस्तांतरण या वस्तुओं के विनिमय से होना चाहिए। वस्तुओं का विनिमय वस्तुओं के बदले में या मुद्रा के बदले में किया जा सकता है।

3 **कारोबार में निरंतरता और नियमितता** : किसी एक लेनदेन को व्यवसाय नहीं माना जा सकता। किसी कार्य को व्यवसाय तभी माना जा सकता है जब उसका निष्पादन लगातार

या बारबार किया गया हो। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने रहने का मकान बेच देता है तो उसे व्यवसाय नहीं माना जाएगा। लेकिन यदि वह बारबार मकान खरीदता है और दूसरों को बेचता है तो इस प्रकार का कार्य व्यवसाय के अंतर्गत आता है। कोई लेनदेन कितनी जल्दी-जल्दी होना चाहिए यह कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए एक जहाज बनाने वाली कम्पनी को एक जहाज का निर्माण करने और बेचने में काफी समय लगता है। लेकिन एक सब्जी बेचने वाला सुबह बाजार से सब्जी खरीदता है और शाम तक अपने ग्राहकों को बेच देता है। ये दोनों ही प्रकार के कार्य व्यवसाय माने जाएँगे।

4 **लाभार्जन-प्रमुख प्रयोजन :** लाभ अर्जित करना व्यवसाय का प्रमुख प्रयोजन है। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि व्यावसायिक कार्यकलाप में सेवा का कम महत्व है। वास्तव में कोई भी व्यवसाय केवल तभी प्रगति कर सकता है जब वह अपने ग्राहकों को संतुष्ट करने में समर्थ हो। व्यवसाय को बनाए रखने के लिए, उसके विकास, उसके विस्तार तथा समाज से उसके लिए मान्यता प्राप्त करने के लिए लाभ अर्जित करना अत्यंत आवश्यक है।

5 **जोखिम का तत्व :** प्रत्येक व्यवसाय में हानि होने की संभावना बनी रहती है। हानि उठाने की इस संभावना को ही जोखिम कहा जाता है। व्यवसाय में जोखिम का तत्व उन कारणों से विद्यमान रहता है जिन पर उद्यम का वश नहीं होता। जोखिम दो प्रकार की होती है—(1) ऐसी जोखिम जिसकी संभावना का अनुमान लगाया जा सकता है तथा जिसका बीमा कराया जा सकता है। आग, बाढ़, चोरी आदि से होने वाली हानियाँ ऐसी जोखिम के उदाहरण हैं। (2) ऐसी जोखिम जिसकी संभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता और न ही जिसका बीमा कराया जा सकता है जैसे बदलती हुई तकनीक, माँग में कमी, फैशन का बदलता रहना, कच्चे माल की पूर्ति में कमी आदि। इस प्रकार की सभी जोखिम पूर्ण रूप से उद्यम को ही वहन करनी पड़ती हैं।

1.3.2 व्यवसाय के उद्देश्य

जैसा कि आप जानते हैं व्यवसाय के प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना है। यद्यपि व्यवसाय की सफलता में लाभ की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है फिर भी लाभ अर्जित करने के एकमात्र उद्देश्य को लेकर व्यवसाय अधिक लम्बे समय तक नहीं चल सकता। जैसा कि हेनरी फोर्ड ने कहा है, "व्यवसाय का अर्थ केवल धन के पीछे भागना नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य समाज की सेवा करना होना चाहिए।" उर्विक के अनुसार, "जिस प्रकार भोजन करना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता उसी प्रकार लाभ अर्जित करना भी व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता।" इस प्रकार समाज की सेवा व्यवसाय का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है। वास्तव में कुछ लेखक तो समाज की सेवा को व्यवसाय का एक प्रमुख उद्देश्य मानते हैं और कहते हैं कि यही उद्देश्य व्यवसाय के एक महत्वपूर्ण मानवीय कार्यकलाप के रूप में बने रहने का औचित्य सिद्ध करता है। इसलिए जहाँ व्यवसायी के लिए व्यवसाय में बने रहने के लिए लाभ अर्जित करना आवश्यक है, वहीं व्यवसाय को बनाए रखने के लिए तथा उसके विकास के लिए उसका लक्ष्य इससे कहीं अधिक ऊपर होना चाहिए।

व्यवसाय के उद्देश्यों का वर्णन तीन व्यापक शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है : (i) आर्थिक उद्देश्य (ii) सामाजिक उद्देश्य तथा (iii) मानवीय उद्देश्य।

आर्थिक उद्देश्य : मूलतः एक आर्थिक कार्य होने के कारण व्यवसाय के प्रमुख उद्देश्य आर्थिक हैं। कुछ आर्थिक उद्देश्य निम्न हैं :

1 संतोषप्रद लाभ अर्जित करना
2 नए बाज़ारों का पता लगाना तथा और अधिक ग्राहक बनाना
3 फर्म की व्यावसायिक क्रियाओं का विकास एवं विस्तार
4 नव-प्रवर्तन करना तथा वस्तुओं और सेवाओं में सुधार करना ताकि ग्राहक कम मूल्य पर और अधिक उन्नत वस्तुएँ और सेवाएँ प्राप्त कर सके।

सामाजिक उद्देश्य : चूँकि व्यवसाय समाज का ही एक अँग है इसलिए समाज के प्रति भी इसके कुछ कर्त्तव्य हैं। व्यवसाय के कुछ प्रमुख सामाजिक उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1 देश के लोगों को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना।
2 समाज को अच्छी किस्म की वस्तुएं प्रदान करना।

3 उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध कराना।
4 निवेशकर्त्ताओं के लिए उचित लाभ सुनिश्चित करना।
5 मुनाफाखोरी तथा अन्य अनुचित व्यवहार से समाज को बचाना।
6 राष्ट्रीय हितों तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं का उत्पादन करना।

मानवीय उद्देश्य : व्यावसायिक कार्यकलाप साधारणतया कर्मचारियों द्वारा संपन्न किए जाते हैं जो स्वयं मानव होते हैं। वास्तव में व्यावसायिक उद्यम की कार्यकुशलता और सफलता उसके कर्मचारियों को प्राप्त प्रेरणा-शक्ति तथा उनकी योग्यता पर निर्भर है। इसलिए अपने कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए व्यवसाय को कुछ मानवीय उद्देश्य भी अवश्य रखने चाहिएँ। कुछ महत्वपूर्ण मानवीय उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1) मजदूरी तथा प्रोत्साहन के रूप में कर्मचारियों के साथ उचित व्यवहार
2) कर्मचारियों के लिए अधिक अच्छा वातावरण एवं कार्य करने की परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना
3) कर्मचारियों को अपने काम से संतोष प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था करना
4) कर्मचारियों को अधिकाधिक पदोन्नति तथा विकास के अवसर प्रदान करना

1.3.3 व्यवसाय की वृत्ति तथा रोजगार से भिन्नता

आप व्यवसाय की मूलभूत विशेषताओं के बारे में पढ़ चुके हैं। इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए आइये अब हम यह विश्लेषण करें कि व्यवसाय वृत्ति तथा रोजगार से किस प्रकार भिन्न है।

तालिका 1 को ध्यानपूर्वक पढ़िये। इससे आप व्यवसाय, वृत्ति तथा रोजगार के विशिष्ट लक्षणों को जान पाएंगे।

तालिका 1: व्यवसाय, वृत्ति तथा रोजगार की विशेषताएँ

लक्षण	व्यवसाय	वृत्ति	रोजगार
1) स्थापना	व्यवसाय प्रारंभ करने का निश्चय एक व्यक्ति या व्यक्तियों का एक समूह करता है। विधिक औपचारिकताएँ जैसे पूँजी-करण आदि पूरी करनी पड़ती हैं।	आवश्यक योग्यताएँ, प्रशिक्षण आदि प्राप्त करना पड़ता है। संबंधित वृत्तिक संस्था का सदस्य बनना पड़ता है।	नियोक्ता के साथ नौकरी संबंधी एक अनुबंध किया जाता है।
2) योग्यताएँ	विशिष्ट योग्यताएँ आवश्यक नहीं हैं।	विशिष्ट क्षेत्र में वृत्तिक ज्ञान और प्रशिक्षण आवश्यक हैं।	कुछ मामलों में विशिष्ट योग्यताएँ आवश्यक हैं जबकि कुछ में नहीं।
3) निवेश	पूँजी की आवश्यकता होती है। वास्तविक रकम व्यवसाय के स्वरूप पर निर्भर करती है।	कार्यालय को स्थापित करने के लिए तथा उपस्करों के लिए कुछ पूँजी की आवश्यकता होती है।	पूँजी की आवश्यकता नहीं होती।
4) कार्य का स्वरूप	वस्तुओं का उत्पादन अथवा विनिमय और सेवाएँ।	ग्राहकों को विशिष्ट प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान की जाती हैं।	अनुबंध के अधीन नियोक्ता द्वारा सौंपे गए कार्य का निष्पादन करना होता है।
5) प्रयोजन	मुख्य रूप से लाभ अर्जित करना ही इसका प्रयोजन होता है।	यद्यपि कुछ शुल्क वसूल किया जाता है फिर भी सेवा ही मुख्य प्रयोजन होता है।	कोई विशिष्ट प्रयोजन नहीं होता। मुख्य उद्देश्य जीविका-उपार्जन होता है।
6) प्रतिफल	लाभ	वृत्तिक शुल्क	मजदूरी अथवा वेतन।
7) स्वामित्व-हित की हस्तांतरणीयता	अपेक्षित विधिक औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद व्यवसाय को दूसरों को हस्तांतरित किया जा सकता है।	हस्तांतरण संभव नहीं होता।	हस्तांतरण संभव नहीं होता।

8) जोखिम	हानि होने की जोखिम होती है।	व्यवसाय की स्थापना पर हुए व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त शुल्क न मिलने की संभावना।	कोई जोखिम नहीं। जब तक फर्म चालू रहती है तब तक कर्मचारी को मजदूरी अथवा वेतन मिलता रहता है।

1.3.4 व्यवसाय का वर्गीकरण

व्यवसाय के बारे में हमने जो कुछ अब तक बताया है उसे याद कीजिए। हमने बताया था कि लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं को व्यवसाय कहते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि व्यवसाय का संबंध दो पहलुओं से होता है—एक उत्पादन तथा दूसरा विनिमय। इसी आधार पर हम व्यावसायिक कार्यकलाप को दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं—उत्पादन से संबंधित सभी कार्यकलाप को हम प्रथम वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं। इसी प्रकार विनिमय से संबंधित सभी कार्यकलाप को द्वितीय वर्ग के अंतर्गत रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग को उद्योग कहा जाता है तथा द्वितीय वर्ग को वाणिज्य।

बोध प्रश्न-क

1 आर्थिक कार्य तथा गैर-आर्थिक कार्य के बीच मुख्य अंतर क्या है?

....

....

....

....

2 व्यवसाय किसे कहते हैं?

....

....

....

....

3 "वृत्ति" से आपका क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

4 "रोजगार" से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

5 निम्नलिखित कार्यकलाप का व्यवसाय, वृत्ति तथा रोजगार में वर्गीकरण कीजिए:

कार्यकलाप	**वर्गीकरण**
i) सब्जियाँ बेचना	....
ii) किसी व्यक्ति का औषधियों की दुकान पर सेल्समैन के रूप में कार्य करना	....
iii) एक डॉक्टर का किसी सरकारी अस्पताल में कार्य करना	....
iv) एक चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा निजी कार्य प्रारंभ करना	....
v) बिस्कुट का उत्पादन	....
vi) एक वकील का निजी कार्य प्रारंभ करना	....
vii) वस्तुओं का परिवहन	....

6 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत :

i) व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य लाभ अर्जित करना है ....

ii) वृत्ति एक गैर-आर्थिक कार्य है ....

iii) रोजगार एक आर्थिक कार्य है ....
iv) व्यवसाय में जोखिम का तत्व विद्यमान नहीं होता ....
v) व्यवसाय का संबंध केवल वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय से है ....
vi) उद्योग व्यावसायिक क्रिया का एक अंग है ....
vii) उद्योग और वाणिज्य दोनों मिलकर एक व्यावसायिक कार्यकलाप होते हैं ....
viii) किसी कार्य को व्यवसाय तभी माना जाता है जबकि उसका निष्पादन लगातार या नियमित रूप से किया जाता है ....
ix) वृत्ति की हालत में स्वामित्व-हित का हस्तांतरण दूसरों को किया जा सकता है ....
x) धन या जीविका-उपार्जन करने के उद्देश्य से किये जाने वाले कार्य आर्थिक कार्यकलाप कहलाते हैं ....
xi) पिता द्वारा अपनी पुत्री को पढ़ाया जाना एक आर्थिक कार्य है ....

1.4 उद्योग (Industry)

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि उद्योग का आशय व्यावसायिक कार्यकलाप के उस भाग से है जिसका संबंध उपलब्ध भौतिक संसाधनों के प्रयोग से आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन से होता है। उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं और उन्हें अंतिम उपभोग के लिए निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि औद्योगिक कार्यकलाप का उद्देश्य वस्तुओं को उस रूप में उपलब्ध कराना है जिस रूप में वे उन व्यक्तियों की सुविधाओं आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों के अनुकूल सिद्ध हो सकें जो उन वस्तुओं का प्रयोग करेंगे। इस प्रकार उद्योग वस्तुओं की रूप उपयोगिता (form utility) का सृजन करते हैं। उदाहरण के लिए खेतों, कारखानों, खानों आदि से वस्तुओं की एक व्यापक शृंखला उपलब्ध होती है। ये वस्तुएँ जनता की सुविधाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। संक्षेप में उन मनुष्यों के कार्यकलाप उद्योग के अंतर्गत आते हैं जो वस्तुओं के निस्सारण—निर्माण, संसाधन, उत्पादन तथा खनन में लगे हुए हैं।

उद्योग का एक दूसरा अर्थ भी होता है। इस दूसरे अर्थ में उद्योग का अभिप्राय कारखानों के ऐसे समूह से होता है जिसे किसी विशेष प्रकार की उत्पाद शृंखला में विशिष्टता प्राप्त हो। उदाहरण के लिए वे सब कारखाने जो उर्वरक का उत्पादन करते हैं—सामूहिक रूप से "उर्वरक उद्योग" कहलाते हैं। इसी प्रकार मोटरों के सभी करखाने "मोटर उद्योग" कहलाएँगे। लेकिन वर्तमान संदर्भ में यही रीति हमारे लिए असंगत है। हमने पहली रीति ही अपनाई है।

उद्योगों का वर्गीकरण :
उद्योगों का वर्गीकरण विभिन्न रीतियों से किया जाता है। इन रीतियों की सूची नीचे दी गई है।

1 कार्य की प्रकृति के आधार पर
- क) निस्सारण उद्योग
- ख) जननिक उद्योग
- ग) विनिर्माण उद्योग
- घ) निर्माण उद्योग

2 उत्पादित वस्तुओं की प्रकृति के आधार पर
- क) उपभोक्ता वस्तु उद्योग
- ख) उत्पादक वस्तु उद्योग

3 निवेश के स्तर के आधार पर
- क) भारी उद्योग
- ख) हल्के उद्योग

4 कार्य का विस्तार के आधार पर
- क) छोटे पैमाने के उद्योग
- ख) बड़े पैमाने के उद्योग

5 कार्य क्षेत्र के आधार पर
- क) क्षेत्रीय उद्योग
- ख) राष्ट्रीय उद्योग
- ग) बहुराष्ट्रीय उद्योग

चूँकि इस इकाई में विवेचन का विषय मानवीय कार्य पर ही केन्द्रित है, इसलिए हमारे लिए कार्य की प्रकृति पर आधारित वर्गीकरण ही अधिक उपयुक्त है। अत: आइये हम लोग प्रथम वर्गीकरण के बारे में ही अधिक विस्तार से चर्चा करें।

क) निस्सारण उद्योग (Extractive Industries) : पृथ्वी की सतह से अथवा सतह के नीचे से अथवा वायु से या पानी से प्राकृतिक संसाधनों जैसे–खनिज पदार्थ, पशु, पौधे, पेड़, आदि की खोज एवं निस्सारण से संबंधित कार्यकलाप इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। निस्सारण उद्योग समाप्तिकरण उद्योग भी कहलाते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रयत्न के बाद संसाधनों में कमी आ जाती है तथा वह सम्पत्ति समाप्त होती रहती है। खनन, खेती, उत्खनन, शिकार, मछली पालन आदि सभी कार्य इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

ख) जननिक उद्योग (Genetic Industries) : इस वर्ग के अंतर्गत वे कार्यकलाप आते हैं जिनका संबंध लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से विक्रय के लिए प्रजनन द्वारा पशुओं और पौधों की प्रजाति में वृद्धि करना होता है। जननिक उद्योग के उदाहरण हैं–पौधशालाएँ, जो पौधों की प्रजाति में वृद्धि करके उनका विक्रय करती हैं, मुर्गी पालन फार्म, पशुपालन फार्म, मत्स्य पालन फार्म इत्यादि।

निस्सारण उद्योग और जननिक उद्योग में एक महत्वपूर्ण अंतर होता है। निस्सारण उद्योग में मनुष्य पृथ्वी, समुद्र या वायु से निकाली गई सम्पत्ति में वृद्धि नहीं कर सकता। लेकिन जननिक उद्योग में मनुष्य न केवल प्राकृतिक वस्तुओं के विकास में वृद्धि कर सकता है बल्कि उनका प्रजनन भी कर सकता है।

ग) विनिर्माण उद्योग (Manufacturing Industries) : विनिर्माण उद्योग वे उद्योग होते हैं जो कच्चे माल और अर्ध-निर्मित माल को निर्मित माल में रूपांतरित करने में संलग्न होते हैं। साधारणतया निस्सारण उद्योगों के उत्पाद विनिर्माण उद्योगों के लिए कच्चे माल का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में विनिर्माण उद्योग निस्सारण उद्योग के उत्पादों की उपयोगिता का सृजन करते हैं। सीमेंट उद्योग, चीनी उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, लोहा एवं इस्पात उद्योग, उर्वरक उद्योग आदि विनिर्माण उद्योगों के कुछ उदाहरण हैं।

घ) निर्माण उद्योग (Construction Industries) : निर्माण उद्योग वे उद्योग होते हैं जिनका संबंध भवन, पुल, बाँध, सड़कें, नहरें, रेल की पटरी आदि का निर्माण करने से होता है। ये उद्योग विनिर्माण उद्योग के उत्पादों का (जैसे ईंट, सीमेंट, लोहा, एवं इस्पात) तथा निस्सारण उद्योग के उत्पादों का (जैसे पत्थर, लकड़ी) उपभोग करते हैं। निर्माण उद्योगों के उत्पाद अधिकतर अचल होते हैं। एक निश्चित स्थान पर उनकी संस्थापना निर्माण अथवा संरचना की जाती है।

चित्र 1.2 को देखिए जिसमें उदाहरण सहित उद्योगों का वर्गीकरण दर्शाया गया है।

चित्र : 1.2 कार्य की प्रकृति के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण

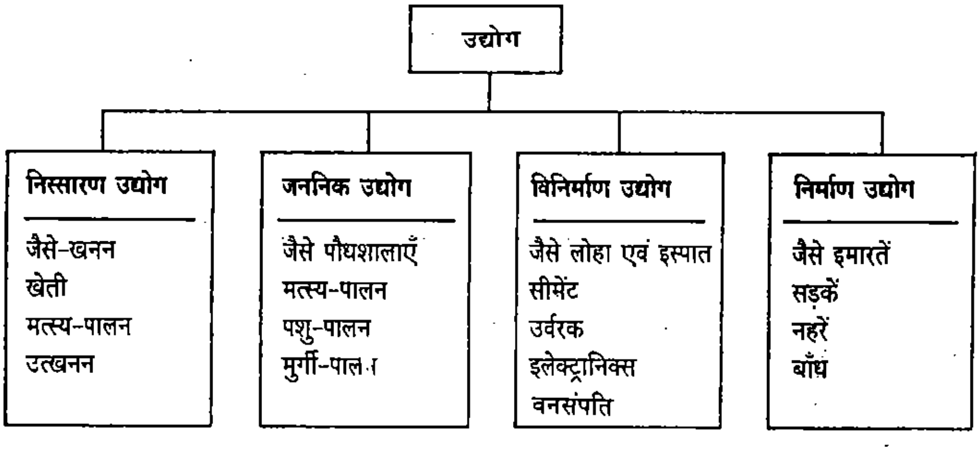

बोध प्रश्न-ख

1 व्यवसाय एवं उद्योग में अंतर बताइए।

....

....

....

....

2 खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

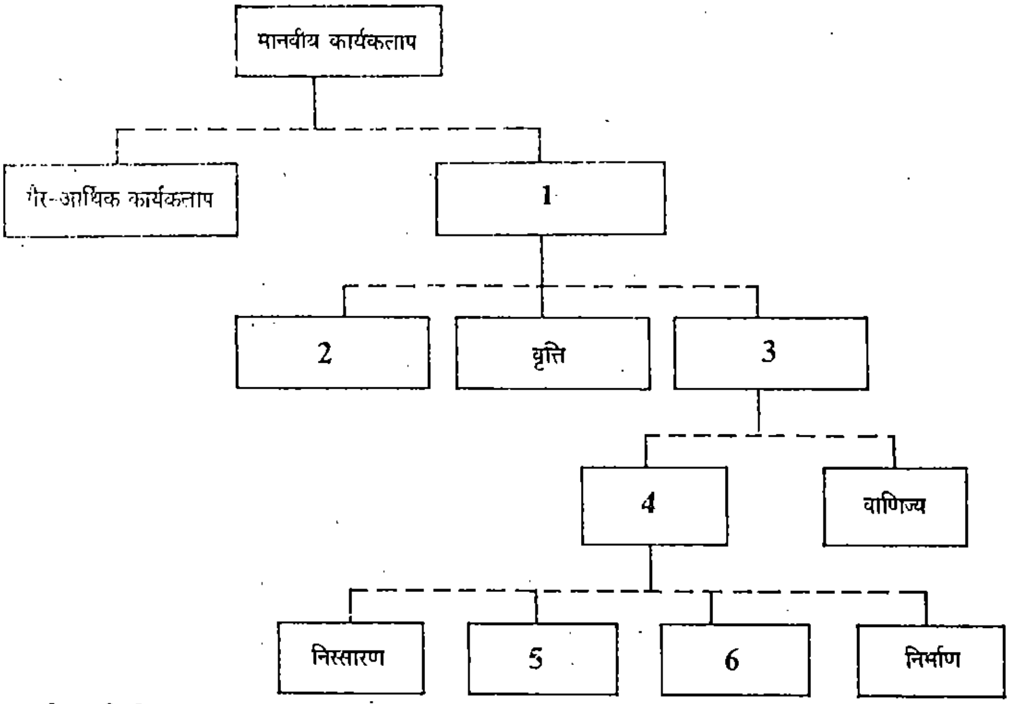

3 निम्नलिखित कार्यकलाप उद्योग के किस वर्ग से संबंधित हैं :

कार्यकलाप	उद्योग का वर्ग
i) समुद्र में से मछली पकड़ना	....
ii) खान से कोयला निकालना	....
iii) कपड़ा बुनना	....
iv) बाँध का निर्माण	....
v) लकड़ी का फर्नीचर बनाना	....
vi) पशु-पालन	....
vii) रेल-पथ का विकास	....
viii) रेल के इंजन का उत्पादन	....

1.5 वाणिज्य (Commerce)

आप पढ़ चुके हैं कि व्यावसायिक कार्यकलाप को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (i) उद्योग तथा (ii) वाणिज्य । आपने यह भी पढ़ा कि औद्योगिक कार्यकलाप का संबंध आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं से होता है। जब तक इन वस्तुओं और सेवाओं को उन लोगों तक नहीं पहुँचाया जाता जिन लोगों को उनकी आवश्यकता है तब तक ये अपनी मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि के उद्देश्य को पूरा नहीं करती। इसलिए उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उचित स्थान पर, उचित समय पर,

उचित मात्रा में, उचित मूल्य पर तथा उचित ढंग से उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाना चाहिए। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वाणिज्य कार्य आरंभ हुआ। **ऐसे सभी कार्यकलाप जो इन वस्तुओं के उत्पादकों और उपभोक्ताओं में संबंध स्थापित करते हैं तथा उनके बीच वस्तुओं का निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह बनाए रखते हैं "वाणिज्य" के अन्तर्गत आते हैं।**

उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह में कई रुकावटें और बाधाएँ आती हैं। उदाहरण के लिए किसी एक व्यक्ति द्वारा उत्पादित वस्तु का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उपभोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जब तक उत्पादक और उपभोक्ता एक दूसरे को पहचान नहीं लेते तब तक उनके बीच वस्तुओं के विनिमय का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी को **व्यक्ति संबंधी बाधा** कहा जाता है। इसी प्रकार किसी वस्तु का क्रय करने के लिए उपभोक्ताओं को उस वस्तु के अस्तित्व का तथा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना चाहिए। इसी कारण उपभोक्ताओं को इस प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध कराने की आवश्यकता होती है। इसी को **ज्ञान संबंधी बाधा** कहा जाता है। उत्पादन के समय और उपभोग के समय के अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाली बाधा **समय संबंधी बाधा** कहलाती है। कई स्थितियों में उत्पादन किसी एक स्थान पर होता है और उनका उपभोग किसी दूसरे स्थान पर होता है। इसलिए वस्तुओं को उनके उत्पादन के स्थान से उनके उपभोग के स्थान तक ले जाया जाना आवश्यक है। इसी से **स्थान संबंधी बाधा** उत्पन्न होती है। वाणिज्य इन सब बाधाओं को दूर करता है और उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं के विनिमय को सुगम बनाता है। इस खंड में आगे आप विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे कि इन बाधाओं को उन विभिन्न व्यावसायिक कार्यकलाप द्वारा किस प्रकार दूर किया जाता है जो वाणिज्य का ही एक भाग होते हैं।

संक्षेप में वाणिज्य का संबंध मुख्य रूप से वस्तुओं के क्रय और विक्रय से है तथा वे सब कार्य जो क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं "वाणिज्य" के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार वाणिज्य के दो मुख्य पहलू होते हैं : (1) वस्तुओं का क्रय और विक्रय तथा (2) वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह के लिए आवश्यक कार्य। अत: हम वाणिज्य से संबंधित सम्पूर्ण क्षेत्र को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

1) व्यापार-क्रय और विक्रय से संबंधित कार्य
2) व्यापार में सहायक कार्य – वे कार्यकलाप जो वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को सुगम बनाते हैं।

1.5.1 व्यापार (Trade)

आप पहले से ही जानते हैं कि वस्तुओं और सेवाओं के क्रय और विक्रय से संबंधित मानवीय कार्यकलाप व्यापार के अंतर्गत आते हैं। अत: लाभ अर्जित करने की इच्छा से किये गये वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय, हस्तांतरण या विनिमय को व्यापार में शामिल किया जाता है। व्यापार का उद्देश्य उन व्यक्तियों को वस्तुएँ उपलब्ध कराना है जिन्हें उनकी आवश्यकता है तथा जो उनके लिए मूल्य चुकाने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार व्यापार उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को दूर करता है।

व्यापार में संलग्न व्यक्ति को 'व्यापारी' या 'बिचौलिया' कहा जाता है। उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच कई व्यापारी काम करते हैं तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को दूर करते हैं। व्यापार को हम दो स्थूल वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :(1) आंतरिक व्यापार और बाहरी व्यापार।

1 **आंतरिक व्यापार** : जब किसी देश की सीमाओं के अंदर ही व्यापार होता है तो आप इसे आंतरिक व्यापार कह सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि क्रय और विक्रय दोनों देश की सीमाओं के अंदर ही होने चाहिए। इसके लिए भुगतान साधारणतया राष्ट्रीय मुद्रा में किया जाता है। इस आंतरिक व्यापार को देशी व्यापार, राष्ट्रीय व्यापार, गृह व्यापार या घरेलू व्यापार भी कहा जाता है।

कार्य के पैमाने के आधार पर हम आंतरिक व्यापार को (क) थोक व्यापार और (ख) फुटकर व्यापार में वर्गीकृत कर सकते हैं।

क) **थोक व्यापार** : अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में वस्तुओं के क्रय और विक्रय को थोक व्यापार कहते हैं। थोक व्यापार में संलग्न व्यक्ति को थोक व्यापारी कहते हैं।

ख) **फुटकर व्यापार** : अपेक्षाकृत छोटी मात्रा में वस्तुओं के क्रय और विक्रय को फुटकर व्यापार कहते हैं। फुटकर व्यापार में संलग्न व्यक्ति फुटकर व्यापारी कहलाता है।

आइये अब हम इसका कुछ विस्तार से विवेचन करें कि ये थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी किस प्रकार कार्य करते हैं तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को कैसे दूर करते हैं। एक थोक व्यापारी निर्माताओं से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदता है और फुटकर व्यापारियों को अपेक्षाकृत छोटी मात्रा में बेचता है। इस प्रकार थोक व्यापारी एक तरफ उत्पादकों और दूसरी तरफ फुटकर व्यापारियों के बीच एक कड़ी का काम करते हैं। फुटकर व्यापारी, जो थोक व्यापारियों से वस्तुएँ खरीदते हैं, उन्हीं वस्तुओं को उपभोक्ताओं को और भी छोटी मात्रा में बेचते हैं। इस प्रकार फुटकर व्यापारी एक तरफ थोक व्यापारियों और दूसरी तरफ उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करते हैं। इसी प्रकार थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करते हैं तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को दूर करते हैं। लेकिन कभी-कभी उत्पादक केवल थोक व्यापारियों की या केवल फुटकर व्यापारियों की सेवाओं का ही उपयोग करते हैं या फिर उपभोक्ताओं से सीधे संपर्क स्थापित करते हैं। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कार्य करने वाले व्यापारियों/बिचौलियों की संपूर्ण शृंखला को "वितरण का माध्यम" कहते हैं जिसके बारे में आप इस पाठ्यक्रम की इकाई संख्या 10 और 11 में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

2 **बाहरी व्यापार** : इसे विदेशी व्यापार या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी कहा जाता है। जब किसी देश की सीमा से बाहर व्यापार होता है तो उसे बाहरी व्यापार कहते हैं। यह व्यापार एक वस्तु के दूसरी वस्तु से अथवा मुद्रा से विनिमय के रूप में हो सकता है।

विदेशी व्यापार को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं:
(क) आयात व्यापार (ख) निर्यात व्यापार (ग) पुनर्निर्यात व्यापार।

आयात व्यापार : जब एक देश दूसरे देश से वस्तुएँ खरीदता है तो खरीदने वाले देश के लिए वह आयात व्यापार कहलाता है। उदाहरण के लिए भारत अमेरिका से मशीनरी खरीदता है तो यह भारत के लिए आयात व्यापार होगा।

निर्यात व्यापार : जब कोई देश दूसरे देश को वस्तुएँ बेचता है तो बेचने वाले देश के लिए वह निर्यात व्यापार कहलाता है। उदाहरण के लिए भारत रूस को चमड़े की वस्तुएँ तथा अमेरिका को चाय बेचता है। भारत के लिए वस्तुओं की इस प्रकार की बिक्री को निर्यात व्यापार कहा जाएगा।

पुनर्निर्यात व्यापार : इसे "आयातित माल का निर्यात व्यापार" (Entrepot Trade) भी कहा जाता है। जब किसी एक देश से वस्तुओं का आयात किया जाता है तथा किसी अन्य देश को उन्हीं वस्तुओं का निर्यात किया जाता है तो ऐसे व्यापार को पुनर्निर्यात व्यापार कहते हैं। पुनर्निर्यात उन देशों द्वारा किया जाता है जिनके पास ऐसे बन्दरगाह होते हैं जो ऐसे स्थानों पर स्थित हैं जहाँ से वे पड़ोसी देशों के लिए वितरण केन्द्र का कार्य कर सकते हैं। ऐसे देश बड़ी मात्रा में वस्तुओं का आयात करते हैं तथा फिर पड़ोसी देशों में उन्हीं वस्तुओं का पुन: निर्यात कर देते हैं।

1.5.2 व्यापार में सहायक कार्य (Aids to Trade)

वे कार्य जो व्यापार को सुविधाजनक बनाते हैं, "व्यापार में सहायक कार्य" कहलाते हैं। इस प्रकार वे सभी मानवीय कार्यकलाप जो बाधाओं को दूर करते हैं और वस्तुओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में सहायता करते हैं "व्यापार में सहायक कार्य" के अंतर्गत आते हैं। ऐसे कार्यों को "व्यापार के सहयोगी कार्य" भी कहा जाता है। व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आने वाले कार्यों के संपूर्ण क्षेत्र को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:
(1) परिवहन (2) भंडारण (3) बीमा (4) विज्ञापन तथा (5) बैंकिंग।

1 **परिवहन (Transportation)** : साधारणतया सभी वस्तुओं का उपभोग उसी स्थान पर नहीं होता जिस स्थान पर उनका उत्पादक होता है। इसलिए वस्तुओं को उनके उत्पादक के स्थान से उस स्थान पर पहुँचाना होता है जहाँ उनकी माँग है। वस्तुओं को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से संबंधित कार्य को परिवहन कहते हैं। इस प्रकार परिवहन स्थान-संबंधी बाधा को दूर करता है और वस्तुओं में स्थान-उपयोगिता का सृजन करता है। परिवहन तीन प्रकार का होता है :
अ) भूमि परिवहन — सड़क, रेलमार्ग

ब) वायु परिवहन — हवाई जहाज
स) जल परिवहन — नाव, जहाज

2 **भंडारण (Warehousing)** : उत्पादन के तुरंत बाद ही वस्तुओं का उपभोग नहीं कर लिया जाता। साधारणतया वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग में कुछ समय का अन्तराल होता है। इसी को समय-संबंधी बाधा कहते हैं। इसीलिए वस्तुओं के उत्पादन के पश्चात् जब तक उनका उपभोग नहीं किया जाता तब तक उन्हें सुरक्षित रखा जाना चाहिए। विशेष रूप से शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं को जैसे दूध, माँस, सब्जियाँ, फल आदि को बहुत सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखा जाना चाहिए। अन्यथा वे खराब हो जाती हैं और बेकार हो जाती हैं। इसी कारण भंडारण को व्यापार का एक अन्य सहायक कार्य माना जाता है। भंडारण का आशय वस्तुओं को सुरक्षित रखने से है ताकि जब कभी भी उपभोक्ताओं को इन वस्तुओं की आवश्यकता हो उन्हें तुरन्त उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार भंडारण समय-संबंधी बाधा को दूर करता है और वस्तुओं में समय-उपयोगिता का सृजन करता है।

3 **बीमा (Insurance)** : उत्पादन-प्रक्रिया में अथवा रास्ते में दुर्घटना के कारण या फिर भंडार गृह में चोरी हो जाने या आग लग जाने के कारण वस्तुओं का नाश हो सकता है। व्यवसायी इन जोखिमों से अपने आपको सुरक्षित करना चाहेगा। इस संबंध में बीमा कंपनियाँ उसकी सहायता करती हैं। ये कंपनियाँ ऐसी जोखिम से हुई क्षति की पूर्ति करने का दायित्व अपने ऊपर लेती हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यवसाय को एक बीमा पॉलिसी लेनी पड़ती है और नियमित रूप से एक निश्चित रकम अदा करनी पड़ती है जिसे प्रीमियम कहा जाता है। इस प्रकार बीमा जोखिम संबंधी बाधा को दूर करता है।

4 **विज्ञापन (Advertising)** : वस्तु का विनियम तभी संभव है जब उपभोक्ताओं को उस वस्तु के अस्तित्व के बारे में ज्ञान हो। इसको ज्ञान-संबंधी बाधा कहा जाता है। इस बाधा को विज्ञापन द्वारा दूर किया जाता है। विज्ञापन के माध्यम से उत्पादक अपनी वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी संभावित उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं और उनमें उस वस्तु को खरीदने की तीव्र इच्छा पैदा करते हैं। इस प्रकार विज्ञापन उपभोक्ताओं को वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी पहुँचाने में सहायता करता है। विज्ञापन कई माध्यमों से किया जा सकता है जैसे टेलीविजन, रेडियो, समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, होर्डिंग, दीवारों पर लगे पोस्टर आदि।

5 **बैंकिंग (Banking)** : बैंकिंग वित्त और ऋण-संबंधी बाधाओं को दूर करके वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में सहायता करती है। आज के युग में हम बैंकिंग के बिना व्यवसाय के बारे में सोच ही नहीं सकते। व्यवसाय शुरू करने या उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन की आवश्यकता होती है। बैंक धन-संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। बैंक एक ऐसा संगठन है जो जन-साधारण का धन जमा के रूप में स्वीकार करता है जिसे आवश्यकता पड़ने पर माँग द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से निकलवाया जा सकता है तथा जिन लोगों को धन की आवश्यकता हो उन्हें धन उधार देता है। बैंक व्यवसाय-कार्य के लिए कई अन्य सेवाएँ भी प्रदान करते हैं।

वाणिज्य के वर्गीकरण और उप-वर्गीकरण के लिए चित्र 1.3 देखिए।

चित्र 1.3 : वाणिज्य का वर्गीकरण

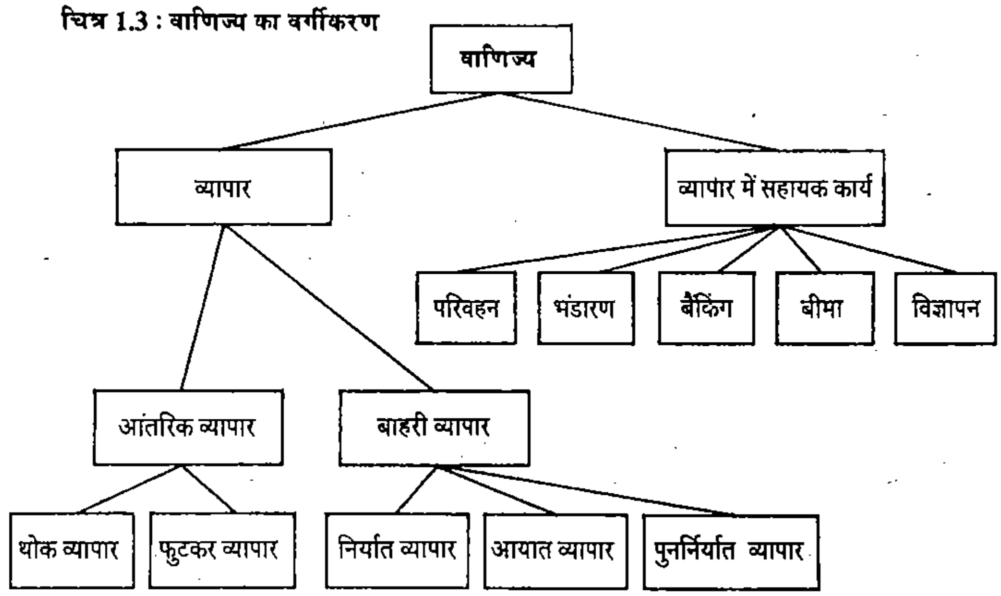

बोध प्रश्न-ग

1 वाणिज्य तथा उद्योग में क्या अंतर है?

....

....

....

....

2 आंतरिक व्यापार और बाहरी व्यापार में क्या भेद है?

....

....

....

....

3 व्यापार वाणिज्य से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

....

4 नीचे व्यापार बाधाओं की एक सूची दी गई है। इन बाधाओं को दूर करने वाले व्यावसायिक कार्यकलाप के नाम बताइए।

बाधाएँ	व्यावसायिक कार्यकलाप का नाम
i) दूरी संबंधी बाधा	....
ii) समय संबंधी बाधा	....
iii) जोखिम संबंधी बाधा	....
iv) वित्त संबंधी बाधा	....
v) ज्ञान संबंधी बाधा	....
vi) व्यक्ति संबंधी बाधा	....

5 बताइए निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत :

i) व्यापार का संबंध वस्तुओं के क्रय और विक्रय से है। ....

ii) कम मात्रा में खरीदने और बेचने वाला व्यक्ति थोक व्यापारी कहलाता है। ....

iii) जब किसी दूसरे देश को वस्तुएँ बेची जाती हैं उसे निर्यात व्यापार कहते हैं। ....

iv) क्रय तथा विक्रय को सहज बनाने वाले कार्य व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आते हैं। ....

v) आयात व्यापार का आशय किसी एक देश में वस्तुएँ खरीदकर उन्हें दूसरे देश में बेचने से है। ....

vi) आंतरिक व्यापार का तात्पर्य राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर वस्तुओं के क्रय और विक्रय से है। ....

vii) फुटकर व्यापारी थोक व्यापारी और उपभोक्ता के बीच संबंध स्थापित करता है। ....

viii) बाहरी व्यापार गृह-व्यापार भी कहलाता है। ....

1.6 संगठन (Organisations)

अभी तक आप व्यावसायिक कार्यकलाप के बारे में तथा उनके विभिन्न प्रकारों जैसे उद्योग, व्यापार, परिवहन, बैंकिंग आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। चाहे आप किसी भी व्यावसायिक कार्य को अपनाएँ, आपको विभिन्न साधन जैसे पूंजी, मशीनरी, कच्चा माल, श्रम, तकनीशन आदि जुटाने होंगे। इन साधनों की मात्र विद्यमानता या उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं है। उद्देश्य कीं पूर्ति के लिए इन साधनों को सुचारु रूप से काम में लाना होगा।

उदाहरण के लिए वस्त्र-उत्पादन को ही लीजिए। सर्वप्रथम आप कुछ भूमि प्राप्त करते हैं, फिर भवन का निर्माण करवाते हैं, मशीनरी का क्रय करते हैं तथा भवन में उसकी स्थापना करवाते हैं। मशीनों पर काम करने के लिए श्रमिकों और तकनीशनों को नियुक्त करते हैं, कच्चा माल खरीदते हैं (जैसे—रूई, रंग आदि), कारखाने में कच्चे माल को संसाधित करते हैं तथा इस प्रकार वस्त्र का उत्पादन करते हैं। वस्त्र का उत्पादन हो जाने के बाद उसे थोक व्यापारियों अथवा फुटकर व्यापारियों के माध्यम से उपभोक्ताओं को बेचा जाता है। इस प्रकार वस्त्र का उत्पादन करने के लिए आपको कारखाना, रूई, रंग, श्रमिक, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी आदि साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। लेकिन इन साधनों के विद्यमान होने मात्र से ही उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। हमें इन सभी साधनों को व्यवस्थित ढंग से एक साथ क्रियान्वित करना होता है और उनके कार्यकलाप में समन्वय स्थापित करना होता है। केवल तभी वस्त्र का उत्पादन करना, उपभोक्ताओं में इसे वितरित करना तथा लाभ प्राप्त करना संभव होता है। किसी भी व्यावसायिक कार्यकलाप के लिए यही सब करना आवश्यक होता है।

व्यावसायिक कार्य तभी वास्तविकता का रूप धारण कर सकता है जब आवश्यक साधनों को जुटाने के लिए, व्यवस्थित ढंग से उन्हें कार्यान्वित करने के लिए तथा उनकी क्रियाओं में उचित समन्वय स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। यही व्यवसाय संगठन कहलाता है।

जे. डब्लू. शुल्ज के विचार में, "संगठन का आशय है आवश्यक प्राणियों, सामग्री, औजार, उपस्कर, कार्य-स्थल, उपकरण तथा वित्त का एकत्रीकरण जिनका आपस में एक व्यवस्थित ढंग से प्रभावी सह-संबंध स्थापित किया जाता है ताकि वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।"

ओलिवर शेल्डन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : "संगठन कार्य के सम्मिश्रण की उस प्रक्रिया को कहते हैं जो कार्य व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के समूह द्वारा उसके निष्पादन के लिए आवश्यक सुविधाओं की सहायता से पूरा किया जाना है ताकि उपलब्ध साधनों के कुशल, व्यवस्थित, सुनिश्चित तथा समन्वित प्रयोग के लिए सर्वश्रेष्ठ स्रोत प्रदान कर सके।"

एफ.जे. राइट के विचार से, "संगठन, किसी आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों का ऐसा सम्मिश्रण अथवा व्यवस्था है जिसके द्वारा या तो उपलब्ध साधनों की सहायता से अधिकतम फल अथवा लाभ प्राप्त किया जा सके अथवा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके जिसमें साधनों का कम से कम प्रयोग किया गया हो।"

इस प्रकार व्यावसायिक संगठन का अर्थ है—लाभ कमाने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यवसाय के विभिन्न घटकों जैसे श्रम बल, कच्चा माल, मशीन, पूँजी, शक्ति आदि को एकत्रित करना, व्यवस्थित ढंग से उन्हें कार्य में लगाना तथा प्रभावकारी ढंग से उनके कार्यकलाप में समन्वय स्थापित करना और उन्हें नियंत्रित करना।

व्यावसायिक संगठन के रूप : व्यवसाय का स्वामित्व एवं प्रबंध किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के हाथ में हो सकता है जो परस्पर मिलकर एक साझेदारी फर्म या एक संयुक्त स्टाक कंपनी अथवा एक सहकारी समिति स्थापित करते हैं। इस प्रकार स्वामित्व एवं प्रबंध के आधार पर हम व्यावसायिक संगठनों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

1	एकल स्वामित्व संगठन	(Sole Proprietorship)
2	साझेदारी फर्म	(Partnership Firm)
3	कंपनी	(Company)
4	सहकारी समिति	(Co-operative Society)

प्रथम दो वर्गों को (एकल स्वामित्व संगठन तथा साझेदारी फर्म) संगठन का गैर-निगमित रूप कहा जा सकता है। शेष दो वर्गों को (कंपनी तथा सहकारी समिति) संगठन का निगमित रूप

कहा जा सकता है। संगठन के इन स्वरूपों का विस्तृत अध्ययन आप इकाई संख्या 2 और 3 में करेंगे।

उद्यमकर्त्ता (Entrepreneur) : आप जानते हैं कि कोई भी व्यवसाय लाभ अर्जित करने के प्रमुख उद्देश्य से ही प्रारंभ किया जाता है। आप यह भी जानते हैं कि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही व्यवसाय की स्थापना की जाती है जिसके लिए विभिन्न संसाधनों को एकत्रित करना, उनमें समन्वय स्थापित करना तथा सभी कार्यों को नियंत्रित करना आवश्यक होता है। ये सभी कार्य कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है जिसने एक विशेष प्रकार का व्यवसाय करने का विचार किया हो, साधन जुटाये हों तथा संगठन को मूर्तरूप देने का कार्य किया हो। ऐसे व्यक्ति को उद्यमकर्त्ता कहा जाता है। यही वह व्यक्ति होता है जो व्यवसाय का जोखिम भी उठाता है। आप जानते हैं कि यद्यपि प्रत्येक व्यवसाय लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से ही प्रारंभ किया जाता है लेकिन हानि होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उद्यमकर्त्ता एक ऐसा व्यक्ति है जो व्यवसाय प्रारंभ करने का विचार करता है, संगठन को मूर्तरूप प्रदान करता है, व्यावसायिक कार्यकलाप को चलाता है तथा जो हानि की जोखिम को वहन करने के लिए तैयार रहता है। उद्यमकर्त्ता के बारे में आप इकाई संख्या 4 में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.7 सारांश

मानवीय कार्यकलाप के संपूर्ण क्षेत्र को (1) आर्थिक कार्यकलाप तथा (2) गैर-आर्थिक कार्यकलाप में वर्गीकृत किया जा सकता है। आर्थिक कार्यकलाप को (1) व्यवसाय (2) वृत्ति (3) रोजगार में विभाजित किया जा सकता है। व्यवसाय का संबंध वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं से है जिसका प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना है। वे कार्य जिनका संबंध एक विशिष्ट प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान करने से होता है, वृत्ति के अंतर्गत आते हैं। रोजगार का आशय नियोक्ता द्वारा किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी व्यक्ति को सौंपे गए कार्य से होता है।

व्यावसायिक कार्यकलाप के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं—(1) वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार (2) उत्पादन तथा/अथवा विनिमय (3) लेनदेन में नियमितता (4) लाभार्जन प्रमुख प्रयोजन (5) जोखिम का तत्व एवं (6) उद्यम । लाभ अर्जित करने के अतिरिक्त व्यवसाय के कुछ आर्थिक, सामाजिक और मानवीय उद्देश्य भी होते हैं।

व्यावसायिक कार्यकलाप को दो वर्गों (1) उद्योग तथा (2) वाणिज्य में विभाजित किया जा सकता है। औद्योगिक कार्यकलाप को आगे 4 वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(1) निस्सारण उद्योग (2) जननिक उद्योग (3) विनिर्माण उद्योग तथा (4) निर्माण उद्योग।

वाणिज्य को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है—(1) व्यापार तथा (2) व्यापार में सहायक कार्य। क्रय और विक्रय से संबंधित कार्य व्यापार के अंतर्गत आते हैं। वे कार्य जो क्रय-विक्रय को सुविधाजनक बनाते हैं तथा वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर प्रवाह को कायम रखते हैं, व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आते हैं। व्यापार में सहायक कार्य इस प्रकार हैं—(1) परिवहन (2) भंडारण (3) बैंकिंग (4) बीमा (5) विज्ञापन।

चित्र : 1.4 मानवीय कार्यकलाप का वर्गीकरण

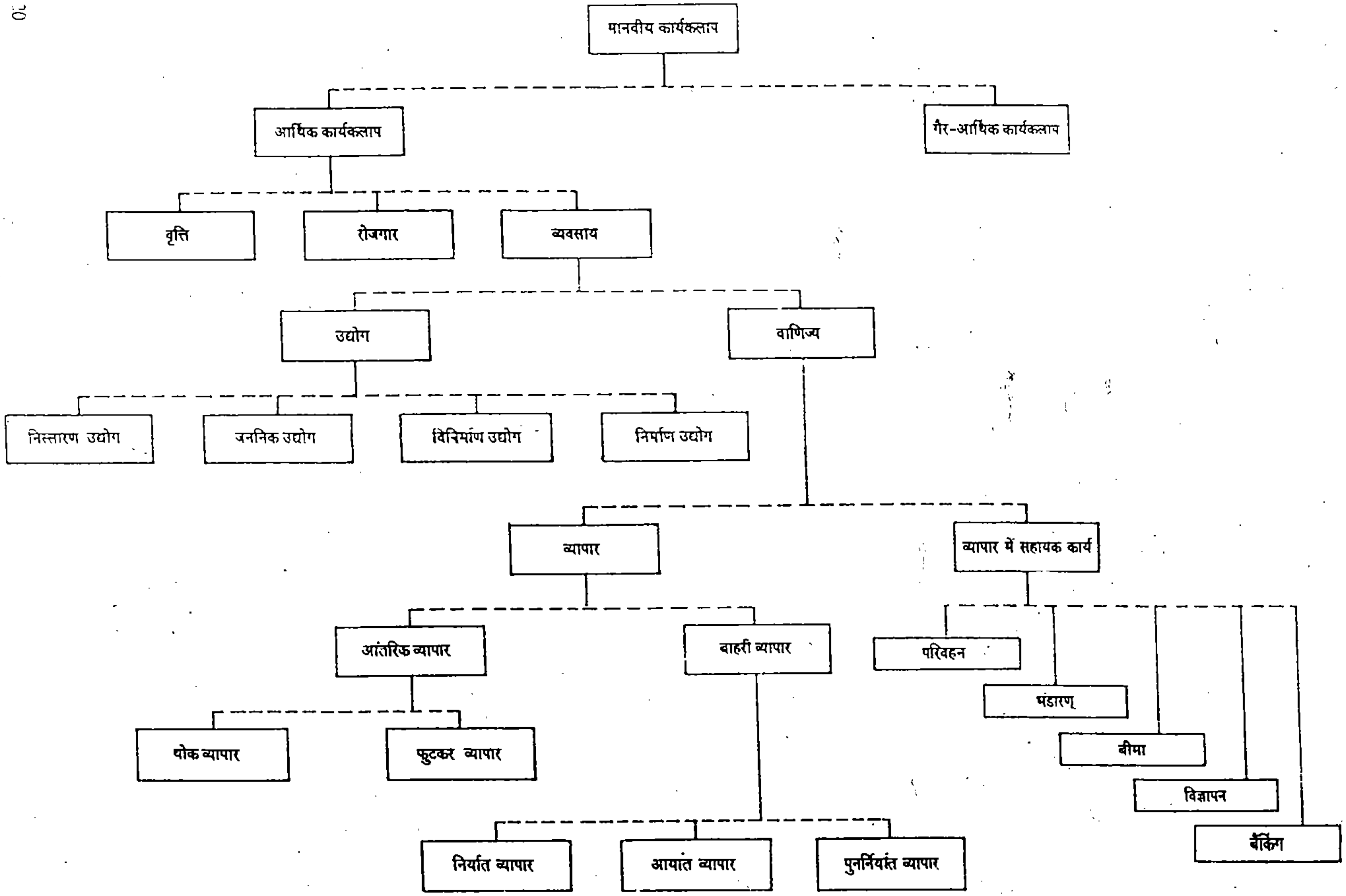

संगठन व्यावसायिक कल्पना को यथार्थ रूप प्रदान करता है। संगठन आवश्यक घटकों को एकत्रित करता है, व्यवस्थित ढंग से उन्हें क्रियान्वित करता है तथा लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से उनके कार्यकलाप को प्रभावकारी ढंग से समन्वित तथा नियंत्रित करता है। व्यावसायिक संगठन के चार प्रमुख आधारभूत रूप हैं—(1) एकल स्वामित्व संगठन (2) साझेदारी संगठन (3) कंपनी तथा (4) सहकारी समिति।

1.8 शब्दावली

विज्ञापन : एक ऐसा कार्य जिसके द्वारा उत्पादित वस्तु की तथा उसकी विशेषताओं की जानकारी लोगों को इस ढंग से दी जाती है जिससे उसकी माँग में वृद्धि हो।

व्यापार में सहायक कार्य : वे कार्य जो उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को सुविधाजनक बनाते हैं।

बैंकिंग : एक ऐसा कार्य जो जनसाधारण को धन जमा कराने के लिए प्रोत्साहित करता है और जिनको ऐसे धन की आवश्यकता होती है उनको ऋण प्रदान करता है।

व्यवसाय : लाभ अर्जित करने के प्रमुख उद्देश्य से चलाया जाने वाला कार्य जो आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं से संबंधित हो।

व्यावसायिक संगठन : व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यवसाय के विभिन्न घटकों जैसे श्रम-शक्ति, कच्चा माल, मशीनें, पूँजी, शक्ति आदि को एकत्रित करना व्यवस्थित ढंग से उन्हें कार्यान्वित करना तथा उनके कार्यकलाप को समन्वित तथा नियंत्रित करना।

वाणिज्य : वे कार्यकलाप जिनका संबंध वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय से तथा क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को कायम रखने से है।

निर्माण उद्योग : ऐसे उद्योग जो भवन, पुल, सड़कें, बाँध, नहरें, रेलपटरी आदि के निर्माण में संलग्न हों।

आर्थिक कार्यकलाप : मानव द्वारा धन या जीविकोपार्जन के लिए किए जाने वाले कार्य।

रोजगार : किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी नियोक्ता के साथ काम करने की क्रिया।

उद्यमकर्त्ता : एक ऐसा व्यक्ति जिसने कोई व्यवसाय प्रारंभ करने की कल्पना की हो, संगठन को मूर्तरूप प्रदान किया हो, व्यावसायिक कार्य को चालू किया हो तथा हानि की जोखिम को उठाने के लिए तैयार हो।

निर्यात व्यापार : किसी दूसरे देश में वस्तुओं का विकय करना।

बाहरी व्यापार : किसी देश की सीमाओं के बाहर वस्तुओं और सेवाओं का क्रय तथा विक्रय।

निस्सारण उद्योग : प्राकृतिक संसाधनों जैसे खनिज पदार्थ, पशु, पौधे, पेड़ आदि की खोज तथा पृथ्वी की सतह से या सतह के नीचे से या वायु से अथवा जल से इन साधनों के निस्सारण में संलग्न उद्योग।

जननिक उद्योग : पौधों और पशुओं के प्रजनन में तथा उनकी प्रजाति में वृद्धि करने में संलग्न उद्योग जिसका उद्देश्य उनके विक्रय से लाभ अर्जित करना है।

आयात व्यापार : किसी दूसरे देश से वस्तुओं का क्रय।

उद्योग : उपलब्ध भौतिक साधनों के उपयोग से वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं से संबंधित कार्य।

बीमा : बीमा कंपनी को एक निश्चित प्रीमियम देकर आग, दुर्घटना आदि से होने वाली क्षति की जोखिम से अपने आपको सुरक्षित रखना।

आंतरिक व्यापार : किसी देश की सीमाओं के भीतर वस्तुओं और सेवाओं का क्रय तथा विक्रय।

विनिर्माण उद्योग : ऐसा उद्योग जिसका संबंध कच्चे माल और अर्ध-निर्मित माल को निर्मित माल में रूपांतरित करने से हो।

गैर-आर्थिक कार्यकलाप : ऐसे कार्य जिनका संपादन मनुष्यों द्वारा स्नेह, प्रेम, सामाजिक कर्त्तव्य, धार्मिक कर्त्तव्य, शारीरिक आवश्यकता आदि के कारण किया जाता है, धन अर्जित करने के लिए नहीं।

वृत्ति : ऐसे कार्य जिनका संबंध वृत्तिक ज्ञान, शिक्षण एवं प्रशिक्षण पर आधारित विशेष प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान करने से हो।

पुनर्निर्यात व्यापार : किसी एक देश से वस्तुओं का आयात करना तथा उन्हीं वस्तुओं का किसी दूसरे देश को निर्यात करना। इसे "आयातित माल का पुनः निर्यात व्यापार" भी कहते हैं।

फुटकर व्यापार : थोक व्यापारियों से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदना तथा उन्हीं वस्तुओं को उपभोक्ताओं को छोटी-छोटी मात्रा में बेचना।

व्यापार : ऐसे कार्य जिनका संबंध वस्तुओं और सेवाओं के क्रय तथा विक्रय से हो।

परिवहन : वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से संबंधित कार्य।

भंडारण : ऐसे कार्य जिनका संबंध वस्तुओं को सुरक्षित रखने से हो ताकि उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता हो तो उन्हें वे वस्तुएँ उपलब्ध कराई जा सकें।

थोक व्यापार : उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदना तथा फुटकर व्यापारियों को उन्हें छोटी-छोटी मात्रा में बेचना।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1, 3 खण्ड एक।

बी.पी. सिंह एवं टी. एन. छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 1, 3 खण्ड एक।

जी.एल. जोशी, जी. एल. शर्मा, एल.एस.सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 1, 3।

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय-संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1 खण्ड एक।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 5 (i) व्यवसाय (ii) रोजगार (iii) रोजगार (iv) वृत्ति
(v) व्यवसाय (vi) वृत्ति (vii) व्यवसाय

(i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत
(v) गलत (vi) सही (vii) सही (viii) सही
(ix) गलत (x) सही (xi) गलत

ख) 2 (i) आर्थिक-कार्यकलाप (ii) रोजगार (iii) व्यवसाय
(iv) उद्योग (v) जननिक (vi) विनिर्माण

(i) निस्सारण (ii) निस्सारण (iii) विनिर्माण
(iv) निर्माण (v) विनिर्माण (vi) जननिक (vii) निर्माण
(viii) विनिर्माण

ग) 4 (i) परिवहन (ii) भंडारण (iii) बीमा (iv) बैंकिंग
(v) विज्ञापन (vi) व्यापार

5 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही
(v) गलत (vi) सही (vii) सही (viii) गलत

1.11 स्वपरख प्रश्न

1 व्यवसाय किसे कहते हैं? इसके लक्षणों और उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2 क्या व्यवसाय वृत्ति और रोजगार से भिन्न है? विवेचन कीजिए।
3 उद्योग किसे कहते हैं? इसके वर्गीकरण की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
4 वाणिज्य से आप क्या समझते हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर वाणिज्य के वर्गीकरण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5 "संगठन" से आप क्या समझते हैं? व्यावसायिक संगठन के आधारभूत रूप कौन से हैं।
6 उद्यमकर्ता से क्या तात्पर्य है? व्यवसाय में उसकी क्या भूमिका है?

खंड 1 व्यावसायिक संगठन की मूलभूत संकल्पनाएँ तथा रूप

यह वाणिज्य के एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम व्यावसायिक संगठन के लिए प्रारंभिक खंड है। इसमें मुख्य रूप से व्यवसाय के स्वरूप तथा उद्देश्य, व्यावसायिक कार्यकलाप के वर्गीकरण, व्यावसायिक संगठनों के विविध रूपों और उद्यम-कार्य तथा व्यवसाय प्रवर्तन की संकल्पनाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 1 इस इकाई में व्यवसाय का स्वरूप एवं उद्देश्य स्पष्ट किए गए हैं, व्यावसायिक कार्यकलाप का वर्गीकरण बताया गया है तथा व्यावसायिक संगठन का अर्थ स्पष्ट किया गया है।

इकाई 2 इस इकाई में व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूप बताए गए हैं और प्रत्येक रूप के लक्षणों, गुणों तथा सीमाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 3 इस इकाई में व्यावसायिक संगठन के सभी रूपों की परस्पर तुलना की गई है और उन घटकों का विश्लेषण किया गया है जिनका प्रस्तावित व्यवसाय के लिए चुने जाने वाले रूप पर प्रभाव पड़ता है।

इकाई 4 इस इकाई में यह बताया गया है कि व्यवसाय में उद्यमकर्ता की क्या भूमिका है और साथ ही विभिन्न प्रकार के स्वामित्व वाले व्यवसाय के प्रवर्तन की प्रक्रिया पर भी चर्चा की गई है।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिये, किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 2 व्यावसायिक संगठन के रूप I

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 एकल स्वामित्व संगठन
  2.2.1 प्रमुख विशेषताएँ
  2.2.2 गुण व सीमाएँ
2.3 साझेदारी संगठन
  2.3.1 प्रमुख विशेषताएँ
  2.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण
  2.3.3 भागीदारी विलेख
  2.3.4 गुण व सीमाएँ
  2.3.5 संयुक्त हिन्दू परिवार
2.4 कम्पनी संगठन
  2.4.1 प्रमुख विशेषताएँ
  2.4.2 कम्पनियों का वर्गीकरण
  2.4.3 गुण व सीमाएँ
2.5 सहकारी संगठन
  2.5.1 प्रमुख विशेषताएँ
  2.5.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण
  2.5.3 गुण व सीमाएँ
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.10 स्वपरख प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठनों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन की विशेषताएँ बता सकेंगे।
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन के गुणों व सीमाओं का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा है कि लाभ कमाने की दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य व्यवसाय कहलाता है, और ऐसा कार्य चाहे वह औद्योगिक कार्य है, अथवा व्यापारिक कार्य अथवा बैंकिंग, बीमा, परिवहन आदि विषयक सेवा कार्य हो सकता है। आपने यह भी पढ़ा है कि व्यवसाय को शुरू करने के लिए विभिन्न साधनों को एक साथ व्यवस्थित ढंग से जुटाना व्यावसायिक संगठन कहलाता है। वह व्यक्ति जो व्यवसाय शुरू करता है, आवश्यक पूँजी जुटाता है तथा जोखिम वहन करता है, व्यवसाय का स्वामी कहलाता है। जब व्यवसाय छोटे पैमाने का होता है तो एक व्यक्ति भी आवश्यक पूँजी जुटा सकता है तथा जोखिम उठा सकता है। परन्तु जब यह बड़े पैमाने पर होता है, तो एक से अधिक व्यक्तियों का होना वांछनीय हो जाता है। अस्तु, व्यवसाय का स्वामी एक व्यक्ति भी हो सकता है और व्यक्तियों का समूह भी। जब व्यवसाय का एक ही व्यक्ति स्वामी होता है तथा वह व्यक्ति ही उसे चलाता है तब यह एकल स्वामित्व संगठन कहलाता है। परन्तु जब व्यक्तियों का समूह इसका स्वामी होता है, तब यह साझेदारी फर्म अथवा कम्पनी अथवा सहकारी समिति का रूप ले सकता है। इस

इकाई में आप विभिन्न व्यवसायों अथवा संगठनों के लक्षण, वर्गीकरण, गुण व सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

चित्र 2.1 को देखिए। इस चित्र से आपको व्यवसाय के विभिन्न रूपों की जानकारी हो सकेगी।

चित्र : 2.1 व्यावसायिक संगठनों के विभिन्न रूप

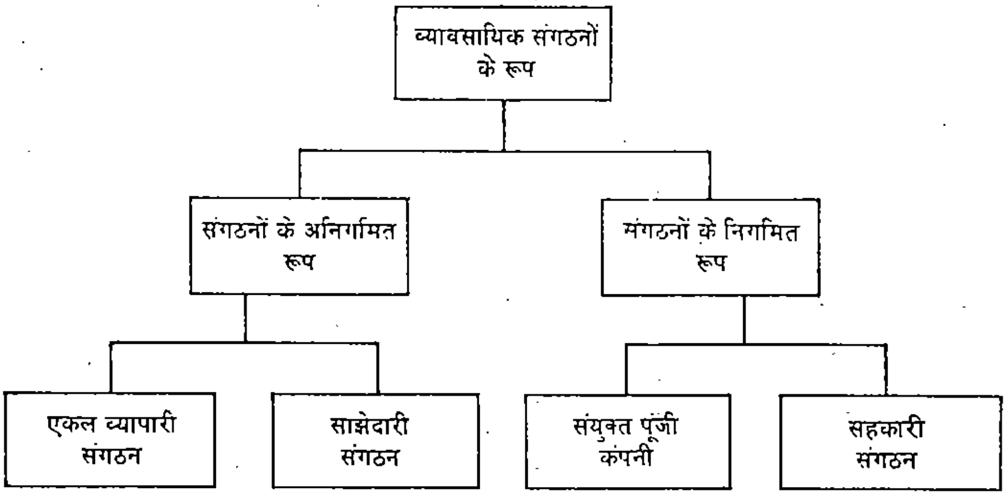

2.2 एकल स्वामित्व संगठन

एकल व्यापारी संगठन (जिसे एकल स्वामित्व (sole proprietorship) भी कहा जाता है। सबसे प्राचीन संगठन है और आज भी छोटे पैमाने के व्यवसायों के लिए सबसे अधिक अपनाया जाने वाला रूप है। स्थापना की दृष्टि से यह सबसे सरल है। इस रूप के लिए, व्यक्ति सर्वप्रथम यह निश्चय करता है कि उसे किस प्रकार का व्यवसाय करना है और वह उसके लिए आवश्यक पूँजी जुटा लेता है। अपनी बचत से, अथवा अपने मित्रों तथा संबंधियों से ऋण लेकर वह आवश्यक पूँजी जुटाई जा सकती है। अपने ही मकान के एक भाग में अथवा किराए पर लिए मकान में वह अपना कारोबार शुरू कर सकता है। प्राय: वह व्यक्ति स्वयं ही अपने कारोबार का प्रबंध करता है। इसके लिए वह अपने परिवार के सदस्यों की सहायता भी ले सकता है। वह कारोबार चलाने के लिए अन्य व्यक्तियों से सलाह भी ले सकता है परन्तु उसका अपना निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। अस्तु वह एकल व्यापारी फर्म के मामलों में पूर्ण नियंत्रण रखता है। व्यवसाय में अर्जित कुल मुनाफे पर भी उसका अधिकार रहता है। इसलिए यदि उसे घाटा हो जाए तो स्वाभाविक है, कि उसका पूर्ण भार उसी को सहन करना पड़ता है।

अस्तु, अब हम एकल व्यापारी संगठन की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं – "यह एक व्यक्ति का कारोबार होता है जिसमें वह अपनी पूँजी, कौशल तथा बुद्धिमत्ता से स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं उत्पादन करता है और उसके समस्त लाभ को भोगने का अधिकारी होता है तथा स्वामित्व के पूर्ण जोखिम को वहन करता है।" जे.एल. हैन्सन ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है, "यह एक प्रकार के कारोबार की इकाई है जिसमें वह व्यक्ति ही पूर्णरूप से पूँजी जुटाने तथा उद्यम की जोखिम उठाने तथा कारोबार का प्रबंध करने के लिए उत्तरदायी होता है।" व्यावसायिक संगठन के इस रूप में स्वामी और फर्म में कोई अंतर नहीं रखा जाता है। इसी प्रकार, उसी व्यक्ति के हाथों में कारोबार का प्रबंध भी रहता है।

2.2.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम एकल व्यापारी संगठन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार गिनवा सकते हैं:

1 **एक ही व्यक्ति का स्वामित्व :** इस प्रकार के उद्यम पर एक ही व्यक्ति का स्वामित्व होता है। उसमें सहयोगी अथवा साझेदार नहीं होते हैं। वह अपनी पूँजी लगाता है अथवा अपने मित्रों व संबंधियों से ऋण लेकर पूँजी जुटाता है।

2 **स्वामित्व तथा प्रबंध में पृथकता नहीं :** स्वामी ही स्वयं व्यवसाय का प्रबंध करता है। अतः स्वामित्व तथा प्रबंध की पृथकता जो बड़े व्यवसायों में प्रायः देखी जाती है, इस व्यावसायिक रूप में दिखाई नहीं देती है। चूँकि व्यवसाय का स्वामी ही प्रबंध करता है, अतः व्यवसाय के कार्य-संचालन की उच्च स्तर पर देखरेख व नियंत्रण करता है।

3 **कोई पृथक अस्तित्व नहीं :** व्यावसायिक उद्यम का स्वामी से भिन्न अस्तित्व नहीं रहता। स्वामी तथा व्यावसायिक उद्यम एक ही रहते हैं।

4 **समस्त लाभ स्वामी का ही होता है :** चूँकि साझेदार नहीं होते हैं अतः समस्त लाभ एकल स्वामी को ही प्राप्त होता है।

5 **जोखिम अकेले स्वामी की ही होती है :** व्यवसाय में होने वाली सम्पूर्ण हानि स्वामी को ही अकेले वहन करनी होती है।

6 **असीमित दायित्व :** स्वामी का असीमित दायित्व होता है। इसका अर्थ यह है कि हानि के होने पर स्वामी की निजी सम्पत्ति से भी व्यावसायिक देयता व ऋणों का शोधन करना पड़ जाता है।

7 **कम कानूनी औपचारिकताएँ :** एकल व्यावसायिक इकाई स्थापित करने के लिए कम कानूनी औपचारिकताएँ निभानी पड़ती हैं। हाँ, एक विशेष प्रकार का व्यवसाय स्थापित करने पर कुछ कानूनी प्रतिबंध अवश्य हैं। उदाहरण के लिए, एक अकेला व्यक्ति बैंक अथवा बीमा कम्पनी की स्थापना नहीं कर सकता। परन्तु, वह चाट की दुकान, साइकिल की दुकान बिना अधिक कानूनी औपचारिकताओं के शुरू कर सकता है। फिर भी कुछ दशाओं में उसे लाइसेंस लेना पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, एक रेस्तरां चलाने के लिए नगर निगम से लाइसेंस लेना आवश्यक हो जाता है।

2.2.2 गुण व सीमाएँ

एकल व्यापारिक उपक्रम की प्रमुख विशेषताओं का आपको ज्ञान हो चुका है। इन विशेषताओं के संदर्भ में, संगठन के इस रूप में निम्नलिखित गुण व सीमाएँ पाई जाती हैं।

गुण

1 **सुगम स्थापना :** संगठन के इस रूप की स्थापना में कोई कानूनी औपचारिकताएँ नहीं निभानी पड़तीं। अतः इसकी स्थापना सुगम एवं सरल होती है। स्थापना की प्रक्रिया में किया जाने वाला व्यय भी नगण्य होता है।

2 **प्रत्यक्ष प्रेरणा :** जैसा कि आप जानते हैं, व्यवसाय के सभी फायदे और लाभ एकल स्वामी की ही जेब में जाते हैं। इससे स्वामी को अधिक परिश्रम करने और व्यवसाय को विकसित करने की प्रेरणा मिलती है जिससे लाभ दिन-ब-दिन बढ़ता जाता है। अस्तु, व्यवसाय में उसकी लगन पूरी तथा निर्बाध होती है।

3 **पूर्ण नियंत्रण :** स्वामी अपने व्यवसाय का सर्वेसर्वा होता है। वह सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रबंध करता है तथा समस्त निर्णय स्वयं ही लेता है। अन्य शब्दों में, स्वामी का व्यवसाय के कार्य-संचालन पर पूर्ण नियंत्रण रहता है।

4 **शीघ्र निर्णय :** निर्णय लेने के लिए स्वामी को अन्य व्यक्तियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। क्योंकि कोई साझेदार नहीं होते, इसलिए किसी दूसरे से सलाह लेने की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे वह अपने व्यवसाय से संबंधित अनेक विषयों में शीघ्र निर्णय ले सकता है।

5 **कारोबार में लचीलापन :** छोटा संगठन होने के नाते, परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करना सरल होता है। बड़े संगठनों में परिवर्तन करना कठिन हो जाता है।

6 **गोपनीयता :** चूँकि सम्पूर्ण व्यवसाय स्वामी द्वारा ही संचालित किया जाता है इसलिए व्यवसाय की गोपनीय बातों की उसको ही जानकारी रहती है। उसे अपने लेखों को प्रकाशित नहीं कराना पड़ता। अतः इस प्रकार के संगठन में भरपूर गोपनीयता रखी जा सकती है।

7 **व्यक्तिगत सम्पर्क :** चूँकि स्वामी व्यवसाय से संबंधित सभी कार्यों का स्वयं ही संचालन

करता है इसलिए उसे अपने ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखना सरल हो जाता है। वह ग्राहकों की रुचि, उनकी पसंद और नापसंद को सरलता से जान सकता है और अपना कार्य तथा व्यवहार उन्हीं के अनुरूप ढाल लेता है। इसी प्रकार ऐसे संगठन में यदि कुछ कर्मचारी भी हों तो वे अपने स्वामी के सीधे सम्पर्क में रहते हैं। अंतः स्वामी को अपने कर्मचारियों से मधुर संबंध बनाए रखने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

8 **व्यवसाय के समापन में आसानी :** सह-स्वामी तथा साझेदारों के न होने से मतभेद का प्रश्न नहीं उठ पाता और व्यवसाय का सरलता से समापन किया जा सकता है। स्वामी को व्यवसाय से मुक्त होने की स्वतंत्रता रहती है। वह किसी भी समय अपने व्यवसाय को छोड़ सकता है या जब भी वह चाहे उसे बेच सकता है। स्थापना तथा समापन की सरलता के कारण एकल स्वामित्व संगठन, प्रायः अपनाया जाता है क्योंकि इससे किसी व्यवसाय के चलने या ठप्प हो जाने की परख हो सकती है।

सीमाएँ

1 **सीमित साधन :** एक अकेले व्यक्ति के पास पूँजी तथा अन्य साधन सीमित मात्रा में ही होते हैं। एकल व्यापारी को तो मुख्य रूप से अपनी कमाई और पूँजी पर ही निर्भर रहना होता है अथवा आवश्यकता पड़ने पर अधिक से अधिक वह अपने मित्रों तथा संबंधियों से ऋण ले सकता है। इस प्रकार स्वामी की पूँजी जुटाने की सीमित क्षमता होती है। यही कारण है कि बड़े पैमाने पर किसी व्यवसाय के विस्तार की योजना सरलता से पूरी करना दुष्कर होता है।

2 **सीमित प्रबंध-क्षमता :** आधु...क व्यवसाय में उत्पादन, वित्त, विपणन आदि विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान व कौशल की आवश्यकता होती है। इन सभी क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान एक ही व्यक्ति के पास पाया जाना संभव नहीं है। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसके निर्णय संतुलित होंगे।

3 **बड़े पैमाने पर कारोबार के लिए उपयुक्त नहीं :** एकल व्यापारी के पास साधन सीमित होते हैं, अतः यह रूप छोटे पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए ही उपयुक्त होता है, बड़े पैमाने के कारोबार के लिए नहीं।

4 **असीमित दायित्व :** आप यह जानते हैं कि स्वामी का असीमित दायित्व होता है। हानि की दशा में, उसकी निजी सम्पत्ति तथा वस्तुएँ भी, फर्म की देयता का शोधन करने में प्रयोग की जा सकती हैं। अतः वह बड़ी जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हो सकता और अपने व्यवसाय का विस्तार करने के लिए उत्साह नहीं जुटा पाता है।

5 **कम स्थायित्व :** व्यवसाय की निरंतरता तथा स्थायित्व केवल एक ही व्यक्ति पर निर्भर होता है। जब उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो फर्म को बंद करने की नौबत आ जाती है।

6 **कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं :** एकल व्यापारी चूँकि अपनी फर्म का बादशाह होता है इसलिए कोई भी बाहरी व्यक्ति उसके कार्य व व्यवहार पर उँगली नहीं उठा सकता। एकल व्यापारी पर कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं होता।

7 **बड़े पैमाने पर व्यवसाय कराके लाभ कमाने की कम संभावना :** एकल व्यापारी बहुधा छोटे पैमाने पर ही अपना कारोबार चलाता है, अतः वह बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय से होने वाले लाभ से वंचित रह जाता है। इससे कारोबार की लागत के अधिक होने की आशंका रहती है।

बोध प्रश्न - क

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

i) एकल व्यापारी का दायित्व .... होता है।
ii) एकल-व्यापार संगठन का सम्पूर्ण लाभ .... की जेब में जाता है।
iii) एकल व्यापार संगठन तभी उपयुक्त होता है जब व्यवसाय .... होता है
iv) एक व्यापार संगठन में स्वामियों की संख्या .... होती है।
v) एकल व्यापार संगठन में निर्णय लेना केवल .... के हाथ में होता है।

2 बतलाइए, निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत

i) एकल स्वामित्व बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है ....
ii) एकल व्यापार संगठन में स्वामी व्यापारिक फर्म से भिन्न नहीं होता है ....

iii) एकल व्यापार के स्वामी की पूँजी जुटाने की असीमित क्षमता होती है ....

iv) हानि की स्थिति में, एकल व्यापारी को व्यावसायिक दायित्व अपनी निजी सम्पत्ति से भी चुकाने पड़ते हैं। ....

v) एकल स्वामित्व व्यवसाय पर बहुत से व्यक्तियों का स्वामित्व होता है परन्तु प्रबंध एक ही व्यक्ति के द्वारा किया जाता है। ....

2.3 साझेदारी संगठन (Partnership Organisations)

आप पढ़ चुके हैं कि एकल व्यापार संगठनों में वित्तीय साधन, सीमित प्रबंध-कौशल एवं योग्यता तथा असीमित दायित्व होता है। यदि व्यापार का विस्तार किया जाए तो अधिक पूँजी तथा अधिक प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है। साथ ही जोखिम भी बढ़ जाती है। एकल व्यापारी इन सभी शर्तों को पूरा करने में असमर्थ रहता है। एक व्यक्ति के पास प्रबंध-कौशल नहीं है परंतु पूँजी है। दूसरा अच्छा प्रबंधक है परंतु वह पर्याप्त पूँजी नहीं जुटा पाता। ऐसी परिस्थिति में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति मिल जाते हैं और अपनी पूँजी वे कौशल को मिलाकर व्यवसाय को संगठित करते हैं। इस प्रकार का व्यावसायिक संगठन साझेदारी संगठन कहलाता है। एकल स्वामित्व संगठन की सीमाओं तथा असफलताओं के परिणामस्वरूप ही इसका विकास हो पाया है।

जे.एल. हैन्सन ने इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी है – "साझेदारी व्यावसायिक संगठन का एक ऐसा रूप है जिसमें दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति परंतु अधिक से अधिक 20 व्यक्ति किसी कारोबार को करने के लिए एकत्रित होते हैं।"

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत दी गई परिभाषा इस प्रकार है–"साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है जो सभी के द्वारा अथवा उनमें से किसी के द्वारा सभी की ओर से संचालित कारोबार का लाभ बाँटने के लिए सहमत होते हैं।"

यू.एस.ए. के यूनीफार्म पार्टनरशिप ऐक्ट के अनुसार, "साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का साहचर्य है जो मुनाफा बाँटने के लिए किसी कारोबार को सहस्वामी के रूप में चलाते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं, कि साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों का साहचर्य है जो सभी के द्वारा संचालित अथवा सभी की ओर से किसी एक के द्वारा संचालित कारोबार के लाभ बाँटने के लिए एकत्रित हुए हैं।

साझेदारी व्यवसाय के स्वामी, व्यक्तिगत रूप से साझेदार कहलाते हैं तथा सामूहिक रूप से **फर्म अथवा साझेदारी फर्म**। आपस में हुए करार के अनुसार वे अपने हिस्से की पूँजी लगाते हैं तथा कारोबार को चलाने का दायित्व निभाते हैं। परंतु, कुछ स्थितियों में एक ही साझेदार सम्पूर्ण पूँजी अथवा उसका बड़ा भाग लगाता है और अन्य साझेदार चाहे कुछ पूँजी लगाए या नहीं वे तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल जुटाते हैं। ये सभी शर्तें आम तौर पर साझेदारी करार अथवा करारनामे में उल्लिखित रहती हैं।

2.3.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम साझेदारी संगठन की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते हैं:

1 **एक से अधिक व्यक्ति** : साझेदारी फर्म स्थापित करने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों की जरूरत होती है। व्यक्तियों की संख्या के संबंध में अधिकतम सीमा, बैंकिंग व्यवसाय में दस तथा अन्य व्यवसायों में बीस रखी गई है।

2 **संविदात्मक संबंध** : साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच हुए समझौते से उत्पन्न होती है जिन्हें साझेदार कहा जाता है। अन्य शब्दों में, एक व्यक्ति करार के आधार पर ही साझेदार बन सकता है। यह करार मौखिक, लिखित अथवा विवक्षित हो सकता है।

3 **लाभ का बँटयारा** : साझेदारों के बीच कारोबार के लाभ और हानि का बँटवारा करने के लिए भी करार आवश्यक होता है। यह साझेदारी के महत्वपूर्ण तत्वों में से एक तत्व है।

यदि दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति एक सम्पत्ति के सह-स्वामी हैं और उसकी आय आपस में बाँट लेते हैं तो उनके बीच का यह संबंध साझेदारी नहीं कहलायेगा।

4 **कारोबार का विद्यमान होना :** साझेदारों के बीच किए जाने वाले करार का उद्देश्य होता है विधिपूर्ण कारोबार की स्थापना करना और उससे होने वाले लाभ को बाँट लेना। यदि उद्देश्य कारोबार के अलावा और कुछ होता है तो यह साझेदारी नहीं कहलायेगी। उदाहरण के लिए, यदि उद्देश्य कोई धर्मार्थ कार्य करना है तो वह साझेदारी नहीं कहलायेगी।

5 **मालिक-एजेंट संबंध :** फर्म का कारोबार सभी के द्वारा अथवा सबकी ओर से एक अथवा कुछ के द्वारा चलाया जा सकता है। फर्म के कार्यकलाप में प्रत्येक साझेदार को भाग लेने का अधिकार है। फर्म के कारोबार के संबंध में अन्य पक्षकारों के साथ व्यवहार करते समय प्रत्येक साझेदार को फर्म तथा अन्य साझेदारों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। फर्म के नाम में तथा साधारण व्यवसाय के दौरान किए गये उसके कार्य सभी साझेदारों के लिए बाध्य-कर होते हैं। इस अर्थ में साझेदार अन्य साझेदारों तथा फर्म का एजेंट माना जाता है।

6 **असीमित दायित्व :** व्यवसाय संबंधी ऋण के प्रति प्रत्येक साझेदार का असीमित दायित्व होता है। इस का अर्थ यह है कि जब फर्म के पास अपनी देयताओं का शोधन करने के लिए पर्याप्त परिसम्पत्ति नहीं होती तो साझेदारों को अपनी निजी परिसम्पत्ति से ये भुगतान करने होते हैं। ऋणदाता समस्त ऋण की रकम केवल एक साझेदार से भी वसूल कर सकते हैं। अस्तु, सभी साझेदार संयुक्ततः तथा पृथकतः व्यवसाय के सम्पूर्ण ऋण तथा देयताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।

7 **सदाशयता तथा ईमानदारी :** एक साझेदारी करार साझेदारों के बीच सदाशयता पर आधारित होता है। साझेदार ईमानदार होने चाहिए तथा उन्हें एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। उन्हें व्यवसाय के बारे में प्रत्येक जानकारी देनी चाहिए तथा एक दूसरे को फर्म के लेखों का सही चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

8 **लाभ के हिस्से के हस्तांतरण पर रोक :** साझेदार फर्म में अपने लाभ के हिस्से का अन्य सभी साझेदारों की स्वीकृति लिए बिना हस्तांतरण नहीं कर सकता है।

2.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण

आप पढ़ चुके हैं कि फर्म के कार्य-संचालन में भिन्न साझेदारों की भिन्न-भिन्न भूमिका होती है। एक साझेदार अधिक पूँजी लगा सकता है, जबकि दूसरा उसके प्रबंध में अधिक समय दे सकता है। उनकी जो भी भूमिका होती है उसके आधार पर हम साझेदारों का विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर सकते हैं। साझेदारों के वर्गीकरण के लिए चित्र 2.2 देखिए।

चित्र : **2.2** साझेदारों का वर्गीकरण

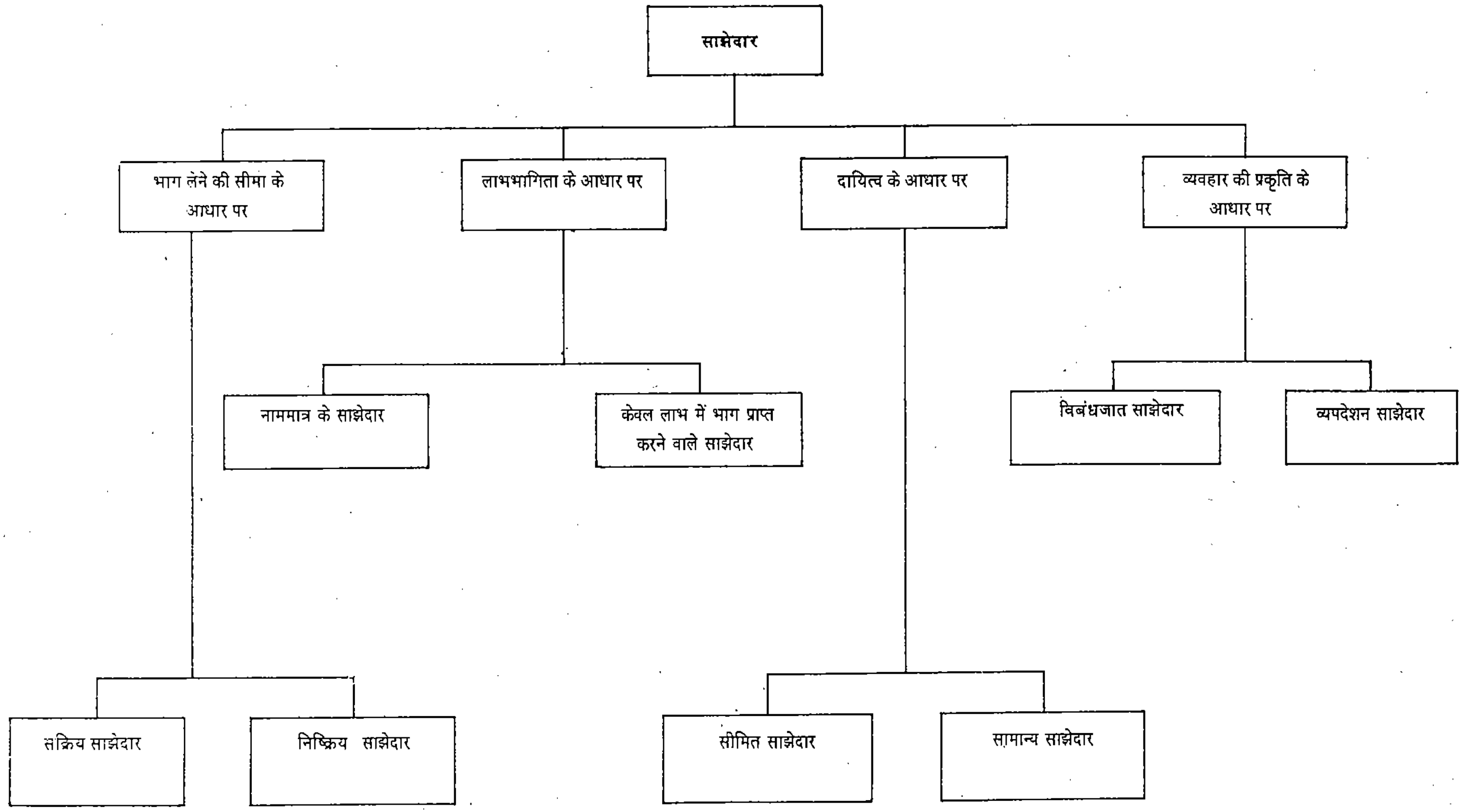

व्यवसाय के संचालन में भाग लेने के आधार पर साझेदारों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है (क) सक्रिय और (ख) निष्क्रिय अथवा सुप्त साझेदार।

(क) **सक्रिय (Active) साझेदार** : यदि साझेदार फर्म के प्रबंध में सक्रिय भाग लेता है तो वह सक्रिय साझेदार कहलाता है। उसे "क्रियाशील साझेदार" भी कहा जाता है।

(ख) **निष्क्रिय (Dormant/Sleeping) साझेदार** : यदि साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता है तो उसे निष्क्रिय साझेदार कहा जाता है। निष्क्रिय साझेदार फर्म में केवल पूँजी लगाता है। वह फर्म के कार्य संचालन में भाग नहीं लेता। इस प्रकार के साझीदार को सुप्त साझेदार भी कहा जाता है।

लाभ में भाग प्राप्त करने के आधार पर : साझेदारों को (क) नाममात्र के साझेदार तथा (ख) लाभ में भाग पाने वाले साझेदार के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

नाममात्र के (Nominal) साझेदार : एक साझेदार जो फर्म को केवल अपना नाम ही देता है, नाममात्र का साझेदार कहलाता है। वह न तो पूँजी लगाता है और न ही दिन-प्रतिदिन के कार्यों तथा प्रबंध में भाग लेता है। इस प्रकार के साझेदारों को फर्म के लाभों में भाग नहीं मिलता। परन्तु वे अन्य पक्षकारों के प्रति फर्म के कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते हैं।

लाभ में भाग पाने वाले (Partners in profits) साझेदार : एक साझेदार जो फर्म के लाभ में तो भाग पाता है परन्तु हानि होने की दशा में उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता, लाभ में भाग पाने वाला साझेदार कहलाता है। नियमानुसार उसे फर्म के प्रबंध में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता है। यह बात उस अवयस्क व्यक्ति पर लागू होती है जिसे फर्म के लाभों में भाग प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

व्यवहार तथा आचरण के आधार पर : साझेदारों का वर्गीकरण (क) विबंधजात साझेदार और (ख) व्यपदेशनजात साझेदार के रूप में भी किया जा सकता है --

विबंधजात साझेदार (Partner by estoppel) : एक व्यक्ति जब जनता के सामने इस प्रकार व्यवहार करता है कि वह यह समझने लगती है कि अमुक व्यक्ति फर्म का साझेदार है तो वह विबंधजात साझेदार कहलाता है। ऐसे व्यक्ति को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु वह फर्म के दायित्वों के प्रति उत्तरदायी ठहराया जाता है।

व्यपदेशनजात साझेदार (Partner by holding out) : यदि फर्म का कोई साझेदार यह प्रदर्शित करता है कि अमुक व्यक्ति भी इस फर्म में साझेदार है और जब उस व्यक्ति को यह पता चलता है और व्यक्ति इस बात से इनकार नहीं करता अर्थात यह नहीं कहता कि वह फर्म में साझेदार नहीं है, तो इस प्रकार का व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है। इस प्रकार के साझेदार को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु, वह फर्म के दायित्वों के प्रति उत्तरदायी होता है।

आपको इन दोनों प्रकार के साझेदारों के बीच अंतर स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। विबंधजात साझेदार वह होता है जो अपने व्यवहार तथा आचरण से अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क में यह विचार भर देता है कि वह फर्म का साझेदार है। जबकि व्यपदेशनजात साझेदार के लिए, फर्म के अन्य साझेदार अन्य पक्षकारों से कहते हैं कि अमुक व्यक्ति भी फर्म का साझेदार है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है और वह व्यक्ति इस बात का खंडन नहीं करता है। पृथक पाठ्यक्रम में आप इनके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे।

दायित्व के आधार पर भी साझेदारों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:
(क) सीमित साझेदार (ख) सामान्य साझेदार

सीमित (Limited) साझेदार : इस प्रकार के साझेदार की दायित्व की सीमा उसके द्वारा फर्म में लगाई हुई पूँजी तक ही होती है। यह साझेदार फर्म के प्रबंध में भाग लेने का अधिकारी नहीं होता परन्तु वह अन्य सामान्य साझेदारों को परामर्श देने का अधिकार रखता है। उसके कार्य फर्म के लिए बाध्य-कर नहीं होते। अपनी सूचना के लिए उसे फर्म की पुस्तकों को देखने का अधिकार मिला होता है। इन साझेदारों को 'विशेष साझेदार' का नाम भी दिया जाता है।

सामान्य (General) साझेदार : यह असीमित साझेदार के नाम से भी पुकारा जाता है। उसका दायित्व असीमित होता है। और वह व्यवसाय के प्रबंध में भाग लेने का भी अधिकारी होता है। सीमित साझेदार के अलावा सभी साझेदार सामान्य साझेदार माने जाते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि साझेदारी में साझेदारों का दायित्व असीमित होता है। सीमित साझेदारी के व्यवसाय संगठन में ही सीमित साझेदार पाये जाते हैं जो कि कुछ यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ही हैं। **भारत में सीमित साझेदारी नहीं हो सकती है।**

2.3.3 भागीदारी विलेख (Partnership Deed)

आप यह जानते हैं कि साझेदारी की स्थापना करार द्वारा की जाती है। इस प्रकार का करार मौखिक अथवा लिखित हो सकता है। गलतफहमी तथा अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचने के लिए लिखित करार करना सदैव वांछनीय होता है। जब लिखित करार पर विधिवत स्टाम्प लगा दिया जाता है और उसका पंजीकरण भी करा लिया जाता है तब यह **भागीदारी विलेख** कहलाता है। पंजीकरण के पश्चात् प्रत्येक साझेदार को साझेदारी विलेख की एक प्रतिलिपि दे दी जाती है। एक भागीदारी विलेख में प्रायः निम्न बातें शामिल की जाती हैं:

1 फर्म का नाम
2 कारोबार की प्रकृति
3 साझेदारों के नाम
4 शहर तथा जगह का नाम जहाँ कारोबार किया जाता है
5 पूँजी की रकम, जो प्रत्येक साझेदार को लगानी होगी
6 प्रत्येक साझेदार का हानि-लाभ अनुपात
7 साझेदारों द्वारा दिए गए ऋण और अग्रिम की राशि तथा उन पर दिए जाने वाले ब्याज की राशि
8 प्रत्येक साझेदार की आहरण की सीमा तथा उस पर लिए जाने वाले ब्याज की दर
9 पूँजी पर दिए जाने वाले ब्याज की दर
10 साझेदारों के कर्तव्य, अधिकार तथा दायित्व
11 सक्रिय साझेदार को यदि कुछ पारिश्रमिक दिया जाना हो तो उसकी राशि
12 लेखा पुस्तकों का रख-रखाव तथा लेखा परीक्षा की व्यवस्था
13 साझेदारी के विघटन की स्थिति में निपटान की विधि
14 साझेदार के प्रवेश, मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय सुनाम (गुडविल) के मूल्यांकन की विधि
15 साझेदार के प्रवेश,मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय परिसम्पत्तियों और देयताओं के पुर्नमूल्यांकन की विधि
16 साझेदार के अवकाश ग्रहण करने की विधि तथा अवकाश प्राप्त साझेदार अथवा मृत साझेदार को मिलने वाली रकम के भुगतान की विधि
17 साझेदारों के बीच विवाद की स्थिति में माध्यस्थम्
18 साझेदार के दिवालिया घोषित होने की स्थिति में की जाने वाली व्यवस्था।

उपर्युक्त सूची सर्वांगीण नहीं है। यदि साझेदार चाहे तो अन्य कोई खंड भी भागीदारी विलेख में शामिल किया जा सकता है। वास्तव में भागीदारी अधिनियम में एक साझेदार के अधिकारों तथा कर्तव्यों की व्याख्या दी गई है। लेकिन साझेदारों के बीच करार होने पर ही अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

फर्म का पंजीकरण (Registration of the Firm) : भारतीय भागीदारी अधिनियम के अनुसार फर्म का पंजीकरण कराना अनिवार्य नहीं है। परंतु अपंजीकृत फर्म को कुछ सीमाओं का सामना करना पड़ता है। अतः फर्म को पंजीकृत कराना अच्छा होता है। पंजीकरण किसी भी समय कराया जा सकता है। फर्म को पंजीकृत कराने के लिए फर्म के बारे में पूर्ण विवरण लिखकर एक प्रार्थना पत्र, पंजीकरण की फीस के साथ फर्म के रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजना होता है।

2.3.4 गुण एव सीमाएँ

आपने साझेदारी की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। इस जानकारी से आपको इस प्रकार के संगठन के गुणों तथा सीमाओं को पहचानने में मदद मिलेगी।

गुण

1 **सुगम स्थापना** : किसी स्वामित्व संगठन की तुलना में यद्यपि साझेदारी फर्म की स्थापना इतनी सरल नहीं है, तथापि कम्पनी की स्थापना की तुलना में यह कम कठिन है। साझेदार आपस में कारोबार करने के लिए करार करते हैं और एक साझेदारी करार तैयार करके

उस पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। इसके पश्चात कोई जटिल सरकारी नियम साझेदारी फर्म के नियमन के लिए आवश्यक नहीं रह जाते।

2 **अधिक पूँजी की उपलब्धता** : एकल स्वामित्व संगठन के विपरीत साझेदारी फर्म में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति होते हैं। अतः साझेदारी फर्म एक ही व्यक्ति की पूँजी के सहारे नहीं चलती। साझेदारों की वित्तीय स्थिति के आधार पर फर्म की ऋण लेने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

3 **अधिक विविध कौशल तथा विशेष योग्यता** : अधिक स्वामियों के होने के कारण साझेदारी फर्म में निर्णय अधिक व्यक्तियों के विचार-विमर्श पर निर्भर होता है। एक आदर्श साझेदारी में एक दूसरे के पूरक साझेदार होते हैं। वे एक ही पृष्ठभूमि तथा अनुभव के व्यक्ति नहीं होते हैं। एक साझेदार विनिर्माण कार्य में विशिष्टता रखता है तो दूसरा विपणन क्षेत्र में और तीसरा लेखा-पद्धति में निपुण हो सकता है। इन सभी साझेदारों का मिलकर निर्णय लेना व्यक्तिगत निर्णयों की तुलना में श्रेयस्कर होता है।

4 **लचीलापन** : एकल स्वामित्व संगठन की ही भाँति साझेदारी व्यवसाय में भी साझेदार ही फर्म के स्वामी होते हैं और वे ही उसका कार्य-संचालन करते हैं। वे बदलती हुई परिस्थितियों को आसानी से समझ जाते हैं और शीघ्रता से उनके अनसार कार्य कर सकते हैं।

5 **गोपनीयता** : साझेदारी फर्मों में भी कुछ गोपनीयता रखी जा सकती है, क्योंकि फर्म के लेखों को प्रकाशित करना आवश्यक नहीं है।

6 **गहन रुचि** : व्यवसाय में होने वाली हानियों तथा जोखिमों के लिए साझेदार ही उत्तरदायी होते हैं अतः वे व्यवसाय के कामों मे विशेष रुचि लेते हैं।

7 **सुरक्षा** : आधारभूत कार्यों में एकमत से निर्णय लिए जाने के नियम के कारण, सभी साझेदारों के अधिकार पूर्णतः सुरक्षित होते हैं। यदि कोई साझेदार फर्म के कार्य करने के ढंग से असंतुष्ट होता है तो वह फर्म के विघटन की मांग कर सकता है तथा अपने को फर्म से पृथक कर सकता है।

8 **लापरवाही से किए जाने वाले निर्णयों पर रोकथाम तथा नियंत्रण** : चूँकि साझेदारी व्यवसाय सामूहिक आधार पर चलाया जाता है और महत्वपूर्ण निर्णय करने में सभी साझेदार भाग लेते हैं इसलिए बिना सोचे-समझे और जल्दबाजी में निर्णय किए जाने की बहुत कम गुंजाइश होती है।

9 **जोखिम का बँटवारा** : फर्म की हानियाँ सभी साझेदारों द्वारा बाँटी जाती हैं। अतः एकल स्वामित्व संगठन की तुलना में प्रत्येक साझेदार के हिस्से में हानि का बहुत थोड़ा भाग आता है।

सीमाएँ

1 **सीमित पूँजी** : साझेदारों की अधिकतम संख्या पर सीमा लगी होने के कारण (गैर बैंकिग व्यवसाय में 20 और बैंकिग व्यवसाय में 10), साझेदारी फर्म की पूँजी जुटाने की क्षमता संयुक्त स्टाक कम्पनी की तुलना में कम होती है।

2 **असीमित दायित्व** : साझेदारी फर्म की सबसे महत्वपूर्ण कमी यह है कि उसके साझेदारों का दायित्व असीमित होता है।

3 **जन विश्वास नहीं** : चूँकि लेखे अप्रकाशित तथा अविज्ञापित होते हैं इसलिए फर्म को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं हो पाता है।

4 **हित की अहस्तांतरणीयता** : सभी अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना कोई भी साझेदार फर्म में अपना हित किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता है।

5 **अनिश्चितता** : किसी साझेदार की आकस्मिक मृत्यु होने अथवा उसके पागल अथवा दिवालिया होने की स्थिति में साझेदारी फर्म का विघटन हो जाता है। इस कारण से फर्म के आगे चलने में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फिर भी यदि इस प्रकार की बातों को भागीदारी विलेख में स्पष्ट कर दिया जाए तो इस स्थिति से आंशिक रूप से बचा जा सकता है।

6 **साझेदारों में विरोध** : साझेदारों में प्रायः गलतफहमी और विरोध होने की आशंका रहती है। परिणामस्वरूप निर्णय करने में देरी तो होती ही है, फर्म के विघटन की भी नौबत आ सकती है। यदि भागीदारी विलेख स्पष्ट तथा विस्तृत हो तो यह समस्या कुछ सीमा तक दूर हो सकती है।

7 **विवक्षित अधिकार का जोखिम**: चूँकि प्रत्येक साझेदार फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए एजेंट का कार्य करता है। इसलिए एक साझेदार के कार्य फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए बाध्य-कर होते हैं। एक बेईमान अथवा अयोग्य साझेदार फर्म को मुसीबत में फँसा सकता है और अन्य साझेदारों को उसका परिणाम भुगताना पड़ सकता है।

2.3.5 संयुक्त हिन्दू परिवार

संयुक्त हिन्दू परिवार अपने ढंग का विशिष्ट व्यावसायिक रूप है जो केवल भारत में ही पाया जाता है। इस प्रकार की फर्म का स्वामित्व संयुक्त हिन्दू परिवार को प्राप्त होता है और उस फर्म पर हिन्दू कानून के प्रावधान लागू होते हैं।

हिन्दू कानून में दो शाखाएँ हैं :

क) **मिताक्षर** : बंगाल तथा असम के अलावा यह सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस शाखा के अनुसार एक हिन्दू अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह से उत्तराधिकार में सम्पत्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष वंश में लगातार तीन पीढ़ियाँ (पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र) पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं। ये सभी सहदायिक (सह-स्वामी) कहलाते हैं तथा परिवार का ज्येष्ठतम व्यक्ति "कर्त्ता" कहलाता है। हिन्दू सक्सैशन ऐक्ट, 1956 ने सहदायिकी हित के उत्तराधिकार क्षेत्र का विस्तार कर दिया है। अब मृतक सहदायिक के स्त्री वशंज अथवा स्त्री वंशज के माध्यम से पुरुष संबंधी को भी भाग मिलने लगा है।

ख) **दाय भाग** : यह बंगाल तथा असम में लागू है। इसके अनुसार, पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुरुष उत्तराधिकारियों को सदस्यता प्राप्त होती है।

हिन्दू विधि (कानून) के अनुसार, "कारोबार" एक दाय योग्य सम्पत्ति है। हिन्दू की मृत्यु के पश्चात् कारोबार पर सभी सहदायिकों का सयुंक्त रूप से स्वामित्व हो जाता है। सहदायिकों में ज्येष्ठतम व्यक्ति नया "कर्त्ता" बन जाता है और कारोबार का प्रबंध करता है। यदि कोई सम्पत्ति किसी अन्य संबंधी से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है अथवा निजी साधनों से प्राप्त की जाती है तो वह निजी सम्पत्ति मानी जाती है और पैतृक सम्पत्ति से भिन्न होती है।

संयुक्त हिन्दू परिवार की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नानुसार हैं:

1 परिवार का ज्येष्ठतम सदस्य जो कर्त्ता कहलाता है कारोबार चलाता है। अन्य सदस्यों को फर्म के प्रबंध में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता।

2 अन्य सदस्य कर्त्ता के अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकते हैं। इसके लिए उनके पास एक ही तरीका रह जाता है कि वे आपसी सहमति से परिवार का विघटन करायें।

3 कर्त्ता को कारोबार के लिए ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है। कर्त्ता का असीमित दायित्व होता है, जबकि अन्य सदस्यों का दायित्व कारोबार में उनके हित तक सीमित होता है।

4 यदि कर्त्ता ने कारोबार के धन का गबन किया है तो उसे अन्य सहदायिकों को क्षतिपूर्ति करनी होगी जो संयुक्त संपत्ति में उनके हितों के अनुरूप होगी।

5 परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने से परिवार का कारोबार बंद नहीं हो जाता है।

6 आपसी मतैक्य द्वारा ही संयुक्त हिन्दू पारिवारिक फर्म का विघटन किया जा सकता है।

आपको साझेदारी व्यवसाय तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में अंतर जान लेना चाहिए। संयुक्त हिन्दू परिवार हिन्दू विधि के प्रवर्तन का परिणाम है। किसी व्यवसाय को संयुक्त हिन्दू पारिवारिक व्यवसाय में बदलने के लिए किसी औपचारिक करार की आवश्यकता नहीं होती है। परिवार के सदस्य स्वतः ही व्यवसाय के सहस्वामी बन जाते हैं। व्यवसाय का प्रबंध केवल कर्त्ता ही कर सकता है। कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है जबकि सहदायिकों की दायित्व व्यवसाय में उनके हित तक ही सीमित रहता है। सहस्वामियों के अधिकार, कर्त्तव्य और दायित्व हिन्दू विधि के प्रावधानों से नियंत्रित होते हैं। साझेदारी कुछ व्यक्तियों के बीच

हुए करार का परिणाम होती है, यह जरूरी नहीं है कि उन व्यक्तियों में रक्त-संबंध हो। प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय के प्रबंध में भाग लेने का अधिकार होता है। प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। साझेदारों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा दायित्व पर भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932, के प्रावधान लागू होते हैं।

बोध प्रश्न-ख

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

i) बैंकिंग कारोबार करने वाले साझेदारी व्यवसाय में साझेदारों की अधिकतम संख्या .... होती है।
ii) साझेदारी फर्म में साझेदारों का दायित्व .... होता है।
iii) एक साझेदार जो फर्म के प्रबंध में भाग नहीं लेता है .... साझेदार कहलाता है।
iv) साझेदारी फर्म में साझेदारों की न्यूनतम संख्या.......... होती है।
v) पंजीकृत साझेदारी करार .... कहलाता है।
vi) किसी व्यक्ति के अपने व्यवहार से यदि यह प्रकट होता है कि वह भी साझेदारी फर्म में एक साझेदार है तो ऐसे साझेदार को .... कहा जाता है।
vii) यदि साझेदार का दायित्व उसके द्वारा लगाई गई पूँजी तक ही सीमित होता हैं तो ऐसा साझेदार .... कहलाता है।

2 बताइए निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत

i) साझेदारी करार लिखित ही होना चाहिए। ....
ii) साझेदारी संगठन में सदस्यों की कोई अधिकतम सीमा नहीं होती है। ....
iii) साझेदारी फर्म के सदस्य साझेदार कहलाते है। ....
iv) अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना एक साझेदार फर्म में अपने हित को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। ....
v) प्रत्येक साझेदार फर्म का स्वामी होता है तथा फर्म का एजेंट भी। ....
vi) सुप्त साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेता है। ....
vii) एक व्यक्ति जो व्यपदेशन द्वारा साझेदार बनता है लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है। ....
viii) एक साझेदार के कार्य फर्म तथा शेष साझेदारों के लिए बाध्य-कर होते हैं। ....

2.4 कम्पनी संगठन (Company Organisation)

आप यह जान चुके हैं कि एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय में सीमित साधन, असीमित दायित्व,सीमित प्रबंध कौशल आदि दोष पाए जाते हैं। इन संगठनों का जीवन तथा स्थायित्व भी इनके स्वामी/साझेदारों के जीवन तथा स्थायित्व पर निर्भर होता है। अतः ये संगठन बड़े पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते।

बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए आपको भारी निवेश तथा विशिष्ट प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है। जोखिम का तत्व भी बहुत अधिक होता है। इन्हीं परिस्थितियों ने कम्पनी जैसे व्यावसायिक संगठन को जन्म दिया है। संयुक्त पूँजी कम्पनी की स्थिति में पूँजी एक या दो व्यक्तियों द्वारा नहीं जुटाई जाती, वरन् बहुत अधिक व्यक्तियों द्वारा जुटाई जाती है जिन्हें शेयरधारी (Shareholder) कहा जाता है। इस प्रकार बड़ी मात्रा में पूँजी जुटाना संभव हो जाता है। एक संयुक्त पूँजी कंपनी, कारोबार चलाने के लिए व्यक्तियों का एक संघ है, जिसे कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया जाता है। यह कृत्रिम व्यक्ति कहलाता है क्योंकि इसका सृजन कानून द्वारा होता है इसका एक अपना विशिष्ट नाम होता है, इसकी एक ही मुद्रा (कॉमन सील) होती है तथा इसकी अनंत सदस्यता होती है। यह अपने नाम से मुकदमा दायर करती है। और उसके नाम से मुकदमा दायर भी किया जा सकता है। कंपनी की अत्यंत व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा (यू.एस.ए. में इसे कारपोरेशन (निगम) कहा जाता है) प्रधान न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा दी गई है। उनके अनुसार कारपोरेशन (निगम) एक कृत्रिम, अदृश्य अमूर्त जीव है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में है। कानून द्वारा

उत्पन्न जीव होने के कारण इसकी केवल वही सम्पत्ति होती है जिसे इसको जन्म देने वाला चार्टर प्रत्यक्ष रूप से अथवा परोक्ष रूप से इसे जीवित रखने के लिए प्रदान करता है। न्यायमूर्ति लार्ड लिंडले ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है, "यह बहुत से व्यक्तियों का संघ है जो संयुक्त पूँजी में द्रव्य अथवा द्रव्य के मूल्य के बराबर की वस्तु का अंशदान करते हैं और एक सामान्य उद्देश्य के लिए उसका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जुटायी गयी रकम कंपनी की पूँजी कहलाती है। वह व्यक्ति जो इसमें अंशदान करते हैं अथवा जो इसके स्वामी होते हैं, इसके सदस्य कहलाते हैं। पूँजी का आनुपातिक भाग जिस पर प्रत्येक सदस्य का अधिकार होता है, उसका अंश (शेयर) कहलाता है।

"दि कम्पनीज़ ऐक्ट, 1956" ने संयुक्त पूँजी कम्पनी की परिभाषा इस प्रकार दी है, "यह शेयरों द्वारा सीमित कम्पनी होती है जिसकी निश्चित मूल्य के शेयरों में विभाजित स्थायी प्रदत्त पूँजी अथवा निश्चित रकम की अधिकृत पूँजी होती है जो स्टाक की भाँति रखी तथा हस्तांतरित की जा सकती है। कंपनी की स्थापना इस सिद्वांत के आधार पर होती है कि केवल इसके सदस्य ही उन शेयरों अथवा स्टाक के स्वामी हो सकते हैं अन्य व्यक्ति नहीं।"

2.4.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कंपनी जैसे व्यावसायिक संगठन की विशेषताओं को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध कर सकते है:

1 **संस्थापन (Incorporation)** : कम्पनी एक संस्थापित संघ है। कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होने के पश्चात् ही इसका जन्म हो पाता है।

2 **कृत्रिम व्यक्ति (Artificial Person)** : कम्पनी कृत्रिम व्यक्ति मानी जाती है क्योंकि कानून द्वारा इसका सृजन होता है और कानून ही इसको मिटा सकता है। इसका न तो कोई शरीर होता है और न ही आत्मा और न ही इसमें कोई विवेक होता है, फिर भी इसका अस्तित्व होता है। अन्य किसी व्यक्ति की ही भाँति यह सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है, विधिक व्यवसाय चला सकता है, अन्य व्यक्तियों के साथ करार कर सकता है, सम्पत्ति का क्रय-विक्रय कर सकता है, यह समस्त कार्य वह अपने नाम में तथा अपनी मुद्रा लगाकर कर सकता है।

3 **पृथक विधिक अस्तित्व (Separate Legal Entity)** : कंपनी का अपने सदस्यों से पृथक अस्तित्व होता है। कंपनी का एक शेयरधारी कंपनी के साथ करार कर सकता है, कंपनी पर मुकदमा चला सकता है तथा कंपनी उस पर मुकदमा कर सकती है। आप जानते है कि साझेदारी व्यवसाय में प्रत्येक साझेदार फर्म का तथा अन्य साझेदारों का एजेंट होता है। परंतु शेयरधारी कंपनी अथवा उसके अन्य शेयरधारियों का एजेंट नहीं होता। वह अपने कार्यों से उन्हें बाध्य नहीं कर सकता है।

4 **सामान्य मुद्रा (Common Seal)** : कंपनी प्राकृतिक व्यक्ति नहीं है अतः वह किसी प्रलेख पर हस्ताक्षर नहीं कर सकती। उसके पास एक सामान्य मुद्रा के रूप में एक युक्ति होती है जिस पर उसका नाम खुदा होता है। यह मुद्रा कंपनी के हस्ताक्षर का अनुकल्प होती है। यह सभी महत्वपूर्ण कानूनी दस्तावेज़ों तथा संविदाओं पर लगाई जाती है। निदेशकमंडल के आदेश पर इसे लगाया जाता है तथा जिस प्रलेख पर यह लगाई जाती है, उस पर गवाह के रूप में दो निदेशकों को हस्ताक्षर करने होते हैं।

5 **अनंत अस्तित्व (Perpetual Succession)** : संयुक्त स्टाक कंपनी का निरंतर अस्तित्व बना रहता है। इसके जीवन पर इसके शेयरधारियों अथवा निदेशकों की मृत्यु होने, पागल होने, दिवालिया होने अथवा अवकाश ग्रहण करने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सदस्य आते जाते रहते हैं, किंतु कंपनी अपने विधिक कार्यकलाप तब तक चलाती रहती है जब तक कि यह विधिक रूप से विघटित नहीं हो जाती। इस प्रकार कंपनी का अनंत अस्तित्व होता है। सदस्यता का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस गुण से इस प्रकार के संगठन को स्थायित्व प्राप्त होता है।

6 **प्रबंध तथा स्वामित्व में अलगाव** : कंपनी के शेयरधारी समस्त देश में फैले होते हैं। उसके कारोबार को चलाने और उसका प्रबंध करने के लिए, उसके शेयरधारी अपने बीच से ही कुछ लोगों का निर्वाचन करते हैं, जिन्हें निदेशक कहते हैं। कंपनी के कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार निदेशकों को मिला होता है जो शेयरधारियों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। अस्तु स्वामित्व प्रबंध से पृथक रहता है।

7 **सदस्यों की संख्या** : पब्लिक लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या सात रहती है, जबकि अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है। प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की स्थिति में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो और अधिकतम संख्या पचास होती है।

8 **सीमित दायित्व** : सामान्यतः कंपनी के सदस्यों का दायित्व, शेयरों अथवा गारंटी द्वारा सीमित होता है। सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य तक ही सीमित होता है। कंपनी की देयताओं के लिए सदस्य निजी रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराए जाते। अतः सदस्यों की निजी सम्पत्ति की कुर्की कंपनी के ऋण चुकाने के लिए नहीं की जा सकती।

उदाहरण के लिए, कंपनी के शेयरों का अंकित मूल्य 10 रुपये है जो सदस्य ने पहले ही अदा कर दिया है। कंपनी के समापन के समय कंपनी सदस्यों से और रकम देने के लिए नहीं कह सकती। परंतु यदि सदस्य ने केवल सात रुपये ही दिए हैं तो उससे शेष 3 रुपये का भुगतान करने के लिए कहा जा सकता है उससे अधिक नहीं। (अंकित मूल्य 10 रुपये में से दी गई रकम 7 रुपये घटाएँ, अन्तर 3 रुपये)

9 **शेयरों की हस्तांतरणीयता** : सार्वजनिक कंपनी के सदस्य को अपने शेयरों को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित करने का सांविधिक अधिकार मिला हुआ है। उसे शेयरों की बिक्री के लिए अन्य शेयरधारियों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। परंतु शेयरों का हस्तांतरण करने के लिए उसे कंपनी अधिनियम में दी हुई निर्धारित विधि का पालन करना होगा। किंतु प्राइवेट कंपनी की दशा में शेयरों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगा होता है।

10 **उद्देश्यों के पालन में कठोरता** : कंपनी के व्यवसाय का क्षेत्र सीमित होता है। इसके संगम ज्ञापन के "उद्देश्य खंड" में उस व्यवसाय की प्रकृति का वर्णन है जिसे वह कर सकता है। उद्देश्य खंड में परिवर्तन किए बिना वह अन्य कार्य नहीं कर सकती। उद्देश्य खंड में परिवर्तन करने के लिए कंपनी को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन करना होता है।

11 **सांविधिक विनियम (Statutory Regulations)** : कंपनी को कंपनी अधिनियम के अनुसार चलना होता है तथा अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का अनुपालन करना होता है। उसे अनेक विवरणियाँ सरकार को प्रस्तुत करनी होती हैं। कंपनी के लेखे भी एक चार्टर्ड एकाउन्टेंट द्वारा लेखापरीक्षित होना आवश्यक हैं। अस्तु, कंपनी को अनेक तथा विभिन्न प्रकार की सांविधिक अपेक्षाओं का अनुपालन करना पड़ता है।

संयुक्त स्टाक कंपनी की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब आप यह आसानी से कह सकते हैं कि कंपनी के वास्तविक स्वामी शेयरधारी ही होते हैं। उनकी देयता सीमित होती है। वे अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण कर सकते हैं। चूँकि शेयरधारी संख्या में बहुत अधिक होते हैं। अतः सभी कंपनी का प्रबंध नहीं कर सकते हैं। वे निदेशकमंडल का निर्वाचन करते हैं जो कंपनी का प्रबंधन करता है। कंपनी का भाग्य उन निदेशकों द्वारा पथप्रदर्शन तथा निदेश पर निर्भर होता है। ये निदेशक कंपनी का दिन-प्रतिदिन का कार्य करने के लिए कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति करते हैं। कंपनी ऋण पत्रों (जिन्हें बॉण्ड्स भी कहा जाता है) का निर्गम कर अतिरिक्त पूँजी जुटा सकती है। आप इनके बारे में और अधिक इकाई 5 और 6 में जान पाएँगे।

2.4.2 कंपनियों का वर्गीकरण

हम कंपनियों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर कर सकते हैं : 1) निगमन की विधि; 2) दायित्व की सीमा, 3) शेयरधारियों की श्रेणियाँ 4) कार्यकलाप का क्षेत्र। कंपनियों के वर्गीकरण के लिए चित्र 2.3 देखिए।

1 निगमन की विधि के आधार पर, हम कंपनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं:

क) **सांविधिक कंपनी (Statutory Company)** : संसद अथवा विधान सभा में पारित विशेष अधिनियम के आधार पर संस्थापित कंपनी "सांविधिक कंपनी" कहलाती है। इस प्रकार की कंपनियां विशेष स्थिति में स्थापित की जाती हैं जब किसी विशेष प्रयोजन के लिए कंपनी के कार्य का नियमन करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार निगमों के उदाहरण हैं– भारतीय रिज़र्व बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम,

चित्र : 2.3 कम्पनियों का वर्गीकरण

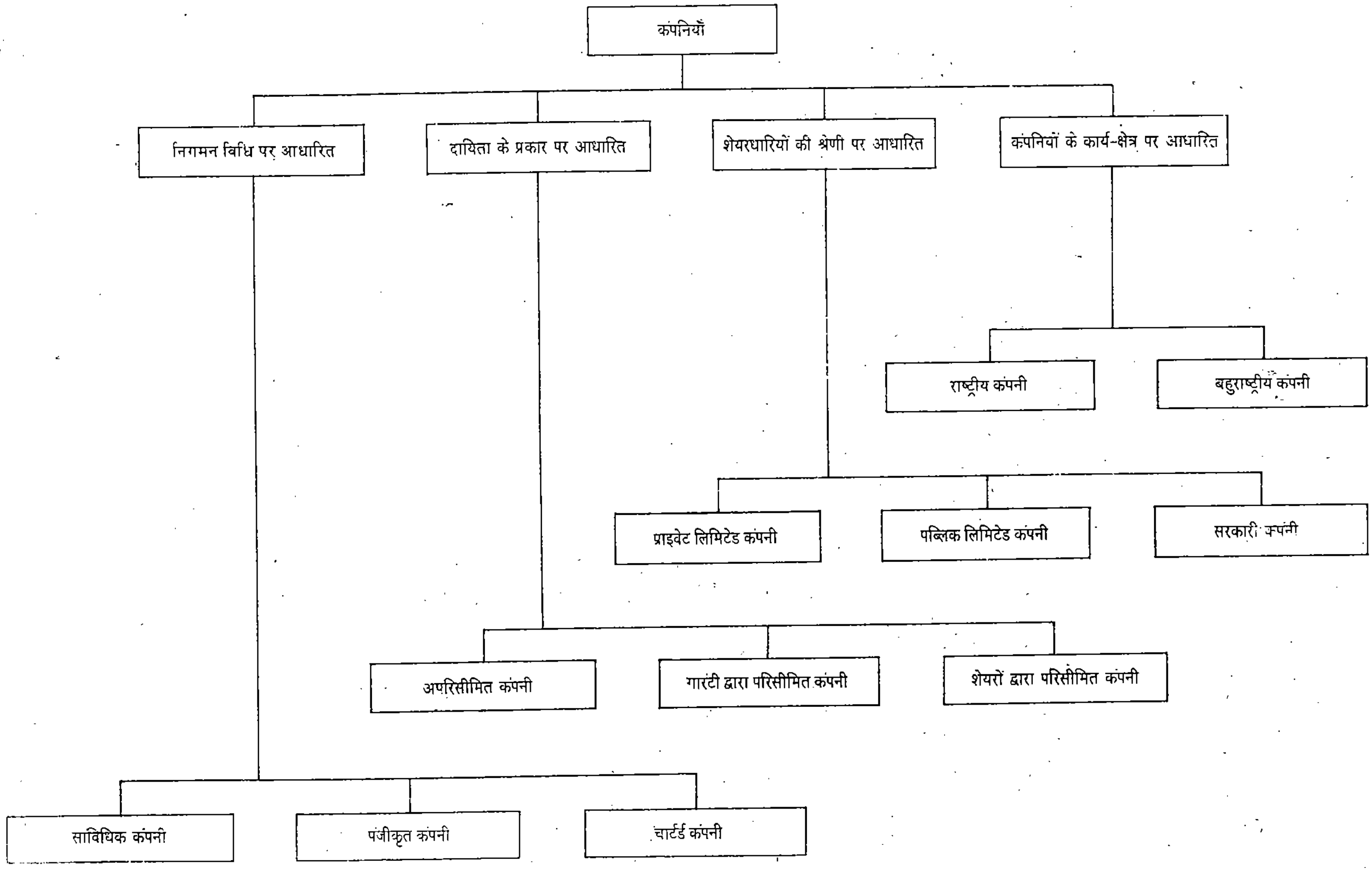

एयर इंडिया निगम, भारतीय खाद्य निगम आदि ये अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम हैं।

ख) **पंजीकृत कंपनी (Registered Company)** : वह कंपनी जो कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत, कंपनियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत कराई जाती हैं, पंजीकृत कंपनी कहलाती है। उसे संस्थापित या निगमित कंपनी भी कहते हैं। निजी क्षेत्र की सभी कंपनियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

ग) **चार्टर्ड कम्पनी (Chartered Company)** : वह कम्पनी जो विशेष राजाज्ञा (Royal Charter) द्वारा स्थापित होती है 'चार्टर्ड कम्पनी' कहलाती है। यह आज्ञा देश के राजा द्वारा दी जाती है। चार्टर्ड के प्रावधानों के अनुसार ऐसी कम्पनी का नियमन होता है। इस प्रकार की कम्पनी के उदाहरण हैं—ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी; बैंक आफ इंग्लैण्ड हडसनस बे कम्पनी आदि। भारत में इस प्रकार की कम्पनियाँ नहीं हैं क्योंकि यहां राजतंत्र नहीं है।

2 देयता के प्रकार के आधार पर कम्पनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) **असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ (Unlimited Companies)** : एक कम्पनी जिसके सदस्यों का दायित्व असीमित होता है, असीमित दायित्व वाली कम्पनी कहलाती है। कम्पनी के समापन के समय, यदि आवश्यक हो तो कम्पनी के ऋण चुकाने के लिए शेयरधारियों को निजी सम्पत्तियों का प्रयोग करना पड़ सकता है।इस दृष्टिकोण से ये कम्पनियाँ, एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय से बहुत मिलती जुलती हैं। किन्तु इस प्रकार की कम्पनियों की संख्या बहुत ही कम है।

(ख) **गारंटी द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ (Companies Limited by Guarantee)** : कुछ कम्पनियाँ ऐसी होती हैं जिनके सदस्यों के पास शेयर तो होते ही हैं, परन्तु वे इसके अलावा भी एक सीमा तक कम्पनी के ऋण चुकाने का दायित्व स्वीकार करते हैं। सदस्यों द्वारा गारंटीकृत अतिरिक्त रकम सामानयत: कम्पनी की संस्था के संगम ज्ञापन पत्र में उल्लेखित होती है। ऐसी कम्पनियाँ लाभ कमाने के लिए स्थापित नहीं की जातीं। उनकी स्थापना कला, संस्कृति, धर्म, व्यापार, खेल कूद आदि के विकास तथा क्लब, परोपकारी संस्थाओं, व्यापारिक संघ आदि के लिए की जाती हैं।

ग) **शेयरों द्वारा सीमित कम्पनियाँ (Companies Limited by Guarantee)** : इस प्रकार की कम्पनियों में शेयरधारियों की देयता उनके द्वारा लिए गए शेयरों के मूल्य तक ऋण-पत्र लेने के लिए जनता को आमंत्रित करना वर्जित
चुकाने के लिए ही बाध्य किया जा सकता है, उससे अधिक रकम के लिए नहीं। अधिकांश कम्पनियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

3 स्वामित्व के आधार पर, कंपनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

क) **प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ (Private Limited Companies)** : प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी वह होती है जिसमें उसके अनुच्छेद के अधीन:

i) कंपनी के शेयरों को हस्तांतरित करने के अधिकार पर प्रतिबंध होता है,
ii) सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 तक सीमित होती है और
iii) कंपनी के शेयर तथा ऋण पत्र लेने के लिए जनता को आमंत्रित करना वर्जित होता है।

ख) **पब्लिक लिमिटेड कंपनियाँ (Public Limited Companies)** : एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी वह है जो प्राइवेट लिमिटेड कंपनी नहीं होती। निम्नलिखित विशेषताएँ रखने वाली कंपनी पब्लिक लिमिटेड कंपनी कहलाती है:

i) जिसमें शेयरधारी के शेयर हस्तांतरित करने के अधिकार पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता
ii) सदस्यों की न्यूनतम संख्या 7 होती है परंतु अधिकतम संख्या सीमित नहीं होती।
iii) अपने शेयर तथा ऋण-पत्र लेने के लिए जनता को निमंत्रित किया जाता है।

सीमित दायित्व वाली निजी कम्पनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो होती है और वह पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की तलना में अपेक्षाकृत सरल [illegible] स्थापित हो जाती है।

इसे कम्पनी अधिनियम के बहुत से विनियमों से छूट मिली होती है। इस प्रकार इसमें सीमित दायित्व तथा साझेदारी संगठन दोनों का लाभ मिल जाता है। मध्यम आकार वाले व्यवसाय के लिए यह उपयुक्त मानी जाती है।

ग) **सरकारी कम्पनी (Government Company)**: वह कम्पनी जिसकी प्रदत्त शेयर पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग, केन्द्रीय सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा संयुक्त रूप से केन्द्रीय सरकार तथा/अथवा राज्य सरकारों के पास हो, सरकारी कम्पनी कहलाती है।

4 कार्य-क्षेत्र के आधार पर, कम्पनियों को हम दो श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं:

क) **राष्ट्रीय कम्पनी** : यदि किसी कम्पनी के कार्यकलाप उस देश की भौगोलिक सीमा के अन्दर ही होते हैं, जहां वह पंजीकृत हुई है, तो ऐसी कम्पनी राष्ट्रीय कम्पनी कही जाती है।

ख) **बहुदेशीय (मल्टीनेशनल कम्पनी)** : यदि कम्पनी के कार्यकलाप उस देश की भौगोलिक सीमा के बाहर भी होते हों जहाँ वह पंजीकृत हुई है तो ऐसी कम्पनी बहुदेशीय (मल्टीनेशनल) कम्पनी कहलाती है। इसको राष्ट्र-पार (ट्रांसनेशनल) कम्पनी भी कहते हैं।

2.4.3 गुण व सीमाएँ

प्रायः सभी देशों में जैसा कम्पनी संगठन लोकप्रिय तथा सफल रहा है। जहाँ बड़ी मात्रा में साधनों की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है, संगठन का यह रूप उपयुक्त होता है। 20 वीं शती में संयुक्त स्टाक कंपनियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अब हम संगठन के कंपनी रूप के गुण व सीमाओं का विवेचन करेंगे।

गुण

1 **बड़ी मात्रा में पूँजी** : संगठन के कम्पनी रूप में बड़ी संख्या में शेयरधारी होते हैं अतः बड़ी मात्रा में पूँजी प्राप्त करना संभव हो जाता है। जब कभी और पूँजी की आवश्यकता होती है, यह शेयर तथा ऋण-पत्र जारी कर सकती है। इस कारण केवल कंपनी जैसा संगठन ही सर्वोपयुक्त रहता है।

2 **सीमित दायित्व** : शेयरधारियों का दायित्व, यदि अन्यथा उल्लिखित न हो, उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य तक अथवा उनके द्वारा दी गई गारंटी तक सीमित होती है। कंपनी से ऋणों की वसूली के लिए शेयरधारियों की निजी संपत्ति कुर्क नहीं कराई जा सकती। अस्तु, संगठन का यह रूप उन व्यक्तियों के लिए बड़ा आकर्षक है जो अधिक जोखिम नहीं उठाना चाहते। एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय में बहुत अधिक जोखिम रहती है।

3 **स्थायी अस्तित्व** : कंपनी की पृथक विधिक सत्ता और शाश्वत जीवन होता है। निगम के जीवन पर शेयरधारी, निदेशक अथवा अधिकारी के पागल अथवा दिवालिया होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कंपनी के जीवन की निरंतरता न केवल इसके सदस्यों के लिए वरन् समाज के लिए भी वांछनीय है।

4 **बड़े पैमाने के कारोबार से होने वाली बचत** : चूँकि ऐसी कंपनियाँ बड़े पैमाने पर कार्य करती हैं, अतः उन्हें बड़े पैमाने पर क्रय, विक्रय, उत्पादन आदि से होने वाली बचत का लाभ मिल जाता है। बड़े पैमाने की इस मितव्ययिता के परिणामस्वरूप, कंपनी अपने ग्राहकों को सस्ती कीमत पर वस्तुएँ उपलब्ध कर सकती है।

5 **विस्तार के लिए संभावना** : चूँकि सार्वजनिक कंपनी में शेयरधारियों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं होती, अतः नवीन शेयरों और ऋणपत्रों का निर्गम करके उसका विस्तार करना सरल होता है। कंपनियां प्रायः अपने लाभ का कुछ भाग रिजर्व कोष में रखती हैं और विस्तार के समय इसका प्रयोग करती हैं।

6 **लोक-विश्वास** : कंपनियों पर सरकार का नियंत्रण एवं विनियम लागू होते हैं। उनकी लेखा पुस्तकों की चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा लेखापरीक्षा की जाती है और उन्हें प्रकाशित भी किया जाता है। इससे कंपनियों की कार्यप्रणाली पर जनता में विश्वास उत्पन्न होता है।

7 **शेयरों की हस्तांतरणीयता :** शेयर बाजार में सार्वजनिक सीमित कंपनी के शेयर कभी भी बेचे जा सकते हैं। शेयरधारी अपनी इच्छा से कभी भी अपने शेयर बेच सकते हैं। इसके लिए अन्य शेयरधारियों की सम्मति लेना आवश्यक नहीं है। शेयरधारी बिना अधिक कठिनाई के अपने शेयर नकदी में बदल सकते हैं।

8 **पेशेवरों द्वारा प्रबंध :** आप जानते हैं कि कंपनी का प्रबंध निदेशकों के हाथ में रहता है जो शेयरधारियों द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। प्रायः अनुभवी व्यक्तियों को ही निदेशक निर्वाचित किया जाता है। आप यह भी जानते हैं कि दिन-प्रतिदिन के कार्य वेतन-भोगी प्रबंधकों द्वारा किए जाते हैं। ये प्रबंधक अपने अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। चूँकि कंपनियों का बड़े पैमाने पर कारोबार होता है तथा उनका मुनाफा भी बड़ी मात्रा में होता है अतः वे अच्छा वेतन देकर सुयोग्य पेशेवर प्रबंधकों की नियुक्ति कर सकते हैं। इस प्रकार संगठन के कंपनी रूप अपने निदेशकमंडल में तथा प्रबंधकों के विभिन्न पदों पर पेशेवर व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त कर लेते हैं।

9 **कर-लाभ :** कंपनियां समान-दर पर आयकर देती हैं। कंपनियों के कराधान में स्लैब पद्धति का कोई स्थान नहीं है। इसके फलस्वरूप कंपनियाँ अन्य संगठनों की तुलना में अधिक आय पर कम कर चुकाती हैं। यदि कंपनियाँ पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित की जाएँ तो उन्हें कर में भी कुछ छूट प्राप्त होती है।

10 **जोखिम का बँटवारा :** चूंकि कंपनी के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है अतः व्यापारिक जोखिम कंपनी के सभी सदस्यों में बँट जाती है। यह लघु निवेशकों के लिए लाभदायक है।

सीमाएँ

1 **स्थापना में कठिनाई :** कंपनी की स्थापना उतनी सरल नहीं है जितनी कि एकल व्यवसाय अथवा साझेदारी व्यवसाय की। कंपनी की स्थापना के लिए कुछ प्रर्वतकों को एकत्रित होने के लिए तैयार होना पड़ता है। इसके पंजीकरण के समय अनेक औपचारिकताओं को निभाना पड़ता है। कंपनी की स्थापना खर्चीली भी है और कठिन भी।

2 **गोपनीयता की कमी :** कंपनी का प्रबंध प्रायः बहुत से व्यक्तियों के हाथों में रहता है। निदेशकमंडल की बैठक में प्रत्येक बात पर विचार किया जाता है। अतः एकल व्यवसायी तथा साझेदारी फर्म की तुलना में संगठन के कंपनी रूप में व्यावसायिक बातों को गोपनीय रखना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

3 **निर्णय लेने में देरी :** संगठन के कंपनी रूप में सभी महत्वपूर्ण निर्णय या तो निदेशक मंडल द्वारा अथवा शेयरधारियों द्वारा बैठकों में किए जाते हैं। अतः निर्णय-प्रक्रिया में समय लगता है। यदि शीघ्र निर्णय किया जाना है तो यकायक बैठक का आयोजन करना कठिन हो जाएगा, और तब निर्णय में देरी के कारण कुछ व्यावसायिक अवसर हाथ से निकल जाएँगे।

4 **अल्प हितों की उपेक्षा :** शेयरधारियों के बहुसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि निदेशक मंडल के सदस्य बन जाते हैं। अल्पसंख्यक शेयरधारी कभी भी निदेशक मंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप, अल्पसंख्यक सदस्यों के हितों की अवहेलना होती रहती है तथा वे बहुसंख्यक वर्ग के हाथों सताए जाते रहते हैं।

5 **आर्थिक शक्ति का केंद्रीयकरण :** संगठन का कंपनी रूप आर्थिक शक्ति को कुछ हाथों में केंद्रित करने को बढ़ावा देता है। कुछ व्यक्ति बहुत सी कंपनियों में निदेशक बन जाते हैं तथा निजी हितों को पूरा करने वाली नीतियाँ अपनाते हैं। वे अन्य अनेक कंपनियों के शेयर खरीद कर उन्हें सहायक कंपनियाँ बना लेते हैं। सहायक कंपनियों की स्थापना तथा कुछ निदेशकों द्वारा ही बहुत सी कंपनियों का निदेशकत्व व कुछ ही व्यापारिक गृहों के हाथों में आर्थिक शक्ति को केंद्रित करने में सहायक रहा है।

6 **व्यक्तिगत रुचि की कमी :** एकल स्वामित्व तथा साझेदारी फर्मों का प्रबंध स्वयं फर्म के स्वामियों द्वारा ही किया जाता है। कंपनी जैसे संगठन में दिन-प्रतिदिन का प्रबंध वेतन भोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इन व्यक्तियों का कंपनी से कोई व्यक्तिगत लगाव नहीं रहता। इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की शक्ति में कमी आ सकती है तथा उनकी कार्य-कुशलता घट जाती है।

7 **अधिक सरकारी प्रतिबंध :** कंपनी पर बहुत से प्रतिबंध लगे होते हैं जिनसे एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय बचे रहते हैं। अतः कंपनी को अपना बहुत सा समय तथा परिश्रम इन विभिन्न कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने में लगाना पड़ता है।

8 **कपट पूर्ण प्रबंध :** यह भी संभावना रहती है कि कुछ कपटी प्रवर्तक जाली कंपनी बना लेते हैं, वे उनके शेयर निर्गमित कर रकम एकत्रित करते हैं। बाद में, उन कंपनियों का समापन कर वे अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। यह भी संभव है कि निदेशक एवं पेशेवर प्रबंधक अपने निजी लाभ के लिए कंपनी के धन का दुरुपयोग कर ले जिससे कंपनी को हानि उठानी पड़े।

बोध प्रश्न- ग

1 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   i) पब्लिक लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की संख्या, न्यूनतम .... और अधिकतम .... होती है।
   ii) प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की संख्या न्यूनतम .... और अधिकतम .... होती है।
   iii) संयुक्त पूँजी कंपनी में प्रायः सदस्यों का दायित्व .... ।
   iv) सरकारी कंपनी में .... प्रतिशत शेयर सरकार द्वारा लिए जाते हैं।
   v) असीमित दायित्व वाली कंपनी में, सदस्यों का दायित्व .... होता है।
   vi) संसद के विशेष अधिनियम द्वारा स्थापित कंपनी .... कंपनी कहलाती है।

2 निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत।
   i) कंपनी कानून द्वारा उत्पन्न कृत्रिम व्यक्ति है। ....
   ii) कंपनी में शेयरधारी अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। ....
   iii) बड़े पैमाने के व्यवसाय के लिए कंपनी जैसा संगठन उपयुक्त नहीं होता। ....
   iv) एकल स्वामित्व और साझेदारी फर्मों की तुलना में कंपनियाँ बड़े कारोबार की बचत का लाभ प्राप्त कर सकती हैं। ....
   v) कंपनी अपने नाम में संपत्ति नहीं क्रय कर सकती हैं। ....
   vi) कंपनी के प्रवर्तन में कम विधिक औपचारिकताएँ होती हैं। ....
   vii) कंपनी अपने शेयरधारियों से पृथक होती है तथा अपना पृथक अस्तित्व रखती है। ....
   viii) अधिकांश शेयरधारियों की मृत्यु हो जाने पर कंपनी का विघटन हो जाता है। ....

2.5 सहकारी संगठन (Co-operative Organisations)

सहकारी संगठन प्रायः आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों द्वारा व्यवसायों के माध्यम से अपने आर्थिक हितों को सामूहिक रूप से पूरा करने के लिए स्थापित किए जाते हैं। सहकारी संगठनों का मूल सिद्धांत स्वयं की सहायता तथा परस्पर सहायता करना है। किसी भी सहकारी संगठन का मूल उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना होता है। इस दृष्टि से यह अन्य तीन संगठनों से भिन्न हैं, जो मुख्यतः लाभ कमाने के लिए होते हैं। सहकारी संगठन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ लाभ के स्थान पर सेवा, प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहायता, निर्भरता के स्थान पर स्वावलंबन तथा अनीतिपरक कारोबार के स्थान पर नैतिक एकता बनाए रखना है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, "सहकारी संगठन व्यक्तियों का एक समूह है जिसके साधन प्रायः सीमित होते हैं, जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक आपसी मेल-मिलाप से एक सार्वजनिक आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोकतंत्रात्मक रूप से चलाए जाने वाले व्यावसायिक संगठन की स्थापना की है, जो आवश्यक पूँजी को समानता के आधार पर जुटाते हैं और उपक्रम के लाभ और जोखिम बराबर के भागीदार होते हैं।

कालवर्ट एच. ने सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार दी है, "एक प्रकार का व्यावसायिक संगठन है जिसमें व्यक्ति मनुष्य के नाते स्वेच्छापूर्वक एकत्रित होते हैं और समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों का प्रवर्तन करते हैं।

भारतीय सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1912 की धारा 4 में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी

गई है, "यह एक संस्था है, जिसका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर अपने सदस्यों के आर्थिक हितों का प्रवर्तन करना होता है।"

उक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सहकारी संगठन व्यक्तियों का एक स्वैच्छिक संघ है जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ नहीं होता और अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकता। वह लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं, वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों के अभाव को दूर करने के लिए मिल जाते हैं। इस प्रकार के संगठन का मूल उद्देश्य स्वावलंबन तथा परस्पर सहायता करना होता है।

सहकारी संगठनों को संबंधित राज्य में जहाँ समिति का पंजीकृत कार्यालय स्थापित करना हो, सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत कराना होता है। सहकारी समिति की स्थापना के लिए कम से कम दस सदस्यों का होना आवश्यक है परन्तु सदस्यों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है।

कंपनी संगठन की भांति, समिति के सदस्य ही समिति के स्वामी होते हैं। वे ही आवश्यक पूँजी जुटाते हैं। सदस्य मुनाफे से अपना भाग पाते हैं जिसे डिविडेंड या लाभांश कहते हैं। सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

समिति का प्रबंध, प्रबंध-समिति द्वारा किया जाता है जिसके सदस्यों का निर्वाचन वार्षिक सभा में होता है।

2.5.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम सहकारी संगठन की निम्नलिखित स्पष्ट विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं:

1 **स्वैच्छिक संघ :** जैसा ऊपर बताया जा चुका है, एक सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए समान रुचि वाले व्यक्ति एक संघ बना लेते हैं जिसको वे इच्छापूर्वक कभी भी छोड़ सकते हैं। इसके दो महत्वपूर्ण अर्थ हैं :

क) कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है चाहे उसकी जाति, मत, धर्म, रंग आदि कुछ भी हो।

ख) सदस्य बिना किसी दबाव अथवा धमकी के एक संघ स्थापित कर सकते हैं।

2 **स्वायत्तता तथा स्थायित्व :** सहकारी समिति संविधान, सामान्य नियम तथा चार्टर की सीमाओं के अंतर्गत स्वतः प्रबंध करने वाला एक संगठन होता है। अपने क्षेत्राधिकार के भीतर यह आत्मनिर्भर होता है, अपना नवीकरण कर सकता है तथा अपना नियंत्रण स्वयं करता है। कंपनी की भाँति सहकारी संगठन का अपने सदस्यों से पृथक एवं स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस अर्थ में इसका शाश्वत जीवन होता है जिस पर सदस्यों के आने और जाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

3 **लोकतंत्रात्मक प्रबंध :** सहकारी संगठन का प्रबंध समिति करती है जिसका निर्वाचन सदस्य, एक–सदस्य के एक मत के आधार पर करते हैं, चाहे उनके पास कितने ही शेयर क्यों न हों। सदस्यों की साधारण सभा ही समिति की मोटे रूप से कार्य नीति निर्धारित करती है जिसके अंतर्गत प्रबंध-समिति को कार्य करना होता है। इस प्रकार सहकारी समिति के प्रबंध का मुख्य आधार लोकतंत्र ही है।

4 **पूँजी :** शेयर पूँजी के रूप में पूँजी सदस्यों से ही प्राप्त की जाती है। किंतु शेयर पूँजी, व्यवसाय में लगी पूँजी का एक सीमित अंश ही होता है। बड़ा भाग या तो सरकार से अथवा शीर्ष सहकारी संस्था से लिया गया ऋण होता है अथवा केंद्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा दिया गया अनुदान होता है।

5 **सरकारी नियंत्रण :** भारत में सभी सरकारी समितियाँ 1919 के सहकारी सोसाइटी अधिनियम अथवा अन्य राज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होती हैं। सहकारी समितियों को इन्हीं अधिनियमों के अंतर्गत वर्णित प्रावधानों के अनुसार कार्य करना होता है।

6 **सेवा भाव :** किसी भी सहकारी समिति का प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यों को सेवा प्रदान

करना है। इसके विपरीत जैसा कि आप जानते हैं, अन्य तीनों संगठनों का उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

7 **पूँजी पर सीमित लाभ** : सहकारी व्यवस्था में भी लाभ सदस्यों के बीच बाँटा जाता है क्योंकि उन्होंने पूँजी जुटाई है। लेकिन, शेयरधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की दर की सीमा 9 प्रतिशत ही है जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई है।

8 **अधिशेष का वितरण** : साझेदारी फर्म और कम्पनी संगठन में सदस्यों के बीच मुनाफा उनके द्वारा लगाई गई पूँजी के अनुपात में बाँटा जाता है। परन्तु, सहकारी समितियों में शेयरधारियों को एक सीमित दर पर लाभांश देने के बाद लाभ का अधिशेष बोनस के रूप में बाँटा जाता है। यह बोनस भी पूँजी के अनुपात में नहीं बाँटा जाता वरन् उसी व्यवसाय के अनुपात में बाँटा जाता है जो वे समिति के साथ करते हैं। उदाहरण के लिए एक उपभोक्ता सहकारी समिति में समिति के सदस्यों ने समिति से जितने मूल्य की वस्तु खरीदी है उस कुल मूल्य के अनुपात में उन्हें बोनस मिलेगा। इसी प्रकार उत्पादक समिति में बोनस बिक्री के लिए समिति को दी जाने वाली वस्तुओं के मूल्य के अनुपात में बाँटा जायेगा।

2.5.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण

समाज के विभिन्न वर्गों की भलाई के लिए सहकारी समितियाँ विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित की गई थीं अतः विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इनके निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रकार हैं :

1 **उपभोक्ता सहकारी समितियाँ (Consumer Co-operatives) :** वे लोग जो दिन-प्रतिदिन काम में लाई जाने वाली घरेलू वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करना चाहते हैं, उपभोक्ता सहकारी समिति बना लेते हैं। इन समितियों का प्रमुख उद्देश्य सदस्यों को अनुचित व्यापारिक बुराइयों तथा तीव्रगति से होने वाली मूल्यवृद्धि से बचाना होता है। ये समितियां थोक व्यापारियों से अपने सदस्यों तथा कभी-कभी गैर-सदस्यों को बिक्री करती हैं।

2 **उत्पादक सहकारी समितियाँ : (Producer's Co-operatives) :** ये समितियाँ लघु औद्योगिक उत्पादक व कारीगरों द्वारा स्थापित की जाती हैं। इनको औद्योगिक समितियाँ भी कहा जाता है। इनका प्रमुख उद्देश्य उत्पादकों व कारीगरों को शोषण से बचाना होता है। वे सदस्यों को सुख-सुविधा प्रदान करती हैं, कच्चा माल दिलाती हैं, उनके उत्पाद बाज़ार में बेचती हैं और क्रय-विक्रय के आधार पर सदस्यों को मशीनरी खरीदने में सहायता करती हैं।

3 **विपणन समितियाँ (Marketing Co-operatives) :** जब उत्पादक अपने माल की बिक्री करने के उद्देश्य से सहकारी समिति स्थापित करते हैं तो उन समितियों को विपणन समिति कहा जाता है। ये समितियाँ सदस्यों को माल बेचने के समय बिचौलियों के शोषण से बचाती हैं।

4 **गृह-निर्माण समितियां (Housing Co-operatives) :** ये समितियाँ प्रायः शहरी क्षेत्रों में स्थापित की जाती हैं। अपने सदस्यों को गृह-सुविधा प्रदान कराना इनकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य होता है। गृह-निर्माण समितियाँ भूमि प्राप्त करती हैं, गृह-निर्माण की योजना तैयार करती हैं फिर उनको अपने सदस्यों को किराए पर दे देती हैं। इनमें से कुछ भूमि का विकास करती हैं, और प्लाट काटकर अपने सदस्यों के बीच उनका आबंटन करती हैं, जो अपने मकान उन प्लाटों पर बनाते हैं। समिति गृह-निर्माण के लिए उनको ऋण की व्यवस्था कराती हैं।

5 **उधार समितियाँ (Credit Societies) :** उधार समितियाँ उधार की आवश्यकता अनुभव करने वाले व्यक्तियों द्वारा स्थापित की जाती हैं। इस प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों को उचित ब्याज की दर पर उधार की सुविधा प्रदान करती हैं। ये उधार समितियाँ कृषि उधार समितियाँ तथा गैर-कृषि उधार समितियों में वर्गीकृत की जा सकती हैं। कृषि

व्यय को पूरा करने के लिए ऋण प्रदान करने के लिए कृषि उधार समितियाँ स्थापित की जाती हैं। इन समितियों को पुन: दो वर्गों में बाँटा जाता है—(i) अल्प तथा मध्यम अवधि उधार सुविधा प्रदान करने वाली उधार समितियाँ तथा (ii) दीर्घ अवधि उधार प्रदान करने वाली उधार समितियाँ।

गैर-कृषि उधार समितियाँ औद्योगिक इकाइयों तथा अन्य संस्थाओं के कर्मचारियों द्वारा स्थापित की जाती हैं। लघु व्यापारियों, कारीगरों तथा कम-आय वर्ग वाले व्यक्तियों द्वारा भी नगरों व कस्बों में उधार की आवश्यकता पूरी करने के लिए ये समितियाँ स्थापित की जाती हैं। सहकारी नागरिक बैंक, बचत समितियाँ स्थापित, कर्मचारी उधार समितियां, औद्योगिक उधार बैंक, गृह-बंधक बैंक आदि इस श्रेणी में आती हैं।

6 **कृषि सहकारी समितियां (Farming Co-operatives):** लघु कृषकों द्वारा बड़े पैमाने पर कारोबार से होने वाली बचत प्राप्त नहीं की जा सकती। अत: लघु कृषक सहकारी समिति का गठन करते हैं। और अपने कार्यों को संयुक्त रूप से करके उनके लाभ को बाँट लेते हैं। इस प्रकार की समितियाँ लघु व सीमांत कृषकों के लिए अत्यधिक लाभदायक होती हैं। इनके माध्यम से उन्हें बड़े पैमाने पर कारोबार के लाभ मिल जाते हैं। वे सरकारी कृषि समिति, सहकारी काश्तकार कृषि समिति, सहकारी संयुक्त कृषि समिति, सहकारी सामूहिक कृषि समिति आदि गठित कर सकते हैं।

ऊपर वर्णित सहकारी समितियों के अलावा भी बहुत सी अन्य प्रकार की समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं क्योंकि सहकारिता सिद्धांत अनेक कार्यों तथा कारोबारों पर भी लागू होता है। संसाधन समितियाँ, निर्माण समितियाँ, धोबियों की समितियाँ, मछुआरों की समितियाँ, तिलहन उगाने वालों की समितियाँ, डेरी समितियाँ, गन्ना उगाने वालों की समितियाँ आदि-आदि सहकारी समितियाँ स्थापित की जा रही हैं। इन सब समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों की भलाई करना है।

2.5.3 गुण व सीमाएँ

विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के स्पष्ट गुण व सीमाएँ हैं। परन्तु कुछ एक से गुण तथा सीमाएँ सभी सहकारी समितियों में पाई जाती हैं।

गुण

1 **सुगम स्थापना :** कम्पनी की स्थापना की तुलना में सहकारी समिति की स्थापना अधिक सरल होती है। सहकारी समिति स्वेच्छापूर्वक बनाया गया एक संघ होता है और उसकी स्थापना के समय लम्बी और गूढ़ औपचारिकताओं को नहीं निभाना पड़ता। कोई भी 10 वयस्क व्यक्ति अपना संघ बनाकर सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में उसे पंजीकृत करा सकते हैं।

2 **सीमित दायित्व :** कम्पनी जैसे संगठन की ही भांति सहकारी समितियों के सदस्यों का दायित्व भी सीमित होता है।

3 **समाज सेवा :** सहकारिता सदस्यों के बीच भाई-चारे की भावना बढ़ाती है और उनके दैनिक जीवन में नैतिक तथा शैक्षणिक मूल्यों का महत्व जगाती है जो श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक हैं।

4 **सरकारी सहायता :** सरकार ने सहकारी समितियों को आर्थिक नीति का एक अंग माना है। अत: इन समितियों को कारगर ढंग से चलाने में सहायता देने के लिए सरकार अनेक प्रकार के अनुदान, ऋण तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

5 **खुली सदस्यता :** सहकारी समितियों की सदस्यता सभी व्यक्तियों के लिए खुली हुई है। आर्थिक स्थिति, जाति, रंग अथवा मत के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सदस्य होने से नहीं रोका जाता है। इसमें सदस्यों की अधिकतम संख्या पर भी कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

6 **उचित मूल्य पर वस्तुओं की पूर्ति :** समितियाँ सीधे ही उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदती हैं

और उन्हें अपने सदस्यों को सस्ते मूल्य पर बेचती हैं। वितरण की कड़ी के बीच से बिचौलियों को हटा दिया जाता है। उपभोक्ता सहकारी समितियाँ ऐसे समय पर अपने सदस्यों को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कराती हैं जबकि बाजार में उनकी कमी हो जाती है। पूँजीगत माल भी (जैसे मशीनरी आदि) उत्पादकों से सीधे ही खरीदकर वे सदस्यों को बेचती हैं। इस प्रकार सहकारी समितियाँ सस्ती दर पर नियमित रूप से माल देने की व्यवस्था करती हैं।

सीमाएँ

1 **व्यावसायिक प्रतिभा की कमी :** प्रायः सदस्यों को व्यवसाय करने का अनुभव नहीं होता। परिणामस्वरूप जब वे समिति के निदेशक मंडल के सदस्य बन जाते हैं तब समिति का कार्य-संचालन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। कम्पनियों की भांति सहकारी समितियाँ प्रबंध-कुशलता बढ़ाने के लिए बाहर से कुशाग्रह तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकतीं। इसका कारण यह है कि ऐसा करना उनके स्वीकृत उद्देश्यों तथा सीमित साधनों के अनुकूल नहीं होता।

2 **आपसी हितों का अभाव :** सदस्यों में सहकारिता की भावना कूट-कूटकर भरी होने पर ही सहकारी समिति सफल हो पाती है। परन्तु अभाग्यवश, कुछ प्रभावशाली सदस्य सहकारी समिति को अपने निजी लाभ का साधन बना लेते हैं।

3 **रुचि की कमी :** किसी भी व्यवसाय की सफलता के लिए कुछ वर्षों के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। परन्तु बहुत सी सहकारी समितियों में इस प्रकार की स्थिति नहीं पाई जाती। अपने प्रभावशाली प्रारंभ के थोड़े समय के बाद ही सहकारी समिति जीवनहीन तथा अकर्मण्य बनकर रह जाती है।

4 **समन्वय की कमी :** इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सदस्यों का अंदरूनी मतभेद तथा प्रतिद्वन्द्विता बहुत सी शक्ति तथा साहस को समाप्त कर देते हैं। अनेक सहकारी संस्थाओं की समाप्ति का मूल कारण समन्वय का न होना और संयुक्त रूप से कार्य न करना ही रहा है।

5 **भ्रष्टाचार :** प्रबंध और कार्य संचालन में व्याप्त भ्रष्टाचार सहकारी संगठन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कमी रही है। ये सहकारी संगठन भ्रष्टाचार के स्रोत बन चुके हैं।

6 **गोपनीयता की कमी :** सहकारी समिति के कार्य प्रायः सभी सदस्यों को ज्ञात हो जाते हैं और इन समितियों के लिए व्यावसायिक कार्यों की गोपनीयता बनाए रखना कठिन हो जाता है।

7 **अपर्याप्त प्रेरणा :** पूँजी पर मिलने वाला प्रतिफल क्योंकि बहुत कम होता है, अतः सहकारी समितियों के सदस्य समिति के कार्यों में अपने को उलझाना नहीं चाहते हैं।

बोध प्रश्न - घ

1 बताइए, निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत
   i) सहकारी संगठनों का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना होता है। ....
   ii) सहकारी समितियों का प्रबंध पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में रहता है। ....
   iii) सहकारी समिति कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत नियमित की जाती है। ....
   iv) सहकारिता समितियों में प्रत्येक सदस्य समिति के साथ किए गए लेन-देन के अनुपात में बोनस पाने का अधिकारी होता है। ....
   v) स्त्रियाँ सहकारी समितियों की सदस्य नहीं बन सकती हैं ....

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:
   i) सहकारी समितियों में सदस्यों का दायित्व .... होता है।
   ii) सहकारी समिति का गठन करने के लिए कम से कम .... सदस्य होने चाहिए।
   iii) सहकारी समिति में सदस्यों की अधिकतम संख्या होती है। ....
   iv) सहकारी समिति का प्रमुख उद्देश्य .... होता है।
   v) सहकारी समिति में सदस्यों को शेयर पूँजी पर दिए जाने वाले लाभांश की अधिकतम दर .... होती है।

2.6 सारांश

स्वामित्व के आधार पर व्यावसायिक संगठन के चार मुख्य रूप हैं :
1) एकल व्यापारी संगठन, 2) साझेदारी संगठन, 3) कम्पनी संगठन, और 4) सहकारी संगठन।

व्यवसाय जिसका एक ही व्यक्ति स्वामी होता है, वही पूँजी लगाता है और उसका ही नियंत्रण रहता है, एकल व्यापारी संगठन कहलाता है। लघु व्यवसायों के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त होता है। व्यावसायिक इकाई और स्वामी में कोई अन्तर नहीं रहता। नियंत्रण, गोपनीयता, स्थापना की सरलता तथा कम लागत, समापन की सरलता और कम सरकारी हस्तक्षेप इस रूप के लाभ हैं। स्वामी को असीमित दायित्व, पूँजी जुटाने में कठिनाई, सीमित प्रबंध कौशल अस्थायी व्यावसायिक जीवन और योग्य कर्मचारियों को आकर्षित करने में कठिनाई इसके दोष हैं। साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संघ है जो सहस्वामी के रूप में लाभ के लिए कारोबार चलाते हैं। साझेदारों के बीच प्रायः एक लिखित अथवा मौखिक करार होता है जिसमें प्रत्येक साझेदार द्वारा कारोबार में किए गए योगदान का उल्लेख होता है तथा उसकी भूमिका और करार के अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला जाता है। साझेदारों के विभिन्न प्रकार हैं जिनका आधार (क) कारोबार में भाग लेने की सीमा, (ख) लाभ में भाग, (ग) दर्शाये गये व्यवहार की प्रकृति और (घ) दायित्व वहन हैं। साझेदारी संगठन में एकल स्वामित्व के कुछ दोष दूर हो जाते हैं। साझेदारी के लाभ हैं—अधिक पूँजी, अधिक विशिष्ट प्रबंध, अधिक स्थायित्व, प्रमुख कर्मचारियों को प्रेरणा आदि। साझेदारी के दोष हैं—असीमित दायित्व शेयरों के हस्तांतरण में कठिनाई, स्वामियों में मतभेद की संभावना लघु जीवन के होने की संभावना आदि।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी की सीमाओं ने कम्पनी जैसे संगठन को जन्म दिया। एक कम्पनी विधि द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है, इसका अपना नाम होता है, एक ही मुद्रा होती है तथा शाश्वत जीवन होता है। कम्पनी विभिन्न आधारों पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत होती है: (क) संस्थापन की विधि, (ख) शेयरधारियों की देयता की सीमा (ग) शेयरधारियों की प्रकृति और (घ) कार्यक्षेत्र की सीमा। कंपनी संगठन के प्रमुख लाभों में शामिल हैं—शेयरधारियों का सीमित दायित्व शेयरों का हस्तांतरण, जीवन का स्थायित्व, अतिरिक्त पूँजी जुटाने की प्रक्रिया, अधिक प्रबंध कौशल आदि। प्रमुख सीमाएँ हैं : स्थापना में कठिनाई और अधिक लागत, अधिक सरकारी नियमन, गोपनीयता की कमी, निर्णय लेने में शीघ्रता की कम संभावना आदि।

सहकारी संगठन उन व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है, जो वित्तीय दृष्टिकोण से सुदृढ़ नहीं होते तथा अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकते। वे लाभ कमाने के उद्देश्य से आपस में नहीं मिलते वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों की कमी के कारण उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए एकत्रित होते हैं। इसका आधारभूत उद्देश्य स्वावलंबन व आपसी सहायता करना है। सहकारी संगठन के लाभ हैं— सरल स्थापना, सीमित दायित्वता, सरकारी सहायता, खुली सदस्यता आदि। सीमाएँ हैं— व्यावसायिक प्रतिभा की कमी, आपसी हितों का अभाव, गोपनीयता की कमी, सदस्यों में प्रतिस्पर्धा आदि।

2.7 शब्दावली

सक्रिय साझेदार : ऐसा साझेदार जो साझेदारी व्यवसाय के कार्यकलाप में सक्रिय रूप में भाग लेता है।

चार्टर्ड कम्पनी : ऐसी कम्पनी जो राजा द्वारा विशेष राजाज्ञा देने के फलस्वरूप स्थापित होती है।

कम्पनी : व्यक्तियों का एक संघ जो कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया गया है। यह विधि द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति है, इसका अपना नाम होता है, एक मुद्रा होती है, शाश्वत जीवन होता है और सदस्यों से पृथक अस्तित्व होता है।

गारंटी द्वारा सीमित कम्पनी : ऐसी कम्पनी जिसके सदस्यों का दायित्व उसकी संगम ज्ञापन

द्वारा एक ऐसी राशि तक सीमित होता है, जिसको कम्पनी के समापन की दशा में सम्पत्ति में अंशदान करने के लिए सदस्य क्रमशः गारंटी देते हैं।

शेयरों द्वारा सीमित कम्पनी : ऐसी कम्पनी जिसके सदस्यों का दायित्व उसकी संगम ज्ञापन के द्वारा उनके शेयरों के मूल्य तक सीमित होती है।

सहकारी संगठन : व्यक्तियों का संघ जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत स्वेच्छापूर्वक गठित किया जाता है।

सामान्य साझेदार : साझेदारी संगठन में एक साझेदार जिसका असीमित दायित्व होता है तथा जो कारोबार के संचालन में भाग लेने का अधिकार रखता है।

सरकारी कम्पनी : ऐसी कम्पनी जिसमें कम से कम 51 प्रतिशत प्रदत्त शेयर पूँजी सरकार के अधिकार में होती है।

सीमित साझेदार : ऐसा साझेदार जिसकी देयता उसके द्वारा प्रदत्त पूँजी तक ही सीमित होती है।

संयुक्त हिन्दू कुटुंब फर्म : व्यावसायिक फर्म जिसका स्वामित्व संयुक्त हिन्दू कुटुंब के पास होता है।

नाममात्र का साझेदार : ऐसा साझेदार जो फर्म को अपना नाम ही देता है। न तो वह फर्म में पूँजी लगाता है ओर न ही उसके संचालन में भाग लेता है।

साझेदार : वह व्यक्ति जो साझेदारी फर्म का सदस्य होता है।

विबंधजात साझेदार : ऐसा व्यक्ति जिसका व्यवहार तथा आचरण यह प्रदर्शित करता है कि वह फर्म में साझेदार है।

व्यपदेशनजात साझेदार : यदि फर्म का कोई साझेदार किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में यह कहता है कि वह भी फर्म में साझेदार है और वह दूसरा व्यक्ति इस बात की जानकारी के पश्चात् इन्कार नहीं करता तो ऐसा व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है।

लाभ में साझेदार : ऐसा साझेदार जो फर्म के लाभ में भाग लेता है परन्तु हानि में नहीं।

भागीदारी करार : साझेदारों के बीच लिखित अथवा मौखिक करार जिससे साझेदारी का गठन, नियम तथा विनियम का उल्लेख होता है।

भागीदारी विलेख : साझेदारी का एक लिखित करार जिस पर विधिवत मुहर लगी होती है तथा जिसका पंजीकरण होता है।

साझेदारी संगठन : कारोबार का लाभ बाँटने के लिए दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों का संगठन जिसको सभी के द्वारा अथवा सबके लिए किसी एक द्वारा संचालित किया जाता है।

प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी : ऐसी कम्पनी, जो अपने द्वारा (क) अपने सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 तक सीमित करती है (ख) अपने शेयरों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाती है तथा (ग) जनता द्वारा शेयर तथा ऋण पत्र लेने पर रोक लगाती है।

पब्लिक लिमिटेड कम्पनी : ऐसी कम्पनी जो प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी नहीं है।

पंजीकृत कम्पनी : कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कम्पनी।

सुप्त साझेदारी : साझेदारी फर्म में साझेदार जो फर्म के कारोबार में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता।

एकल व्यापारी संगठन : एक व्यक्ति का व्यवसाय जिसमें व्यक्ति अपनी पूँजी, कौशल और बुद्धि लगाता है तथा सम्पूर्ण लाभ भोगता है और स्वामित्व का जोखिम वहन करता है।

सांविधिक कम्पनी : संसद अथवा विधान सभा के विशेष अधिनियम द्वारा संस्थापित कम्पनी।

असीमित देयता वाली कम्पनी : ऐसी कम्पनी जिसमें सदस्यों की देयता असीमित होती है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ०पी० अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 3-5 खण्ड दो।

बी०पी० सिह एवं टी०एन० छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहाबाद: किताब महल, 1988) अध्याय 4, 5 खण्ड दो।

जी०एल० जोशी, जी०एल० शर्मा, एल०एस०सी० जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 7-9।

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय—संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1-4 खण्ड दो।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 i) असीमित ii) स्वामी iii) लघु iv) एक v) स्वामी
  2 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) गलत

ख 1 i) दस ii) असीमित iii) सुप्त iv) दो v) भागीदारी विलेख vi) विबँधजात साझेदार vii) सीमित साझेदार।
  i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही vi) गलत vii) गलत viii) सही

ग 1 i) सात व असीमित ii) 2 और 50 iii) सीमित iv) 51 v) असीमित vi) सांविधिक 2 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) गलत vi) गलत vii) सही viii) गलत

घ 1 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत
  2 i) सीमित ii) दस iii) असीमित iv) स्वावलंबन व आपसी सहायता v) 9 प्रतिशत

2.10 स्वपरख प्रश्न

1 एकल व्यापारी संगठन क्या है? एकल व्यापारी संगठन के गुणों व सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
2 एकल स्वामित्व संगठनों के (दोषों) सीमाओं तथा असफलताओं के कारण ही (मुख्य रूप से) साझेदारी संगठनों का जन्म हुआ। स्पष्ट कीजिए।
3 साझेदारी क्या है? संयुक्त स्टाक कम्पनी से यह किस प्रकार भिन्न है?
4 संयुक्त स्टाक कम्पनी क्या है? अनिगमित संगठनों की सीमाओं को यह कैसे दूर पाती है?
5 सहकारी संगठन की विशेषताएँ बताइए। यह किन बातों में कम्पनी से भिन्न हैं?
6 सहकारी संगठन रूप के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं? इसके गुणों और सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिये, किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 3 व्यावसायिक संगठन के रूप II

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण
3.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना
3.4 संगठन के चुनाव का मापदण्ड
    3.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदंड
    3.4.2 विस्तार के समय मापदंड
3.5 संगठन के रूप का चुनाव
3.6 सारांश
3.7 कछ उपयोगी पुस्तकें
3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.9 स्वपरख प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षण बता सकेंगे
- व्यावसायिक संगठन के चार रूपों की तुलना कर सकेंगे
- व्यावसायिक संगठन के रूप का चुनाव कर सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में आपने पढ़ा था कि व्यावसायिक संगठन के चार रूप होते हैं—(i) एकल स्वामित्व, (ii) साझेदारी तथा (iii) संयुक्त स्टाक कम्पनी तथा (iv) सहकारी समिति। आपने इन चारों रूपों के मुख्य लक्षणों, गुणों तथा सीमाओं के विषय में भी जान लिया है।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी नियंत्रण, गोपनीयता, अभिप्रेरण, संस्थापना की सुगमता तथा कम लागत की दृष्टि से अधिक लाभकारी हैं, किन्तु सीमित साधन, सीमित प्रबन्ध कुशलता तथा असीमित दायित्व इनकी मुख्य कमियाँ हैं। दूसरी ओर, अधिक साधन, सीमित दायित्व तथा नानाविध प्रबन्ध-कुशलता कम्पनी संगठन के लाभ हैं।

जब आप एक नया व्यवसाय आरम्भ करने की योजना बनाते हैं, तब आपको यह निर्णय करना होता है कि प्रस्तावित व्यवसाय के लिए संगठन का कौन सा रूप अधिक उपयुक्त है। इसके लिये आपको, प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संगठन के चारों रूपों में से प्रत्येक की उपयुक्तता का समालोचनात्मक विश्लेषण करना होगा। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय है, क्योंकि यह उद्यमकर्त्ता की शक्ति तथा उत्तरदायित्व और लाभ-हानियों के विभाजन का निर्धारण करता है। एक बार इसका चुनाव हो जाने के बाद इसे बदलना अत्यन्त कठिन तथा खर्चीला होता है। इस इकाई में आप संगठन के एक अच्छे रूप के आवश्यक गुणों के विषय में पढ़ेंगे, संगठन के चार रूपों की तुलना करेंगे, संगठन के रूप के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेषण करेंगे तथा इसका निर्णय करेंगे कि स्थिति विशेष में कौन सा रूप सबसे उपयुक्त है।

3.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण (Requisites of an Ideal Firm)

इस बात का विवेचन करने से पूर्व कि किसी विशेष परिस्थिति में व्यवसाय के एक विशेष रूप का चुनाव किस प्रकार किया जाए, हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण क्या हैं। इससे हमें व्यवसाय के प्रत्येक रूप का सही मूल्यांकन करने तथा एक विशेष रूप के उचित चुनाव का अन्तिम निर्णय करने में सहायता मिलेगी। संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण निम्नलिखित हैं।

1 **स्थापना की सुगमता** : संगठन के किसी एक विशेष रूप को दूसरे पर तरजीह देने का एक प्रमुख कारण उस व्यवसाय को स्थापित करने की सुगमता होनी है। संगठन के एक विशेष रूप की संस्थापना की तुलनात्मक सुगमता अथवा कठिनाई मुख्यतः तीन तत्वों पर आश्रित है :—(i) पंजीकरण-शुल्क, स्टांप-शुल्क, कानूनी विशेषज्ञों की फीस, प्रलेखों के प्रारूपण का खर्च, लाइसेंस प्राप्त करने का खर्च, आदि, स्थापना सम्बन्धी व्यय, (ii) कानूनी औपचारिकताएँ, तथा (iii) क्रियाविधि संबंधी विलम्ब, आदि। जब तक अत्यन्त अनिवार्य न हो, ऐसे संगठन का चुनाव ही अच्छा है जिसकी स्थापना सुगमतापूर्वक की जा सकती हो।

2 **पूँजी एकत्र करने का अवसर** : संगठन का चुनाव मुख्यतः आवश्यक पूँजी की राशि पर निर्भर है जिसका निर्धारण व्यवसाय की प्रकृति तथा व्यापार के पैमाने (स्तर) द्वारा होता है। उदाहरणार्थ, यदि आप किराने की एक फुटकर दुकान खोलना चाहते हैं, तब अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु, यदि आप एक चीनी मिल लगाना चाहते हैं तब आपको पूँजी की एक बड़ी राशि की आवश्यकता होगी। संगठन का आदर्श रूप वह है, जो यथासमय आवश्यकतानुसार पूँजी एकत्र करने का अवसर प्रदान करता हो।

3 **दायित्व की सीमा** : आप जानते हैं कि प्रत्येक व्यवसाय में जोखिम तथा अनिश्चितता का तत्व होता है। इस दृष्टि से, सामान्यतः व्यवसायी सीमित दायित्व पसन्द करते हैं। अतः सीमित दायित्व के संगठन के एक अच्छे रूप का एक महत्वपूर्ण लक्षण माना जाता है। किन्तु व्यवसाय में पहल शक्ति लगाव और अभिप्रेरणा के लिए कुछ जोखिम भी आवश्यक होती है। कई बार इस प्रकार की प्रेरणा का अभाव प्रबन्ध कार्मिकों में दुर्बलता, अकुशलता तथा बेईमानी तक का कारण बन सकता है।

4 **कारोबार में लचीलापन** : संगठन का रूप बहुत लचीला होना चाहिए तथा बिना किसी कठिनाई अथवा जटिलता के, बदलती हुई व्यावसायिक स्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील होना चाहिये। उदाहरण के लिये यदि आप अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं, अथवा संयंत्रों और उपस्करों का आधुनिकीकरण करना अथवा उसमें विविधता लाना चाहते हैं, तब संगठन इन सब अपेक्षाओं को पूर्ण करने में सक्षम होना चाहिये।

5 **स्थायित्व तथा निरंतरता** : स्वामियों, कर्मचारियों तथा ग्राहकों के हित में व्यवसाय का स्थायित्व तथा लम्बा जीवन अभीष्ट है। कर्मचारी सदा स्थायी तथा निरंतर रोज़गार पसंद करते हैं। यदि व्यवसाय स्थायी है तो स्वामी भविष्य के लिये योजना बना सकेगा, तथा एक पर्याप्त लम्बे समय तक आय प्रदान करने वाले निवेश कर सकेगा। ग्राहकों की दृष्टि से भी, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये माल और सेवाओं की नियमित पूर्ति अपेक्षित है। संगठन का एक आदर्श रूप वह है जो व्यवसाय को उचित मात्रा में स्थायित्व प्रदान करता है।

6 **प्रबन्ध की क्षमता** : जैसा कि आप जानते हैं, किसी भी व्यवसाय की सफलता प्रबन्ध की कार्यकुशलता पर निर्भर होती है। प्रबन्ध की कार्यकुशलता, उसके नैपुण्य, अभिप्रेरण, लचीलेपन तथा अनुकूलनीयता पर निर्भर होती है। किसी एक व्यक्ति में इन समस्त गुणों का होना कठिन है।

7 **सरकारी नियंत्रण व विनियमों की सीमा** : यदि सरकारी नियंत्रण तथा विनियम बहुत अधिक है, तो उद्यम को कानूनी औपचारिकताओं तथा अनुदेशों को पूरा करने में पर्याप्त समय, धन और शक्ति व्यय करनी पड़ेगी। कुछ स्थितियों में सरकारी पदाधिकारियों द्वारा फर्म के रोजमर्रा के कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप हो सकता है। यह सच है कि जिन

व्यावसायिक उद्यमों के कार्यों का सुचारु सरकारी नियमन होता है उन पर निवेशकर्त्ताओं, लेनदारों तथा ग्राहकों का अधिक विश्वास होता है। किन्तु अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप उद्यमकर्त्ताओं द्वारा पसन्द नहीं किया जाता क्योंकि यह उनकी पहल शक्ति को क्षति पहुँचाता है तथा उनके व्यवसाय के कार्यचालन को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।

8 **व्यावसायिक गोपनीयता :** व्यवसाय में यह आवश्यक है कि व्यवसाय के रहस्यों को प्रतियोगियों से गुप्त रखा जाए। अतः संगठन के एक ऐसे रूप को, जो व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखने में सहायक हो, उस रूप पर तरजीह दी जाती है जिसमें व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना कठिन हो।

9 **कर-भार :** विक्रीकर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क जैसे व्यावसायिक कर कुछ विशेष उत्पादों तथा सेवाओं पर लगाए जाते हैं। अतः ऐसे करों का प्रभाव संगठन के प्रत्येक रूप पर एक-सा पड़ता है तथा वे चुनाव को प्रभावित नहीं करते। किन्तु संगठन के विभिन्न रूपों के लिये आय-कर-देयता अलग-अलग होती है। अतः यह स्वाभाविक है कि संगठन के उस रूप को आदर्श माना जाए जिसकी आय-कर-देयता सबसे कम हो। इस दृष्टि से संयुक्त स्टाक कम्पनी संगठन का एक आदर्श रूप है क्योंकि इसे कर में बहुत सी राहतें मिलती हैं जो संगठन के अन्य रूपों में उपलब्ध नहीं होतीं।

10 **स्वामित्व के परमाधिकार :** कुछ व्यक्तियों की यह प्रबल इच्छा होती है कि वे समस्त व्यावसायिक क्रियाकलाप को स्वयं नियंत्रित करें। वे निजी नेतृत्व को अधिक महत्व देते हैं। कुछ लोग व्यवसाय के उत्तरदायित्वों तथा जोखिमों को दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं। कुछ लोग व्यावसायिक कार्यों पर नियंत्रण की प्रबल इच्छा के बिना पूँजी के एक भाग का स्वामित्व चाहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो व्यावसायिक जोखिम उठाने को तैयार नहीं हैं। संगठन का एक आदर्श रूप स्वामियों के ऐसे परमाधिकारों का ध्यान रखता है।

3.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना (Comparison of Various Firms)

आपने पढ़ा है कि एक आदर्श संगठन में स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी एकत्र करने का अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता, लचीलापन, व्यापार का स्थायित्व, कम सरकारी नियंत्रण, कम कर-देयता आदि गुण होने चाहिये। आप जानते हैं कि संगठन के चार प्रमुख रूप हैं। ये हैं : (1) एकल स्वामित्व, (2) साझेदारी, (3) कम्पनी तथा (4) सहकारी समिति। संगठन के एक आदर्श रूप के लिये आवश्यक उपर्युक्त गुणों का ध्यान में रखते हुए, आइये अब हम संगठन के इन चारों रूपों के गुणों की तुलना करें। ऐसी तुलना द्वारा, सम्भवतः हम संगठन के उस रूप को पहचान पाएँगे जिसमें ये समस्त आदर्श गुण हों। तालिका 1 देखिये तथा व्यावसायिक संगठन के चार रूपों के गुणों की तुलना कीजिये।

तालिका 1

संगठन के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र.सं.	तुलना का आधार	एकल स्वामित्व	साझेदारी	प्राइवेट कम्पनी लिमिटेड	पब्लिक लिमिटेड कम्पनी	सहकारी संगठन
1.	स्थापना	सबसे सुगम, किसी प्रकार की कानूनी औपच..रिकता आवश्यक नहीं	पर्याप्त सुगम, कोई कठोर कानूनी औपचारिकताएँ नहीं	कानूनी औपचारिकताओं के कारण कठिन	बहुत सी कानूनी औपचारिकताओं के कारण काफी कठिन	कुछ कानूनी औपचारिकताएँ आवश्यक है।
2.	विशिष्ट नियमन	कोई नहीं	भारतीय भागीदार अधिनियम 1932	कम्पनी अधिनियम 1956	कम्पनी अधिनियम 1956	सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1912
3.	कानूनी हैसियत	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत
4.	सदस्यता	एक स्वामी	कम से कम 2, बैंकिंग व्यवसाय में अधिक से अधिक 10, अन्य व्यवसायों में 20	कम से कम 2, अधिक से अधिक 50	कम से कम 7 अधिकतम कोई सीमा नहीं	कम से कम 10 अधिकतम कोई सीमा नहीं
5.	पूँजी	बहुत सीमित पूँजी	सीमित पूँजी	अधिक पूँजी	पूँजी की कितनी भी राशि एकत्रित की जा सकती है	प्रचुर साधन उपलब्ध नहीं
6.	प्रबंध तथा स्वामित्व प्रबंध कुशलता	स्वामी द्वारा प्रबंध	स्वामियों द्वारा प्रबंध	नियंत्रण, जोखिम तथा स्वामित्व साथ साथ	प्रबंध तथा स्वामित्व में पूर्ण पार्थक्य	सारे सदस्यों द्वारा प्रबंध नहीं
7.	प्रबंध कुशलता	बहुत सीमित प्रबंध कुशलता	सीमित प्रबंध कुशलता	अधिक प्रबन्ध कुशलता	बहुत अधिक प्रबंध कुशलता	अधिक प्रबंध कुशलता
8.	स्वामी का दायित्व	असीमित	असीमित	सीमित	सीमित	उपनियमों के अनुसार सीमित
9.	लाभ सहभाजन का आधार	सारा लाभ स्वामी को प्राप्त	करार के अनुसार साझेदारों में विभाजन	स्वामियों में उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	स्वामियों के उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	प्रत्येक सदस्य द्वारा किए गए व्यवसाय का परिमाण
10.	स्वामित्व का अंतरण	अपेक्षाकृत आसान	सीमित तथा	सीमित तथा	इच्छानुसार तथा अति सुगम	सीमित
11.	व्यावसायिक स्थायित्व	स्वामी के जीवन पर निर्भर होता है।	साझेदारों के जीवन, दिवालियापन तथा निवृत्ति पर निर्भर होती है।	शाश्वत अश्तित्व, सदस्यों की मृत्यु दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	शाश्वत् अस्तित्व, सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	इसके सदस्यों की मृत्यु दिवालियापन का इस के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
12.	व्यावसायिक रहस्य	पूर्ण गोपनीयता	रहस्य साझेदारों तक सीमित	रहस्य सदस्यों तक सीमित	जनता को ज्ञान	सदस्यों को ज्ञान
13.	सरकारी नियमन	लगभग नहीं	बहुत कम	पर्याप्त नियमन	अत्यधिक नियमन	पर्याप्त नियमन
14.	कर-भार	कोई विशेष आयकर नहीं	कोई विशेष आयकर नहीं	भारी कर-भार, आय पर दोहरा कर लगता है।	भारी कर भार, आय पर दोहरा कर लगता है।	आयकर में छूट
15.	लचीलापन	यह लचीला संगठन है इसमें लिखित दस्तावेजों की आवश्यकता नहीं होती	यह केवल सभी साझेदारों की सहमति से बदला जा सकता है। इसमें भागीदारी विलेख की आवश्यकता होती है जिसे सारे साझेदारों की सहमति से बदला जा सकता है		यह एक गैर-लचीला संगठन है। इसके संगम ज्ञापन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।	यह एक गैर-लचीला संगठन है। इसके संगम ज्ञापन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।
16.	लेखों की लेखापरीक्षा	आवश्यक नहीं है।	आवश्यक नहीं है।		अनिवार्य	अनिवार्य
17.	समापन	इच्छानुसार	इच्छानुसार		अधिनियम के अनुसार	अधिनियम के अनुसार

यदि आप तालिका 1 का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो आपको स्पष्ट हो जाएगा कि संगठन के किसी रूप में भी समस्त आदर्श गुण नहीं है। आपको संगठन का प्रत्येक ऐसा रूप मिल जायेगा, जिसमें इनमें से कुछ गुण हों। प्रत्येक रूप कुछ पहलुओं से अच्छा होता है, परन्तु दूसरे पहलुओं से अच्छा नहीं होता। उदाहरणार्थ, एकल स्वामित्व तथा साझेदारी की स्थापना की सुगमता, सरकारी नियमन से मुक्ति, स्वामित्व का हित, व्यावसायिक रहस्यों की गोपनीयता आदि की दृष्टि से अच्छे माने जाते हैं। किन्तु ये गुण संगठन के कम्पनी तथा सहकारी रूपों में नहीं पाये जाते। सीमित देयता, पूँजी एकत्र करने के अवसर, पेशेवर प्रबन्ध, जीवन की निरंतरता आदि की दृष्टि से कम्पनी तथा सहकारी संगठन आदर्श हैं। अतः संगठन के किसी भी रूप को हर प्रकार से आदर्श तथा हर स्थिति के लिए उपयुक्त मानना कठिन है।

बोध प्रश्न—क

1 व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के गुणों की सूची बनाइये।

....

....

....

2 बताइये कि निम्न कथन सत्य हैं अथवा गलत।

i) संगठन का एक आदर्श रूप वह है जिसकी स्थापना के समय जटिल कानूनी औपचारिकताएँ होती हैं। ....

ii) असीमित दायित्व संगठन के एक आदर्श रूप का महत्वपूर्ण गुण है। ....

iii) संगठन लचीला तथा व्यवसाय की बदलती हुई परिस्थितियों के लिए अनुकूल परिवर्तनीय होना चाहिये। ....

iv) अत्यधिक सरकारी नियंत्रण आदर्श नहीं है। ....

v) संगठन का एक आदर्श रूप वही है जो व्यवसाय के स्थायित्व तथा निरंतर जीवन को सुनिश्चित कर सके। ....

vi) व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना संगठन के एक अच्छे रूप का आवश्यक गुण है। ....

vii) संगठन का वही रूप वांछनीय है जिस पर अधिक कर-भार लगाया जाता है। ....

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

i) स्थापना की दृष्टि से .... सबसे सुगम तथा सबसे कठिन है।

ii) स्वामियों की सदस्यता .... में सबसे अधिक तथा .... में सबसे कम होती है।

iii) .... में पूंजी एकत्र करने के अवसर बहुत सीमित होते हैं।

iv) संगठन का .... रूप आय कर से मुक्त होता है।

v) .... रूपों में स्वामियों का दायित्व असीमित होता है।

vi) व्यावसायिक रहस्य .... में गुप्त रहते हैं।

vii) .... रूपों में सरकारी नियमन सर्वाधिक होता है।

viii) .... रूपों में व्यावसायिक रहस्य अधिकतर गुप्त नहीं रह पाते हैं।

3.4 संगठन के चुनाव का मापदण्ड (Criteria for the Choice)

चारों रूपों की तुलना करने पर हमने पाया कि उनमें से कोई भी रूप हर दृष्टि से आदर्श नहीं है। अतः संगठन के एक सर्वोत्तम रूप की तलाश ऐसी ही है जैसी कि एक ऐसी कमीज की तलाश जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए उपयुक्त हो। अतः हो सकता है कि संगठन का कोई एक रूप जो एक स्थिति में उपयुक्त है दूसरी स्थितियों में उपयुक्त न हो। वास्तव में, संगठन का सर्वोत्तम रूप वह है जो एक विशेष व्यवसाय की आवश्यकताओं को सन्तोषजनक ढंग से पूरा करता हो। चुनाव का मुख्य आधार उद्यमकर्ता द्वारा निश्चित किये गए उद्देश्यों की पूर्ति होती है। चूँकि ये उद्देश्य भी हर व्यवसाय के भिन्न-भिन्न होते हैं, अतः संगठन का कोई भी एक रूप हर प्रकार के व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

आइये, अब हम विश्लेषण करें कि वे कौन से तत्व हैं जो व्यावसायिक रूपों के संगठन के चुनाव में हमारी सहायता करते हैं। संगठन के चुनाव में संबंधित निर्णय व्यवसाय के दो स्तरों पर महत्वपूर्ण होता है :

क) व्यवसाय प्रारम्भ करते समय,

ख) व्यवसाय के विस्तार के समय।

3.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदण्ड

एक नया व्यावसायिक उद्यम प्रारम्भ करते समय व्यावसायिक संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि संगठन का रूप ही अन्ततः उद्यमकर्त्ता की शक्ति और उत्तरदायित्व का निर्धारण करता है। चुनाव निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर है।

1 **व्यवसाय की प्रकृति** : संगठन के एक उपयुक्त रूप का चुनाव प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर होता है। विभिन्न व्यवसायों की संगठनात्मक आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, एक बड़े सीमेण्ट उत्पादन उद्योग तथा एक फुटकर सीमेण्ट की दुकान के लिये संगठन का एक-सा रूप उपयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार एक कपड़ा मिल के लिये उपयुक्त संगठन का रूप एक दर्जी की दुकान के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता।

2 **व्यवसाय का परिमाण** : व्यवसाय का अनुमानित परिमाण भी संगठन के उन उपयुक्त रूप के निर्णय को प्रभावित करता है। यदि व्यवसाय का परिमाण छोटा है, तो आपको कम पूंजी की आवश्यकता होगी तथा कम जोखिम उठाना पड़ेगा। इसी स्थिति में एकल स्वामित्व उपयुक्त हो सकता है। किन्तु, यदि व्यवसाय का परिमाण बड़ा है तो आपको अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी और अधिक जोखिम उठाना पड़ेगा जो अकेले स्वामी के लिए कठिन है। अतः साझेदारी अथवा कम्पनी अधिक उपयुक्त मानी जाएगी।

3 **कारोबार का क्षेत्र** : कारोबार का क्षेत्र भी संगठन के रूप के चुनाव को प्रभावित करता है। यदि क्षेत्र सीमित है तथा एक विशेष इलाके तक प्रसिद्ध है तो एकल स्वामित्व, संगठन उपयुक्त रूप हो सकता है। किन्तु यदि क्षेत्र विस्तृत है तो संयुक्त स्टाक कंपनी उपयुक्त रूप होगी।

4 **नियंत्रण की कामना** : नियंत्रण तथा परिवीक्षण का विस्तार भी संगठन के चुनाव का निर्धारण करेगा। यदि व्यावसायिक कार्यों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण की कामना है तो एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी अपनाई जानी चाहिये। यदि आप समझते हैं कि प्रत्यक्ष नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं है तो संगठन का कम्पनी रूप सर्वोत्तम है।

5 **पूंजी संबंधी आवश्यकताएँ** : संगठन का रूप व्यवसाय की पूँजी संबंधी आवश्यकताओं पर भी निर्भर होगा। एक ऐसा व्यवसाय जिसमें कम पूँजी की आवश्यकता है एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित किया जा सकता है। किन्तु यदि वित्तीय आवश्यकताएँ बहुत अधिक हैं तो संगठन का संयुक्त स्टाक कम्पनी रूप ही उचित रहेगा।

6 **जोखिम तथा देयता की सीमा** : आप जानते हैं कि व्यावसायिक कार्यों में जोखिम होती है। यदि व्यावसायिक उद्यम के प्रवर्तक सन्निहित जोखिम से डरते हैं तो वे व्यवसाय एक सीमित देयता वाले संगठन के आधार पर आरम्भ करेंगे, अर्थात् वे एक कम्पनी बनाएँगे। किन्तु यदि उनमें जोखिम उठाने की क्षमता है तो वे व्यवसाय को एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित कर सकते हैं।

7 **सरकारी विनियम** : जैसा कि आप जानते हैं सरकारी नियंत्रण और विनियम संगठन के कम्पनी तथा सहकारी रूपों में अन्य दो रूपों की अपेक्षा अधिक होते हैं। अतः यदि आप बहुत अधिक सरकारी नियंत्रण तथा विनियम नहीं चाहते तो आपको एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी को चुनना चाहिये।

3.4.2 विस्तार के समय मापदंड

व्यवसाय में वृद्धि एक सामान्य क्रिया है। जब आपका व्यवसाय सफल होता है तो आप उसका विस्तार करने की योजना बना सकते हैं। विस्तार कार्यक्रम के निम्नलिखित आशय हो सकते हैं।

i) बड़े वित्तीय साधनों की आवश्यकता

ii) आन्तरिक पुनर्गठन तथा नियंत्रण की आवश्यकता

iii) विशिष्ट सेवाओं, जैसे–संचार, लेखाविधि, विपणन आदि की आवश्यकता
vi) सरकारी नियंत्रण और विनियमों में वृद्धि
v) करदेयता में वृद्धि
vi) नियंत्रण तथा समन्वय की समस्या में वृद्धि

वास्तव में इन समस्याओं का स्वरूप वर्तमान व्यवसाय की प्रकृति तथा अपनाये गए विस्तार कार्यक्रमों के रूप पर निर्भर होगा। अपना विस्तार कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिये आप संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकते हैं, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकते हैं। जो कोई विकल्प भी आप चुनें, वह विस्तार की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होना चाहिये। यदि आपका वर्तमान व्यवसाय एकल स्वामित्व संस्था के रूप में संगठित है तो आप एक प्रबन्धक नियुक्त करते हैं अथवा यदि एक साझेदारी फर्म है तो आप साझेदारों की संख्या बढ़ा सकते हैं, अथवा इसे प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी प्रकार, यदि वर्तमान व्यवसाय एक प्राइवेट कम्पनी के रूप में संगठित है तो आपके पास यह विकल्प है कि आप चाहे पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में बदल दें अथवा न बदलें।

3.5 संगठन के रूप का चुनाव (Choice of the Form)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि छोटे व्यवसाय, जैसे किराने की दुकान, नाई की दुकान, छोटे भोजनालय तथा होटल, छोटे ऑटोवर्कशाप, लेखन सामग्री की दुकानें, मिठाई की दुकानें, नानबाई की दुकानें, ड्राइक्लीनिंग की दुकानें, जूता निर्माण और पूर्ति उद्योग, बिजली तथा इलैक्ट्रॉनिक के सामान की मरम्मत करने वाली छोटी दुकानें नाई, दर्जी, आदि प्रधानतः एकल व्यापार संगठन होते हैं। इस प्रकार के व्यवसायों के लिये संगठन के एकल स्वामित्व रूप को तरजीह देने के कारण बिलकुल स्पष्ट हैं। वे छोटे पैमाने पर कार्य करते हैं, एक सीमित बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अथवा ग्राहकों या व्यापारियों की एक सीमित संख्या से व्यवहार करते हैं, तथा उन्हें सीमित पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इनमें आमने-सामने की स्थिति से निबटने के लिए स्वामियों के वैयक्तिक ध्यान की आवश्यकता होती है। प्रबन्धकीय कार्य स्वामी स्वयं सुगमतापूर्वक कर सकता है तथा सामान्यतः स्वामी स्वयं ही अपना हाकिम तथा सक्रिय प्रबन्धक होना चाहता है।

अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर व्यवसाय का गठन सामान्यतः साँझेदारी के रूप में किया जाता है। सेवा उद्यम, जैसे ऑटोवर्कशाप, बड़े भोजनालय तथा होटल, बड़े पैमाने के फुटकर व्यापार तथा मध्यम पैमाने के औद्योगिक संगठन सामान्यतः साझेदारी के रूप में संगठित किये जाते हैं। इनमें उद्यमकर्त्ता एक फर्म के साझेदारों के रूप में अपनी पूंजी कौशल तथा अनुभव, आदि, को एकत्र करना चाहते हैं। ऐसे उपक्रमों के आन्तरिक संगठन की देखभाल वे साझेदार करते हैं, जिन्हें उपक्रम की किसी विशेष क्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त हो। उन उपक्रमों में जिनमें जोखिम काफी अधिक होती है। तथा जो मध्यम पैमाने पर कार्य करते हैं, सामान्यतः प्राइवेट कम्पनी का चुनाव किया जाता है। परिवहन उपक्रम, किराया खरीद इकाइयाँ, वित्त तथा लीजिंग कम्पनियाँ, मध्यम पैमाने की विनिर्माण कम्पनियाँ सामान्यतः प्राइवेट कम्पनियों के रूप में संगठित की जाती हैं। ऐसे उपक्रमों में एक साझेदारी फर्म की तुलना में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

वर्तमान समय के बड़े पैमाने पर व्यावसायिक कार्यों के लिये पब्लिक लिमिटेड कम्पनी व्यावसायिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। बड़े पैमाने के विनिर्माण संयंत्र, बड़े परिवहन उपक्रम, इंजीनियरी तथा इलैक्ट्रॉनिक कम्पनियाँ बड़े विभागीय भंडार, बड़ी बहुसंख्यक दुकानें, आदि सामान्यतः पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के रूप में संगठित की जाती हैं। बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता, तथा बड़ा जोखिम इसके मुख्य कारण हैं।

दूसरी ओर, संगठन का सहकारी रूप उस स्थिति में उपयुक्त होता है जबकि समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों का परिरक्षण करना अभीष्ट हो। अतः संगठन के सहकारी रूप का उपयोग उपभोक्ताओं, उत्पादकों, कृषकों, आदि के लिये किया जाता है।

बोध प्रश्न-ख

1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों की सूची बनाइये।

....

....

....

....

2 बताइये कि निम्न कथन सही हैं अथवा गलत ।

i) जितना बड़ा व्यवसाय का आकार होता है, उतनी ही कम पूँजी की आवश्यकता होती है। ....

ii) जब व्यवसाय का प्रत्यक्ष नियंत्रण वांछित हो, तब एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी वांछनीय है। ....

iii) संगठन के रूप के चुनाव पर व्यवसाय की प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ....

iv) यदि कारोबार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो तो साझेदारी संगठन का आदर्श रूप है। ....

v) यदि सीमित दायित्व वांछित हो, तो कम्पनी उपयुक्त होती है। ....

vi) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के द्वारा असीमित मात्रा में पूँजी का एकत्र किया जाना सम्भव है। ....

vii) संगठन के कम्पनी रूप में सरकारी नियमन अधिक होता है। ....

3 सही उत्तर के सामने (√) चिन्ह लगाइये।

i) एक बहुत छोटे व्यवसाय के लिये **एकल स्वामित्व/कम्पनी व्यावसायिक संगठन** एक उपयुक्त रूप है।

ii) बड़े पैमाने पर निर्माण करने वाले व्यवसाय के लिये **साझेदारी/कम्पनी संगठन** एक उपयुक्त रूप है।

iii) मध्यम पैमाने के फुटकर कपड़ा व्यवसाय के लिये **साझेदारी/कम्पनी संगठन** एक उपयुक्त रूप है।

iv) पूँजी की छोटी राशि एकत्र करने के लिये **एकल स्वामित्व/सहकारी समिति** उपयुक्त है।

v) यदि जोखिम बहुत अधिक हो तो **साझेदारी/प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी** संगठन का उपयुक्त रूप है।

3.6 सारांश

स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी एकत्र करने के अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता का अनुरक्षण, लचीलापन, परिचालन में स्थायित्व, कम सरकारी नियंत्रण, कम कर-भार, उच्चतर प्रबन्ध कुशलता, तथा अधिक स्वामित्व हित व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के मुख्य लक्षण हैं।

संगठन के चार रूपों की तुलना से पता चलता है कि इनमें से किसी में भी सारे आदर्श लक्षण नहीं हैं। संगठन का प्रत्येक रूप कुछ अंश तक में अच्छा है और कुछ अंश तक अच्छा नहीं है। स्थापना की सुगमता, सरकारी नियंत्रण, स्वामित्व-हित, व्यावसायिक गोपनीयता तथा लचीलेपन की दृष्टि से एकल स्वामित्व तथा साझेदारी संगठन के आदर्श रूप हैं सीमित देयता,

पूँजी एकत्र करने के अवसर, प्रबन्ध क्षमता, स्थायित्व तथा परिचालन की निरंतरता की दृष्टि से कम्पनी तथा सहकारी समिति संगठन के आदर्श रूप हैं।

चूँकि प्रत्येक पहलू से कोई भी रूप आदर्श नहीं है, अतः उद्यमकर्त्ता को अपने व्यवसाय के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करना पड़ता है। नया व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करने के लिये उद्यमकर्त्ता के व्यवसाय की प्रकृति, व्यवसाय के आकार, कार्रवाई का क्षेत्र, पूँजी-संबंधी आवश्यकताएँ, वांछित नियंत्रण की मात्रा, व्यवसाय का प्रत्याशित जीवन, तथा सरकारी नियमन के वांछित स्तर पर विचार करना पड़ता है। विस्तार के समय, स्थिति के अनुसार उद्यमकर्त्ता या तो संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकता है, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकता है।

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि छोटे व्यवसाय के लिए एकल स्वामित्व संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। यदि व्यवसाय अपेक्षाकृत बड़ा है, तो साझेदारी संगठन का उपयुक्त रूप है। मध्यम आकार वाले व्यवसाय के लिये प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी/संगठन का एक आदर्श रूप है तथा बड़े आकार वाले व्यवसाय के लिए पब्लिक लिमिटेड कम्पनी उपयुक्त है। जब समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों की परिरक्षा करनी हो, तो संगठन का सहकारी रूप उपयुक्त है।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत**, (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 6 खण्ड दो।

बी.पी. सिंह एवं टी. एन. छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय**, (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 6 खण्ड दो।

जी.एल. जोशी, जी. एल शर्मा, एल.एस.सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध**, (दिल्ली: श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 7।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) सही (vi) सही (vii) गलत
3 i) 'एकल स्वामित्व पब्लिक लिमिटेड कंपनी
ii) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी व सहकारी समिति, एकल स्वामित्व
iii) एकल स्वामित्व
iv) सहकारी समिति
v) एकल स्वामित्व तथा साझेदारी
vi) एकल स्वामित्व तथा साझेदारी
vii) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी
viii) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी

ख 2 i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) सही
3 i) एकल स्वामित्व (ii) कम्पनी (iii) साझेदारी (iv) एकल स्वामित्व (v) प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी

3.9 स्वपरख प्रश्न

1 व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षणों की व्याख्या कीजिये। कौन सा रूप समस्त पहलुओं से आदर्श माना जा सकता है?

2 व्यावसायिक संगठन के चारों रूपों में से किसी में भी संगठन के एक आदर्श रूप के समस्त लक्षण नहीं होते। विवेचन कीजिये।

3 व्यावसायिक संगठन के रूप के चुनाव का निर्णय करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिये।

4 आपने एक व्यवसाय प्रारम्भ करने की योजना बनाई है। आप व्यवसाय के लिए संगठन के एक उपयुक्त रूप का चुनाव किस प्रकार करेंगे।

5 सब प्रकार के व्यवसायों के संगठन का कम्पनी रूप सबसे आदर्श रूप है।

6 एक साझेदारी फर्म ने अपने व्यवसाय का विस्तार करने का निर्णय लिया है, जिसके लिए अधिक पूँजी तथा विशेषता की आवश्यकता है। इसे अधिक साझेदार लेने चाहियें। अथवा अपने आपको प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में परिवर्तित कर लेना चाहिये। उपयुक्त तर्क देते हुए अपनी सलाह दीजिये।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिये, किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 4 व्यावसायिक प्रवर्तन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्यमी
  4.2.1 उद्यमत
  4.2.2 उद्यमी के लक्षण
  4.2.3 उद्यमी के कार्य
4.3 प्रवर्तन
  4.3.1 उद्यमी तथा प्रवर्तक में अंतर
  4.3.2 प्रवर्तकों के प्रकार
4.4 विभिन्न प्रकार के संगठनों का प्रवर्तन
  4.4.1 एकल स्वामित्व उपक्रम
  4.4.2 साझेदारी फर्म
  4.4.3 संयुक्त पूँजी कम्पनी
  4.4.4 सहकारी समिति
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.9 स्वपरख प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप बता सकेंगे कि

- उद्यमी कौन होता है तथा उसके क्या लक्षण हैं
- उद्यमी के कार्य क्या हैं
- उद्यमी तथा प्रवर्तक में क्या अन्तर है
- एकल-व्यापार, साझेदारी, संयुक्त स्टाक कम्पनी तथा सहकारी संस्थाओं के प्रवर्तन की क्या पद्धति है।

4.1 प्रस्तावना

अभी तक आपने व्यावसायिक क्रियाओं की प्रकृति तथा व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूपों का अध्ययन किया है। आप इस तथ्य से अवगत हैं कि व्यवसाय के क्षेत्र में छोटी दुकानों, विशाल भंडार गृहों, छोटी-छोटी वर्कशापों अथवा बड़े-बड़े कारखानों में अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जाती हैं तथा सेवाओं का विनिमय होता है। क्या आपने कभी यह जानने की कोशिश की है कि ये व्यावसायिक क्रियाएँ किस प्रकार प्रारंभ की गई थीं। अवश्य ही, प्रारंभ में कुछ व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों ने इस प्रकार के व्यवसाय के बारे में विचार किया होगा। यदि आपके परिवार में कोई व्यापार किया जाता है तो अवश्य ही आपके पिता अथवा पितामह ने उस कारोबार के बारे में शुरू में विचार किया होगा और उसकी स्थापना के लिए कुछ कदम भी उठाए होंगे। यदि वह कोई विनिर्माण व्यवसाय है तो कारखाने के लिए भवन बनवाया गया होगा, मशीनें तथा कच्चे माल की व्यवस्था की गई होगी, श्रमिकों की भरती की होगी तथा बिजली पानी आदि की व्यवस्था की होगी। इन सभी कार्यों की व्यवस्था करने वाले व्यक्ति द्वारा पूँजी भी पर्याप्त मात्रा में जुटाई गई होगी। स्पष्ट है कि प्रत्येक कारोबार किसी न किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज होती है। ऐसा व्यक्ति "उपक्रमी" अथवा "उद्यमी" कहलाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेंगे कि उद्यमी कौन हैं, एक उद्यमी के क्या लक्षण तथा कार्य हैं,

व्यवसाय के प्रवर्तन में उसका क्या योगदान है, एक उद्यमी तथा प्रवर्तन में क्या अन्तर है और उद्यमी कितने प्रकार के होते हैं। आप यह भी सीखेंगे कि विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठनों का प्रवर्तन किस प्रकार किया जाता है, तथा प्रवर्तकों द्वारा व्यवसाय की स्थापना के लिए क्या कदम उठाए जाते हैं।

4.2 उद्यमी (Entrepreneur)

उद्यमी वह व्यक्ति है जिसके मस्तिष्क में कोई विशेष कारोबार करने की बात जन्म लेती है। वह व्यावसायिक अवसर की खोज में रहता है तथा इसका निर्णय भली प्रकार ले सकता है कि बाजार में कौनसी वस्तु बिक पाएगी। वह कल्पनाशील व्यक्ति होता है तथा यह मानकर चलता है कि उसे अवश्य सफलता मिलेगी। उसे भविष्य की अनिश्चितताओं से भय नहीं लगता। वह जोखिम उठाने के लिए तत्पर रहता है तथा चुनौतियों का सामना करता है। यही नहीं उद्यमी वह है जो कोई नई वस्तु, कुछ भिन्न वस्तु बनाए। वह भौतिक, मौद्रिक तथा मानवीय साधनों को एकीकृत कर अधिक लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से किसी नवीन व्यावसायिक उपक्रम की खोज करता है।

4.2.1 उद्यमत

उद्यमी के क्रियाकलाप ही "उद्यमत" (entrepreneurship) कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, उद्यमत उद्यमी होने की क्रिया है। वास्तव में उद्यमत (entrepreneurship) शब्द फ्रेन्च भाषा के शब्द "आन्टप्रन:" (entrepreneur) का हिन्दी अनुवाद है, जिसका अर्थ है, "अवसरों का उपयोग करना" अथवा "नवीन प्रक्रिया द्वारा व्यवसाय प्रारम्भ कर समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना"। उद्यमी ही वह व्यक्ति है जिसे ये सारे कार्य करने होते हैं। वह एक उपक्रम जोखिम भरा कार्य हाथ में लेता है, उसे संगठित करता है, उसके वित्तपोषण के लिए आवश्यक पूँजी जुटाता है और व्यवसाय की सम्पूर्ण अथवा अधिकांश जोखिम वहन करता है। अस्तु, उद्यमत एक नवीन व्यवसाय को जन्म देने की प्रक्रिया है।

"अभिनव परिवर्तन" तथा "जोखिम का वहन करना" ये उद्यमत के दो मूल तत्व हैं। अत: आपको इन शब्दों की सही व्याख्या जान लेना चाहिए।

नवाचार अथवा नव परिवर्तन (Innovation) यदि किसी व्यावसायिक क्रिया के लिए कोई विशेष कार्य करने की आवश्यकता नहीं होती है तो वह उद्यमत नहीं कहलाती है। वास्तव में, व्यक्ति तब तक उद्यमी नहीं कहा जा सकता, जब तक वह किसी नई बात और भिन्न बात को अपने उपक्रम में पैदा नहीं करता है। अन्य व्यक्तियों से अलग कार्य करना ही नवाचार कहलाता है। समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उद्यमी सदा नई वस्तु की खोज में लगे रहते हैं। नए उत्पाद अथवा उत्पादन की नई विधि के वे स्वयं आविष्कर्ता हों या न हों परन्तु वे व्यवसाय के लिए उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की संभावना का अनुमान लगाने में समर्थ होते हैं। अन्य व्यक्ति जो उस आविष्कार की जानकारी रखते हैं, व्यवसाय में उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की संभावना का अनुमान लगाने में समर्थ नहीं होते हैं। यही नहीं उनमें आत्मविश्वास तथा महत्वाकांक्षा की कमी होती है जिसके कारण वे उस अवसर का लाभ नहीं उठा पाते।

प्रतियोगी बाजार में एक उद्यमी मात्र नवाचार के बल पर ही अपने व्यवसाय में सफल हो सकता है। अभिनव परिवर्तन अथवा नवाचार कोई बहुत बड़ा चमत्कार अथवा नाटकीय कार्य नहीं कहा जा सकता। किसी पुरानी विधि में साधारण सा सुधार अथवा किसी वस्तु की बिक्री के लिए अतिरिक्त प्रभार लिए बिना कोई सेवा प्रदान करना अथवा लुभावनी पैकिंग में वह वस्तु बेचना अथवा इसी प्रकार के अन्य कदम उठाना उपयोगी नवाचार हो सकते हैं। नि:संदेह यही कार्य यदि अन्य विक्रेता तथा उत्पादक द्वारा किए जाएँ तो, उद्यमी को पुन: अन्य प्रकार के नवाचारों के बारे में विचार करना होता है। इस प्रकार कुछ नवाचार अन्य नवाचारों को जन्म दे सकते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कल्पनाशक्ति कभी-कभी नवाचार के ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। एक उद्यमी के पास कल्पनाशक्ति के साथ-साथ सृजनात्मक विचारशक्ति भी होनी चाहिए।

फलों के रस का ही उदाहरण ले लीजिए। आजकल बोतलों के स्थान पर "फ्रूट जूस" छोटे-छोटे डिब्बों में बेचा जाता है, जिन्हें आप सुविधा से ले जा सकते हैं और जूस पीने के

बाद उस डब्बे को फेंक सकते हैं। यही नवाचार है। एक और उदाहरण ले लीजिए। आपने हैनरी फोर्ड का नाम तो अवश्य सुना होगा जिन्होंने अमरीका में फोर्ड मोटरकार कम्पनी की स्थापना की थी। मोटर कार का आविष्कार उन्होंने नहीं किया था किन्तु बड़ी मात्रा में उत्पादन के तरीकों को अपनाकर यात्री-कारों का कम लागत पर उत्पादन करना प्रारम्भ किया जिससे बहुत से लोग उसे खरीदने की स्थिति में आ सके।

जोखिम उठाना (Risk-bearing): उद्यमत का एक और भी पक्ष है, "जोखिम उठाना"। इस पक्ष का सामना प्रत्येक उद्यमी को करना पड़ता है। उद्यमी को जोखिम उठाने वाला व्यक्ति होना चाहिए। जोखिम उठाने से भागने वाला नहीं। वास्तव में नए व्यापार को प्रारम्भ करने में सदैव जोखिम उठानी पड़ती है, क्योंकि भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभों के लिए ही धन-निवेश किया जाता है। किसी नए कार्य को प्रारम्भ करना जोखिमपूर्ण भी होता है। एक नवीन उपक्रम में अपेक्षित लाभ मिलना जरूरी नहीं है, उसमें असफल भी हो सकता है तथा परिणाम-स्वरूप हानि भी उठानी पड़ जाती है। बढ़ती हुई प्रतियोगिता, उपभोक्ता की प्राथमिकताओं में परिवर्तन हो जाने तथा कच्चे माल की उपलब्धता में कमी आने के कारण अथवा किसी आकस्मिक विपत्ति के कारण ऐसा हो सकता है। परन्तु एक उद्यमी निर्भीकता से यह सारी जोखिम उठाने को तप्पर रहता है। प्रतिफल मिलने की आशा उसे जोखिम उठाने के लिए तैयार कर देती है। किसी एक उपक्रम में असफल हो जाने पर भी वह दृढ़ता से व्यवसाय में जमा रहता है और यही कार्य उसे सफलता दिलाता है।

4.2.2 उद्यमी की विशेषताएं

यदि आप व्यवसाय का इतिहास पढ़ेंगे तो आपको बहुत से व्यक्तियों के नाम ज्ञात होंगे जो उद्यमी कहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के रोकफैलर, हेनरी फोर्ड, जर्मनी के कार्ल बैंज तथा गॉटफ्राइड डैमलर, जापान के सोइचीरो हौंडा उद्यमियों के अत्यंत प्रसिद्ध नाम हैं जिन्होंने औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित करके अपार धन अर्जित किया है। हमारे देश में भी जे. एन. टाटा, जी. डी. बिड़ला किरलोस्कर व अन्य व्यक्तियों ने सफलतापूर्वक विनिर्माण उद्योग स्थापित किए हैं। उद्यमियों की भूमिका के ही कारण लघु व्यावसायिक फर्मों ने भी सफलता प्राप्त की है। क्या इन उद्यमियों में वैयक्तिक गुण एक जैसे थे इसकी जानकारी प्राप्त कर लेना लाभदायक होगा। इन उद्यमियों के चरित्र में कुछ निम्नलिखित तत्व समान रूप से पाए गए हैं जिनको आमतौर पर प्रधान माना जाता है।

1 **स्वतंत्रता:** बहुत से सफल उद्यमियों ने अपने आपको कबूतर खानों में अथवा लीक में नहीं बांधा। वे इनसे हटकर चले। वास्तव में, उद्यमी हताश हो जाते हैं जब उनको किसी अन्य व्यक्ति के आदेशों का पालन करना पड़ता है। वे अपने आप को हाकिम बनना पसंद करते, वे नियंत्रण करना चाहते हैं। किसी अन्य व्यक्ति के निदेशन में वे कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

2 **कठिन परिश्रम:** कार्य करने की इच्छा तथा कठिन परिश्रम उद्यमी की उत्कृष्ट विशेषता मानी गई है। आप दावे से कह सकते हैं कि सफल व्यवसायी ने कठिन परिश्रम किया है, घण्टों पसीना बहाया है, मनोवेग से दबा रहा है तथा अध्यवसाय से कार्य किया है। बहुत संभव है कि प्रारम्भ में व्यवसाय को समय समय पर असफलता का सामना करना पड़ा हो परन्तु उद्यमी ने उसको समाप्त नहीं होने दिया है। एक सफल उद्यमी ने अपने प्रारम्भिक अनुभव की कहानी कहते हुए बताया कि उसने लगातार कार्य किया, बारह घंटों से भी अधिक और सप्ताह के पूरे सात दिन। आप कह सकते हैं कि उसने अपना समस्त जीवन इसी प्रकार व्यतीत किया।

3 **लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा:** उद्यमियों की अपनी समस्याओं का हल खोजने और व्यावसायिक उपक्रम को सफल बनाने की तीव्र इच्छा होती है जिससे अन्त में उन्हें पर्याप्त मुनाफे को मिल सके। मुनाफेको वे अपनी सफलता तथा कार्य-निष्पादन को मापदंड मानकर चलते हैं, रुपया कमाना ही उनका ध्येय नहीं होता।

4 **दूरदर्शी तथा गतिशील दृष्टिकोण:** मूलत: इन व्यक्तियों को व्यावसायिक पर्यावरण अर्थात बाजार, उपभोक्ताओं के व्यवहार, तकनीकी विकास आदि का व्यापक ज्ञान होता है। फिर, इन व्यक्तियों को व्यावसायिक अनिश्चितताओं व जोखिम की भविष्यवाणी करने में भी निपुणता प्राप्त होती है। अत: वे शीघ्र व श्रेष्ठ निर्णय लेने में समर्थ होते हैं।

खुला मस्तिष्क: ये व्यक्ति व्यवसाय के पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन की भविष्यवाणी करने में निपुण थे। फिर भी उन्होंने परिवर्तन को दबाने का कभी भी प्रयास नहीं किया क्योंकि उन्हें मालूम था कि वे आने वाले परिवर्तन को रोक ही पायेंगे। अत: वे खुला मस्तिष्क रखने के आदी से हो गए हैं। यद्यपि उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन होने के कारण करोड़ों रुपए की हानि कभी-कभी इन लोगों को उठानी पड़ जाती है तथापि इस परिवर्तन के वित्तीय संस्थाओं आदि से प्राप्त होती है।

6 **मशीनरी की खरीद के लिए आदेश:** वह मशीनरी, उपकरण तथा अन्य आवश्यक यंत्रों को खरीदने का आदेश देता है। वह उत्पादन क्रिया प्रारम्भ करने के लिए मशीनों तथा उपकरणों की स्थापना कराता है।

7 **श्रमिकों की भर्ती:** साहसी के रूप में वह विभिन्न विभागों के लिए कुशल व अकुशल दोनों ही प्रकार के श्रमिकों का चयन करता है। इस प्रकार वह श्रमिकों की भर्ती का प्रबंध करता है।

8 **संगठन के आंतरिक ढांचे की रूपरेखा बनाना:** वह अपने प्रस्तावित उपक्रम के संगठन के आंतरिक ढांचे को तैयार करता है। इस कार्य में उसे उपक्रम के सम्पूर्ण कार्य को छोटे-छोटे भागों में विभक्त करना होता है जैसे उत्पादन, विपणन, वित्त, कार्मिक, क्रय, इंजीनियरिंग आदि तथा इनमें से प्रत्येक के विभाग बनाने होते हैं। वह प्रत्येक विभाग के कार्यों को निर्धारित करता है तथा उनके बीच समन्वय की क्रिया की रूपरेखा भी बनाता है।

9 **औपचारिकताओं को निभाना तथा उत्पादन कार्य प्रारंभ करना:** प्रत्येक प्रकार के नये व्यवसाय के प्रारम्भ में कुछ औपचारिकताओं को पूरा करना होता है। विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठनों के लिए ये औपचारिकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। जब तक ये औपचारिकताएं पूरी नहीं की जातीं आप उपक्रम को आरम्भ नहीं कर सकते। इन कार्यविधि-संबंधी औपचारिकताओं के विषय में आप इसी इकाई में आगे जानकारी प्राप्त करोगे।

अस्तु, उद्यमी की भूमिका श्रीगणेश करने वाले तथा प्रवर्तक की है। कुछ अर्थों में उद्यमी की भूमिका एक विशिष्ट व्यक्ति की भी है जिसे उत्पादन, बाजार की स्थितियों तथा व्यवसाय को चलाने के व्यावहारिक पहलुओं का ज्ञान होता है। उसके लिए केवल कल्पना जगत में ही नहीं विचरना होता वरन् यह निश्चय करना होता है कि किस प्रकार का व्यवसाय उसके लिए लाभप्रद होगा। अंतिम रूप में व्यवसाय को सफल बनाने के लिए उसकी निर्णायक भूमिका होती है। जब कोई उद्यम प्रारम्भ हो जाता है और वह लाभ देने लगता है तो उद्यमी उससे अलग होने पर विचार कर सकता है। वह अपने स्वामित्व का अधिकार किसी दूसरे को दे सकता है अथवा उस उद्यम को चलाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को सौंप सकता है। गत वर्षों में बहुत से उद्यमियों ने ऐसा किया है फलस्वरूप उन्हें अपनी तकनीक आदि में परिवर्तन लाना पड़ा।

10 **आशावादी दृष्टिकोण:** प्राय: वे वर्तमान समस्याओं को अस्थायी रूप देते हैं तथा यह मानकर चलते हैं कि कुछ समय के पश्चात् परिस्थितियां उनके अनुकूल होंगी। उद्यमी सदैव अपने लक्ष्यों को श्रेष्ठतम विधि से प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं, ताकि परिणाम उत्कृष्ट निकलें और उन्हें गर्व महसूस करने का अवसर प्राप्त हो।

11 **कारोबारी संबंध :** व्यवसाय की सफलता का प्रथम कारण श्रमिक हैं तत्पश्चात् व्यवसायियों के अन्य उपक्रमों से संबंध आते हैं। बहुत से उद्यमियों के अन्य व्यवसायियों के साथ मधुर संबंध रहे हैं। परिणामत: बाजार में उनकी साख जमती है।

12 **अच्छे संगठनकर्ता:** व्यवसाय को प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के साधनों का सम्मिश्रण करने तथा उनसे श्रेष्ठतम लाभ प्राप्त करना वे बखूबी जानते हैं। वे व्यवसाय के भविष्य के बारे में लोगों में विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं, उनका सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, पूंजी जुटा सकते हैं, मशीनरी खरीद सकते हैं, सामग्री का प्रबंध कर सकते हैं, उपयुक्त कर्मचारियों का चयन कर सकते हैं तथा व्यवसाय से संबंधित विविध क्रियाओं का समन्वयन कर सकते हैं।

13 **नव-परिवर्तन के प्रति अभिरुचि:** सफल उद्यमियों में से अनेकों ने नवाचार के प्रति अभिरुचि दिखाई है। उन्होंने अपनी आय का एक भाग शीघ्र कार्य व नवीन बातें के ज्ञान

पर व्यय किया है ताकि वे उपभोक्ताओं की मांग पूरा करने के लिए उपयुक्त माल प्रदान कर सकें। हमारे देश के कुछ उद्योगपतियों जैसे बिड़ला, टाटा किरलोस्कर आदि ने अपने-अपने शोध केन्द्र भी स्थापित किए हुए हैं।

4.2.3 उद्यमी के कार्य

इस इकाई के पिछले पृष्ठों को पढ़ने के उपरान्त अपने उद्यमी के कार्यों के बारे में सोचना प्रारम्भ कर दिया होगा। मुख्यत: उद्यमी एक ऐसा व्यवसाय स्थापित करने का प्रयास करता है जिसमें उसे लाभ प्राप्त हो। तत्पश्चात् वह कार्य आरम्भ करने की योजना बनाता है और व्यवसाय को स्थापित करने के लिए कदम उठाता है और अंत में व्यवसाय को प्रारम्भ करता है। व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार उसके ये कार्य बदलते रहते हैं। उत्पादन कार्य में लगे हुए उद्यमी के कार्यों पर हम यहां विचार कर रहे हैं:

1 **विचार को विकसित करना तथा अवसरों की खोज:** उद्यमी के सर्जनात्मक मस्तिष्क में सर्वप्रथम व्यवसाय की स्थापना का विचार उठता है। इस विचार के आधार पर वह लाभपूर्ण निवेश की संभावनाओं के विचार पर गौर करता है तथा उत्पादन के लिए उपक्रम की स्थापना के अवसरों की गवेषणा करता है।

2 **उत्पाद का विश्लेषण तथा बाजार का सर्वेक्षण:** उसे उपभोक्ताओं की प्राथमिकताओं व आवश्यकताओं पर तथ्य एकत्रित करने होते हैं। इन तथ्यों को वह बाज़ार शोध तकनीक के द्वारा एकत्रित करता है जिससे वह संभाव्य उत्पाद की बिक्री का अनुमान लगाता है। पुन: वह डिजाइन, रंग, आकार व रूप के प्रति उपभोक्ता की रुचि की जानकारी प्राप्त करता है। साथ ही वह संभाव्य उत्पाद की कुल मांग तथा प्रतियोगियों की संख्या/मात्रा से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करता है।

3 **संगठन के रूप का निर्धारण:** वह व्यवसाय के स्वामित्य के रूप को भी निर्धारित करता है। अर्थात् उसे यह व्यवसाय एकल स्वामित्व के रूप में अथवा साझेदारी कम्पनी अथवा सहकारी संगठन के रूप में चलाना है। यह निर्धारण उसे करना होता है।

4 **स्थान का निर्धारण:** उसे कारखाने की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव करना होता है। इसका निर्धारण करने के लिए यातायात, शक्ति पूर्ति, ईंधन, पानी, श्रम, कच्चे माल की उपलब्धिता, बाज़ार की समीपता आदि पर विचार करना होता है।

5 **आवश्यक पूँजी का एकत्रीकरण:** व्यवसाय को स्थापित करने तथा विकसित करने के लिए उसे पर्याप्त पूंजी एकत्रित करनी होती है। पूँजी देनेवाले व्यक्तियों को वह निजी जमानत देता है। अन्यथा वह स्वयं की पूँजी लगाने का वचन देता है अथवा अपने मित्रों और संबंधियों से उधार लेता है। लघु उपक्रमों में, प्रवर्तक अपनी स्वयं की पूंजी लगा लेते हैं जबकि बड़े पैमाने के उपक्रमों में आवश्यक पूंजी विविध स्रोतों जैसे सामान्य जनता, वाणिज्यिक बैंकों, वित्तीय सस्थाओं आदि से प्राप्त होती है।

6 **मशीनरी क्रय के लिए आदेश:** वह मशीनरी, उपकरण तथा अन्य आवश्यक यंत्रों को क्रय करने का आदेश देता है। वह उत्पादन क्रिया प्रारंभ करने के लिए मशीनों व उपकरणों की स्थापना कराता है।

7 **श्रमिकों की नियुक्ति:** उद्यमी के रूप में वह विभिन्न विभागों के लिए आवश्यक कुशल व अकुशल दोनों ही प्रकार के श्रमिकों की नियुक्ति का प्रबंध करता है।

8 **संगठन के आंतरिक ढाँचे की रूपरेखा बनाना:** वह अपने प्रस्तावित उपक्रम के संगठन के आंतरिक ढांचे को तैयार करता है। इस कार्य में उसे उपक्रम के संपूर्ण कार्य को छोटे-छोटे भागों में विभिक्त करना होता है जैसे उत्पादन, विपणन, वित्त, कार्मिक, क्रय इंजीनियरिंग आदि तथा इनमें से प्रत्येक के विभाग बनाने होते हैं। वह प्रत्येक विभाग के कार्यों को निर्धारित करता है तथा उनके बीच समन्वयन की क्रिया की रूपरेखा भी बनाता है।

9 **औपचारिकताओं को निभाना तथा उत्पादन कार्य प्रारंभ करना:** प्रत्येक प्रकार के नये व्यवसाय के प्रारंभ में कुछ औपचारिकताओं को पूरा करना होता है। विभिन्न प्रकार के

व्यावसायिक संगठनों के लिए ये औपचारिकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं जब तक ये औपचारिकताएँ पूरी नहीं की जाती उपक्रम का आरंभ नहीं किया जा सकता। इन कार्यविधि संबंधी औपचारिकताओं के विषय में आप इसी इकाई में आगे जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस तरह उद्यमी की भूमिका आरंभकर्ता तथा प्रवर्तक की होती है। कुछ अर्थों में उद्यमी की भूमिका एक विशिष्ट व्यक्ति की भी है जिसे उत्पाद, बाजार की स्थितियों तथा व्यवसाय को चलाने के व्यावहारिक पहलुओं का ज्ञान होता है। उसके लिए केवल कल्पना जगत में ही नहीं विचरना होता वरन् यह ही निश्चय लेना होता है कि किस प्रकार का व्यवसाय उसके लिए लाभप्रद होगा। अंतिम रूप में व्यवसाय को सफल बनाने के लिए उसकी निर्णायक भूमिका होती है। जब एक उद्यम प्रारंभ हो जाता है और वह लाभ देने लगता हे तो उद्यमी उससे अलग होने पर विचार कर सकता है, वह अपने स्वामित्व का अधिकार किसी अन्य को दे सकता है अथवा उस उद्यम को चलाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को सौंप सकता है। गत वर्षों में बहुत से उद्यमियों ने ऐसा किया है। नवीन अवसरों और व्यवसाय की अन्य लाभपूर्ण शाखाओं से वे आकर्षित हुए हैं। किंतु बहुत से उद्यमियों ने अपने द्वारा स्थापित उद्यमों को ही आगे बढ़ाया है। वे उससे अंत तक जुड़े हुए हैं और उसको विकसित करने के प्रत्येक अवसर का उपयोग किया है जैसे नये कार्यक्रमों को अपनाना, चालू कार्यक्रमों को अधिक कुशल बनाना और अपने प्रयासों की सफलता से संतोष का अनुभव करना।

परंतु आप इस बात से सहमत होंगे कि उपक्रम की सफलता के लिए प्रारंभिक कदम सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसी स्तर पर उपक्रम का भविष्य निर्धारित होता है। अवसर की पकड़, नवाचार, लाभपूर्ण व्यवसाय की संभावनाओं को खोजना, और तब कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए कदम उठाना, आवश्यक पूँजी जुटाना, व्यवसाय की जोखिम उठाने के लिए निजी गारंटी देना और अंतिम, व्यवसाय का प्रबंधन, उद्यमी के मूल उत्तरदायित्व हैं। व्यवसाय के प्रवर्तन में उसे बहुत सी रुकावटों का सामना करना पड़ सकता है, बहुत सी समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ आ सकती हैं जिनके दूरगामी प्रभाव होते हैं। एक उद्यमी को इस प्रकार बहुत सी बातों पर विचार करना होता है। परंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बातें दो हैं–1) नवप्रवर्तन और 2) जोखिम वहन करना। लाभपूर्ण शाखाओं से वे आकर्षित हुए हैं। किन्तु बहुत से उद्यमियों ने अपने द्वारा स्थापित उद्यमों को ही आगे बढ़ाया है। वे उससे अंत तक जुड़े रहे हैं और उसको विकसित करने के प्रत्येक अवसर का उन्होंने उपयोग किया है नये कार्यक्रमों को अपनाया है, चालू कार्यक्रमों को अधिक कुशल बनाया है और अपने प्रयासों की सफलता से संतोष का अनुभव किया है।

परंतु आप इस बात से सहमत होंगे कि उपक्रम की सफलता के लिए प्रारम्भिक कदम सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसी चरण में उपक्रम के भविष्य के बारे में निर्णय किया जाता है। अवसर की पकड़, नवाचार लाभपूर्ण व्यवसाय की संभावनाओं को खोजना, और तब कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए कदम उठाना, आवश्यक पूंजी जुटाना, व्यवसाय की जोखिम उठाने के लिए निजी गारंटी देना, और अन्तिम, व्यवसाय का प्रबंधन, उद्यमी के मूल उत्तरदायित्व हैं। उसे व्यवसाय के प्रवर्तन में बहुत सी रुकावटें पार करनी होती हैं, बहुत सी समस्याओं तथा कठिनाइयों का सामना करना होता है जिनके दूरगामी परिणाम होते हैं। उद्यमी को इस प्रकार बहुत सी बातों पर विचार करना होता हैं। परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बातें दो हैं– 1) नवाचार और 2) जोखिम वहन करना।

बोध प्रश्न-क

1 बताइए कि निम्नलिखित प्रत्येक कथन सही है अथवा गलत

i) उद्यमी कल्पनाशील विचारक तथा नवीन बातों का उदभावक होता है ....

ii) वह लाभपूर्ण उपक्रमों के अवसरों की खोज में लगा रहता है ....

iii) उद्यमी के पास निवेश करने के लिए निजी पूंजी का होना आवश्यक नहीं है, किन्तु वह जोखिम-वहन करने वाला होता है ....

iv) व्यवसाय में मिलने वाला लाभ उनके प्रयासों की सफलता तथा निष्पादन का माप माना जाता है ....

v) उद्यमी प्रारम्भिक पूँजी नहीं जुटाता और न ही वह वित्त प्रदान करने वालों को निजी जमानत देता है। ....

vi) व्यवसाय को प्रारम्भ करने के लिए उद्यमी को सब कुछ जुटाना पड़ता है ....

vii) व्यवसाय जगत में जैसा अन्य व्यक्ति करते हैं वे ही कार्य उसे भी करने होते हैं ....

viii) उद्यमी निराशावादी दृष्टिकोण रखते हैं............

2 निम्नलिखित कथनों को पढ़कर बताइए, कि कौन उद्यमी है और कौन नहीं

i) विद्यमान उत्पाद अथवा सेवा की गुणवत्ता व उपयोगिता में सुधार लाने वाला व्यक्ति....................

ii) श्री श्रीकान्त एक स्पिनिंग मिल चला रहे हैं। उन्होंने इसे हाल ही में 8 करोड़ रूपए में खरीदा है।..................

iii) श्री हरीश ने वित्त जुटाकर आम का रस कागज के कंटेनर में बंद करने का कारखाना खोला है।....................

iv) बाटा शू कम्पनी ने अपने उत्पाद का विक्रय करने के लिए अंडमान निकोबार द्वीप में एक शोरूम खोला है....................

v) अली ने उत्पादन के लिए वैकल्पिक कच्चा माल बनाने का निर्णय किया है......

4.3 प्रवर्तन (Promotion)

व्यावसायिक उपक्रम स्वतः ही उद्‌भाव नहीं हो जाता। यह उद्यमी के प्रयासों का परिणाम होता है जो व्यावसायिक अवसरों के अपने ज्ञान के आधार पर नवीन विचारों को जन्म देता है तथा व्यावसायिक उपक्रम को प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक कदम उठाता है। उसे प्रवर्तक के नाम से भी जाना जाता है। प्रवर्तक के रूप में वह आवश्यक वित्त तथा व्यक्तियों को जुटाता है तथा माता तथा दाई दोनों ही रूप में उपक्रम को पालता है। अस्तु, प्रवर्तक, व्यवसाय का नर-कावला (किंग-पिन) होता हैं क्योंकि वह व्यावसायिक प्रस्तावों की जोखिम का भार उठाकर उनको व्यावहारिक रूप देता है। नए व्यवसाय की स्थापना के लिए अथवा विद्यमान व्यवसाय के विस्तार के लिए अथवा दो अथवा दो से अधिक फर्मों का विलयन करने के लिए प्रवर्तन-कार्य किया जा सकता है।

4.3.1 उद्यमी तथा प्रवर्तक में अंतर

कभी-कभी 'उद्यमी' तथा 'प्रवर्तक' के बीच अंतर किया जाता है। वे व्यक्ति जो नवाचार करते हैं तथा जोखिम वहन करते हैं वे ही "उद्यमी" कहलाते हैं, जबकि वे व्यक्ति जो व्यवसाय की स्थापना करते हैं तथा उसको व्यवहारिक रूप देते हैं, "प्रवर्तक" कहलाते हैं किन्तु व्यवहार में, उस अन्तर पर ध्यान नहीं दिया जाता। उद्यम (उद्यमी के कार्य) में व्यावसायिक अवसरों को ढूंढने तथा कोई नवीन कार्य करने के लिए उद्यत रहना ही शामिल नहीं है। व्यवसाय की जोखिम को वहन करने भर से उसकी जोखिम समाप्ति नहीं हो जाती। व्यवसाय के लिए निवेश करना तथा उसको कार्यरूप देने के लिए आवश्यक कदम उठाना भी इसमें शामिल है। कार्यरूप में लाए जाने पर ही कोई व्यवसाय, व्यवसाय कहलायेगा। अस्तु, विस्तृत अर्थ में हम उद्यमी की भूमिका तथा प्रवर्तक की भूमिका में कोई अन्तर नहीं कर सकते।

4.3.2 प्रवर्तकों के प्रकार

प्रवर्तक कई प्रकार के होते हैं। पेशेवर, वित्तीय, जोखिम वहन करने वाले, सांस्थानिक तथा सरकारी इन कुछ वर्गों में प्रवर्तकों को वर्गीकृत किया जाता है।

1 **पेशेवर प्रवर्तक (Professional Promoters) :** ये प्रर्वतक नये उद्यम स्थापित करने में विशेष योग्यता रखते हैं। उद्यम का प्रवर्तन कर के उसका नियंत्रण तथा प्रबंध कम्पनी के शेयरधारियों को सौंप देते हैं।

2 **वित्तीय प्रवर्तक (Financial Promoters):** ये प्रवर्तक शेयर बाजार में अनुकूल परिस्थितियां होने पर नवीन उद्यम स्थापित करते हैं। ये वे व्यक्ति हैं जिनका वित्तीय स्थायित्व होता है तथा जो नवीन निवेश के अवसरों की तलाश में रहते हैं।

3 **उद्यमी प्रवर्तक (Entrepreneurial Promoters):** ये प्रवर्तक एक नवीन इकाई स्थापित करने के विचार को जन्म देते हैं, व्यवसाय स्थापित करने के संबंध में सभी आवश्यक

औपचारिकताओं को पूरा करते हैं तथा उस उद्यम का नियंत्रण तथा प्रबंध अपने हाथ में रखते हैं। भारतवर्ष में इस वर्ग के प्रवर्तक ही सबसे अधिक हैं।

4 **सांस्थानिक प्रवर्तक (Institutional Promoters)**: कुछ विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं, जैसे भारत का औद्योगिक विकास बैंक, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, आदि तकनीकी, नवीन उद्यमों के प्रवर्तन के लिए प्रबंधकीय तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं। ये संस्थाएं उद्यमों की स्थापना में अन्य उद्यमियों को सहयोग देती हैं।

5 **सरकार (Government)**: स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से भारत सरकार भी उद्यमों की स्थापना के लिए एक बड़ा प्रवर्तक बन गई है। उसने विभिन्न क्षेत्रों में जैसे युद्ध सामग्री के कारखाने, हैवी इलैक्ट्रिकल्स, जहाजरानी, लोहा व इस्पात, उर्वरक एवं कीटनाशक, तेल व प्राकृतिक गैस आदि के कई उद्यमों का प्रवर्तन किया है।

4.4 विभिन्न प्रकार के संगठनों का प्रवर्तन (Promotion of different Types of Organisations)

आपने व्यवसाय की स्थापना में प्रवर्तक की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। प्रवर्तक उत्पाद अथवा सेवा के बारे में निर्णय लेता जिसकी बाजार में मांग है तत्पश्चात् व्यावसायिक उपक्रम प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक कदम उठाता है। व्यावसायिक उपक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व प्रवर्तक व्यावसायिक संगठन के स्वामित्व के रूप के अन्तर्गत आयेगा अथवा यह साझेदारी संगठन होगा अथवा एक संयुक्त स्टाक कम्पनी? स्वाभाविक है कि उपक्रम स्थापित करने के लिए उसके द्वारा उठाए जाने वाले कदम संगठन के रूप पर निर्भर होंगे। ऐसा इसलिए होता है कि व्यावसायिक उपक्रम स्थापित करने की औपचारिकताएँ—विशेष रूप से विधिक औपचारिकताएँ—प्रत्येक देश में भिन्न होती हैं। पहले हम एकल स्वामित्व तथा साझेदारी के व्यावसायिक उपक्रमों के लिए निभाई जाने वाली औपचारिकताओं पर चर्चा करते हैं।

4.4.1 एकल स्वामित्व उपक्रम

एकल स्वामित्व व्यावसायिक उपक्रम की स्थापना के लिए वस्तुतः कोई विधिक औपचारिकता नहीं निभानी पड़ती। हां, कुछ विशेष प्रकार के व्यावसायिक कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने के लिए सरकार अथवा स्थानीय अधिकारियों से स्वीकृति लेनी पड़ती है। उदाहरण के लिए, एक रेस्तरां चलाने के लिए उपक्रम के स्वामी को नगर निगम के स्वास्थ्य अधिकारी से अनुमति लेनी पड़ती है। एक वर्कशाप अथवा कारखाना चलाने के लिए उपक्रम के स्वामी को जिला औद्योगिक केन्द्र के माध्यम से उद्योगों के निदेशक की अनुमति प्राप्त करनी होती है।

एक व्यावसायिक उपक्रम का स्वामित्व संयुक्त हिन्दू कुटुंब के हाथों में भी हो सकता है। ऐसी दशा में, परिवार का मुखिया, जिसे कर्ता कहते हैं, व्यवसाय की समस्त आय व व्यय पर पूरा नियंत्रण रखता है तथा एकल स्वामी की ही भांति व्यावसायिक कार्यवाही को नियंत्रित करता है। वास्तव में एक संयुक्त हिन्दू कुटुंब के व्यवसाय का अस्तित्व, परिवार के मुखिया की मृत्यु के पश्चात् ही होता है जबकि परिवार के अन्य सदस्य परिवार के वरिष्ठ सदस्य के माध्यम से उपक्रम को चालू रखना चाहते हैं। इस व्यावसायिक रूप को भी कोई विधिक औपचारिकता पूरी नहीं करनी होती।

4.4.2 साझेदारी फर्म

आप जानते हैं कि साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक संबंध है जो किसी कारोबार को लाभ के बाँटने के लिए उनके बीच स्थापित होता है। यह कारोबार उन सबके द्वारा अथवा उनमें से किसी एक के द्वारा सब की ओर से किया जाता है। सामूहिक रूप से ये सभी व्यक्ति फर्म और व्यक्तिगत रूप में साझेदार कहलाते हैं। साझेदारों के बीच होने वाला करार मौखिक अथवा लिखित हो सकता है। एक साझेदारी व्यवसाय का जन्म दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच होने वाले करार से होता है। अस्तु, साझेदारी फर्म का कानून की दृष्टि में कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता। इसका अपना कोई स्वतंत्र विधिक अस्तित्व नहीं है।

अस्तु, साझेदारी व्यवसाय की स्थापना तथा इसको चलाने के लिए कोई विधिक औपचारिकता नहीं निभानी पड़ती।

फिर भी, यदि साझेदार चाहे तो फर्म को पंजीकृत करा सकते हैं। इसके लिए उन्हें एक प्रार्थनापत्र भरना होता है तथा 3 रु. की फीस देनी होती है। विधिक रूप से फर्म का पंजीकरण अनिवार्य नहीं होता। परन्तु यह वांछनीय माना जाता है क्योंकि अपंजीकृत फर्म अपनी रकम वसूल करने के लिए किसी तीसरे पक्षकार के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा दायर नहीं कर सकती अथवा अन्य कोई वैधानिक कार्यवाही नहीं कर सकती। फिर, ऐसी फर्म का कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों के विरुद्ध अपने अधिकारों के लिए न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटा सकता जो करार के अंतर्गत उसे प्राप्त है जबकि तृतीय पक्षकार फर्म तथा साझेदार दोनों के विरुद्ध ही दावा दायर कर सकते हैं।

साझेदारी व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व साझेदार अपने आपसी अधिकारों व दायित्वों के लिए करार कर लेते हैं। यदि यह मौखिक करार होता है तो साझेदारों के बीच अपने अधिकारों तथा दायित्वों के संबंध में गलतफहमी होने अथवा विवाद उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है। भविष्य में इसको दूर करने के लिए लिखित करार करने के लिए सलाह दी जाती है। लिखित करार को भागीदारी विलेख कहा जाता है। यह स्टाम्पयुक्त कागज़ पर लिखा जाता है तथा सभी साझेदारों के इस पर हस्ताक्षर होते हैं। भागीदारी विलेख में, व्यवसाय की प्रकृति व स्थान, साझेदारी की अवधि, साझेदारों द्वारा लगाई जाने वाली पूँजी, प्रत्येक साझेदार का लाभ में भाग, उसके अधिकार, कर्त्तव्य व दायित्व, किसी साझेदार को दी जाने वाली वेतन की रकम, तथा अन्य सभी खंड जिन पर वे सहमत हो, शामिल किए जाते हैं।

बोध प्रश्न ख

बताइए क्या निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

i) व्यवसाय का प्रवर्तन विचार के जन्म लेने से आरम्भ होता है तथा व्यावसायिक इकाई की स्थापना हो जाने पर समाप्त होता है। ....
ii) रुग्ण इकाइयों को पुनः शुरू करना व्यावसायिक प्रवर्तन कहलाता है ....
iii) साझेदारी फर्म की तुलना में एकल स्वामित्व वाली फर्म में औपचारिकताएं कम होती हैं ....
iv) साझेदारी का पंजीकरण अनिवार्य होता है ....
v) फर्म के पंजीकृत न होने पर साझेदार अन्य साझेदारों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता ....
vi) संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय का प्रबंध करने वाला वरिष्ठ सदस्य "कर्ता" कहलाता है ....

4.4.3 संयुक्त पूँजी कम्पनी (Joint Stock Company)

आप पढ़ चुके हैं कि कम्पनी व्यक्तियों का संघ होती है। अतः कम्पनी चलाने के लिए एक से अधिक व्यक्ति होने चाहिए। साझेदारी फर्म में भी कारोबार करने के लिए एक से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है। परन्तु विधि की भाषा में साझेदारों से पृथक साझेदारी फर्म का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। दूसरी ओर, स्थापना के पश्चात् कम्पनी को अपना पृथक विधिक अस्तित्व प्राप्त हो जाता है। कानून उसे उसके सदस्यों से भिन्न पृथक अस्तित्व प्रदान करता है। इस विशेषता के कारण कम्पनी के प्रवर्तन में बहुत सी औपचारिकताओं को पूरा करना पड़ता है तब इसकी स्थापना हो पाती है। एक अथवा अधिक प्रवर्तक कम्पनी को स्थापित करने का दायित्व स्वीकार कर सकते हैं।

कम्पनी की स्थापना के लिए पूरी की जाने वाली विधिक औपचारिकताएँ कम्पनी अधिनियम 1956 में दी हुई हैं। आप जानते हैं कि स्वामित्व के आधार पर कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत मुख्यतः दो प्रकार की कम्पनियाँ स्थापित की जा सकती हैं–प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी तथा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी। प्रवर्तकों को यह निर्णय लेना होता है कि वे किस प्रकार की कम्पनी की स्थापना करना चाहेंगे। व्यवसाय चलाने के लिए, प्रवर्तक प्रायः यही चाहते हैं कि सदस्यों की देयता पूंजी में उनके द्वारा दिए जाने वाले अंशदान तक ही सीमित रहे। अतः स्थापित की जाने वाली कम्पनी, प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी अथवा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी ही होती है। चाहे वह प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी हो अथवा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी, यह आवश्यक है कि उसका पंजीकरण कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत हो जाए। पंजीकरण करने के लिए नियुक्त अधिकारी रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ कहलाता है। भारत में प्रत्येक राज्य अथवा राज्यों के

समूह के लिए एक रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज नियुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए दिल्ली संघ शासित क्षेत्र तथा हरियाणा राज्य के लिए एक रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ नियुक्त किया गया है। उसका कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। आइए देखें कम्पनी के पंजीकरण के लिए प्रवर्तकों को क्या करना होता है।

कम्पनी का पंजीकरण (Registration of a Company) : कम्पनी के पंजीकरण को निगमन कहा जाता है। रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ से निगमन का प्रमाणपत्र मिल जाने के उपरांत ही कम्पनी का निगमन हुआ माना जाता है। निगमन-प्रमाणपत्र ही इस बात का निर्णायक प्रमाण होता है कि कम्पनी विशिष्ट नाम से विधिक रूप में स्थापित हो गई है। निगमन का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए प्रवर्तक को निम्नलिखित कदम उठाने पड़ते हैं:

1 कम्पनी के लिए नाम का चयन
2 पंजीकरण के समय फाइल करने के लिए आवश्यक प्रलेखों की तैयारी व उनका मुद्रण
3 प्रलेखों को रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ के पास फाइल कराना।

अब हमको एक-एक करके इन कदमों पर विचार करना चाहिए।

1 **नाम का चयन** : पंजीकरण के लिए प्रत्येक कम्पनी का अपना नाम होना चाहिए जिसके द्वारा वह विधिक तथा व्यावसायिक कार्यों के लिए जानी जाएगी। प्राय: प्रवर्तक कुछ नामों का चयन करते हैं और रजिस्ट्रार के कार्यालय से पता करते हैं कि क्या उन्हें उनमें से कोई नाम मिल सकता है। इसके लिए उन्हें निर्धारित प्रपत्र भरकर एक आवेदनपत्र रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ के माध्यम से भारत सरकार के कम्पनी विधि प्रशासन को देना होता है। प्रवर्तक तब स्वीकृत नामों में से कोई भी नाम चुन सकता है। पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की स्थिति में नाम के साथ 'लिमिटेड' शब्द तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी की स्थिति में "प्राइवेट लिमिटेड" शब्द लगाना जरूरी होता है।

2 **प्रलेखों की तैयारी व मुद्रण** : कम्पनी का नाम स्वीकृत तथा मान्य हो जाने पर प्रवर्तकों को निम्नलिखित प्रलेख तैयार करने व छपवाने पड़ते हैं:
(क) संगम-ज्ञापन (मेमोरेंडम आफ ऐसोसिएशन)
(ख) संगम-अनुच्छेद (आर्टीकल्स आफ एसोसिएशन)

संगम ज्ञापन (Memorandum of Association): यह कम्पनी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रलेख है क्योंकि यही प्रलेख कम्पनी का संविधान निर्धारित करता है तथा कम्पनी का बाहरी दुनिया से संबंध स्थापित करता है। यह एक सार्वजनिक प्रलेख है तथा ज्ञापन में उल्लेखित सभी प्रावधानों के बारे में प्रत्येक व्यक्ति जो कम्पनी से व्यवहार करता है जानकारी रखनी चाहिए, ऐसी मान्यता है। संगम-ज्ञापन का उद्देश्य शेयरधारी, ऋणदाता को तथा जो भी व्यक्ति कम्पनी के सम्पर्क में आ रहे हों, यह जानकारी देना होता है कि कम्पनी का अनुमति कार्य क्षेत्र कितना है। यद्यपि कम्पनी विधिक "व्यक्ति" होती है तथापि उसकी व्यवसाय-क्षमता वास्तविक व्यक्ति के विपरीत सीमित होती है। यदि कोई कम्पनी अपने संगम-ज्ञापन में दिए प्रावधानों के बाहर कोई व्यापार्र अथवा व्यवसाय करती है तो ऐसे कार्य कम्पनी के अधिकारातीत माने जाते हैं तथा शून्य अंश अप्रवर्तनीय होते हैं।

संगम-ज्ञापन के विभिन्न खंडों में निम्नलिखित विवरण दिए होते हैं:
i) कम्पनी का नाम
ii) उस राज्य का नाम जहाँ पंजीकृत कार्यालय स्थित है।
iii) उद्देश्य खंड कम्पनी जिस प्रकार का कारोबार करना चाहती है उसका उल्लेख इस खंड में किया जाता है।
iv) यह घोषणा, कि सदस्यों की देयता उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य के बराबर ही होगी।
v) पूँजीखंड—इस खंड में पूँजी की कुल राशि जिससे कम्पनी पंजीकृत कराने के लिए प्रस्तावित कर रही हो तथा निश्चित अंकित मूल्य वाले विभिन्न प्रकार के शेयरों की संख्या जिनमें यह पूँजी बाँटी गई हो, इस खंड में लिखी जाती है।
vi) संगम-ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों द्वारा की गई घोषणा कि वे कम्पनी की स्थापना करने के इच्छुक हैं तथा वे कम्पनी के उतने शेयर लेने के लिए सहमत हैं जो उनके नाम के आगे लिखे हुए हैं।

संगम अनुच्छेद (Articles of Association): इस प्रलेख में कम्पनी के आंतरिक नियंत्रण के लिए बनाए गए नियम तथा विनियम लिखे होते हैं। इसमें प्रबंधकर्ताओं के अधिकार, कर्त्तव्य तथा शक्तियाँ दी गई हैं तथा कम्पनी का व्यवसाय किस प्रकार किया जाना है तथा

वह विधि भी जिसके अनुसार इन आंतरिक विनियमों में परिवर्तन किया जा सकता है इस प्रलेख में लिखी होती है। अनुच्छेद कम्पनी तथा उसके सदस्यों के बीच तथा सदस्यों के आपसी संबंधी भी निर्धारित करते हैं। शेयरों द्वारा सीमित पब्लिक कम्पनी अपने पृथक अनुच्छेदों का पंजीकरण करा सकती है अथवा वह तालिका "क" (Table A) को अपना सकती है। तालिका "क" 99 खंडों का एक आदर्श सैट है जो कम्पनी अधिनियम की अनुसूची में दी हुई है। अन्य प्रकार की कम्पनियों को अपने अंतर्नियम सीमा पार्षद नियम सहित कम्पनी के संस्थापन के समय ही बना लेने चाहिए। अंतर्नियमों में कम्पनी अधिनियम तथा देश के सामान्य प्रधिनियमों के विरोधक कोई बात नहीं शामिल की जानी चाहिए।

3 **पंजीकरण के लिए प्रलेख फाइल करना:** संगम-ज्ञापन तथा संगम अनुच्छेद को तैयार करने तथा मुद्रण कराने के पश्चात् कम्पनी के प्रवर्तक रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ को एक आवेदन पत्र भेजते हैं और साथ में निम्नलिखित प्रलेख भी दाखिल करते हैं:–

i) संगम ज्ञापन की एक प्रतिलिपि
ii) संगम अनुच्छेद की एक प्रतिलिपि
iii) ऐसे व्यक्तियों की सूची जिन्होंने कम्पनी के निदेशक बनना स्वीकार किया है। उन व्यक्तियों के नाम, पते, आयु तथा पेशा भी इस सूची में लिखना होता है। यदि निदेशकों की कोई पृथक सूची दाखिल नहीं की जाती तो संगम-ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति निदेशक मान लिए जायेंगे।
iv) निदेशकों की लिखित स्वीकृति कि वे इस रूप में कम्पनी में कार्य करेंगे, साथ ही इन व्यक्तियों से लिखित रूप में वचन भी लिया जाता है कि वे निर्धारित अर्हता शेयर भी लेंगे। बिना शेयर पूंजीवाली कम्पनी तथा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी को यह प्रलेख दाखिल नहीं करना होता।
v) एक संविधिक घोषणा कि निगमन से संबंधित सभी विधिक औपचारिकताएँ पूरी कर ली गई है। इस घोषणा पत्र पर उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय के किसी एडवोकेट या चार्टर्ड एकाउंटेंट या उस व्यक्ति के जिसे निदेशक, प्रबंधक या कम्पनी के सचिव के हस्ताक्षर होने जरूरी हैं।
vi) कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय की सूचना। यह सूचना कम्पनी के निगमित हो जाने के पश्चात् 30 दिन के भीतर भी दाखिल की जा सकती है।

उपर्युक्त प्रलेखों के साथ-साथ, दाखिल किए जा रहे संगम-ज्ञापन तथा संगम-अनुच्छेद की प्रतिलिपि पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार यथामूल्य स्टांप शुल्क भी लगाना होता है। प्रवर्तकों को प्रलेख दाखिल करते समय पंजीकरण शुल्क तथा दाखिला फीस का भी प्रबंध करना होता है। यदि समीक्षा करने के पश्चात् रजिस्ट्रार सभी प्रलेखों को संगत पाता है तो वह कम्पनी के नाम में निगमन का प्रमाण-पत्र जारी कर देता है। इस प्रमाणपत्र को पाते ही कम्पनी कानून की दृष्टि में एक पृथक अस्तित्व प्राप्त कर लेती है।

4 व्यवसाय आरम्भ करना

एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी पंजीकरण के तुरंत पश्चात् अपना व्यवसाय शुरू कर सकती है। ऐसी कम्पनी के प्रवर्तक कम्पनी के लिए आवश्यक पूँजी अपने मित्रों तथा संबंधियों से उनके नाम में शेयर जारी करके अथवा उनसे ऋण रूप में प्राप्त करते हैं। इन कम्पनियों की पूंजी में अंशदान करने के लिए सामान्य जनता को निमंत्रित नहीं किया जाता।

एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी अपने पंजीकरण के तुरंत पश्चात् व्यवसाय शुरू नहीं कर पाती। उसे रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ के यहाँ से व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र भी प्राप्त करना होता है जिसके लिए प्रवर्तकों को कुछ और अतिरिक्त कदम उठाने पड़ते हैं। ये कदम निम्नलिखित हैं :–

विवरण पत्रिका (Prospectus) अथवा स्थानापन्न विवरण पत्र की तैयारी व पंजीकरण: कम्पनी के निगमित हो जाने के पश्चात् कम्पनी के निदेशकों को कम्पनी के लिए आवश्यक पूँजी जुटानी जरूरी हो जाती है। इस आवश्यक पूंजी को प्राप्त करने के लिए सामान्यत: निश्चित मूल्य के शेयर जारी करने का निर्णय लिया जाता है। कम्पनी के इन शेयरों को लेने के लिए आम जनता को निमंत्रित करने के लिए जो प्रलेख तैयार किया जाता है उसे **विवरण पत्रिका** कहते हैं। वास्तव में विवरण पत्रिका में वे समस्त बातें शामिल की जाती हैं जो कम्पनी की पूंजी में अंशदान करने वाले व्यक्तियों के लिए जान लेना जरूरी है। **विवरण पत्रिका की विषय वस्तु कम्पनी अधिनियम में दी हुई है जिससे प्रवर्तक कोई बात छिपा न सकें। और न ही जनता को गुमराह कर पाएँ।** विवरण पत्रिका को जनता को जारी

करने से पूर्व उसकी एक प्रति पंजीकृत कराने के लिए रजिस्ट्रार को प्रस्तुत की जाती है।

एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी को पूंजी जुटाने के लिए जनता के सामने विवरण पत्रिका जारी नहीं करनी पड़ती, क्योंकि कानून कम्पनी को पूँजी में अंशदान करने के लिए जनता को नियंत्रित करने की अनुमति प्रदान नहीं करता है। पब्लिक लिमिटेड कम्पनी को भी जनता के सामने विवरण पत्रिका लाना जरूरी नहीं होता जब तक कि वह पूँजी जुटाने के लिए जनता को निमंत्रित करने का निर्णय नहीं करती। यदि प्रवर्तक जनता को निमंत्रित न करने का निर्णय करते हैं तथा आवश्यक पूँजी को अपने मित्रों, संबंधियों अथवा नामांककों के माध्यम से जुटाने का प्रबंध कर लेते हैं तो उन्हें विवरण पत्रिका जारी करने की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी स्थिति में उन्हें एक **स्थानापन्न विवरण पत्रिका (Statement in lieu of Prospectus)** रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना होता है। इस स्थानापन्न विवरण की विषय-सूची भी विवरण पत्रिका की विषय सूची के समान ही होती है। यह स्थानापन्न विवरण भी सभी निदेशकों द्वारा हस्ताक्षर कराकर रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया जाना चाहिए।

2 **शेयरों का अंशदान व आबंटन:** यदि कम्पनी के शेयरों का निर्गम जनता के लिए एक करोड़ रुपए से अधिक का किया जाता है तो कम्पनी को शेयरों का निर्गम करने से पूर्व नई दिल्ली स्थित पूँजी निर्गम के नियंत्रक (Controller of Capital Issues) की अनुमति लेना आवश्यक हो जाता है। इस अनुमति को प्राप्त कर लेने तथा रजिस्ट्रार के यहाँ से विवरण पत्रिका का पंजीकरण करा लेने के पश्चात् कम्पनी जनता को अंशदान के लिए निमंत्रित कर सकती है। संभाव्य निवेशकों को दलाल विवरण पत्रिका तथा आवेदनपत्र भेजते हैं। कम्पनी कुछ बैंकों को भी नियुक्त कर सकती है जो जनता से आवेदन पत्रों सहित आवेदन राशि वसूल कर, राशि को कम्पनी के खाते में जमा कर देते है। यह खाता विशेष रूप से इसी कार्य के लिए खोला जाता है। निर्गमन के बंद हो जाने पर, निदेशक मण्डल, स्टाक एक्सचेंज के अधिकारियों से परामर्श करके शेयरों के आबंटन का आधार निर्धारित करते हैं तथा आवंटन के लिए एक औपचारिक प्रस्ताव पास करते हैं। इस प्रस्ताव के आधार पर कम्पनी का सचिव प्रार्थियों को आबंटन पत्र भेजता है। यदि जुटाई जाने वाली पूँजी से अधिक अंशदान प्राप्त हो जाता है तो संबंधित प्रार्थियों को यह अधिक रकम लौटा दी जाती है। आवंटन की समाप्ति पर, रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ के पास सचिव आबंटन विवरणी (Return of Allotment) भेजता है।

व्यवसाय आरम्भ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन-पत्र भेजने से पूर्व पब्लिक लिमिटेड कंपनी को यह देख लेना चाहिए कि उसने विवरण पत्रिका में उल्लखित न्यूनतम **आवेदित राशि (Minimum Subscription)** की सीमा पार कर ली है। न्यूनतम आवेदित राशि वह राशि है जो निदेशकों (अथवा संगम-ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों) की राय में निम्नलिखित व्यय को पूरा करने के लिए शेयरों का निर्गम करके अवश्य ही जुटाई जानी चाहिए।

i) शेयरों के निर्गम से प्राप्त राशि से क्रय की हुई अथवा क्रय की जाने वाली किसी सम्पत्ति का क्रय-मूल्य चुकाना है।
ii) प्रारंभिक व्यय पूरा करना है।
iii) उपर्युक्त कार्यों के लिए ली गई ऋण की रकम को वापस करना है।
iv) चलती पूँजी की आवश्यकता को पूरा करना है तथा
v) अन्य कोई विशिष्ट भुगतान करने के लिए।

यदि जनता द्वारा पूँजी में किया गया अंशदान न्यूनतम राशि से कम रह जाता है अथवा कम्पनी न्यूनतम राशि विवरण-पत्र पत्रिका निर्गम के 120 दिन के भीतर नहीं प्राप्त कर पाती है तो प्रार्थियों से प्राप्त राशि उनको वापस करनी होगी और कोई आबंटन नहीं किया जायेगा।

3 **अनुपालन की घोषणा (Declaration of Compliance):** जनता के बीच शेयर निर्गम की सभी औपचारिकताओं को पूरा कर लेने के पश्चात् कम्पनी को रजिस्ट्रार के पास निम्नलिखित घोषणाएँ करनी होती हैं:–

i) विवरण-पत्रिका के अनुसार न्यूनतम राशि के बराबर नकदी-शेयरों का आबंटन कर दिया गया है।

ii) प्रत्येक निदेशक ने अपने शेयरों पर अन्य व्यक्तियों के अनुपात में आवेदन-राशि तथा आबंटन-राशि का नकद भुगतान कर दिया है।

iii) मान्य स्टाक एक्सचेंज पर शेयरों तथा ऋणपत्रों के क्रय-विक्रय के लिए अनुमति प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र न भेजने के कारण लौटाई जाने वाली कोई राशि बाकी नहीं है।

iv) कम्पनी के सचिव द्वारा अथवा किसी एक निदेशक द्वारा इस बात की सांविधिक घोषणा कि उपर्युक्त अपेक्षाओं का अनुपालन कर लिया गया है।

जिस कम्पनी ने विवरण-पत्रिका जारी नहीं की है वह स्थानापन्न विवरण दाखिल करने तथा अन्य शर्तें पूरी हो जाने के तुरंत बाद सांविधिक घोषणा दाखिल कर सकती है। प्राइवेट लिमिटेड कंपनी को किसी प्रकार की घोषणा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह निगमन का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेने के तुरंत बाद ही अपना व्यवसाय आरम्भ कर सकती है। रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनीज़ इन सभी प्रलेखों की छानबीन करने के उपरान्त, अपनी संतुष्टि कर लेने पर **'व्यवसाय आरम्भ करने का प्रमाण-पत्र' (Certificate of Commencement of Business)** जारी करता है। इसके पश्चात् कम्पनी व्यवसाय आरम्भ करने की अधिकारिणी बन जाती है तथा उस प्रमाण पत्र के जारी होने की तारीख से ऋण ले सकती है।

आकृति 4.1 देखिए। इससे आपको प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी तथा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के प्रवर्तन के लिए अपनाई जाने वाली कार्यविधि की सामान्य जानकारी हो जायेगी।

चित्र 4.1 कम्पनी-प्रवर्तन के चरण

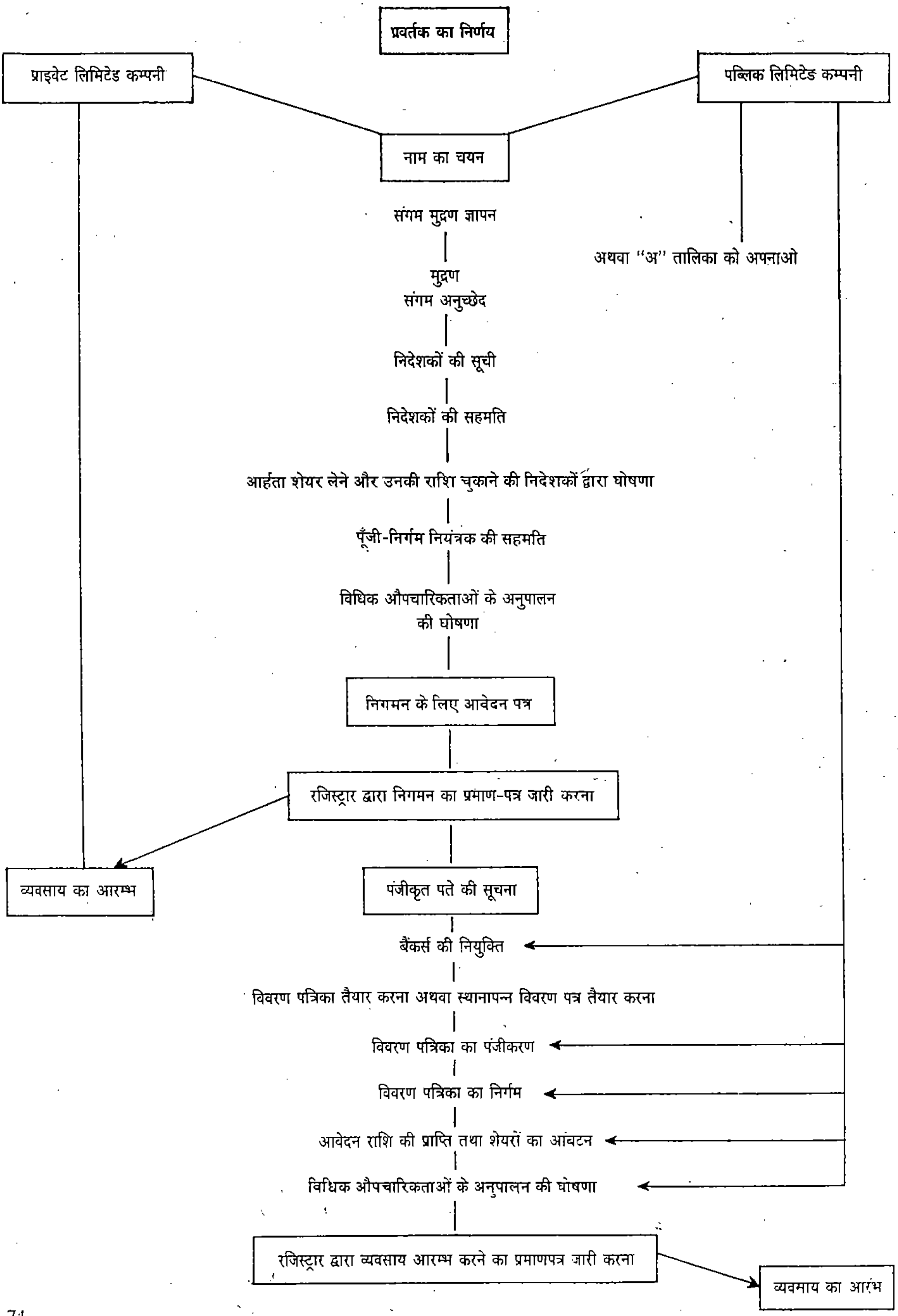

बोध प्रश्न– ग

1 प्रत्येक प्रश्न के सामने हाँ नहीं लिखकर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए।
   i) साझेदारों से पृथक क्या साझेदारी फर्म का विधिक अस्तित्व होता है? ....
   ii) क्या फर्म का पंजीकरण अनिवार्य है? ....
   iii) क्या एकल स्वामित्व व्यवसाय को प्रारम्भ करने के लिए कोई विधिक औपचारिकता की आवश्यकता होती है? ....
   iv) क्या प्रत्येक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के लिए अपने संगम अनुच्छेद बनाना आवश्यक है? ....
   v) क्या प्राइवेट लिमिटेड निगमन का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के उपरान्त व्यवसाय शुरू कर सकती है? ....
   vi) क्या प्रत्येक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के लिए विवरण पत्रिका जारी करना आवश्यक है? ....

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i) एक अथवा अधिक व्यक्ति जो कम्पनी को स्थापित करना चाहते हैं .... कहलाते हैं।
   ii) कम्पनियों का पंजीकरण करने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी .... कहलाता है।
   iii) कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय कहाँ स्थित होगा इसके .... का नाम संगम-ज्ञापन में स्पष्ट किया जाना चाहिए।
   iv) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के संगम ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले कम से कम .... व्यक्ति होने चाहिए।
   v) संगम-अनुच्छेद कम्पनी के .... के लिए नियम तथा निनयम होते हैं।
   vi) पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के नाम के साथ .... शब्द जोड़ा जाना चाहिए।

3 कम्पनी के पंजीकरण के लिए दाखिल किए जाने वाले प्रलेखों की सूची बनाइए।

....
....
....
....

4 बताइए निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत।
   i) विवरण-पत्रिका एक प्रलेख है जो कम्पनी के शेयरों अथवा ऋणपत्रों में निवेश करने के लिए जनता को आमंत्रित करता है।
   ii) प्रत्येक पब्लिक लिमिटेड कंपनी के लिए विवरण पत्रिका जारी करना अनिवार्य होता है।
   iii) जनता को विवरण-पत्रिका उसके पंजीकृत कराने के पश्चात् ही जारी किया जा सकता है।
   iv) स्थानापन्न विवरण-पत्र की विषय वस्तु विवरण पत्रिका की विषयवस्तु के ही समान होती है।
   v) न्यूनतम अंशदान की प्राप्ति न होने पर संपूर्ण आवेदन राशि लौटाना आवश्यक हो जाता है।

4.4.4 सहकारी समिति (Cooperative Society)

अभी तक हमने व्यावसायिक संगठन के तीन रूपों की चर्चा की है—एकल स्वामित्व उपक्रम, साझेदारी फर्म तथा कम्पनियां। एक और भी व्यावसायिक संगठन का रूप है जो इन दिनों बहुत ही प्रचलित है और वह है सहकारी समिति। सहकारी समिति व्यावसायिक संगठन का ऐसा रूप है जिसमें व्यक्ति समानता के आधार पर ऐच्छिक रूप से शामिल होते हैं। वे अपने साधनों को एक जगह एकत्रित कर मिल-जुलकर कार्य करते हैं। वे माल का उत्पादन अथवा सेवाओं का वितरण लाभ कमाने की अपेक्षा आपसी सहायता के लिए करते हैं।

आप जानते हैं कि सहकारी समिति की स्थापना के लिए कम से कम 10 व्यक्तियों का होना जरूरी है। प्रत्येक सहकारी समिति को रजिस्ट्रार आफ कोपरेटिव सोसाइटीज़ के यहां पंजीकृत

कराना होता है। सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा रजिस्ट्रार की नियुक्ति की जाती है। सहकारी समिति के प्रवर्तकों को समिति का पंजीकरण कराने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पड़ते हैं:

1 रजिस्ट्रार आफ कॉपरेटिव सोसाइटीज़ को एक आवेदन पत्र प्रस्तुत करना जिसमें प्रस्तावित समिति का नाम, उद्देश्य तथा शेयर पूँजी का विवरण लिखा जाता है।

2 समिति की उप-विधि (नियम तथा विनियम) तैयार करना है (जो कम्पनी के संगम-अनुच्छेदों के ही समान होते हैं) जो समिति के पंजीकरण के लिए आवेदनपत्र के साथ ही भेजी जाती है।

3 आवेदन पत्र तथा नियमावली पर प्रवर्तकों के हस्ताक्षर होते हैं।

रजिस्ट्रार इन उद्देश्यों तथा उप-विधियों की जांच करता है तथा अपनी संतुष्टि कर लेने के पश्चात् ''पंजीकरण का प्रमाण-पत्र'' (Certificate of Registration) जारी करता है। समिति का नाम सहकारी समितियों के रजिस्टर में लिख दिया जाता है। तत्पश्चात् कम्पनी की ही भाँति समिति भी पृथक विधिक अस्तित्व प्राप्त कर लेती है। तब यह अपने नाम में सम्पत्ति खरीद सकती है, नये सदस्य बना सकती है तथा कारोबार कर सकती है।

अस्तु, सहकारी समिति के प्रवर्तन में बहुत सी विधिक औपचारिकताएँ नहीं होतीं। प्रवर्तक सदस्यों की 'सीमित' देयता वाली समिति की स्थापना भी कर सकते हैं। किन्तु ऐसी समिति का पंजीकरण तभी हो सकता है जबकि इसका उद्देश्य आपसी सहायता द्वारा सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करना हो। सहकारी समितियों में सदस्यों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं रखी गई है। इसके शेयर अहस्तांतरणीय होते हैं। सरकार की नीति सहकारी संगठनों को बढ़ावा देना है अतः सहकारी समितियों को कुछ छूट मिली हुई है। उदाहरण के लिए पंजीकरण की फीस व स्टाम्प शुल्क, आयकर आदि।

4.5 सारांश

उद्यमी एक ऐसा व्यक्ति है जो आवश्यक साधन एकत्रित करके किसी व्यवसाय को आरम्भ करने तथा उसके प्रबंधन की जोखिम उठाता है। वह उपक्रम को शुरू करने की कल्पना करता है तथा एक नवीन उद्यम आरम्भ करने की संभावनाओं पर विचार करता है। वह व्यावसायिक इकाई को शुरू करने के लिए सभी आवश्यक शर्तें पूरी करता है अर्थात् पूँजी, भूमि, श्रम, मशीनरी जुटाता है। उद्यमी स्वतंत्र रहने का आदी है और बहुत से व्यक्तियों से कहीं अधिक कठोर परिश्रम करने के लिए तत्पर रहता है। उसे भविष्य की अनिश्चितताओं से भय नहीं होता। वह सदैव आशावादी दृष्टिकोण रखता है और निर्णय करने में गतिशील रहता है। वह अपने उपक्रम में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सदैव कुछ भिन्नता लाने का प्रयास करता है। नवाचार और जोखिम वहन करना उद्यमत के दो मूल तत्व हैं।

उद्यमी प्रवर्तक का वर्गीकरण--पेशेवर प्रवर्तक, वित्तीय प्रवर्तक, साहसी प्रवर्तक, सांस्थानिक प्रवर्तक तथा सरकार में किया जा सकता है। उद्यमी व्यावसायिक संगठन के स्वामित्व के रूप का निर्णय करते हैं और तब उपक्रम की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाते हैं।

भिन्न-भिन्न संगठनों रूपों में उपक्रम की स्थापना के लिए पूरी की जाने वाली औपचारिकताएँ भिन्न होती हैं। एकल स्वामित्व उपक्रम की स्थापना में कोई विधिक औपचारिकता नहीं पूरी की जाती। यही बात साझेदारी फर्म की स्थापना के बारे में भी लागू होती है। साझेदारी फर्म का पंजीकरण कराना अनिवार्य नहीं है, किन्तु यह वांछनीय माना जाता है क्योंकि अपंजीकृत फर्म में कुछ आवश्यकताएँ आ जाती है।

संयुक्त स्टाक कम्पनी की स्थापना के लिए बहुत सी विधिक औपचारिकताएँ पूरी करनी होती हैं। इसको रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ से पंजीकृत कराना अनिवार्य होता है। प्रस्तावित कम्पनी का नाम चुनकर तथा सरकार से उसे स्वीकृत कराने के बाद प्रवर्तक को कम्पनी के संगम ज्ञापन तथा संगम अनुच्छेद बनाकर उनका मुद्रण कराना पड़ता है। तब वह आवेदन-पत्र भेजता है। इन दोनों प्रलेखों की प्रतिलिपि, निदेशकों की एक सूची तथा उनकी स्वीकृति और एक घोषणा कि सभी औपचारिकताएं पूरी कर दी गई हैं इस आवेदन पत्र के

साथ भेजी जाती हैं। इसे पंजीकरण का शुल्क भी देना होता है। इन सब बातों के ठीक होने पर रजिस्ट्रार निगमन का प्रमाणपत्र जारी करता है। एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी निगमन का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के तुरंत बाद ही व्यापार आरम्भ कर सकती है। परन्तु पब्लिक लिमिटेड कम्पनी को बहुत सी औपचारिकताएँ निभानी पड़ती हैं जिसमें विवरण पत्रिका का निर्गम, पूँजी का जुटाना, आबंटन की सूची तथा यह घोषणा भी शामिल है कि सभी शर्तें पूरी कर दी गई हैं।

एक सहकारी समिति भी एक निर्गमित संस्था है तथा पंजीकरण से पूर्व कुछ विधिक औपचारिकताओं को पूरा कराती हैं। इसका पंजीकरण सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा किया जाता है। किन्तु पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की तुलना में इसके पंजीकरण की क्रियाविधि बहुत सरल है।

4.6 शब्दावली

संगम अनुच्छेद (Articles of Association): कम्पनी के आन्तरिक प्रबंध के लिए बनाए गए नियमों तथा विनियमों की सूची।

निगमन का प्रमाणपत्र (Certificate of Incorporation): रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ के द्वारा जारी प्रमाण पत्र जो यह बतलाता है कि अब कम्पनी का विधिवत् पंजीकरण हो गया है। इस प्रमाणपत्र में उल्लिखित तारीख कम्पनी के जन्म की तारीख मानी जाती है।

उद्यमी (Entrepreneur): वह व्यक्ति जो व्यवसाय शुरू करने तथा उसके प्रबंधन की जोखिम उठाता है।

उद्यम (Entrepreneurship): एक नए व्यवसाय को जन्म देने की प्रक्रिया।

नवाचार (Innovation): व्यवसाय में अन्य व्यक्तियों से कुछ भिन्न करना अथवा कुछ नवीनता लाना।

प्रवर्तक (Promoter): वह व्यक्ति जो किसी परियोजना को सफलीभूत करने के लिए एक कम्पनी की स्थापना करने का प्रयास करता है तथा उसको चलाने के लिए आवश्यक कदम उठाता है।

प्रवर्तन (Promotion): व्यावसायिक अवसरों की खोज तथा तत्पश्चात् व्यावसायिक उपक्रम की स्थापना के लिए आवश्यक पूँजी, सम्पत्ति तथा प्रबंधकीय योग्यता एकत्रित करना जिससे उससे मुनाफा कमाया जा सके।

संगम ज्ञापन (Memorandum of Association): कम्पनी के संविधान तथा उद्देश्यों को परिभाषित करने वाला प्रलेख इसके द्वारा मूलभूत शर्तें निर्धारित की जाती हैं जिनके अधीन कम्पनी की स्थापना की जाती है।

विवरण पत्रिका (Prospectus): यह एक प्रलेख हैं जो कम्पनी के बारे में जनता को पूरी जानकारी देता है तथा उसे कम्पनी द्वारा जारी किए गए शेयरों में अंशदान करने के लिए निमंत्रित करता है।

स्थानापन्न विवरण-पत्र (Statement in lieu of Prospectus) यह एक प्रलेख है जो विवरण पत्रिका के स्थान पर उस समय तैयार किया जाता है जब कम्पनी पूंजी जुटाने के लिए जनता को निमंत्रित न करने का निर्णय करती है।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ. पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1 खण्ड 2

बी. पी. सिंह एवं टी. एन. छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 7 खण्ड 2

जी. एल. जोशी, जी. एल. शर्मा एवं एल. एस. मी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 5

राम नारायण, गोयल : **आधुनिक व्यवसाय-संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1 खण्ड तीन

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 i) सही ii) सही iii) सही iv) सही v) गलत vi) सही vii) गलत viii) गलत
2 i) उद्यमी है ii) उद्यमी नहीं है iii) उद्यमी है iv) उद्यमी है vii) उद्यमी है।

ख i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही vi) सही

ग 1 i) नहीं ii) नहीं iii) नहीं iv) नहीं v) हां vi) नहीं
2 i) प्रवर्तक ii) रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज़ (पंजीयक) iii) राज्य का नाम iv) सात v) आंतरिक प्रबंध vi) लिमिटेड
4 i) सही ii) गलत iii) सही iv) सही v) सही

4.9 स्वपरख प्रश्न

1 "उद्यमी" शब्द का क्या अर्थ है? एक उद्यमी की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2 "नव परिवर्तन" तथा "जोखिम उठाना" शब्दों में से प्रत्येक की 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए।
3 व्यावसायिक इकाई के प्रवर्तन में उद्यमी की भूमिका का संक्षेप में वर्णन कीजिए। "उद्यमी" किस प्रकार 'प्रवर्तक' से भिन्न है?
4 क) एकल स्वामित्व वाली इकाई की स्थापना के लिए कोई विधिक औपचारिकता नहीं निभानी पड़ती। क्या इसका अर्थ यह है कि एकल व्यवसाय के स्वामी को व्यवसाय की देयताएँ चुकाने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता?
ख) फर्म का पंजीकरण अनिवार्य नहीं है, किन्तु यह वांछनीय माना जाता है ऐसा क्यों?
5 कम्पनी के पंजीकरण के लिए दाखिल किए जाने वाले प्रलेखों की सूची बनाइए। संगम-ज्ञापन तथा संगम अनुच्छेद के महत्व को संक्षेप में बताइए।
6 क्या एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी निगमन का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात् ही अपना व्यवसाय शुरू कर देती है? यदि नहीं, तो व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व उसे क्या और करना पड़ता है।
7 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:
क) विवरण पत्रिका
ख) स्थानापन्न विवरण पत्र
ग) न्यूनतम अंशदान
घ) सहकारी समिति का पंजीकरण।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिये, किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01

व्यावसायिक संगठन

खंड

2

व्यवसाय की वित्त व्यवस्था

इकाई 5

वित्त जुटाने के साधन 5

इकाई 6

दीर्घकालीन वित्त के स्रोत एवं अभिगोपन 25

इकाई 7

स्टॉक एक्सचेंज 46

खंड 2 व्यवसाय की वित्त व्यवस्था

आप जानते हैं कि व्यवसाय के विभिन्न कार्यकलापों के संचालन के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है और इसीलिए किसी भी व्यावसायिक इकाई की स्थापना करने के लिए पूंजी जुटाना सबसे पहली आवश्यकता है। इस खंड में 3 इकाइयाँ (इकाई 5 से 7 तक) हैं। इनमें पूंजी जुटाने की विधियों एवं स्रोतों का वर्णन किया गया है तथा इस संदर्भ में शेयर बाजार की भूमिका के बारे में भी जानकारी दी गई है।

इकाई 5 में वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार तथा वित्त प्राप्त करने की विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है।

इकाई 6 में दीर्घकालीन वित्त के महत्त्व तथा उन स्रोतों का वर्णन किया गया है जिनके द्वारा दीर्घकालीन वित्त प्राप्त किया जा सकता है। इस इकाई में शेयरों और ऋणपत्रों के जारी करने में अभिगोपन की भूमिका का भी वर्णन किया गया है।

इकाई 7 में शेयर बाजार की कार्यविधि का वर्णन किया गया है। शेयर बाजार में होने वाले सौदों, शेयरों के मूल्यों को प्रभावित करने वाले कारणों तथा भारत में शेयर बाजारों के नियमन के संबंध में भी विस्तृत जानकारी दी गई है।

इकाई 5 वित्त जुटाने के साधन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 वित्त की आवश्यकता तथा महत्त्व
5.3 वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार
    5.3.1 स्थायी पूंजी तथा कार्यशील पूंजी
    5.3.2. दीर्घकालीन पूंजी तथा अल्पकालीन पूंजी
5.4 पूंजी संरचना
    5.4.1 स्वामित्व पूंजी
    5.4.2 ऋण पूंजी
    5.4.3 पूंजी संरचना किसे कहते हैं?
    5.4.4 पूंजी संरचना के निर्धारक तत्त्व
5.5 पूंजी जुटाने के साधन
    5.5.1 शेयरों का निर्गमन
    5.5.2 ऋणपत्रों का निर्गमन
    5.5.3 वित्तीय संस्थाओं से ऋण
    5.5.4 वाणिज्यिक बैंकों से ऋण
    5.5.5 सार्वजनिक निक्षेप
    5.5.6 लाभों का संचय
    5.5.7 व्यापारिक साख
    5.5.8 आढ़त का कार्य
    5.5.9 विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना
    5.5.10 ओवरड्राफ्ट तथा कैश क्रेडिट
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.10 स्वपरख प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्त की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकें
- वित्तीय आवश्यकताएँ किस-किस प्रकार की होती हैं, उनका वर्गीकरण कर सकें
- स्वामित्व पूंजी तथा ऋण पूंजी के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- पूंजी संरचना के सिद्धान्त का वर्णन कर सकें तथा इसके निर्धारक तत्त्वों को समझ सकें
- वित्त एकत्र करने के विभिन्न साधनों का वर्णन कर सकें
- वित्त एकत्र करने के विभिन्न साधनों के लाभों तथा सीमाओं का मूल्यांकन कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में आप किसी व्यावसायिक उपक्रम की स्थापना से पूर्व प्रवर्तकों द्वारा उठाये जाने वाले कदमों के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इनमें से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम है व्यवसाय के लिए वित्त की व्यवस्था करना। कोई भी व्यक्ति तब तक व्यवसाय प्रारंभ नहीं कर सकता जब तक कि व्यवसाय के विभिन्न कार्यकलापों के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध न हो। इस इकाई में आप

अध्ययन करेंगे कि वित्त की आवश्यकता क्यों होती है तथा वित्त के स्रोत कौन-कौन से हैं। व्यवसाय की पूंजी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वित्त जुटाने के साधनों के बारे में भी आप इस इकाई में जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 वित्त की आवश्यकता तथा महत्त्व

हम सब जानते हैं कि प्रत्येक व्यावसायिक कार्यकलाप के संचालन के लिए धन अथवा वित्त की आवश्यकता होती है। विनिर्माताओं को ही लीजिए। वस्तुओं के उत्पादन के लिए उनके पास स्थान होना चाहिए। उन्हें मशीनरी तथा कच्चे माल का क्रय करना होगा, श्रमिकों तथा प्रबंधकों की नियुक्ति करनी होगी, बिजली तथा जल-आपूर्ति के लिए भुगतान करना होगा तथा वस्तुओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए अन्य व्यय करने होंगे। इसी प्रकार व्यापारियों को लीजिए। उन्हें वस्तुओं का क्रय करना होगा तथा उनको रखने के लिए उनके पास गोदाम होना चाहिए। उन्हें वस्तुओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए व्यवस्था करनी होगी। उन्हें वस्तुओं को उतारने-चढ़ाने के लिए, खाते रखने के लिए तथा बिलों की वसूली के लिए व्यक्तियों की नियुक्ति करनी होगी। एक अन्य उदाहरण वस्तु-परिवहन व्यवसाय का लीजिए। परिवहनकर्ता को ट्रकों का क्रय करना होगा, चालकों तथा सहायकों की नियुक्ति करनी होगी, वाहनों की मरम्मत, डीजल, रखरखाव आदि से संबंधित व्यय करने होंगे तथा इसी प्रकार अन्य कार्य भी करने होंगे। ये सभी कार्य केवल वित्त की सहायता से ही संपन्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार के व्यावसायिक कार्यकलापों के लिए धन की आवश्यकता होती है, चाहे वह विनिर्माण व्यवसाय हो, व्यापारिक व्यवसाय हो, परिवहन व्यवसाय हो, अथवा अन्य किसी प्रकार का व्यवसाय हो। यह सही है कि व्यवसाय द्वारा आय तभी अर्जित की जाती है जब वस्तुओं का विक्रय किया जाता है अथवा सेवाएं प्रदान की जाती हैं। लेकिन वस्तुओं का विक्रय बाद में होता है। वस्तुओं के विक्रय से पहले उनका उत्पादन अथवा क्रय होना चाहिए। अतः आय अर्जित करने से पहले वित्त की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। कारखाने के निर्माण के लिए, मशीनरी तथा कच्चे माल के क्रय के लिए व्यवसाय के कार्यालय हेतु स्थान किराये पर लेने के लिए, किराया, मजदूरी एवं वेतन के भुगतान के लिए तथा दिन-प्रतिदिन के खर्चों के भुगतान आदि के लिए धन की आवश्यकता होती है। अतः पर्याप्त वित्त जुटाए बिना कोई भी व्यक्ति व्यवसाय का संचालन नहीं कर सकता। यह सही है कि ऐसा भविष्य में आय अर्जित करने की आशा तथा इस मान्यता के आधार पर ही किया जाता है कि ग्राहक प्रस्तुत की गयी वस्तुओं और सेवाओं का क्रय करेंगे।

किसी भी व्यवसाय का संचालन करने के लिए वित्त के अतिरिक्त श्रमशक्ति, कच्चे माल, मशीनरी तथा प्रबंध की आवश्यकता होती है। परन्तु वित्त को व्यवसाय की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता माना जा सकता है। श्रमशक्ति, कच्चा माल, मशीनरी तथा प्रबंधकों आदि को एकत्र करके व्यवसाय में तभी लगाया जा सकता है जबकि आपके पास पर्याप्त वित्त उपलब्ध हो। बहुत सी व्यावसायिक फर्में केवल इसलिए असफल हो गयीं क्योंकि उनके पास वित्त की कमी थी। आधुनिक युग में वित्त का महत्त्व दो कारणों से बढ़ गया है — (1) आजकल व्यावसायिक कार्यकलाप पहले की अपेक्षा काफी बड़े पैमाने पर किए जाते हैं। यदि प्रारंभ में व्यवसाय को छोटे पैमाने पर शुरू किया जाता है तो भी समय के साथ-साथ इसका विस्तार हो जाता है। इस प्रकार उसके विस्तार के साथ-साथ वित्त की आवश्यकता में भी वृद्धि होती है। (2) विनिर्माण प्रतिक्रियाएं पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गयी हैं। कारखाने में उत्पादन के लिए अधिक लागत वाली मशीनों, उपस्करों तथा औजारों की आवश्यकता होती है तथा अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाना पड़ता है। सामग्री का क्रय तथा भंडारण भी बड़ी मात्रा में करना पड़ता है। उत्पादों का व्यापक विज्ञापन होना चाहिए। थोक व्यापारियों, अन्य व्यापारियों तथा विक्रयकर्त्ताओं के माध्यम से उत्पादों के वितरण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार व्यवसाय के आकार तथा विस्तार में वृद्धि के साथ-साथ तथा उत्पादन और व्यापार की जटिलता में वृद्धि के कारण वित्त की आवश्यकता में भी वृद्धि हुई है। किसी भी चालू व्यवसाय में एक तरफ तो विक्रय द्वारा धन प्राप्त होने से पहले ही धन खर्च करना पड़ता है। दूसरी तरफ हो सकता है कि किसी निश्चित अवधि में विक्रय से प्राप्त नकद रकम उस अवधि में किए गए व्यय की रकम के बराबर न हो। इसलिए जब भी वित्त की आवश्यकता हो तभी वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए। किस समय कितने वित्त की व्यवस्था करनी होगी इसका पूर्वानुमान करना कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि समय के साथ-साथ व्यवसाय की परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता रहता है।

5.3 वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार

व्यापक रूप में व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकता को वर्गीकृत करने के दो तरीके हैं – (1) स्थायित्व की मात्रा के आधार पर हम वित्तीय आवश्यकताओं को (अ) स्थायी पूंजी (Fixed Capital) तथा (ब) कार्यशील पूंजी (Working Capital) में वर्गीकृत कर सकते हैं। (2) प्रयोग की अवधि के आधार पर हम वित्तीय आवश्यकताओं को (अ) दीर्घकालीन पूंजी (Long-term Capital) तथा (ब) अल्पकालीन पूंजी (Short-term Capital) में वर्गीकृत कर सकते हैं।

वित्तीय आवश्यकताओं के वर्गीकरण के लिए चित्र 5.1 को देखिए–

चित्र 5.1

वित्तीय आवश्यकताओं का वर्गीकरण

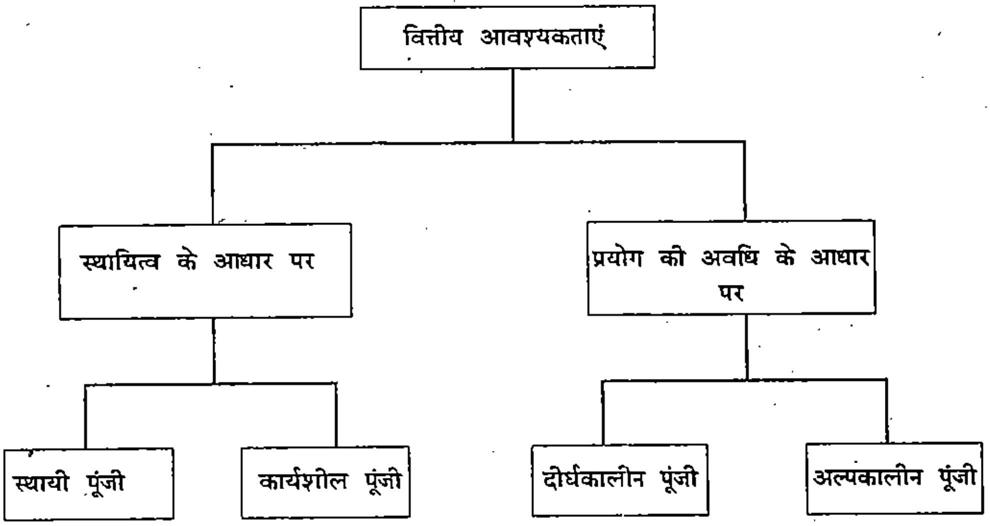

5.3.1 स्थायी पूंजी तथा कार्यशील पूंजी

स्थायी पूंजी : प्रत्येक व्यावसायिक प्रतिष्ठान में धन का निवेश कुछ स्थायी अथवा टिकाऊ परिसंपत्तियों में किया जाता है, जैसे भूमि, भवन, मशीनरी, उपस्कर, फर्नीचर आदि। इन परिसंपत्तियों की आवश्यकता स्थायी उपयोग के लिए अर्थात् एक लंबे समय के लिए होती है। इन परिसंपत्तियों के क्रय के लिए आवश्यक धन को **स्थायी पूंजी अथवा दीर्घकालीन पूंजी** कहा जाता है। आवश्यक स्थायी पूंजी की मात्रा साधारणतया व्यवसाय के स्वरूप एवं आकार पर निर्भर करती है। विनिर्माण कार्यकलापों के लिए, जो विशेषकर भारी इंजीनियरी, विद्युत उद्योग, परिवहन, जहाजरानी तथा जहाज निर्माण, विद्युत आपूर्ति, लौह इस्पात विनिर्माण, स्वचालित वाहन आदि उद्योगों में संलग्न हैं, संयंत्र एवं मशीनरी, उपस्कर, कारखाने के भवन, भंडारगृहों आदि में अत्याधिक निवेश की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत व्यापारिक संस्थानों में स्थायी परिसंपत्तियों के लिए अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है।

स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश के लिए धन की एक लंबे समय तक के लिए आवश्यकता होती है। ये स्थायी परिसंपत्तियां एक लंबे समय तक आय तथा लाभ अर्जित करती रहती हैं। यही नहीं, एक बार इन स्थायी परिसंपत्तियों में पैसा लगाने के बाद उसे वापस नहीं निकाला जा सकता और न ही किसी अन्य कार्य में लगाया जा सकता है।

कार्यशील पूंजी : व्यवसाय में आपको कई कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता होती है, जैसे कच्चे माल के क्रय के लिए, मजदूरी, वेतन, किराया, ईंधन, बिजली, पानी आदि के भुगतान के लिए, मशीनरी के रख-रखाव तथा मरम्मत के लिए तथा विज्ञापन आदि के लिए। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर भी वित्त की आवश्यकता उत्पन्न होती है। व्यावसायिक कार्यकलापों के निष्पादन के लिए यह भी आवश्यक है कि हम कच्चे माल, स्पेयर पार्टों, अन्य सामग्री तथा निर्मित वस्तुओं का पर्याप्त भंडार रखें। इसके लिए कच्चे माल, स्पेयर पार्टों, अन्य सामग्री, निर्मित वस्तुओं आदि के भंडार के रूप में अल्पकालिक अथवा चालू परिसंपत्तियों में निवेश की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के उधार विक्रय से

देनदारों के शेष तथा प्राप्य विनिमय-पत्रों के रूप में भी धन का निवेश हो जाता है जिन्हें चालू परिसंपत्तियां ही माना जाना चाहिए।

चालू परिसंपत्तियों जैसे कच्चे माल, निर्मित वस्तुओं आदि के स्टॉक में देनदारों के शेष और प्राप्य विनिमय पत्रों (बिलों) में लगाया गया पैसा कायंशील पूंजी कहलाता है। कई बार इसे प्रचल पूंजी (Circulating Capital) या परिक्रामी पूंजी (Revolving Capital) भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि चालू परिसंपत्तियों में निवेशित पैसा रोकड़ वसूली के रूप में निरंतर पुनः प्राप्त होता है तथा उसका चालू परिसंपत्तियों में पुनः निवेश कर दिया जाता है। इस प्रकार उस रकम का रोकड़ से चालू परिसंपत्तियों में तथा फिर वापस चालू परिसंपत्तियों से रोकड़ में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि ऐसा थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर होता है लेकिन रकम की आवश्यकता बार-बार होती रहती है। अतः इस कार्य के लिए आवश्यक रकम का एक भाग स्थायी प्रकृति का होता है। इसे कार्यशील पूंजी का "स्थायी अथवा शाश्वत" भाग कहा जाता है। कार्यशील पूंजी के शाश्वत भाग को दीर्घकालीन पूंजी माना जाना चाहिए। कार्यशील पूंजी का दूसरा भाग व्यवसाय के आकार में वृद्धि अथवा कमी के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। अतः इसे कार्यशील पूंजी का "अस्थिर अथवा परिवर्तनशील" भाग कहा जाता है। इसलिए कार्यशील पूंजी का केवल परिवर्तनशील भाग ही अल्पकालिक पूंजी माना जाता है, जिसके लिए आवश्यक रकम की अवधि एक वर्ष से भी कम होती है। आवश्यक कार्यशील पूंजी की मात्रा मुख्य रूप से व्यवसाय की प्रकृति, विनिर्माण प्रक्रिया पूर्ण होने की अवधि तथा उन शर्तों पर निर्भर करती है जिन पर वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय किया जाता है। उदाहरण के लिए व्यापारिक कंपनियों को विनिर्माण कंपनियों की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि व्यापारिक व्यवसाय को बड़ी मात्रा में वस्तुओं का भंडार रखना पड़ता है तथा देनदारों के शेष भी अधिक होते हैं। निर्माण (Construction) कंपनियों को भी विनिर्माण (manufacturing) कंपनियों की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इन दोनों के व्यवसायों में चालू परिसंपत्तियों का मूल्य कुल परिसंपत्तियों के मूल्य का लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक होता है। होटलों और जलपान गृहों के लिए चालू परिसंपत्तियों में अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है क्योंकि उनमें अधिकतर नकद विक्रय होता है तथा देनदारों के शेष की रकम भी बहुत कम होती है।

विनिर्माण उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया में लगने वाले समय की भिन्नताओं के कारण कार्यशील पूंजी की आवश्यकताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं। ये आवश्यकताएं कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के उत्पादन के बीच के समय अन्तराल के आधार पर निर्धारित होती हैं। प्रक्रिया की अवधि जितनी लम्बी होगी, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। उदाहरण के लिए चावल मिल अथवा सूत कातने की मिल अथवा इस्पात बनाने की मिल की अपेक्षा एक भारी इंजीनियरी उद्योग को अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

एक और कारण जिसके आधार पर कार्यशील पूंजी की मात्रा का निर्धारण होता है वह ग्राहकों को दिए जाने वाले उधार की शर्तों से संबंधित है। उदाहरण के लिए एक कंपनी अपने ग्राहकों को केवल 15 दिन की साख पर माल उधार बेचती है, जबकि दूसरी कंपनी 90 दिन की साख पर माल उधार बेच सकती है। एक कंपनी इतनी उदार हो सकती है कि वह अपने सभी ग्राहकों को साख संबंधी सुविधाएं प्रदान कर देती है, जबकि उसी व्यवसाय में लगी एक दूसरी कंपनी केवल कुछ चुने हुए विश्वसनीय ग्राहकों को ही साख संबंधी सुविधाएं प्रदान करती है। यह स्वाभाविक है कि यदि साख की अवधि लंबी है तथा सभी ग्राहकों को साख संबंधी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, तो अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इन दोनों ही अवस्थाओं में देनदारों के शेष भी अधिक होंगे जिनके लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी अधिक होगी। दूसरी ओर यदि माल की आपूर्ति साख की अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध हो जाती है, अर्थात् उनके लिए भुगतान लंबे समय के अन्तराल पर किया जा सकता है तो कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उसी के अनुसार कम होगी।

5.3.2 दीर्घकालीन पूंजी तथा अल्पकालीन पूंजी

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश के लिए वित्त की व्यवस्था स्थायी दीर्घकालीन पूंजी द्वारा की जानी चाहिए। इसका कारण यह है कि स्थायी परिसंपत्तियां काफी लंबे समय की अवधि के दीर्घकालीन उपयोग के लिए ही खरीदी जाती हैं जो सामान्यतः पांच वर्ष अथवा उससे भी अधिक वर्षों का हो सकता है। कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग के लिए भी दीर्घकालीन पूंजी की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए तथा

दिन-प्रतिदिन के खर्चों का भुगतान करने के लिए पूंजी की आवश्यकता साधारणतया अल्प समय के लिए ही होती है, जो एक वर्ष से भी कम का होता है। इसका कारण यह है कि कच्चे माल का उपयोग तथा निर्मित वस्तुओं का विक्रय साधारणतया एक वर्ष के भीतर ही कर लिया जाता है तथा ग्राहकों से प्राप्य रकम भी साधारणतया तीन से छह महीनों के भीतर ही वसूल कर ली जाती है। दीर्घकालीन पूंजी तथा अल्पकालीन पूंजी में मुख्य अंतर यह है कि दीर्घकालीन पूंजी की आवश्यकता एक लंबी अवधि के लिए होती है जो पांच वर्ष अथवा इससे भी अधिक वर्षों की हो सकती है, जबकि अल्पकालीन पूंजी की आवश्यकता थोड़े समय के लिए होती है जो एक वर्ष से भी कम का होता है। पूंजी की इन आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी व्यावसायिक संस्थाओं को दो से पांच वर्षों की अवधि के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसे मध्य कालीन पूंजी (Medium-term Capital) कहा जाता है। मध्य कालीन पूंजी की आवश्यकता कुछ निश्चित कार्यकलापों के लिए होती है जैसे भवन का नवीनीकरण, मशीनरी का आधुनिकीकरण, विज्ञापन पर भारी व्यय आदि।

5.4 पूंजी संरचना (Capital Structure)

दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राप्त किया गया धन 'स्वामित्व पूंजी' अथवा 'ऋण पूंजी' का रूप ले सकता है। 'पूंजी संरचना' का अध्ययन करने से पहले हम इन दो शब्दों का अर्थ भली-भांति समझ लें।

5.4.1 स्वामित्व पूंजी

किसी व्यवसाय में व्यवसाय के स्वामियों द्वारा निवेशित पूंजी को स्वामित्व पूंजी (Ownership Capital) कहा जाता है। व्यवसाय के स्वामियों को उनके द्वारा किए गए निवेश के आधार पर ही व्यवसाय का लाभ प्राप्त करने का अधिकार होता है। एकल स्वामित्व व्यवसाय में साधारणतया एकल स्वामी अपनी बचत से ही पूंजी का निवेश करता है। साझेदारी व्यवसाय में साझेदारों की आपसी सहमति के आधार पर प्रत्येक साझेदार पूंजी की राशि लाता है। कंपनियां शेयरों के निर्गमन द्वारा पूंजी प्राप्त करती हैं। जो निवेशक किसी कंपनी की शेयर पूंजी में अंशदान करते हैं वे अपनी शेयर-धारिता (share holding) के बल पर उस कंपनी के स्वामी भी बन जाते हैं। शेयर होल्डर कंपनी द्वारा अर्जित किए गए लाभांशों में से ही लाभांश (dividend) प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। जब तक कंपनी को लाभ नहीं होता तब तक स्वामी अपने निवेश पर प्रतिफल प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकते। स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की दर अर्जित लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। यह दर ऊंची भी हो सकती है और नीची भी। यदि कंपनी को कोई लाभ नहीं होता तो स्वामियों को भी कोई लाभांश नहीं दिया जाता। इस प्रकार हानि तथा प्रतिफल की कम दर की जोखिम स्वामित्व पूंजी के साथ जुड़ी हुई होती है। इसीलिए इसे जोखिम पूंजी भी कहा जाता है।

स्वामित्व पूंजी का उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही निरंतर निवेश के लिए किया जा सकता है। स्वामित्व पूंजी का उपयोग साधारणतया स्थायी पूंजी अथवा दीर्घकालीन पूंजी के रूप में किया जाता है। जोखिम वहनकर्ता के रूप में स्वामियों को यह आश्वासन नहीं होता कि उन्हें निवेश पर पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त होगा अथवा नहीं। लेकिन यदि व्यवसाय सफल हो जाता है तो उन्हें बहुत अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त स्वामियों को व्यवसाय के प्रबंध में भी भाग लेने का अधिकार होता है। एकल स्वामित्व को व्यवसाय में स्वयं स्वामी तथा साझेदार व्यवसाय के संचालन में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। कंपनियों के शेयरहोल्डर प्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय का प्रबंध नहीं करते। वे निदेशक मंडल के सदस्यों का चुनाव करते हैं जो शेयरहोल्डर की ओर से कंपनी का प्रबंध करते हैं।

5.4.2 ऋण पूंजी

कई बार व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ऋण प्राप्त करके की जाती है। ऋणों पर एक निश्चित दर से कुछ समय के अंतराल पर नियमित रूप से ब्याज देना पड़ता है, जैसे वार्षिक अथवा अर्धवार्षिक। व्यवसाय की तरफ से इसके लिए भी वचनबद्धता होती है कि मूल रकम नियत समय पर लौटा दी जाएगी। इस प्रकार यदि 10, 15 अथवा 20 वर्षों के लिए ऋण लिया जाता है तो इसका भुगतान उस अवधि की समाप्ति पर अथवा ऋण की शर्तों में उल्लिखित अंतराल के पश्चात् करना होगा। ऋण पर ब्याज एक स्थायी व्यय है तथा इसका भुगतान तो करना ही पड़ता

है, चाहे आय हुई हो अथवा नहीं। इस प्रकार धन उधार लेने से ब्याज का भुगतान करना तथा देय होने पर मूल रकम का भुगतान करना एक स्थायी रूप से उत्तरदायित्व बन जाता है।

धन अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों ही उद्देश्यों के लिए अर्थात् स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही निवेश के लिए उधार लिया जा सकता है। एकल स्वामित्व व्यवसाय में स्वामी व्यक्तिगत जमानत पर अथवा वर्तमान परिसंपत्तियों की जमानत पर धन उधार ले सकता है। साझेदारी संगठन साझेदारों की व्यक्तिगत जमानत पर ऋण ले सकता है जिससे साझेदार संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बन जाते हैं। कंपनियां भी ऋणपत्र (Debentures) या बॉण्ड निर्गमित करके अथवा प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्राप्त करके धन उधार ले सकती हैं।

यदि व्यवसाय की आय स्थिर है तथा देनदारों से नियमित रूप से रोकड़ प्राप्त कर ली जाती है तो ऋण प्राप्त करना कठिन नहीं होता। लेकिन यदि परिस्थितियां ऐसी हैं कि जब ब्याज देय होता है तब उसका भुगतान करना संभव नहीं हो पाता तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इससे साख क्षमता की हानि होती है अर्थात् संभव है कि माल के विक्रेता और अधिक उधार माल देने के लिए तैयार न हों तथा और ऋण भी प्राप्त न हो। इससे भी अधिक गंभीर बात यह हो सकती है कि ऋणदाता तथा लेनदार देय रकम की प्राप्ति के लिए कानूनी कार्रवाई शुरू कर दे। इसलिए ब्याज चुकाने तथा मूल रकम को समय पर लौटाने के उत्तरदायित्व को पूरा करने की क्षमता के बिना धन उधार लेना वांछनीय नहीं होता।

लेकिन व्यावसायिक कार्यकलापों में निवेश के लिए ऋण द्वारा धन जुटाने के लिए कुछ लाभ भी हैं। यदि व्यवसाय लाभप्रद है तो ब्याज एक स्थायी व्यय होने के कारण स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल काफी अधिक होगा। मान लीजिए कि व्यवसाय में कुल निवेश 1,00,000 रुपये है जिसमें से 40,000 रुपये स्वामियों द्वारा दिए गए हैं तथा शेष 60,000 रुपये ऋण द्वारा प्राप्त किए गए हैं जिस पर 15 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज देना है। वर्ष के दौरान 30,000 रुपये का लाभ अर्जित किया गया। देय ब्याज की कुल रकम 9,000 रु. होगी। इसलिए ब्याज के भुगतान के पश्चात् लाभ की रकम 21,000 रु. होगी। मान लीजिए कि लाभ पर 50 प्रतिशत की दर से कर चुकाया जाता है। अतः देय कर की रकम 10,500 रु. होगी। स्वामी की पूंजी पर प्रतिफल कितना होगा? 40,000 रु. की स्वामी की पूंजी पर प्रतिफल होगा 10,500 रु. अर्थात् प्रतिफल की दर 26.25 प्रतिशत होगी। यदि स्वामियों ने 1,00,000 रु. का निवेश किया होता तथा कोई ऋण नहीं लिया होता तब भी क्या प्रतिफल की दर इतनी ही होती? स्पष्टतः नहीं। आइए, हम इसकी जांच करें। क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई ब्याज नहीं दिया जाएगा, इसलिए कर की रकम 15,000 रु. होगी (30,000 रु. पर 50 प्रतिशत की दर से), कर चुकाने के बाद निवल लाभ 15,000 रु. होगा (30,000 रु. कुल लाभ -15,000 रु. कर)। स्वामियों के 1,00,000 रु. के निवेश पर उन्हें 15,000 रु. का प्रतिफल प्राप्त होगा अर्थात् प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत होगी। आपने देखा होगा कि जब कुल निवेश का एक भाग ऋण द्वारा प्राप्त किया गया था तब स्वामियों के प्रतिफल की दर अधिक थी। यदि आप सावधानी पूर्वक इसकी जांच करें तो आप देखेंगे कि यह दो प्रभावों के कारण संभव हुआ — (1) देय कर की रकम कम थी (15,000 रु. के स्थान पर 10,500 रु.)। इस प्रकार कर के भुगतान के बाद शुद्ध लाभ अधिक था। (2) ब्याज के भुगतान की रकम निश्चित थी। इस प्रकार ऋणों से व्यवसाय के विस्तार में तो सहायता मिली किन्तु इसके लिए ऋणदाताओं को ब्याज के अतिरिक्त कुछ भी अधिक भुगतान नहीं करना पड़ा। लाभ का शेष भाग पूर्णतः स्वामियों के लिए बच गया। स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की एक ऊंची दर का लाभ प्राप्त करने के लिए ऋण पूंजी के उपयोग को "इक्विटी पर व्यापार" (Trading on Equity) कहा जाता है।

5.4.3 पूंजी संरचना किसे कहते हैं?

आपने ध्यान दिया होगा कि जब लाभ अधिक होता है तो ऋण लेना वांछनीय होता है लेकिन यदि लाभ कम हो रहे हों तब ऋणों पर निर्भर करना खतरनाक हो सकता है। अतः प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अवस्था में व्यावसायिक कार्यकलापों के लिए ऋण की मात्रा कितनी होनी चाहिए। इसके लिए सामान्य नियम यह होना चाहिए कि ऋण पूंजी तथा स्वामित्व पूंजी दोनों को ही एक उचित अनुपात में रखा जाए। एक अत्यधिक सफल व्यवसाय में अनुकूल परिस्थितियों में ऋण पूंजी स्वामियों के निवेश से दो गुनी अथवा तीन गुनी भी हो सकती है। लेकिन एक ऐसे व्यवसाय में

जिसका लाभ निरंतर गिरता जा रहा हो, ऋण पूंजी का अनुपात जितना कम हो सके उतना कम होना चाहिए।

चूंकि ऋण लेने के कुछ विशिष्ट लाभ होते हैं, इसलिए प्रवर्तक यथा संभव अधिकाधिक रकम ऋण द्वारा प्राप्त करना चाहेंगे। लेकिन एक सीमा के पश्चात् ऋण लेना भी जोखिम भरा हो सकता है। इसका कारण यह है कि आय में अस्थिरता और उपलब्ध रोकड़ की अपर्याप्तता के कारण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि व्यवसाय के लिए ब्याज चुकाना तथा ऋण की मूल रकम लौटाना भी संभव न हो। ऐसी स्थिति में माल के विक्रेता तथा लेनदार व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को अविश्वसनीय मानेंगे। हो सकता है कि वे व्यवसाय को माल उधार देना ही बन्द कर दें तथा ऐसी अत्यन्त विषम परिस्थिति में व्यवसाय दिवालिया भी हो सकता है। यह खतरा मूलतः आय अथवा लाभ की पर्याप्तता पर विचार किए बिना ही व्यवसाय द्वारा ऋण पूंजी पर किए जाने वाले स्थायी भुगतानों का उत्तरदायित्व ले लेने के कारण तथा उपलब्ध रोकड़ की कमी के कारण उत्पन्न होता है।

कुल पूंजी में उस पूंजी का अनुपात जिस पर स्थायी ब्याज देना होता है "पूंजी का मिलान" (Capital gearing) कहलाता है। इस प्रकार यदि ऋण पूंजी का अनुपात स्वामित्व पूंजी की अपेक्षा काफी अधिक है तो इसे पूंजी का उच्च मिलान (High gearing) कहा जाता है। इसके विपरीत पूंजी का निम्न मिलान (Low gearing) स्वामित्व पूंजी की अपेक्षा ऋण पूंजी के कम अनुपात को प्रकट करता है। कुल पूंजी की ऐसी बनावट को "पूंजी संरचना" (Capital Structure) कहते हैं जिसका एक भाग दीर्घकालीन कोष के रूप में हो जिस पर स्थायी ब्याज देना हो तथा एक भाग स्वामित्व पूंजी के रूप में हो। इस प्रकार पूंजी संरचना से तात्पर्य उस अनुपात से होता है जिसमें कुल वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। जैसे ऋणपत्र एवं दीर्घकालीन ऋण, पूर्वाधिकार शेयर पूंजी और ईक्विटी पूंजी (जिसमें आरक्षित कोष तथा अधिशेष भी शामिल होते हैं)।

5.4.4 पूंजी संरचना के निर्धारक तत्त्व

पूंजी संरचना का निर्धारण करने के लिए दीर्घकालीन वित्त विभिन्न स्रोतों से किस सीमा तक प्राप्त किया जाना चाहिए, यह कई तत्त्वों पर निर्भर करता है। अब हम उन तत्त्वों पर विचार करेंगे।

1 **व्यवसाय की प्रकृति :** यदि कोई कंपनी ऐसे व्यावसायिक कार्यों में लगी है जिसके उत्पादित माल के विक्रय में बहुत अधिक उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, तो ऐसी स्थिति में ऋण पूंजी का अनुपात कम रखना ही वांछनीय होगा। टेलीविजन, रेफ्रीजरेटर, मशीनी औजार तथा पूंजीगत वस्तुओं का विर्निमाण करने वाली कंपनियों के विक्रय में समय-समय पर काफी उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। यदि इन कंपनियों में ऋण पूंजी का अनुपात अधिक होगा तो उनको व्यावसायिक मंदी के समय वित्तीय कठिनाई का सामना करने का जोखिम उठाना पड़ सकता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में वे अपने स्थायी दायित्वों को चुकाने में असमर्थ रहेंगी। दूसरी ओर दैनिक उपयोग वाली आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का व्यापार करने वाली अथवा लोचहीन मांग वाली वस्तुओं का विक्रय करने वाली कंपनियों की आय स्थिर होती है और इस प्रकार ये कंपनियां काफी हद तक ऋण पर निर्भर रह सकती हैं।

कंपनियों में आपसी प्रतियोगिता व्यवसाय का दूसरा पहलू है जो आय के स्तर को प्रभावित कर सकता है। उदाहरण के लिए सिल-सिलाये वस्त्र उद्योग के फर्मों में आपसी प्रतियोगिता और शैली फैशन पर आधारित होती है, जिसमें बार-बार परिवर्तन होते रहते हैं जिनका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसलिए ये फर्में ऋण पूंजी पर कम तथा ईक्विटी पूंजी पर अधिक भरोसा रखती हैं।

2 **कंपनी की विशेषताएं :** कंपनी का आकार तथा उसकी साख-क्षमता भी उस सीमा के निर्धारण में सहायक होते हैं जिस सीमा तक ईक्विटी पूंजी अथवा ऋण पूंजी प्राप्त की जानी चाहिए। छोटी फर्मों को स्वामित्व पूंजी पर अधिक आश्रित रहना पड़ता है, क्योंकि उनके लिए दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करना कठिन होता है। इसका कारण यह है कि निवेशक छोटी फर्मों को ऋण देना अधिक जोखिम भरा समझते है। इसके विपरीत बड़ी कंपनियों को वित्त प्राप्त करने के विभिन्न साधनों का

उपयोग करना चाहिए क्योंकि कोई भी एक साधन उनकी समस्त वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। साधारणतया निवेशक बड़ी कंपनियों को ऋण देना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि उनका विश्वास होता है कि बड़ी व्यावसायिक फर्मों में उनका धन सुरक्षित रहेगा तथा जोखिम भी कम होगी। इसी प्रकार निवेशकों तथा ऋणदाताओं में जिन फर्मों की साख क्षमता अधिक होती है, वे फर्में विभिन्न स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए अधिक अच्छी स्थिति में होती हैं।

3 **प्रबंध नियंत्रण :** प्रवर्तक लोग, जिनके पास बहुत बड़ी मात्रा में शेयर होते हैं तथा जो कंपनी के प्रबंध का नियंत्रण करते हैं इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि ईक्विटी शेयर जारी करके वित्त प्राप्त करने के क्या संभावित प्रभाव हो सकते हैं। ईक्विटी शेयर होल्डर, जिनके पास मत का अधिकार होता है, कंपनी के नीति संबंधी निर्णयों को अथवा संचालकों के चयन को प्रभावित कर सकते हैं। लेकिन ऋण देने वाले व्यक्तियों को संचालकों का चुनाव करने तथा कंपनी के प्रबंध में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता। अतः वर्तमान प्रबंधक समूह प्रबंध पर अपना नियंत्रण कायम रखने के लिए अतिरिक्त वित्त को ऋण पत्रों तथा पूर्वाधिकार शेयरों को जारी करके प्राप्त करना ही अधिक पसंद करते हैं।

4 **वित्त की लागत :** चूंकि ऋण पर दिए गए ब्याजों को कर का निर्धारण करने से पूर्व के लाभों में से घटाया जा सकता है इसलिए ऋण द्वारा प्राप्त वित्त की लागत अनिवार्य रूप से ईक्विटी पूंजी पर आय (अर्थात् लाभ) की अनुमानित दर से कम होती है। अतः कुल वित्तीय आवश्यकताओं का एक भाग दीर्घकालीन ऋणों द्वारा प्राप्त करना हमेशा लाभप्रद होता है। ऋण द्वारा प्राप्त वित्त की कम लागत के कारण वित्त प्राप्त करने की कुल (औसत) लागत कम हो जाती है तथा ईक्विटी पूंजी पर आय अधिक होती है। यह पूंजी संरचना का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है।

5 **ऋण द्वारा वित्त प्राप्त करने का ईक्विटी शेयर की आय पर प्रभाव :** हम यह पहले ही बता चुके हैं कि यदि ऋण पूंजी का उपयोग किया जाता है तो किस प्रकार ईक्विटी शेयर पूंजी पर आय की दर अनुपात से अधिक बढ़ती है। ऋण का 'ईक्विटी/पूंजी की आय की दर पर (अथवा प्रति शेयर की आय पर) पड़ने वाले प्रभाव को **''ईक्विटी पर व्यापार''** अथवा **''उत्तोलक शक्ति का प्रभाव''** (Leverage effect) कहा जाता है। इस प्रकार व्यावसायिक उपक्रमों में बढ़ती हुई आय की सुनिश्चित संभावना के कारण पूंजी संरचना में ऋण पूंजी पर अधिक बल दिया जाता है।

6 **ब्याज प्रभार के संबंध में अनुमानित आय :** ऋण-ईक्विटी पूंजी अनुपात को निर्धारित करने वाला एक और तत्त्व होता है ब्याज पर लाभों का अनुमानित आधिक्य। यदि कंपनी की औसत आय ऋण पूंजी पर देय ब्याज की रकम से तीन अथवा चार गुनी होने की संभावना है तो ईक्विटी पूंजी की अपेक्षा दीर्घकालीन ऋण द्वारा वित्त प्राप्त करना अधिक सुरक्षित माना जा सकता है। ब्याज पर लाभों के तीन से चार गुना आधिक्य को एक विवेक पूर्ण आश्वासन के रूप में माना जा सकता है कि ब्याज का भुगतान उस हालत में भी हो सकेगा जब लाभ बहुत अधिक गिर गए हों।

7 **रोकड़ की उपलब्धता (रोकड़-प्रवाह) :** किसी व्यवसाय के स्थायी उत्तरदायित्वों को पूरा करने की क्षमता मुख्य रूप से तरल रोकड़ की उपलब्धता पर निर्भर करती है। लाभ की मात्रा ऋण पूंजी द्वारा उत्पन्न हुए स्थायी प्रभारों को चुकाने के लिए लाभ पर्याप्त हो सकती है, फिर भी हो सकता है कि फर्म के पास भुगतान के लिए पर्याप्त रोकड़ उपलब्ध न हो क्योंकि अधिक माल-सूची, खाता ऋणों अथवा यहां तक कि उपस्करों के क्रय के रूप में आय का निरंतर निवेश होता रहता है, विशेषकर उस अवस्था में जबकि प्रतिष्ठान विकासशील हो। अतः पूंजी संरचना में ऋण पूंजी के अनुपात का निर्णय करने से पहले लाभार्जन शक्ति के अतिरिक्त रोकड़ प्रवाहों का अनुमान लगाना भी आवश्यक होता है।

8 **पूंजी संरचना की लोच :** पूंजी संरचना संबंधी निर्णय साधारणतया प्रबंधकों द्वारा अपने वित्त के साधनों को समायोजित करने की क्षमता को ध्यान में रखकर ही लिया जाता है। वर्तमान पूंजी संरचना का भावी प्रभाव तथा भविष्य में पूंजी संरचना में परिवर्तन के अवसर पर इस संदर्भ में विचारणीय विषय होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कभी अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता होती है तो एक ऐसी कंपनी को जिसने पहले से ही अधिक ऋण ले रखें हो इस कार्य के लिए और इक्विटी शेयर निर्गमित करने पड़ेंगे जिसके कारण वित्त की लागत अधिक आएगी। अथवा ऐसी

स्थिति में जबकि व्यवसाय की मंदी के कारण एकत्रित धन को वापस लौटाना उचित समझा जाए तो एक ऐसी कंपनी के लिए जो पहले से ही ईक्विटी पूंजी पर अधिक आश्रित रही हो, ऐसा करना कठिन हो जाएगा। वास्तव में क्रियाशील लोच को कायम रखने के लिए प्रत्येक कंपनी को भावी उपयोग के लिए कुछ हद तक ऋण एकत्र करने की क्षमता को अछूता रखना चाहिए। इसके साथ ही साथ पूंजी तथा ईक्विटी पूंजी का विवेकपूर्ण मिश्रण भी होना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर ऋण पूंजी का वापस लौटाना संभव हो सके।

सबसे उपयुक्त पूंजी संरचना (जिसे इष्टतम पूंजी संरचना भी कहते हैं) की योजना वित्त प्राप्ति के वैकल्पिक साधनों के प्रभाव को ध्यान में रखकर बनायी जाती है तथा ऋण पूंजी और ईक्विटी पूंजी मिश्रण के प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाता है ताकि फर्म की संपत्ति में सर्वाधिक वृद्धि हो सके।

बोध प्रश्न क

1 बताइए कि निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सत्य हैं तथा कौन से असत्य।

i) व्यवसाय में अधिक वित्त की आवश्यकता केवल इसलिए होती है कि मजदूर लोग हमेशा अधिक मजदूरी की मांग करते हैं।

ii) वित्त के बिना कोई भी व्यक्ति व्यवसाय को नहीं चला सकता।

iii) कच्चे माल के क्रय के लिए स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।

iv) व्यापारिक कंपनियों की अपेक्षा विनिर्माण कंपनियों को अधिक स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।

v) स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही दीर्घकालीन निवेश की आवश्यकता होती है।

vi) पूंजी का उच्च मिलान अधिक ऋण पूंजी द्वारा वित्त प्राप्त करने का सूचक है।

vii) कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग को दीर्घकालीन वित्त माना जा सकता है।

viii) उन व्यापारियों को कार्यशील पूंजी की आवश्यकता नहीं होती जो वस्तुओं का उधार क्रय तथा उधार विक्रय करते हैं।

ix) एक लाभदायक व्यवसाय में यदि कुल पूंजी का कुछ भाग ऋण द्वारा प्राप्त किया जाता है तो स्वामित्व पूंजी पर प्रतिफल अधिक मिलेगा।

2 उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) स्वामित्व पूंजी को .... पूंजी भी कहा जाता है।

ii) .... पूंजी को कभी-कभी परिक्रामी अथवा प्रचल पूंजी भी कहा जाता है।

iii) पांच वर्ष अथवा इससे अधिक वर्षों के लिए आवश्यक कोष को .... वित्त माना जाता है।

iv) अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता .... वर्ष तक की अवधि के लिए होती है।

v) मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता .... वर्ष की अवधि के लिए होती है।

vi) व्यापारिक कंपनियों को .... पूंजी की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

vii) चालू परिसंपत्तियों में निवेश का अभिप्राय साधारणतया .... निवेश से होता है।

viii) दीर्घकालीन तथा .... दोनों ही प्रयोजनों के लिए ही ऋण प्राप्त किए जा सकते हैं।

3 कॉलम 'क' के मदों का कॉलम 'ख' की मदों से मिलान कीजिए :

	कॉलम 'क'		कॉलम 'ख'
1)	स्थायी पूंजी	i)	चालू परिसंपत्तियां
2)	दीर्घकालीन वित्त	ii)	अल्पकालीन वित्त
3)	मध्यकालीन वित्त	iii)	जोखिम पूंजी
4)	पूंजी संरचना	iv)	टिकाऊ परिसंपत्तियां
5)	कार्यशील पूंजी	v)	पांच वर्ष से अधिक समय के लिए
6)	स्वामित्व पूंजी	vi)	मशीनरी का आधुनिकीकरण
7)	प्राप्य बिल	vii)	ऋण पूंजी तथा ईक्विटी पूंजी

5.5 पूंजी जुटाने के साधन

आप समझ गए हैं कि विभिन्न कारणों, उद्देश्यों तथा कार्यकलापों के लिए बहुत अल्पकाल से लेकर काफी लंबे समय तक की अवधि के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। वित्तीय आवश्यकताओं की कुल रकम व्यवसाय के आकार एवं स्वरूप पर निर्भर करती है। धन एकत्र करने का क्षेत्र उन स्रोतों पर निर्भर करता है जिनसे वह उपलब्ध हो सकता है। एकल स्वामित्व संगठन के स्वामी के लिए वित्त एकत्र करने के साधन बहुत सीमित होते हैं। वह अपने व्यवसाय के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी भी साधन से वित्त प्राप्त कर सकता है :

- स्वयं की बचत का निवेश
- मित्रों तथा संबंधियों से ऋण
- वाणिज्यिक बैंकों से अग्रिम रकम की व्यवस्था
- वित्त कंपनियों से ऋण

साझेदारी फर्मों को भी वित्त प्राप्त करने के ये ही साधन उपलब्ध होते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यावसायिक संगठनों में दीर्घकालीन पूंजी साधारणतया इनके मालिकों द्वारा अर्थात् एकल स्वामी अथवा साझेदारी द्वारा जुटाई जाती है। स्थायी पूंजी भी स्वामियों की व्यक्तिगत जमानत पर मित्रों तथा संबंधियों से ऋण के रूप में प्राप्त की जा सकती है। साधारणतया अल्पकालीन कार्यशील पूंजी से संबंधित आवश्यकताएं आंशिक रूप से व्यापारिक लेनदारों (माल तथा वस्तुओं के विक्रेताओं) तथा वित्तीय कंपनियों से ऋण प्राप्त करके पूरी की जाती है।

दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन दोनों प्रकार के वित्त प्राप्त करने का एक अन्य साधन है—समय-समय पर अर्जित किए गए लाभ का पुनर्निवेश। कंपनियों के पास वित्त एकत्रित करने के कई साधन होते हैं। दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन पूंजी एकत्र करने के लिए कंपनियों के पास निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध होते हैं :

1 शेयरों का निर्गमन
2 ऋण पत्रों का निर्गमन
3 वित्तीय संस्थाओं से ऋण
4 वाणिज्यिक बैंकों से ऋण
5 सार्वजनिक निक्षेप
6 लाभों का संचय

अल्पकालीन पूंजी प्राप्त करने के लिए निम्न साधनों का उपयोग किया जा सकता है :

1 व्यापारिक साख
2 आढ़त का कार्य
3 विनिमय पत्र
4 बैंक ओवरड्राफ्ट तथा नकद उधार
5 सार्वजनिक निक्षेप

वित्त एकत्र करने के लिए कंपनियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले विभिन्न साधनों के लिए चित्र 5.2 को देखिए।

चित्र 5.2

कंपनियों के द्वारा वित्त संकलन के साधन

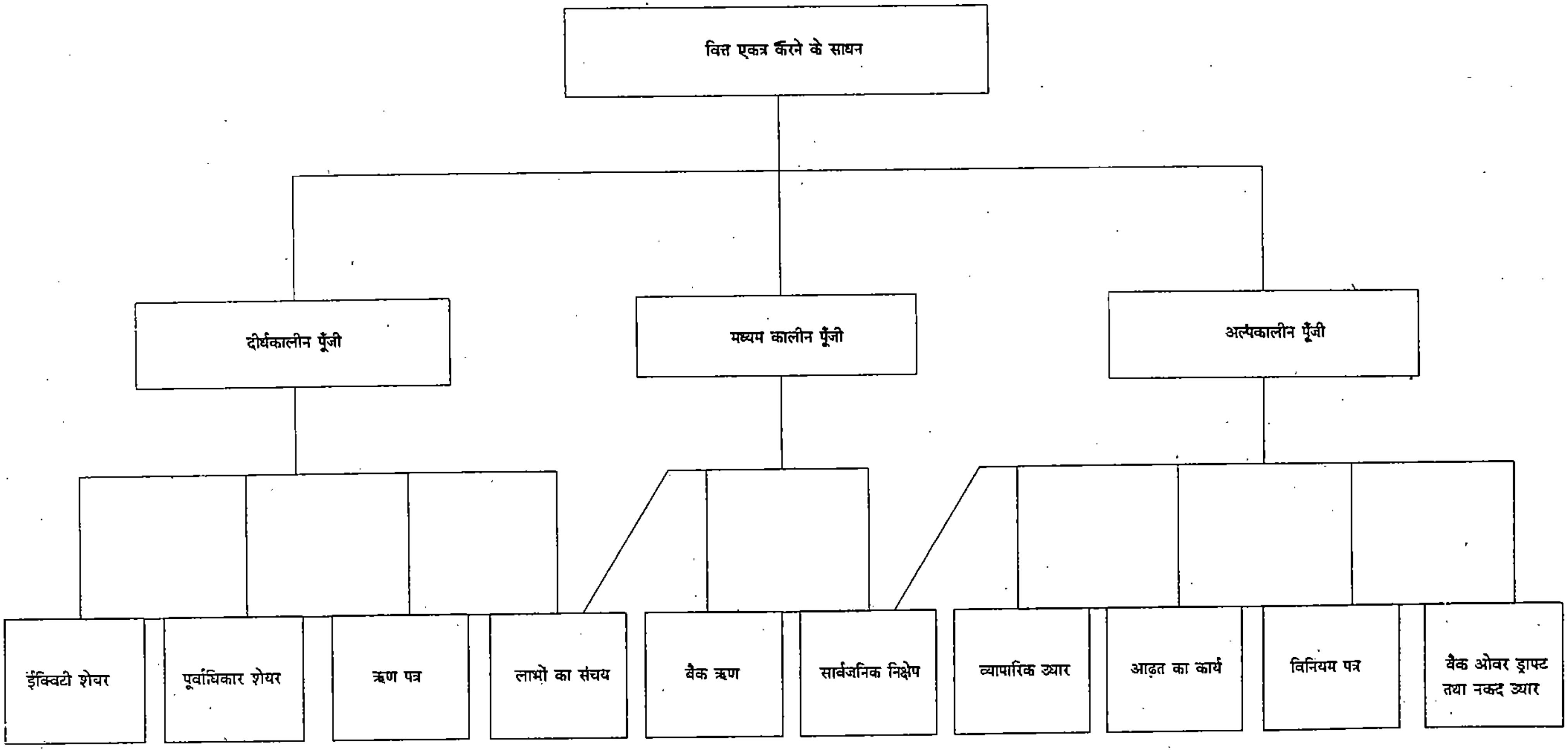

नोट : 1 सार्वजनिक निक्षेप का उपयोग मध्यमकालीन तथा अल्पकालीन दोनों उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।

2 लाभों के संचय का उपयोग दीर्घकालीन पूँजी तथा अल्पकालीन पूँजी दोनों के लिये किया जा सकता है।

5.5.1 शेयरों का निर्गमन (Issue of Shares)

कम्पनियों के पास दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन शेयरों का निर्गमन करना है। शेयर दो प्रकार के होते हैं (1) ईक्विटी शेयर (Equity Shares) तथा (2) पूर्वाधिकार शेयर (Preference Shares)। शेयरों के संबंध में शेयरधारियों का दायित्व शेयर के अंकित मूल्य तक सीमित होता है तथा ये शेयर आसानी से हस्तांतरणीय भी होते हैं। इन्ही कारणों से निवेशक शेयरों में अपनी पूंजी लगाना अधिक पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त निर्गमित शेयरों का अंकित मूल्य भी साधारणतया कम होता है, जैसे प्रति शेयर 10 रु. अथवा 100 रु.। इस प्रकार शेयरों में निवेश करना साधारण लोगों की पहुंच में होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि निजी कंपनी अपनी शेयर पूंजी में अंशदान के लिए जन साधारण को आमंत्रित नहीं कर सकती। ये कंपनियां कुछ सीमित व्यक्तियों को ही शेयर निर्गमित कर सकती हैं, जिनकी संख्या 50 से अधिक नहीं होनी चाहिए। निजी कंपनियों के शेयर स्वतंत्र रूप से हस्तांतरणीय भी नहीं होते। लेकिन सार्वजनिक सीमित दायित्व वाली कंपनियों के लिए ऐसे प्रतिबंध नहीं होते।

ईक्विटी शेयर : स्वामित्व पूंजी एकत्र करने के लिए ईक्विटी शेयर निर्गमित करने के कई लाभ होते हैं। इन शेयरों पर दिए जाने वाले लाभांश की दर उपलब्ध लाभों पर तथा संचालकों के विवेक पर निर्भर करती है। इसलिए कंपनी पर कोई स्थायी बोझ नहीं होता। लाभ वाले वर्षों में शेयर होल्डर लाभांश की ऊंची दर की आशा करते हैं। लेकिन साथ ही वे कंपनी की आय की अनिश्चितता से संबंधित जोखिम भी उठाते हैं। इस प्रकार इन शेयरों के निर्गमन से जोखिम पूंजी उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त ईक्विटी शेयरों के निर्गमन से प्राप्त की गई पूंजी का उपयोग स्थायी रूप से किया जा सकता है। जब तक कंपनी का अस्तित्व कायम रहा है तब तक इसे वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त ईक्विटी शेयरों के लिए कंपनी की परिसंपत्तियों को गिरवी रखने की आवश्यकता भी नहीं होती। परिसंपत्तियों की जमानत पर ऋण के रूप में अतिरिक्त धन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन ईक्विटी शेयरों के अत्यधिक निर्गमन से प्रबंधकों के लिए, जो कंपनी के प्रबंध पर नियंत्रण रखना चाहते हैं, कुछ समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। धारक को प्रत्येक ईक्विटी शेयरों के पीछे एक मत देने का अधिकार होता है। इस प्रकार ईक्विटी शेयरों के धारक अलग-अलग समूह बना सकते हैं तथा कंपनी के वर्तमान संचालकों के विरुद्ध मत दे सकते हैं। ऐसा करना हमेशा कंपनी के हित में नहीं भी हो सकता। इसके साथ-साथ केवल ईक्विटी शेयर पूंजी पर ही पूर्णतया निर्भर रहने से कंपनी को "ईक्विटी पर व्यापार" (Trading on equity) का लाभ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त एक बार ईक्विटी शेयर निर्गमित करने के बाद वह रकम स्थायी पूंजी का रूप ले लेती है, जो कभी-कभी उस रकम से कहीं अधिक हो जाती है, जिसका उपयोग कंपनी लाभप्रद ढंग से कर सकती है। ऐसी स्थिति में विस्तृत वैधानिक औपचारिकताओं का पालन किए बिना उस पूंजी को कम करने का दूसरा कोई रास्ता नहीं होता। साथ ही शेयर पूंजी में कमी होने से कंपनी की व्यावसायिक छवि पर भी बुरा असर पड़ता है।

पूर्वाधिकार शेयर : दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का एक अन्य साधन है — पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन। पूर्वाधिकार शेयरों के निर्गमन के कुछ विशिष्ट लाभ होते हैं। इन शेयरों पर लाभ की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित दर से लाभांश दिया जाता है। अतः कम्पनी के वित्तीय साधनों पर कोई अनिवार्य बोझ नहीं पड़ता। साथ ही ऐसे निवेशक जो अपनी बचत को पूर्णतः जोखिम में नहीं डालना चाहते तथा जो एक ऐसी आय से संतुष्ट हैं जो ऋण पर दिए जाने वाले ब्याज से अधिक है, इन शेयरों को ही अधिक पसंद करते हैं। दूसरे, पूर्वाधिकार शेयर होल्डर को मतदान का अधिकार नहीं होता। इस प्रकार वे कंपनी के प्रबंध में भाग नहीं ले सकते तथा प्रवर्तकों को इनसे कोई खतरा नहीं होता। पूर्वाधिकार शेयरों का एक अन्य लाभ यह है कि अच्छे वर्षों में कंपनी ईक्विटी शेयर होल्डर के लिए उच्च दर के लाभांश की घोषणा कर सकती है, क्योंकि पूर्वाधिकार शेयरों पर लाभांश की दर निश्चित होती है। इसके अतिरिक्त पूर्वाधिकार शेयर पूंजी का स्थायी उपयोग अनिवार्य नहीं होता। कंपनी शोध्य पूर्वाधिकार शेयर जारी कर सकती है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें वापस लौटा सकती है और इस पूंजी का प्रतिस्थापन किसी अन्य प्रकार की पूंजी का निर्गमन करके किया जा सकता है।

लाभांश प्राप्त करने में तथा कंपनी के समापन पर पूंजी की वापसी से संबंधित प्राथमिक अधिकारों के

कारण ही कुछ निवेशक पूर्वाधिकार शेयर प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन कुछ अन्य निवेशक स्थिर आय तथा लाभांश न मिलने की जोखिम के कारण पूर्वाधिकार शेयर लेना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त उन्हें शेयरों के बढ़ते हुए बाजार मूल्यों से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि उच्च लाभार्जन शक्ति पूर्वाधिकार शेयर के बाजार मूल्य पर समतुल्य रूप से प्रतिबिम्बित नहीं होती।

5.5.2 ऋणपत्रों का निर्गमन (Issue of Debentures)

साधारणतया कंपनियों को उधार लेने का तथा निर्दिष्ट अंकित मूल्य वाली प्रतिभूतियों के रूप में ऋणपत्रों को जारी करके ऋण प्राप्त करने का अधिकार होता है। ऋणपत्रों पर देय ब्याज की दर निर्गमन के समय ही निश्चित कर दी जाती है तथा कंपनी की संपत्ति तथा परिसंपत्तियों पर प्रभार लगा कर उनकी प्राप्ति को निश्चितता प्रदान कर दी जाती है जिससे उनके भुगतान के लिए आवश्यक सुरक्षा मिल जाती है। ऋण पत्रों का निर्गमन अधिकतर व्यवसाय की दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिए धन जुटाने के उद्देश्य से किया जाता है। ऋणपत्रों के निर्गमन के कुछ लाभ हैं जो निम्न प्रकार हैं – ऋणपत्रों पर ब्याज की दर निश्चित होने के कारण स्थिर आय वाली कंपनियां 'ईक्विटी पर व्यापार' के द्वारा ईक्विटी पूंजी पर अधिक आय प्राप्त कर सकती है। ब्याज की दर शेयर पर प्रत्याशित आय की दर से साधारणतया कम होती है। इसका कारण यह है कि ऋणपत्रधारियों को कोई जोखिम नहीं उठानी पड़ती।

ऋणपत्रधारियों को मतदान का अधिकार नहीं होता। इसलिए कंपनी के प्रबंध पर, जो प्रवर्तकों अथवा वर्तमान संचालकों द्वारा किया जाता है, कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन यदि कंपनी की आय अनिश्चित है अथवा उसका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता तो ब्याज के भुगतान तथा मूल रकम की वापसी के निश्चित उत्तरदायित्वों के कारण ऋणपत्रों के निर्गमन से कुछ गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। यदि कंपनी को लाभ नहीं होता तब भी वह ब्याज चुकाने के लिए बाध्य होती है। यदि ब्याज के भुगतान में अथवा मूल रकम की वापसी में कोई चूक हो जाती है तो न्यायालय के आदेश द्वारा परिसंपत्तियों को कुर्क किया जा सकता है। व्यापारिक कंपनियों के पास साधारण रूप से अधिक स्थायी परिसंपत्तियां नहीं होती, इसलिए वे ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए जमानत नहीं दे सकतीं। यहां तक कि विनिर्माण की कंपनियाँ भी अपनी संपत्तियों और परिसंपत्तियों के अनुपात में ही ऋण ले सकती हैं।

5.5.3 वित्तीय संस्थाओं से ऋण (Loan from Financial Institutions)

कंपनियां अपने दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन ऋण वित्तीय संस्थाओं जैसे भारतीय औद्योगिक वित निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, राज्य स्तर के औद्योगिक विकास निगमों आदि से प्राप्त कर सकती हैं। इकाई 6 में आप वित्तीय संस्थाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। ये वित्तीय संस्थाएं अनुमोदित योजनाओं या परियोजनाओं के लिए अधिक से अधिक 25 वर्ष तक की अवधि के ऋण प्रदान करती हैं। ऐसे ऋणों को जिन्हें स्वीकृत होना है उन्हें कंपनी की संपत्ति को गिरवी रखकर अथवा कंपनी के माल, शेयर, सोना आदि को बंधक बनाकर अथवा रेहन रखकर सुरक्षा का आवरण अवश्य प्राप्त होना चाहिए।

साधारणतया ये वित्तीय संस्थाएं कंपनी के कार्य-संपादन पर कुछ नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एक या दो निदेशक (Director) नियुक्त करती हैं। ये मनोनीत निदेशक मंडल को ऐसे निर्णय लेने से रोक सकते हैं जो उधार देने वाली संस्था के हित में न हों। ऋण समझौते में एक उल्लिखित अवधि के पश्चात् ऋणों को ईक्विटी पूंजी में परिवर्तित करने की व्यवस्था की जा सकती है, यदि उधार देने वाली संस्था इस प्रकार का निर्णय लेती है।

वित्त प्राप्त करने के इस साधन का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इस पर देय ब्याज की दर बाजार की ब्याज की दर से कम होती है। लेकिन ऋण की स्वीकृति से पहले निवेश परियोजना की सूक्ष्म छानबीन की जाती है। उन कंपनियों को प्राथमिकता दी जाती है जिनकी परियोजनाएं पांच वर्षीय योजना में दी गई औद्योगिक विकास की प्राथमिकताओं के अनुरूप होती है। परियोजना की संभावित लाभार्जन क्षमता का तथा कंपनी की ब्याज चुकाने एवं ऋण वापसी संबंधी उत्तरदायित्वों को निभाने की योग्यता का बड़ी सूक्ष्मता से मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही कंपनियों को कई वैधानिक एवं तकनीकी औपचारिकताओं को भी पूरा करना पड़ता है। इस प्रकार वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने संबंधी समझौते की प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लग जाता है।

5.5.4 वाणिज्यिक बैंकों से ऋण (Loan from Commercial Banks)

कम्पनियां अपनी संपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की जमानत पर वाणिज्यिक बैंकों से मध्यमकालीन ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार परिसंपत्तियों के आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण के लिए बैंकों से आवश्यक धन प्राप्त किया जा सकता है। यदि बैंक कंपनी की आय अर्जित करने की क्षमता से तथा पर्याप्त रोकड़ प्रवाह उत्पन्न करने की योग्यता से संतुष्ट हो जाती है तो साधारणतया औद्योगिक परिसंपत्तियों के मूल्य के 50 से 75 प्रतिशत तक के बराबर का ऋण स्वीकृत कर दिया जाता है। बैंक कंपनी के प्रबंध में हस्तक्षेप में नहीं करता। वित्त प्राप्त करने के इस साधन में परिसंपत्तियों को गिरवी रखने के अलावा किसी अन्य वैधानिक औपचारिकता को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त ऋण को किश्तों में वापस लौटाया जा सकता है तथा इस सीमा तक ब्याज की बचत की जा सकती है। कंपनी के निदेशकों की व्यक्तिगत जमानत पर भी बैंकों से अल्पकालीन ऋण भी प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे ऋणों को ''बेजमानती उधार'' (Clean advances) कहा जाता है।

5.5.5 सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposit)

कंपनियां प्रायः शेयर होल्डरों, कर्मचारियों और जन-साधारण को अपनी बचत को कंपनी के पास जमा कराने के लिए आमंत्रित करके धन एकत्र करना सुविधाजनक तथा आवश्यक समझती है। कंपनी अधिनियम कम्पनियों को एक बार में 3 वर्ष तक के लिए ऐसे जमा प्राप्त करने की अनुमति देता है। इस प्रकार कंपनियां अपनी अल्पकालीन तथा मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सार्वजनिक निक्षेप स्वीकार कर सकती हैं। यह वित्त प्राप्त करने का एक बहुत ही आसान तरीका है जिसके लिए कंपनी को कंपनी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई विधि के अनुसार अपनी वित्तीय स्थिति का विवरण देते हुए समाचार पत्रों में केवल विज्ञापन देना होता है। इस प्रकार के निक्षेप प्राप्त करने के लिए परिसंपत्तियों अथवा अन्य प्रतिभूतियों को गिरवी रखकर सुरक्षा आवरण देने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के निक्षेप बैंक में कराई गई जमा पर दी जाने वाली ब्याज दर की अपेक्षा ऊँची ब्याज दर का प्रलोभन देकर प्राप्त किए जा सकते हैं।

लेकिन कंपनियों को सार्वजनिक निक्षेप से असीमित धनराशि प्राप्त करने की अनुमति नहीं है। समस्त अदत्त निक्षेप (outstanding deposits) की कुल राशि कंपनी की प्रदत्त पूंजी (paid-up capital) तथा मुक्त रिज़र्व (free reserves) के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। जमा पर दिया जाने वाला ब्याज भी सरकार द्वारा निर्धारित की गई दर के अनुरूप होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कंपनी अधिनियम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इस प्रकार की जमा की वापसी के लिए प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में कम्पनी को उस वर्ष के दौरान परिपक्व होने वाले जमा की कम से कम 10 प्रतिशत राशि किसी बैंक में जमा करवानी होगी अथवा उतनी ही रकम का सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करना होगा। इसके अतिरिक्त कंपनी को प्रत्येक वर्ष कंपनियों के रजिस्ट्रार के पास रिटर्न या विवरण भेजना होगा जिसमें सार्वजनिक जमा से संबंधित समस्त सूचनाएं दी गई हों।

लेकिन छोटे पैमाने के उद्योग (ऐसी विनिर्माण कंपनियां जिनका संयंत्र एवं मशीनरी में निवेश 35 लाख रु. से अधिक नहीं है) सार्वजनिक निक्षेप की अधिकतम सीमा से संबंधित इस प्रकार के प्रतिबंधों से मुक्त हैं, यदि वे निम्नलिखित शर्तों को पूरा करते हों :

निक्षेपों की कुल राशि 8 लाख रु. अथवा प्रदत्त पूंजी की राशि (इन दोनों में से जो भी कम हो) से अधिक नहीं है।

प्रदत्त पूंजी 12 लाख रु. से अधिक नहीं है

जमाकर्ताओं की संख्या 50 से अधिक नहीं है तथा

जमा के लिए जनसाधारण को आमंत्रित नहीं किया गया है।

5.5.6 लाभों का संचय (Retention of Profits)

लाभप्रद कंपनियां साधारणतया लाभों की समस्त राशि का लाभांश के रूप में वितरण नहीं करतीं। लाभों का एक निश्चित भाग रिज़र्व में रख दिया जाता है, तथा इसका उपयोग अतिरिक्त पूंजी के रूप में किया जाता है। इस प्रकार किसी कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति वार्षिक लाभों के एक भाग का संचय करके भी की जा सकती है। इसे ''लाभों का पुनर्निवेश'' (Reinvestment of Profits or Ploughing back of profits) माना जा सकता है। चूंकि संचित लाभ पर

वास्तव में कंपनी के शेयर होल्डरों का ही हक होता है अतः इन्हें स्वामित्व पूंजी का ही एक भाग माना जाता है तथा इनका उपयोग कंपनी की दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसके लिए किसी वैधानिक औपचारिकता को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती और न ही कंपनी को पूंजी प्राप्त करने के लिए बाहर के निवेशकों की पर आश्रित रहना पड़ता है। लाभों का संचय एक प्रकार से व्यवसाय का "स्वयं वित्तपोषण" (Self Financing) होता है।

लेकिन केवल चालू लाभप्रद कंपनियां ही वित्त जुटाने के इस साधन का उपयोग कर सकती हैं। लाभप्रद कंपनियों को वर्तमान लाभ की 10 प्रतिशत तक की राशि के बराबर की रकम के अंतरण की विधिक रूप से अनुमति होती है। कोई भी कंपनी की 10 प्रतिशत से अधिक राशि भी संचित कोषों को स्थानांतरित कर सकती है, यदि ऐसी कंपनी कंपनी-अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित नियमों में दी गई कुछ शर्तों को पूरा करती है। संक्षेप में पिछले वर्षों में वितरित किए गए लाभांश के अनुरूप लाभांश की एक न्यूनतम दर की घोषणा करने के बाद ही वर्तमान लाभों की 10 प्रतिशत से अधिक राशि का संचय किया जा सकता है।

5.5.7 व्यापारिक साख (Trade Credit)

जिस प्रकार कंपनियां वस्तुओं का उधार विक्रय करती हैं उसी प्रकार वे विक्रेताओं से कच्चे माल, यंत्रों के हिस्से, सामग्री तथा फालतू पुर्जे आदि का उधार क्रय भी करती हैं। इसलिए व्यापारिक लेनदारों को देय अदत्त राशि तथा उधार क्रय से संबंधित देय विनिमय पत्र भी वित्त प्राप्त करने के स्रोत माने जाते हैं। माल के विक्रेता साधारणतया छः महीने तक की अवधि की साख स्वीकृत करते हैं तथा इस प्रकार वे कंपनी को अल्पकालीन वित्त प्रदान करते हैं। इस प्रकार के वित्त की उपलब्धता व्यवसाय के परिणाम से घनिष्ठ रूप से संबंधित होती है। जब वस्तुओं के उत्पादन तथा विक्रय में वृद्धि होती है तो क्रय की मात्रा में भी स्वाभाविक वृद्धि होती है तथा व्यापारिक साख भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। दूसरी ओर यदि विक्रय में कमी होती है तो इसी के अनुरूप कच्चे माल आदि के क्रय में भी कमी होती है तथा इसके फलस्वरूप वित्त के स्रोत के रूप में व्यापारिक साख में भी कमी होती है। इस प्रकार लेनदारों के शेष (देय खाते) तथा देय विनिमय पत्र दोनों ही सामग्री एवं निर्मित वस्तुओं के स्टॉक तथा देनदारों जैसी चालू परिसंपत्तियों के लिए वित्त प्राप्त करने में कंपनियों की सहायता करते हैं। लेकिन व्यापारिक साख के कारण उस नकद कटौती की हानि होती है जो क्रय की तिथि के सात से दस दिनों के भीतर भुगतान करने से प्राप्त की जा सकती थी। इस हानि को व्यापारिक साख की लागत माना जाता है।

5.5.8 आढ़त का कार्य (Factoring)

उधार विक्रय के कारण ग्राहकों द्वारा कंपनी को देय रकम साधारणतया उस अवधि तक अदत्त रहती है, जिस अवधि के लिए माल उधार दिया गया था अर्थात् जब तक कि देनदारों से रकम वसूल नहीं कर ली जाती। यदि आवश्यक हो तो देनदारों के शेष किसी बैंक को सौंपे जा सकते हैं तथा बैंक से अग्रिम राशि प्राप्त कर ली जाती है।

इस व्यवस्था के अधीन देनदारों से रकम वसूल करने का उत्तरदायित्व बैंक अपने ऊपर ले लेता है जिसके लिए कम्पनी को एक निश्चित प्रभार का भुगतान करना पड़ता है। यह अल्पकालीन पूंजी प्राप्त करने का एक साधन है तथा इसे "आढ़त का कार्य" कहा जाता है। इससे देनदारों द्वारा देय ऋण वसूली के लिए देय होने से पहले ही कम्पनियों को देनदारों के शेष धनों के विरुद्ध वित्त प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इससे देनदारों से रुपया वसूल करने के प्रयत्नों से बचने में भी सहायता मिलती है। इस कार्य के लिए दिए जाने वाले बैंक प्रभार को इस प्रकार के वित्त प्राप्त करने की लागत माना जाता है। बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली रकम का अनुमान अशोध्य ऋणों की जोखिम को ध्यान में रखकर ही लगाया जाता है ताकि देनदारों द्वारा ऋणों की वसूली न होने की स्थिति के लिए व्यवस्था हो सके। आढ़त के कार्य का एक दोष यह है कि उन ग्राहकों को जो वास्तव में कठिनाई में हैं भुगतान देर से करने की सुविधा अब प्राप्त नहीं होती जो उन्हें इस व्यवस्था की अनुपस्थिति में कंपनी से प्राप्त हो सकती थी।

5.5.9 विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना (Discounting of Bill of Exchange)

अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए कंपनियों द्वारा इस साधन का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। जब वस्तुओं का उधार विक्रय किया जाता है तो साधारणतया वस्तुओं के क्रेताओं की स्वीकृति के लिए विनिमय पत्र तीन अथवा छः महीनों के बाद देय होते हैं। इन विनिमय पत्रों को कंपनियां मियाद पूरी होने की तिथि तक अपने पास रखने के स्थान पर उन्हें वाणिज्य बैंकों से बट्टे पर भुनाना अधिक पसंद करती हैं जिसके लिए उन्हें एक प्रभार देना पड़ता है जिसे बैंक बट्टा कहा जाता है। ये विनिमय पत्र बैंक के पक्ष में पृष्ठांकित किए जाते हैं ताकि परिपक्व होने पर बैंक संबंधित पक्षों से रकम वसूल कर सके। बट्टे की रकम विनिमय पत्रों को भुनाते समय ही इन पत्रों के मूल्य में से घटा दी जाती है। बैंकों द्वारा लगाए जाने वाले बट्टे की दर समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है। वास्तव में यह विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाने की तिथि से लेकर इनके परिपक्व होने की तिथि तक की अवधि के ब्याज के बराबर होती है। यदि परिपक्व होने पर कोई विनिमय पत्र अस्वीकृत हो जाता है तो बैंक इसे कंपनी को वापस लौटा देता है तथा कंपनी बैंक को उस राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हो जाती है। बैंक द्वारा लगाया जाने वाला बट्टा ही वित्त प्राप्त करने के इस प्रकार के साधन की लागत होता है।

5.5.10 ओवर ड्राफ्ट तथा कैश क्रेडिट (Overdraft and Cash Credit)

वाणिज्य बैंकों से कैश क्रेडिट तथा ओवर ड्राफ्ट की व्यवस्था करना अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कंपनियों द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला एक सामान्य तरीका है। कैश क्रेडिट (नकद साख) से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जिसके अनुसार वाणिज्य बैंक निर्धारित सीमा के अन्दर, जिसे कैश क्रेडिट की सीमा कहा जाता है, समय-समय पर अग्रिम के रूप में पैसा निकालने की अनुमति देते हैं। ऐसी सुविधा वस्तुओं के स्टॉक की जमानत पर अथवा ऐसे प्रतिज्ञापत्रों की जमानत पर प्रपत्रों पर किसी दूसरे व्यक्ति के हस्ताक्षर भी होते हैं अथवा अन्य क्रय-विक्रय योग्य लेख-पत्रों जैसे सरकारी बॉण्ड आदि की जमानत पर दी जाती है। कंपनी को स्वीकृत सीमा के अंदर समय-समय पर आवश्यक रकम निकालने की अनुमति होती है। जमानत के मूल्य के आधार पर नकद साख की सीमा भी संशोधित की जा सकती है। निकाली गई रकम जब भी संभव हो तब लौटाई जा सकती है। ब्याज जमा से अधिक निकाली गई रकम पर लगाया जाता है।

ओवर ड्राफ्ट बैंक के साथ एक ऐसी अस्थायी व्यवस्था है जो कंपनी को एक निश्चित सीमा तक अपने चालू खाते में उपलब्ध रकम से अधिक रकम निकलवाने की अनुमति देती है। कैश क्रेडिट की तरह ही ओवर ड्राफ्ट सुविधा भी जमानत के आधार पर दी जा सकती है। ब्याज वास्तव में निकाली गई अधिक रकम पर ही लगाया जाता है।

कैश क्रेडिट तथा ओवर ड्राफ्ट पर लगाई जाने वाली ब्याज की दर बैंक जमा पर दी जाने वाली ब्याज की दर से अधिक होती है। लेकिन वित्त प्राप्त करने के इस साधन के अंतर्गत बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार अल्पकालीन कार्यों के लिए धन निकलवाने की सुविधा प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न ख

1 नीचे वित्त जुटाने के छह साधन दिए गए हैं। उन साधनों पर निशान लगाइए जिनका उपयोग स्थायी पूंजी प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

i) ईक्विटी शेयरों का निर्गमन
ii) बैंकों से बेजमानती उधार
iii) सार्वजनिक निक्षेप
iv) वित्तीय संस्थाओं से ऋण
v) विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना
vi) पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन

2 अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए किसी कंपनी द्वारा निम्नलिखित साधनों में से किन साधनों का उपयोग किया जा सकता है? केवल उन्हीं साधनों पर निशान लगाइये :

क) ऋण पत्रों का निर्गमन
ख) कैश क्रेडिट
ग) सार्वजनिक निक्षेप
घ) बैंक ओवर ड्राफ्ट
ङ) बैंकों से आवधिक ऋण

3 निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सत्य हैं तथा कौन से असत्य हैं।

i) जब कोई कंपनी आवश्यक पूंजी जुटाने के लिए पूर्वाधिकार शेयरों का तथा ऋणपत्रों का निर्गमन करती है तब "ईक्विटी पर व्यापार" होता है।

ii) स्थायी पूंजी पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन करके प्राप्त की जा सकती है।

iii) 'आढ़त के कार्य' से तात्पर्य है किसी बैंक को रकम वसूल करने वाले एजेंट के रूप में नियुक्त करना।

iv) ईक्विटी शेयर पूंजी का उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में निवेश के लिए किया जा सकता है।

v) विनिमय पत्रों को ब्याज का अग्रिम भुगतान करके किसी बैंक से भुनाया जा सकता है।

vi) किसी कंपनी द्वारा सार्वजनिक निक्षेप से कितनी भी रकम प्राप्त की जा सकती है।

vii) ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए परिसंपत्तियों की पर्याप्त जमानत अवश्य होनी चाहिए।

viii) कैश क्रेडिट ठीक उसी तरह की होती है जैसी बैंकों से बेजमानती उधार।

ix) दीर्घकालीन उद्देश्यों के लिए बैंकों से आवधिक ऋण प्राप्त किये जा सकते हैं।

x) व्यापारिक साख से अल्पकालीन निवेशों के लिए वित्त प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

4 कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) ईक्विटी शेयर .... के लिए निर्गमित किए जाते हैं। (स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश, कार्य संपादन संबंधी व्ययों के लिए धन जुटाने, संयंत्रों के आधुनिकीकरण)

ख) अल्पकालीन पूंजी साधारणतया .... से प्राप्त की जाती है। (वित्तीय संस्थाओं, जन-साधारण, वाणिज्यक बैंक)

ग) कैश क्रेडिट .... की जमानत पर स्वीकृत की जाती है। (स्थायी परिसंपत्तियों, माल के स्टॉक, बैंक शेष)

घ) व्यापारिक साख की लागत .... होती है। (लाभ की हानि, नकद कटौती की हानि, ब्याज की हानि)

ङ) उधार विक्रय के लिए ग्राहकों से प्राप्त होने वाली रकम के लिए .... वित्त की आवश्यकता होती है। (दीर्घकालीन, मध्यकालीन, अल्पकालीन)

च) कंपनियों द्वारा सार्वजनिक निक्षेप अधिक से अधिक .... वर्ष तक की अवधि के लिए प्राप्त किए जा सकते हैं। (दो, तीन, चार)

5.6 सारांश

प्रत्येक व्यावसायिक फर्म को अपने कार्यकलापों के लिए धन अथवा वित्त की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में वित्त का महत्त्व दो कारणों से बढ़ गया है : i) आजकल व्यावसायिक कार्यकलाप पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर किए जाते हैं, तथा ii) विनिर्माण प्रक्रियाएं पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गई हैं।

व्यापक रूप से व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताएँ दो प्रकार ही होती हैं i) स्थायी पूंजी तथा ii) कार्यशील पूंजी। स्थायी परिसंपत्तियों के क्रय के लिए आवश्यक वित्त को स्थायी पूंजी अथवा दीर्घकालीन पूंजी कहा जाता है। चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए आवश्यक वित्त को कार्यशील

पूंजी अथवा प्रचल पूंजी कहा जाता है। साधारणतया व्यवसाय की प्रकृति तथा व्यावसायिक इकाई का आकार इस बात का निर्धारण करते हैं कि व्यवसाय में कितनी स्थायी पूंजी की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर कार्यशील पूंजी की मात्रा व्यवसाय की प्रकृति, विनिर्माण प्रक्रिया पूर्ण होने की अवधि तथा उन शर्तों पर निर्भर करती है जिन पर वस्तुओं का क्रय तथा माल का विक्रय किया जाता है।

व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जुटाए गए वित्त को स्वामित्व पूंजी तथा ऋण पूंजी के रूप में विभाजित किया जा सकता है। व्यवसाय में स्वामियों (मालिकों, साझेदारों अथवा शेयरहोल्डरों) द्वारा लगाई गई पूंजी को स्वामित्व पूंजी कहा जाता है। ऋण पूंजी प्रत्यक्ष ऋणों द्वारा अथवा किसी कंपनी के लिए ऋणपत्रों अथवा बॉण्डों के निर्गमन द्वारा प्राप्त की जा सकती है। कंपनियों द्वारा स्वामित्व पूंजी शेयरों के निर्गमन से प्राप्त की जाती है। ऋणपूंजी का उपयोग बहुधा स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की ऊंची दर का लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसे "इक्विटी पर व्यापार" कहा जाता है।

पूंजी संरचना से तात्पर्य उस सापेक्ष अनुपात से होता है जिसमें कुल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। कुल पूंजी में उस पूंजी के अनुपात को पूंजी का मिलान कहा जाता है, जिस पर स्थायी ब्याज दिया जाता है। दीर्घकालीन वित्त तथा अल्पकालीन वित्त में प्रमुख अंतर यह है कि दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता एक लंबी अवधि अर्थात् पांच वर्ष अथवा उससे भी अधिक अवधि तक के लिए होती है, जबकि अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता थोड़े समय के लिए अर्थात् एक वर्ष से भी कम समय के लिए होती है। दो से पांच वर्षों तक की अवधि के लिए आवश्यक वित्त को मध्यमकालीन वित्त कहा जाता है।

एकल स्वामित्व संगठनों तथा साझेदारी फर्मों के पास व्यवसाय के लिए वित्त के सीमित साधन होते हैं। वे वित्त प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी एक अथवा अधिक साधनों का उपयोग कर सकते हैं — स्वयं की बचतों का निवेश, मित्रों तथा संबंधियों से ऋण, वाणिज्य बैंकों से अग्रिम तथा वित्तीय कंपनियों से ऋण। इन सबके लिए उनकी अपनी व्यक्तिगत जमानत अथवा अपनी संपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की जमानत देनी पड़ती है।

कोई कंपनी दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन वित्त की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी एक अथवा अधिक साधनों का प्रयोग कर सकती है — शेयरों का निर्गमन, ऋणपत्रों का निर्गमन, वित्तीय संस्थाओं से ऋण, वाणिज्य बैंकों से ऋण, सार्वजनिक निक्षेप तथा लाभों का संचय। अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए कोई कंपनी व्यापारिक साख, आढ़त के कार्य, विनिमय पत्र भुनाने, ओवर ड्राफ्ट एवं कैश क्रेडिट की व्यवस्था तथा सार्वजनिक जमा संकलन आदि साधनों का उपयोग कर सकती है। इनमें से प्रत्येक साधन के कुछ लाभ तथा दोष हैं।

5.7 शब्दावली

ऋण पूंजी (Borrowed Capital) : ऋणों द्वारा अथवा ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा प्राप्त किया गया धन, जिसके फलस्वरूप निवेशकों को (अर्थात् ऋणदाताओं को) ब्याज का निरंतर भुगतान प्राप्त करने तथा देय होने पर ऋण की वापसी का दावा करने का अधिकार प्राप्त होता है।

पूंजी मिलान (Capital Gearing) : किसी व्यवसाय की कुल पूंजी में स्थायी ब्याज वाली पूंजी का अनुपात।

पूंजी संरचना (Capital Structure) : वह अनुपात जिसमें कुल वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न स्रोतों का उपयोग किया जाता है, जैसे शेयर, ऋणपत्र, ऋण, संचित लाभ आदि।

आढ़त का कार्य (Factoring) : देनदारों को किसी बैंक के सुपुर्द करना तथा नियत प्रभार का भुगतान करके बैंक पर ऋण वसूली का उत्तरदायित्व डालकर उससे अग्रिम रोकड़ प्राप्त करना।

स्थायी पूंजी (Fixed Capital) : स्थायी परिसंपत्तियों जैसे भूमि, भवन, संयंत्र एवं मशीनरी, फर्नीचर आदि के क्रय के लिए आवश्यक धन।

दीर्घकालीन वित्त (Long-term Finance) : एक लंबे समय तक अर्थात् पांच अथवा इससे

अधिक वर्षों के लिए आवश्यक वित्त जिसका उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों के क्रय के लिए तथा चालू परिसंपत्तियों के एक भाग में निरंतर निवेश के लिए किया जाता है।

मध्यकालीन वित्त (Medium-term Finance) : दो से पांच वर्षों तक की अवधि के लिए आवश्यक वित्त जिसका उपयोग साधारणतया भवन के नवीनीकरण तथा संयंत्र एवं मशीनरी के आधुनिकीकरण आदि के लिए किया जाता है।

स्वामित्व पूंजी (Ownership Capital) : व्यवसाय के स्वामियों द्वारा स्थायी उपयोग के लिए निवेश किया गया धन, जिससे उनको यह निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होता है कि व्यावसायिक कार्यकलापों का प्रबंध किस प्रकार किया जाएगा तथा लाभों में उनका हिस्सा कितना होगा।

सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits) : मध्यकालीन अथवा अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जन-साधारण से प्राप्त धन।

अल्पकालीन वित्त (Short-term Finance) : अल्प समय के लिए अर्थात् एक वर्ष से भी कम समय के लिए आवश्यक धन, जिसका उपयोग चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए किया जाता है, जो व्यवसाय के बदलते हुए परिणाम के कारण घटती बढ़ती रहती हैं।

व्यापारिक साख (Trade Credit) : कच्चे माल तथा उपभोग्य मदों के विक्रेताओं की देय अदत्त रकम तथा उधार क्रय से संबंधित देय प्रपत्र।

ईक्विटी पर व्यापार (Trading on Equity) : ईक्विटी पूंजी पर आय की ऊंची दर प्राप्त करने के लिए ऋण पूंजी का उपयोग।

कार्यशील पूंजी (Working Capital) : कच्चे माल के स्टॉक, निर्मित वस्तुओं के स्टॉक, देनदार, प्राप्य प्रपत्र आदि चालू परिसंपत्तियों में लगाने के लिए आवश्यक धन।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत* (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1, 2 खण्ड पांच

वी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय* (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 19, 20

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एल.एस.जी. जोशी : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 15

राम नारायण गोयल : *आधुनिक व्यवसाय संगठन एवं प्रबंध* (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1, 2 खण्ड चार

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य (vi) सत्य (vii) सत्य (viii) असत्य (ix) सत्य

2 (i) स्थायी (ii) कार्यशील (iii) दीर्घकालीन (iv) एक (v) दो से पांच (vi) स्थायी (vii) अल्पकालीन (viii) अल्पकालीन

3 (1) (iv) (2) (v) (3) (vi) (4) (vii) (5) (ii) (6) (iii) (7) (i)

ख 1 i, iv, vi

2 ख, ग, घ

3 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य (vi) असत्य (vii) सत्य (viii) असत्य (ix) असत्य (x) सत्य

4 क) स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश

ख) वाणिज्य बैंक

ग) माल के स्टॉक

घ) नकद कटौती की हानि

ङ) अल्पकालीन

च) तीन

5.10 स्वपरख प्रश्न

1 व्यवसाय में वित्त के महत्त्व का विवेचन कीजिए। स्थायी पूंजी तथा कार्यशील पूंजी में अंतर बताइये।

2 उन उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए जिनके लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का वर्णन कीजिए।

3 ऋण द्वारा पूंजी प्राप्त करने के क्या लाभ हैं?

4 स्वामित्व पूंजी से आपका क्या तात्पर्य होता है? इसके क्या लाभ हैं तथा इसकी क्या सीमाएं हैं?

5 स्थायी पूंजी प्राप्त करने के साधनों का वर्णन कीजिए।

6 अल्पकालीन पूंजी प्राप्त करने के कौन-कौन से साधन हैं। उनका विवेचन कीजिए।

7 ऋणपत्र निर्गमित करने के लाभों तथा दोषों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। स्थायी पूंजी प्राप्त करने के साधन के रूप में ईक्विटी पूंजी से इसकी तुलना कीजिए।

8 ईक्विटी शेयर तथा पूर्वाधिकार शेयर निर्गमित करने के लाभों तथा दोषों की तुलना कीजिए।

9 सार्वजनिक निपेक्ष द्वारा वित्त प्राप्त करने के क्या लाभ हैं? सार्वजनिक निक्षेप प्राप्त करने के लिए कौन-कौन सी वैधानिक औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं?

10 अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के साधनों के रूप में 'आढ़त के कार्यों' तथा 'विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाने के कार्य' का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

11 बैंक ओवरड्राफ्ट तथा कैश क्रेडिट संबंधी सुविधाओं से आप क्या समझते हैं? यह भी बताइये कि कैश क्रेडिट तथा ओवरड्राफ्ट के लिए किस प्रकार की जमानत की आवश्यकता होती है?

12 पूंजी-संरचना से आपका क्या तात्पर्य है? पूंजी-संरचना के संबंध में निर्णय लेते समय प्रबंधकों को किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

नोट : इन प्रश्नों से आपको इकाई को समझने में सहायता मिलेगी। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। ये प्रश्न केवल आपके अभ्यास के लिए हैं। इसलिए इन प्रश्नों को हल करके आप विश्वविद्यालय न भेजें।

इकाई 6 दीर्घकालीन वित्त के स्रोत एवं अभिगोपन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 दीर्घकालीन वित्त की प्रकृति एवं महत्त्व

6.3 दीर्घकालीन वित्त के स्रोत

- 6.3.1 पूंजी बाजार
- 6.3.2 विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं
- 6.3.3 पट्टाधृति कंपनियां
- 6.3.4 विदेशी स्रोत
- 6.3.5 संचित लाभ

6.4 अभिगोपन

- 6.4.1 अभिगोपन क्या है?
- 6.4.2 अभिगोपन की शर्तें एवं प्रतिबंध
- 6.4.3 विधिक विनियम
- 6.4.4 अभिगोपन के लाभ एवं सीमाएं
- 6.4.5 अभिगोपन एजेंसियाँ व संस्थाएँ

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 स्वपरख प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- दीर्घकालीन वित्त की प्रकृति एवं महत्त्व की व्याख्या कर सकें
- दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न स्रोतों की पहचान कर सकें
- अभिगोपन की परिभाषा कर सकें
- अभिगोपन का महत्व व इसकी सीमाओं की व्याख्या कर सकें
- अभिगोपन के संबंध में विधिक प्रतिबंधों को जान सकें।

6.1 प्रस्तावना

व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के लिए वित्त प्राप्ति के विभिन्न साधनों का अध्ययन आप इकाई 5 में कर चुके हैं। उसी इकाई में आपने दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन पूंजी के अन्तर को भी समझा। इस इकाई में आप दीर्घकालीन पूंजी की प्रकृति व उसके महत्त्व तथा कम्पनियों द्वारा इसे प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त करेंगे। अभिगोपन क्या है, दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने में यह किस प्रकार सहायक होता है, तथा अभिगोपन कार्य में लगी विभिन्न एजेंसियां क्या भूमिका अदा करती हैं, आदि विषयों की चर्चा भी इस इकाई में की जाएगी।

6.2 दीर्घकालीन वित्त की प्रकृति एवं महत्त्व

यह तो आपको विदित है कि प्रत्येक व्यवसाय के दैनिक संचालन के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, व्यवसाय का कुछ धन स्थायी सम्पत्तियों में निवेशित करना पड़ता है। व्यावसायिक क्रियाओं के लिए आवश्यक स्थायी सम्पत्तियों का आकार-प्रकार बहुत कुछ व्यवसाय विशेष की प्रकृति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ विनिर्माण कम्पनियों के लिए आवश्यक स्थायी सम्पत्तियों के अंतर्गत प्रायः भवन, प्लांट एवं मशीनरी, फर्नीचर आदि सम्मिलित होते हैं। दूसरी ओर व्यापारिक कम्पनियों के लिए गोदाम, कार्यालय भवन, फर्नीचर, आदि की आवश्यकता हो सकती है। स्पष्ट है कि एक व्यापारिक कम्पनी की तुलना में विनिर्माण कम्पनी की पूंजी का बहुत बड़ा भाग स्थायी सम्पत्तियों में लगता है।

स्थायी सम्पत्तियां दीर्घकालिक प्रकृति की होती हैं। व्यवसाय में इनका प्रयोग लम्बे समय तक निरन्तर होता रहता है। अन्य शब्दों में, स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित वित्त को प्रायः पांच वर्षों के भीतर नहीं लौटाना पड़ता। यही कारण है कि इनमें केवल दीर्घकालीन पूंजी का निवेश किया जाता है। वास्तव में विभिन्न सम्पत्तियों का उपयोगी जीवन-काल भी भिन्न-भिन्न होता है। मशीनरी, साजो-सामान, फर्नीचर आदि का उपयोगी जीवन-काल 5-10 वर्ष तक, स्टील प्लांट का 50 वर्ष तक, और कारखाना भवन के लिए यह उपयोगी जीवन-काल 50 वर्ष से भी अधिक लम्बा हो सकता है। अतः पांच वर्ष या इससे अधिक लम्बी अवधि के लिए आवश्यक पूंजी को ''दीर्घकालीन वित्त'' की संज्ञा दी जाती है। दीर्घकालीन वित्त के इस प्रकार स्थायी सम्पत्तियों के निवेश पर लम्बी समयावधि तक लाभ मिलता रहता है। चूंकि भविष्य सदैव अनिश्चित होता है अतः स्थायी सम्पत्तियों में दीर्घकालीन पूंजी का निवेश करते समय पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। साथ ही, व्यवसाय की भावी संभावनाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। इस संदर्भ में, प्लांट व मशीनरी में पूंजी निवेश करते समय उत्पादन-तकनीक में होने वाले ऐसे परिवर्तनों का विशेष ध्यान रखना चाहिए जिनके कारण विद्यमान प्लांट का प्रतिस्थापन आवश्यक हो सकता है। दीर्घकालीन वित्त के संबंध में लिए गए निर्णयों को अल्पकाल में नहीं बदला जा सकता। उदाहरणार्थ, यदि किसी सीमेंट कम्पनी ने दस लाख टन की उत्पादन क्षमता वाला प्लांट लगाया है तो थोड़े समय के बाद इसके संचालक उस प्लांट के आकार को छोटा नहीं कर सकते, भले ही बाजार में सीमेंट की मांग में गिरावट आ गई हो। इसके अतिरिक्त, प्लांट व मशीनरी में दीर्घकालीन वित्त का बड़ी मात्रा में निवेश करने से उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाती है। यह बात लोहा व इस्पात, सीमेंट, रसायन व इंजीनियरी के सामान के संबंध में विशेष रूप से लागू होती है। इन उद्योगों में बड़े पैमाने पर उत्पादन के फलस्वरूप प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।

अतः दीर्घकालीन वित्त का महत्त्व बहुत कुछ स्थायी सम्पत्तियों में पूंजी निवेश की आवश्यकता पर निर्भर करता है, विशेषकर विनिर्माण कम्पनियों में इस प्रकार का निवेश अत्यंत आवश्यक होता है। संक्षेप में, दीर्घकालीन वित्त का आशय लम्बी अवधि के लिए पूंजी सौंप देने से है। इस पूंजी को इच्छानुसार वापस नहीं लिया जा सकता और जैसे-जैसे व्यवसाय का आकार बड़ा होता जाएगा वैसे-वैसे दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता भी अधिक होती जाएगी।

बोध प्रश्न क

1 रिक्त स्थानों को भरिए :

i) दीर्घकालीन वित्त .... में निवेश हेतु आवश्यक होता है।

ii) .... कम्पनी की तुलना में .... कम्पनी में दीर्घकालीन वित्त सापेक्ष रूप से अधिक आवश्यक होता है।

iii) दीर्घकालीन निवेश से सम्बद्ध निर्णयों को अल्पकालीन सूचना के आधार पर .... नहीं जा सकता।

iv) स्थायी सम्पत्तियों में निवेशित धन को अल्पकाल में .... नहीं लिया जा सकता।

2 बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य।

i) दीर्घकालीन वित्त सामान्यतः 20 वर्ष या इससे बड़ी अवधि के लिए आवश्यक होता है।

ii) स्थायी संपत्तियां दीर्घकालिक प्रकृति की होती हैं।

iii) प्लांट एवं मशीनरी की स्थापना के बाद उसका उपयोग उस समय तक निरंतर करते रहना चाहिए जब तक कि वह घिस-पिट नहीं जाती।

iv) विनिर्माण, व्यापारिक एवं परिवहन व्यवसाय आदि सभी प्रकार की व्यावसायिक क्रियाओं के लिए दीर्घकालीन वित्त आवश्यक होता है।

v) दीर्घकालीन निवेश के लिए आवश्यक राशि व्यवसाय विशेष की प्रकृति एवं आकार पर निर्भर करती है।

6.3 दीर्घकालीन वित्त के स्रोत

एकाकी व्यापार तथा साझेदारी फर्म की स्थायी सम्पत्तियों में निवेश हेतु धनराशि मुख्य रूप से प्रवर्तकों द्वारा लगाई जाती है। कई बार एकाकी व्यापारी अथवा साझेदारों के मित्र व रिश्तेदार भी व्यक्तिगत जमानत पर उनके व्यापार में दीर्घकालीन निवेश करते हैं। परन्तु कठिनाई उस समय आती है जब व्यावसायिक उपक्रम (Venture) में भारी निवेश आवश्यक हो। ऐसी स्थिति में प्रवर्तक अपने व्यापार का संगठन प्रायः कम्पनी के रूप में करते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि कम्पनी संगठन में विभिन्न स्रोतों से पूंजी इकट्ठी करने की सुविधा रहती है। सामान्यतः कम्पनियां निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त एकत्रित कर सकती है :

1 **पूंजी बाजार :** इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत निवेशक, वित्तीय संस्थाएं और निवेश कम्पनियां सम्मिलित होती हैं।

2 **विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं :** जैसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, यूनिट ट्रस्ट, जीवन बीमा निगम आदि।

3 पट्टाधृति कम्पनियां

4 विदेशी स्रोत

5 संचित लाभ

आइए देखें कि इन स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त किस प्रकार इकट्ठा किया जा सकता है।

6.3.1 पूंजी बाजार (Capital Market)

पूंजी बाजार से आशय किसी मण्डी या हाट लगने के स्थान से नहीं है। यही नहीं, इसमें पूंजीगत वस्तुओं का क्रय-विक्रय भी नहीं होता। वास्तव में पूंजी बाजार का संबंध उद्योगों के लिए दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था से होता है। उद्योगों के लिए शेयरों, ऋणपत्रों, बॉण्डों आदि के रूप में जिस बाजार में पूंजी की व्यवस्था होती है उसे पूंजी बाजार कहते ह=। अन्य बाजारों के समान पूंजी बाजार भी दीर्घकालीन निधियों (Long Term Funds) की मांग करने वाले ऋणियों व उनकी पूर्ति करने वाले ऋणदाताओं से मिलकर बनता है। निधियों की मांग मुख्य रूप से निजी क्षेत्र के उद्योगों व आर्थिक विकास के कार्यों के लिए उत्पन्न होती है। पूंजी बाजार में निधियों की पूर्ति व्यक्तिगत बचतकर्ताओं, कम्पनियों, बैंकों, विशिष्ट वित्तीय एजेंसियों व सरकार द्वारा की जाती है।

व्यावसायिक वित्त के संबंध में आपने एक दूसरे प्रकार के बाजार का नाम भी सुना होगा। इसे मुद्रा बाजार (Money Market) कहते हैं। मुद्रा बाजार में मुद्रा या नकदी का कारोबार नहीं, बल्कि विनिमय पत्रों, प्रतिज्ञापत्रों व अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों का कारोबार किया जाता है। यह उधार लेने वालों की अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा उधार देने वालों को नकदी अथवा तरलता (liquidity) प्रदान करता है। मुद्रा बाजार के अन्तर्गत अल्पकालीन ऋण के लेन-देन करने वाली संस्थायें आती हैं। ये लेन-देन बैंकिंग प्रणाली के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। पूंजी बाजार की भांति मुद्रा बाजार के लिए भी कोई सुनिश्चित स्थान नहीं होता। उदाहरणार्थ लन्दन मुद्रा बाजार अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का मुद्रा बाजार है। इसमें विभिन्न देशों से अल्पकालीन पूंजी आकर्षित होती है और विश्व के कोने-कोने में फैले ऋणियों में बांट दी जाती है।

कभी-कभी ''मुद्रा बाजार'' शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया जाता है और इसके अन्तर्गत

अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों प्रकार के ऋणों की व्यवस्था को शामिल किया जाता है। सैद्धांतिक रूप से, मुद्रा बाजार में वित्त के अल्पकालीन लेन-देन होते हैं जबकि पूंजी बाजार में वित्त के दीर्घकालीन लेन-देन। इसके अतिरिक्त जहां पूंजी बाजार के अन्तर्गत नव-निर्गमन बाजार, शेयर बाजार, सरकारी ऋण बाजार तथा निवेश कम्पनियां आती हैं, वहां मुद्रा बाजार में व्यापारिक बैंक, सहकारी बैंक तथा बिल ब्रोकर शामिल किए जाते हैं। मुद्रा बाजार की संस्थायें मुख्य रूप से व्यापारिक कार्यों के लिए वित्त की व्यवस्था करती हैं, जबकि पूंजी बाजार की संस्थाएं कृषि, उद्योग तथा आर्थिक विकास हेतु वित्त उपलब्ध कराती हैं। इन दोनों प्रकार के बाजारों में उक्त अन्तर होते हुए भी इन्हें एक-दूसरे से पूर्ण रूप से अलग नहीं किया जा सकता। कई वित्तीय एजेंसियाँ अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों प्रकार के ऋण देती हैं। वास्तव में, मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार परस्पर संबंधित हैं। मुद्रा बाजार में ब्याज की दर में सापेक्ष वृद्धि से पूंजी बाजार में निधि की मांग में वृद्धि हो सकती है और पूंजी बाजार में ब्याज की दर में सापेक्ष वृद्धि होने से मुद्रा बाजार में मांग में वृद्धि होगी।

यह तो हम बता ही चुके हैं कि पूंजी बाजार का संबंध दीर्घकालीन निधियों के क्रय और विक्रय की व्यवस्था से है। इसके अतिरिक्त, हम यह जानकारी भी दे चुके हैं कि कम्पनियां विभिन्न प्रकार के शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा धन प्राप्त करती हैं। किसी कम्पनी की शेयर पूंजी में धन लगाने वाले व्यक्ति और संस्था ही इसके शेयर होल्डर बन जाते हैं। शेयर होल्डर कम्पनी के सदस्य के रूप में जाने जाते हैं। कम्पनी द्वारा इनको शेयर सर्टिफिकेट जारी किये जाते हैं। शेयर सर्टिफिकेट पर कम्पनी की मोहर लगी रहती है और इसके धारक को आवंटित किये गये शेयरों की संख्या अंकित रहती है। इस प्रकार कम्पनियां ऋण पत्रों के निर्गमन द्वारा दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करती हैं। ऋण पत्र अथवा बॉण्ड कर्ज देने वालों को जारी किए जाते हैं।

नयी कम्पनियों द्वारा प्रारम्भ में एकत्रित की गयी दीर्घकालीन पूंजी अथवा विद्यमान कम्पनियों द्वारा अतिरिक्त शेयर या ऋणपत्र जारी करके प्राप्त की गयी पूंजी से संबंधित लेन-देन नव-निर्गमन बाजार में किए जाते हैं। इस प्रकार नयी कम्पनियों द्वारा जारी किये गये शेयरों व ऋणपत्रों में लेन-देन करने वाले व्यक्ति अथवा संस्थाएं नव-निर्गमन बाजार (New Issue Market) का अंग माने जाते हैं। आपको विदित होगा कि सार्वजनिक सीमित कम्पनियों के शेयर-होल्डरों को अपने शेयर हस्तांतरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। फलस्वरूप पुराने शेयरों का क्रय और विक्रय एक अन्य प्रकार के बाजार में किया जाता है जिसे शेयर बाजार (Stock Exchange) कहते हैं। शेयर बाजार, पूंजी बाजार का ही एक अंग है। आप इकाई 7 में इसके बारे में सविस्तार पढ़ेंगे।

नव-निर्गमन बाजार के अन्तर्गत कम्पनियों द्वारा दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था होती है। इसके माध्यम से शेयरों व ऋणपत्रों का निर्गमन सुविधाजनक बन जाता है। प्रायः कम्पनियाँ अपना व्यापार प्रारम्भ करने से पूर्व तथा आवश्यकता पड़ने पर बाद में व्यवसाय के विस्तार हेतु शेयरों का निर्गमन करती हैं। शेयरों का निर्गमन करने से पूर्व निदेशकों द्वारा निम्नलिखित बातों के संबंध में निर्णय लेना आवश्यक होता है : (क) कम्पनी को कितनी धनराशि के शेयर निर्गमित करने चाहिए, (ख) कम्पनी द्वारा किस प्रकार के शेयर (पूर्वाधिकार शेयर, ईक्विटी शेयर अथवा दोनों) निर्गमित किये जाने चाहिए, तथा (ग) कम्पनी द्वारा शेयरों का निर्गमन किस समय किया जाना चाहिए।

कोई भी कम्पनी अपने सीमा नियम में उल्लिखित अधिकृत पूंजी से अधिक धनराशि पूंजी के रूप में जुटा नहीं सकती। कम्पनी द्वारा शेयर पूंजी का कौन-सा भाग प्रारम्भ में लिया जायेगा तथा शेष भाग कब मांगा जाएगा, आदि बातों से सम्बद्ध निर्णय लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पूंजी किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इकट्ठी की जा रही है तथा कम्पनी के पास वित्त प्राप्त करने हेतु कौन-कौन से वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध हैं। इसके बाद निदेशकों द्वारा निर्गमित किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के शेयरों का अनुपात तय किया जाता है। साथ ही, प्रत्येक प्रकार के शेयरों के अंकित मूल्य व उनकी संख्या तथा पूर्वाधिकार शेयरों पर लाभांश की दर निश्चित की जाती है। उक्त बातों के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय सामान्यतः पूर्वाधिकार तथा ईक्विटी शेयरों के सापेक्ष आकर्षण का ध्यान रखा जाता है। शेयरों के आवंटन का समय निर्धारित करते समय निदेशकों को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जैसे पूंजी बाजार में शेयरों की संभावित मांग, निवेशकों की मनोदशा, मुद्रा व साख नियंत्रण तथा कर संबंधी सरकारी नीतियां, वर्तमान व्यापारिक परिस्थितियां आदि। यदि आवंटित किए जाने वाले शेयरों का शेयर बाजार में सूचीकरण (listing) अपेक्षित है तो इसके संबंध में

निर्धारित विधिक अनिवार्यताओं के पालन का भी ध्यान रखना चाहिए।

कभी-कभी कम्पनी के निदेशक अपने मित्रों व रिश्तेदारों के साथ मिलकर शेयरों का एक निश्चित भाग खरीदने को सहमत हो जाते हैं। इसी प्रकार कम्पनी के प्रवर्तक, वित्तीय संस्थाओं और विदेशों में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों के साथ मिलकर, निजी बातचीत के आधार पर, उन्हें कम्पनी की शेयर पूंजी खरीदने के लिए राजी कर लेते हैं। अतः वह व्यवस्था जिसके अन्तर्गत निजी समझौते के द्वारा शेयर आवंटित करने का निर्णय लिया गया हो शेयरों का "निजी प्रस्तुतीकरण" (Private Placement) कहलाती है। इसी प्रकार कम्पनी प्रविवरण (Prospectus) जारी करके और अखबार में विज्ञापन देकर आम जनता को शेयर पूंजी खरीदने हेतु आमंत्रित कर सकती है। इसे शेयरों का सार्वजनिक निर्गमन कहते हैं।

जब कोई कम्पनी अपने निर्माण के दो वर्ष बाद या उसके द्वारा जारी किये गये शेयरों के प्रथम आबंटन के एक वर्ष बाद (इन दोनों समयों में से जो भी पहले हो) अतिरिक्त शेयर जारी करने का निर्णय लेती है तो उसे सर्वप्रथम वर्तमान ईक्विटी शेयर होल्डरों को उनके शेयरों के अनुपात में खरीदने हेतु प्रस्ताव करना चाहिये। इस प्रकार के निर्गमन को **अधिकार निर्गमन** (Rights Issue) तथा इन **शेयरों को अधिकार वाले शेयर** (Rights Shares) कहते हैं। वर्तमान शेयर होल्डरों द्वारा उक्त प्रस्ताव को ठुकरा देने की स्थिति में कम्पनी अतिरिक्त शेयरों का आबंटन आम जनता को कर सकती है। शेयरों के निर्गमन के अलावा अधिकांश कम्पनियां दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करने हेतु आम जनता को ऋणपत्रों का निर्गमन भी करती है। कोई सार्वजनिक कम्पनी अपने निर्गमन के तुरन्त बाद शेयरों तथा ऋणपत्रों का एक साथ निर्गमन कर सकती है। ऋणपत्र कम्पनी द्वारा निर्गमित ऋण की स्वीकृति का एक प्रमाण-पत्र होता है। इसमें वे सभी शर्तें लिखी रहती हैं जिनके अनुसार ऋण प्राप्त किया गया हो। ऋणपत्रों पर प्राप्त राशि एक निश्चित समय के बाद या कम्पनी की इच्छानुसार इसके जीवनकाल में वापस की जा सकती है। इन पर एक निश्चित दर से तथा नियमित समयान्तरों पर ब्याज का भुगतान किया जाता है। ऋणपत्र सुरक्षित (Secured) या असुरक्षित (Unsecured) हो सकते हैं। उन्हें अचल या चल प्रभार (Fixed or Floating Charge) अथवा बन्धक के द्वारा सुरक्षित किया जा सकता है। सामान्य ऋणपत्र शोध्य (Redeemable) होते हैं। आजकल कम्पनियां ऐसे ऋणपत्र भी जारी कर सकती हैं। जिनको एक निश्चित अवधि के बाद ईक्विटी शेयरों में परिवर्तित किया जा सकता हो। इस प्रकार के ऋणपत्रों को "परिवर्तनीय ऋणपत्र" (Convertible Debentures) कहते हैं।

एक उज्जवल भविष्य वाली कम्पनी परिवर्तनीय ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा अपनी प्रतिभूतियों को अधिक आकर्षक बना लेती है। इस आकर्षण का मुख्य कारण यह है कि प्रारम्भिक अवस्था में ऋणपत्र के धारक को अपने निवेश पर एक निश्चित आय ही प्राप्त होती है और परिवर्तन के बाद ईक्विटी शेयर होल्डर के रूप में उसे ऊँची-दर से लाभांश के अतिरिक्त शेयर-मूल्य में वृद्धि का लाभ भी मिल जाता है। इस प्रकार वह कम्पनी की समृद्धि में हिस्सा लेने का हकदार बन जाता है। स्मरण रहे, जिस कम्पनी के ऋणपत्र-धारकों को अपने ऋणपत्रों का परिवर्तन शेयरों में करने हेतु विकल्प दिया गया है उस कम्पनी के लिए केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेना अनिवार्य होता है।

पूंजी निर्गमनों का नियंत्रण (Control of Capital Issues)

कम्पनी द्वारा शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमन पूंजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कम्पनियों द्वारा किये गये निवेश राष्ट्रीय विकास की योजनाओं के अनुरूप हैं तथा उनका प्रयोग अनावश्यक कार्यों के लिए नहीं किया गया है। पूंजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नलिखित हैं :

1 शेयरों व ऋणपत्रों का सार्वजनिक वितरण करने वाली कम्पनी द्वारा 12 माह की अवधि में एक करोड़ रुपये से अधिक धनराशि एकत्र किये जाने की दशा में पूंजी निर्गमन नियंत्रक (Controller of Capital Issues) की स्वीकृति लेना आवश्यक है। इसके अपवादस्वरूप कोई सार्वजनिक सीमित कम्पनी, जो केवल शेयर जारी करती है (ऋणपत्र नहीं) तथा निम्नलिखित शर्तों को पूरा करती है उक्त प्रावधान से मुक्त होगी।

   क) कम्पनी की प्रदत्त ईक्विटी पूंजी और ऋण के बीच आवश्यक एवं उचित संतुलन होना चाहिए। पूंजी संरचना इस प्रकार की नहीं होनी चाहिए कि वह ऋण के पक्ष में अधिक

हो। सामान्यतः ऋण ईक्विटी अनुपात (Debt Equity Ratio) 2:1 से अधिक नहीं होना चाहिए। इस अनुपात का पता लगाते समय ऋण में स्थायी ब्याज वाली सभी प्रतिभूतियां और ईक्विटी के अन्तर्गत कम्पनी की शेयर पूंजी, मुक्त संचय शेयर प्रीमियम आदि को शामिल किया जाता है।

ख) ईक्विटी शेयर पूंजी और पूर्वाधिकार शेयर पूंजी का अनुपात 3:1 से कम होना चाहिए।

ग) पूर्वाधिकार शेयरों पर लाभांश और ऋणपत्रों पर ब्याज की दरें पूंजी निर्गमन नियंत्रक द्वारा इस संबंध में समय-समय पर घोषित की गयी अधिकतम दरों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

घ) सार्वजनिक रूप से आबंटित किए गए शेयर किसी मान्यता प्राप्त शेयर बाजार में सूचीबद्ध करने के योग्य होने चाहिए।

2 ऋणपत्रों को छोड़कर नए शेयर जारी करने वाली प्रत्येक कम्पनी को पूंजी निर्गमन नियंत्रक के पास प्रस्तावित पूंजी निर्गमन की विवरणी दाखिल करनी होती है। यह विवरणी शेयरों के लिए प्रस्तावित निमंत्रण की तिथि से कम से कम 30 दिन पूर्व अवश्य दाखिल कर देनी चाहिए। आम जनता को आमंत्रित करने से पूर्व कम्पनी द्वारा पूंजी निर्गमन नियंत्रक से उक्त आशय का स्वीकृति-पत्र अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए और इस बात का उल्लेख अपने प्रविवरण अथवा प्रविवरण के स्थान पर विवरण में कर देना चाहिए।

3 कम्पनी द्वारा वित्तीय संस्थाओं से लिए गए ऋणों के लिए पूंजी निर्गमन नियंत्रक की अनुमति लेना आवश्यक नहीं होता।

4 निजी कम्पनियों के पूंजी निर्गमनों पर भी उक्त नियंत्रण उस स्थिति में लागू होते हैं जब किसी निजी कम्पनी की प्रदत्त शेयर पूंजी का 20 प्रतिशत से अधिक भाग एक या अधिक सार्वजनिक कम्पनियों को आबंटित किया गया है और 12 माह की अवधि में इस प्रकार निर्गमित पूंजी की राशि 1 करोड़ रुपये से अधिक है।

5 ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमन के संबंध में कम्पनी को पूंजी निर्गमन नियंत्रक की अनुमति अवश्य ही प्राप्त कर लेनी चाहिए।

6 कार्यशील पूंजी के लिए निर्गमित किए गए ऋणपत्रों की राशि सकल चालू परिसम्पत्तियों के मूल्य के 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। दीर्घकालीन निवेश की परियोजनाओं के लिए यह राशि सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं अथवा सरकार द्वारा अनुमोदित वित्तीय योजना के अनुकूल निश्चित की जाएगी।

7 सामान्यतः प्रस्तावित ऋणपत्रों का निर्गमन मिलाकर ऋण ईक्विटी अनुपात 2:1 से अधिक नहीं होना चाहिए। परन्तु उर्वरक, सीमेंट, कागज, पोतनिर्माण, पैट्रो-रसायन आदि उद्योगों के लिए भारी विनियोग आवश्यक होने के कारण इस अनुपात में ढील दी जा सकती है।

8 ऋणपत्रों पर देय ब्याज की दर उस उच्चतम सीमा के अन्दर होनी चाहिए जो कि पूंजी निर्गमन नियंत्रक द्वारा समय-समय पर घोषित की जाती है।

साधारणतया शोध्य ऋणपत्रों के भुगतान की अवधि 7 वर्षों से कम नहीं होनी चाहिए। कम्पनी द्वारा ऋणपत्रों का भुगतान निम्नलिखित प्रकार से होगा :

क) जिन ऋणपत्रों की अवधि 7 वर्ष है उनका $33^1/_3$ प्रतिशत पांचवें वर्ष, $33^1/_3$ प्रतिशत छठें वर्ष और $33^1/_3$ प्रतिशत सातवें वर्ष भुगतान किया जायेगा।

ख) जिन ऋणपत्रों की अवधि 12 वर्ष है उनका 20 प्रतिशत आठवें वर्ष, 20 प्रतिशत नवें वर्ष, 20 प्रतिशत दसवें वर्ष, 20 ग्यारहवें वर्ष और शेष 20 प्रतिशत का भुगतान बारहवें वर्ष में किया जायेगा। इस नियम के अपवादस्वरूप 5,000 रुपये अथवा इससे कम अंकित मूल्य के ऋणपत्र-धारकों को एक ही किश्त में उनकी रकम वापस लौटाई जायेगी।

1 बताइये कि नीचे दिए गए कथन सत्य हैं या असत्य।

i) कंपनियां विभिन्न स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त एकत्रित कर सकती हैं।

ii) सार्वजनिक सीमित कम्पनी द्वारा शेयरों व ऋणपत्रों का निर्गमन एक साथ नहीं किया जा सकता।

iii) मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार में कोई अन्तर नहीं होता।

iv) नव निर्गमन बाजार, पूंजी बाजार का एक अंग होता है।

v) यदि किसी कम्पनी द्वारा अपने निर्माण के दो वर्षों के भीतर अतिरिक्त शेयर जारी किये जाते हैं तो इन शेयरों को लेने का अधिकार कम्पनी के उस समय के वर्तमान शेयर होल्डरों को होता है।

vi) शेयरों अथवा ऋणपत्रों का सार्वजनिक निर्गमन करने वाली प्रत्येक कम्पनी के लिए पूंजी निर्गमन नियंत्रक की स्वीकृति लेना आवश्यक है।

vii) पूर्वाधिकार शेयरों पर देय लाभांश की अधिकतम दर के संबंध में पूंजी निर्गमन नियंत्रक द्वारा समय-समय पर घोषणा की जाती है।

viii) ऋण-ईक्विटी अनुपात 2:1 से अधिक न होने की स्थिति में ऋणपत्रों के निर्गमन हेतु आवश्यक अनुमति मिल जाती है।

2 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) सार्वजनिक सीमित कम्पनियों द्वारा वित्तीय संस्थाओं से लिये गये ऋणों के लिए .... की सहमति लेना आवश्यक नहीं होता।

ii) मुद्रा बाजार से .... पूंजी तथा पूंजी बाजार से .... पूंजी प्राप्त की जाती है।

iii) सामान्यतया ऋणपत्रों पर देय राशि का भुगतान .... वर्षों से पहले नहीं किया जा सकता।

iv) एक निर्धारित अवधि के भीतर अथवा बाद में ईक्विटी शेयरों में बदले जा सकने वाले ऋणपत्रों को .... कहते हैं।

v) जब शेयरों के सार्वजनिक निर्गमन से पूर्व निदेशक अथवा उनके रिश्तेदार और वित्तीय संस्थाएं कुछ शेयर लेने का आश्वासन देती हैं तो इस प्रकार की व्यवस्था को शेयरों का .... कहते हैं।

vi) कोई सार्वजनिक कम्पनी अपने .... के बाद ही शेयरों और ऋणपत्रों को जारी कर सकती है।

3 कॉलम "क" और कॉलम "ख" के मदों को सही ढंग से मिलाइए।

	कॉलम "क"		कॉलम "ख"
1)	नव निर्गमन बाजार	i)	वर्तमान शेयर होल्डर
2)	ऋणपत्रों का निर्गमन	ii)	2:1
3)	अधिकार वाले शेयर	iii)	शेयरों व ऋणपत्रों के नये निर्गमन
4)	पूंजी बाजार	iv)	3:1
5)	ऋण-ईक्विटी अनुपात	v)	दीर्घकालीन पूंजी
6)	ईक्विटी-पूर्वाधिकार अनुपात	vi)	सम्पत्तियों पर प्रभार अथवा बन्धक

6.3.2 विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं (Special Financial Institutions)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में औद्योगिक उद्यमों को दीर्घकालीन ऋण की सुविधा प्रदान करने हेतु अनेक वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की गयी है। इनमें से कुछ वित्तीय संस्थाएँ केन्द्रीय सरकार तथा अन्य संबंधित राज्य सरकारों द्वारा प्रवर्तित हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित संस्थाओं के अन्तर्गत भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (I.F.C.I.), भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम

(I.C.I.C.I.), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (I.D.B.I.), तथा भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (I.R.C.I.) सम्मिलित होते हैं। ये संस्थाएं प्रधानतः बड़ी-बड़ी कम्पनियों को दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराती हैं। इसके साथ-साथ कई राज्यों में भी राज्य वित्त निगम (S.F.Cs) तथा राज्य औद्योगिक विकास निगम (S.I.D.Cs) स्थापित किए गए हैं। ये संस्थाएं मुख्य रूप से बड़ी-बड़ी कंपनियों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करती हैं। राज्य-स्तर की संस्थाएँ सापेक्ष रूप से छोटी कम्पनियों को दीर्घकालीन वित्त की सुविधा प्रदान करती हैं। राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर स्थापित इन सभी वित्तीय संस्थाओं को विकास बैंक की संज्ञा दी जाती है। विकास बैंकों का उद्देश्य पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुरूप औद्योगिक संस्थाओं के विकास, विस्तार, पुनर्स्थापना तथा आधुनिकीकरण हेतु दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध करना है। आज औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक वित्त की सर्वोच्च संस्था है। अन्य सभी वित्तीय संस्थाएं इसके प्रत्यक्ष निर्देशन में काम करती हैं।

विकास बैंकों के अतिरिक्त कुछ अन्य वित्तीय संस्थाएं भी हैं जो निवेश न्यास (Investment Trusts) अथवा निवेश कम्पनियों के नाम से जानी जाती हैं। इनका उद्देश्य कम्पनियों के सार्वजनिक नियंत्रण पर उनके शेयरों तथा ऋणपत्रों में निवेश करना होता है। भारतीय जीवन बीमा निगम (L.I.C.), भारतीय सामान्य बीमा निगम (G.I.C.), भारतीय यूनिट ट्रस्ट (U.T.I.) आदि इसकी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से कुछ संस्थाओं के कार्यों का संक्षिप्त विवरण आगे चलकर दिया गया है।

अब हम कुछ प्रमुख विकास बैंकों तथा निवेश कम्पनियों के कार्यों का विवेचन करेंगे।

विकास बैंक (Development Bank)

1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) : इस निगम की स्थापना 1 जुलाई, 1948 को औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम, 1948 के अंतर्गत की गयी थी। इसका प्रमुख उद्देश्य बड़े पैमाने की औद्योगिक संस्थाओं को उस समय वित्तीय सहायता प्रदान करना है जब वे न तो बैंक से रुपया उधार ले सकती हैं और न ही पूंजी बाजार से शेयर जारी करके धन जुटा सकती हैं। यह निगम केवल सार्वजनिक कम्पनियों अथवा सहकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता देता है। गैर विनिर्माण संस्थाओं, निजी कम्पनियों, साझेदारी फर्मों अथवा एकल व्यापारियों को यह निगम कोई सहायता नहीं देता। सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित राजकीय संस्थाएं भी इस निगम से वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकती हैं। औद्योगिक वित्त निगम केवल 30 लाख रु. या इससे अधिक राशि के ऋणों हेतु आवेदन स्वीकार करता है। यह उपयुक्त औद्योगिक संस्थाओं को उनकी स्थापना, विस्तार, आधुनिकीकरण अथवा संयंत्र की पुनर्स्थापना के लिए वित्तीय सहायता देता है। यह निगम 25 वर्ष की अवधि के भीतर चुकाए जाने वाले ऋण देता है तथा इसी अवधि के ऋणपत्रों को खरीद सकता है। यह बाजार से लिये गये ऋणपत्रों के वापस भुगतान की गारण्टी दे सकता है। उपयुक्त कम्पनियां इससे विदेशी मुद्रा भी उधार ले सकती हैं और विदेशी मुद्रा के ऋणों की गारण्टी देने हेतु आवेदन कर सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, यदि निगम द्वारा गारण्टी किये गये शेयरों को जनता नहीं खरीदे तो वह स्वयं इन्हें खरीदने का वचन दे सकता है।

2 भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (Industrial Credit and Investment Corporation of India) : इसका निगमन 1955 में कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ था। मुख्य रूप से यह कंपनियों को निम्न दो प्रकार की वित्तीय सहायता प्रदान करता है :

i) दीर्घकालीन ऋण (जिनका भुगतान 15 वर्ष तक होता हो) देना तथा ऋणों की गारण्टी देना, और

ii) शेयरों व ऋणपत्रों में प्रत्यक्ष अभिदान देना तथा अभिगोपन करना।

यह निगम एकल स्वामित्व, साझेदारी फर्म तथा निजी कम्पनी के रूप में संगठित औद्योगिक संस्थाओं को भी ऋणों की सुविधा प्रदान करता है। इसकी प्रमुख उपलब्धि विदेशी पूंजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करना है। इसके द्वारा पर्याप्त जमानत पर ऋण दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, यह निगम भारतीय उद्योगों को विदेशी-मुद्रा के ऋण, तकनीकी व प्रशासकीय सहायता तथा पट्टे पर पूंजीगत साजो-सामान भी उपलब्ध कराता है। व्यवहार में, निगम 5 लाख रुपये से कम की सहायता नहीं देता और इसके द्वारा दी जाने वाली सहायता की अधिकतम राशि 1 करोड़ रुपये तक हो सकती है।

3 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India) : इस बैंक की स्थापना 1964 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की पूर्ण-स्वामित्व वाली सहायक संस्था के रूप में की गई। सन् 1976 में रिजर्व बैंक से इसका संबंध विच्छेद कर दिया गया। अब यह केन्द्रीय सरकार का पूर्ण-स्वामित्व वाला बैंक बन गया है। इसका उद्देश्य एक शीर्ष-संस्था के रूप में अन्य बैंकों तथा सरकारी वित्तीय संस्थाओं के कार्य-कलापों में सामंजस्य स्थापित करना, औद्योगिक संस्थाओं को प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करना तथा मध्य व दीर्घकालीन वित्त की मांग और पूर्ति के बीच अन्तर को दूर करना है। यह बैंक उन सभी औद्योगिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता दे सकता है जो कम्पनी अधिनियम अथवा अन्य किसी अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किये गये हों। इसके द्वारा उपलब्ध प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सहायता विभिन्न प्रकार के ऋणों तथा अभिगोपन व अभिदान के रूप में दी जाती है। औद्योगिक संस्थाओं से प्राप्त होने वाली प्रतिभूतियों की प्रकृति तथा उनके प्रकार के संबंध में इस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है और न ही सहायता की राशि और संस्था के आकार के संबंध में कोई अधिकतम या न्यूनतम सीमा निर्धारित की गयी है। यह बैंक भिन्न-भिन्न वित्तीय संस्थाओं तथा अन्य बैंकों के द्वारा दिये गये ऋणों का पुनर्वित्तीकरण (Refinancing) करता है, और इस प्रकार एक अनोखी भूमिका अदा करता है। इससे अन्य वित्तीय संस्थाओं की औद्योगिक वित्त देने की क्षमता भी बढ़ जाती है। औद्योगिक विकास बैंक निम्नलिखित कार्य करता है :

i) यह निम्न प्रकार के ऋणों का पुनर्वित्तीकरण करता है :

   अ) औद्योगिक वित्त, राज्य वित्त निगम तथा वित्तीय संस्थाओं के द्वारा दिए गए 3 से 25 वर्ष तक के ऋणों,

   ब) अनुसूचित बैंकों तथा राज्य सहकारी बैंकों को दिए गए 3 से 10 वर्ष तक के ऋण; तथा

   स) स्वीकृत वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्यात के लिए दिए गए ऐसे ऋण जो 6 महीने से लेकर 10 वर्ष तक देय हों।

ii) यह औद्योगिक इकाइयों द्वारा निर्गमित शेयरों व ऋणपत्रों हेतु प्रत्यक्ष अभिदान करता है।

iii) यह कंपनियों को अचल सम्पत्ति की जमानत पर 8 से 10 वर्ष तक के ऋण देता है।

iv) यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा पूंजी बाजार या अनुसूचित बैंकों से लिये गये ऋणों की गारण्टी भी देता है।

v) यह औद्योगिक संस्थाओं के विनिमय-पत्र तथा प्रतिज्ञापत्र को स्वीकार कर सकता है, भुना सकता है तथा भुनाने के पुनर्वित्त की पूर्ति कर सकता है।

vi) यह शेयरों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमन का अभिगोपन कर सकता है और आवश्यक होने पर अपने ऋणों या ऋणपत्रों को ईक्विटी शेयरों में बदलवा सकता है।

vii) बड़े पैमाने पर संचालित कंपनियों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु यह बैंक दो या इससे अधिक वित्तीय संस्थाओं से संयुक्त आधार पर वित्त जुटाता है।

आजकल औद्योगिक विकास बैंक औद्योगिक वित्त की सर्वोत्तम संस्था है। इसका कार्य अन्य सभी वित्तीय संस्थाओं की सहायता करना तथा उन पर नियंत्रण रखना भी है।

4 राज्य वित्त निगम (State Financial Corporation) : राज्य वित्त निगमों की स्थापना भिन्न-भिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा राज्य वित्त निगम अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत की गयी है। इनका प्रधान उद्देश्य अपने-अपने राज्यों में औद्योगिक विकास की गति तेज करना है। औद्योगिक वित्त निगम की तुलना में इनका कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक है। फलस्वरूप, कंपनियों के साथ-साथ एकल व्यापारियों तथा साझेदारी फर्मों को भी इन निगमों से वित्तीय सहायता मिल सकती है। लेकिन इन निगमों के लिए सीमित दायित्व वाली कंपनियों के शेयरों का प्रत्यक्ष अभिदान निषिद्ध है। राज्य वित्त निगमें औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन ऋण या अग्रिम प्रतिदेय ऋण पत्रों के अभिदान द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान करती है। किसी औद्योगिक संस्था को संबंधित निगम की प्रदत्त-पूंजी के 10 प्रतिशत से या 10 लाख रुपये से अधिक (इनमें से जो भी कम हो) ऋण नहीं दिया जा सकता है। सार्वजनिक कंपनियों तथा सरकारी संस्थाओं को यह ऋण 20 लाख रुपये तक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राज्य वित्त निगम औद्योगिक संस्थाओं को उन ऋणों के भुगतान की गारण्टी देती

है जो सार्वजनिक जनता से एकत्रित किये गये हैं और जिनका भुगतान 20 वर्ष के भीतर किया जाना अपेक्षित है। ये निगम शेयरों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमनों का अभिगोपन भी करते हैं। परन्तु इनके द्वारा स्वीकृत अथवा गारण्टी किये गये ऋणों हेतु पर्याप्त जमानत का होना आवश्यक है। यदि किसी अभिगोपन संविदे के अधीन इन्हें कुछ शेयर आदि स्वयं खरीदने पड़ते हैं तो ये शेयर 7 वर्ष के भीतर बेच दिये जाने आवश्यक हैं। इनके द्वारा ली गयी जमानत के मूल्य का 50 प्रतिशत भाग ही ऋण के रूप में दिया जाता है।

निवेश संस्थाएं (Investment Institutions)

पीछे हम दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं के अन्तर्गत निवेश निगम या निवेश न्यासों अथवा निवेश कंपनियों का उल्लेख कर चुके हैं। ये संस्थाएं व्यक्तिगत एवं घरेलू बचतों को प्रोत्साहित करती हैं। इनका मुख्य कार्य निवेशकों की बचत को सबसे ज्यादा लाभप्रद उद्योगों में लगाना तथा समुचित व स्थिर आय प्राप्त करने में उनकी सहायता करना होता है।

1 **निवेश निगम (Investment Corporation) :** भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC) और भारतीय सामान्य निगम (GIC) हमारे देश के सबसे महत्त्वपूर्ण निवेश निगम हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम की स्थापना सन् 1956 में एक स्वायत्त संस्था के रूप में हुई थी। इसका प्रमुख कार्य जीवन बीमा करना और बीमित व्यक्ति को उसकी मृत्यु पर अथवा निर्धारित अवधि की समाप्ति पर पालिसी की देय रकम के भुगतान की गारण्टी देना है। जीवन बीमा निगम बीमित व्यक्तियों से प्रीमियम के रूप में प्राप्त किया गया धन विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों (जैसे सार्वजनिक सीमित कम्पनियों के शेयर व ऋणपत्र तथा सरकारी बॉण्ड) में निवेश करती है। यह किसी कम्पनी की पूंजी का 30 प्रतिशत तक रख सकती है और निजी कंपनियों में भी निवेश कर सकती है। इसकी निवेश नीति में शेयर के अभिगोपन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसी प्रकार सामान्य बीमा निगम भी अपने धन का निवेश कम्पनियों के शेयरों व ऋणपत्रों और सरकारी प्रतिभूतियों में करता है। जैसा कि आपको विदित है, सामान्य बीमा निगम अग्नि, सामुद्रिक परिवहन, दुर्घटना, चोरी आदि का बीमा करता है। इस प्रकार भारतीय जीवन बीमा निगम एवं सामान्य बीमा निगम औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए आवश्यक दीर्घकालीन वित्त के महत्त्पूर्ण स्रोत हैं।

2 **निवेश कंपनियां (Investment Companies) :** आजकल कम्पनी अधिनियम के अधीन पंजीकृत अनेक निवेश कंपनियां औद्योगिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने के कार्य में लगी हुई हैं। निवेश कंपनियां शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा अपने सदस्यों से धन इकट्ठा करती हैं। अपने वित्तीय साधनों के संवर्धन हेतु ये कंपनियां अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण भी लेती हैं। इनके द्वारा इस प्रकार एकत्रित धन का निवेश अन्य कंपनियों के शेयरों व ऋणपत्रों में किया जाता है। निवेश कंपनियां औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध करने के साथ-साथ अन्य कंपनियों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन भी करती हैं। इनके द्वारा औद्योगिक कंपनियों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता कम्पनी अधिनियम द्वारा नियंत्रित होती है। कोई निवेश कम्पनी किसी अन्य कम्पनी की अभिदत्त पूंजी के केवल 10 प्रतिशत तक के बराबर की धनराशि उस अन्य कम्पनी के शेयरों में निवेशित कर सकती है और अन्य सभी कंपनियों में इसके द्वारा किये गये "कुल निवेश" की रकम इसकी अपनी अभिदत्त पूंजी के 30 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

3 **निवेश न्यास (Investment Trusts) :** निवेश न्यास निवेश करने वाली संस्थाओं का एक अन्य प्रकार है जो कंपनियों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करता है। इन्वेस्टमेण्ट कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया लि., इस्टर्न इन्वेस्टमेण्ट्स लि., श्री सन इन्वेस्टमेण्ट ऐण्ड ट्रेडिंग कम्पनी लि., श्री ऋषभ् इन्वेस्टमेण्ट कम्पनी लि. आदि भारत की कुछ मशहूर निवेश कंपनियां हैं।

इसका आशय एक विशिष्ट वित्तीय संस्था से है जो व्यक्तिगत एवं संस्थागत निवेशकों को अपने शेयर व ऋणपत्र बेचकर धन इकट्ठा करती है, और इस धन का सामूहिक-निवेश सरकारी व अन्य प्रतिभूतियों में करती है। जो कुछ भी लाभ होता है उसमें से व्यय घटाकर शेष धन शेयर होल्डरों को लाभांश के रूप में बांट दिया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य आम जनता को प्रशिक्षित, अनुभवी व विशिष्ट प्रबन्ध का लाभ प्रदान करना होता है। प्रायः छोटे-छोटे निवेशकर्ता ही निवेश न्यास द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों को खरीदते हैं। निवेश न्यास को यूनिट ट्रस्ट भी कहते हैं। भारत में इस प्रकार की एक विशाल वित्तीय संस्था यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया है।

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया का संगठन यूनिट ट्रस्ट अधिनियम के अन्तर्गत एक स्वायत्त संस्था के रूप में हुआ था। इसके माध्यम से निवेशक अपना धन विभिन्न प्रकार की औद्योगिक संस्थाओं में लगा सकते हैं। पूंजी बाजार को सुदृढ़ बनाने हेतु यह एक प्रभावशाली एजेन्सी है। इसकी प्रारम्भिक पूंजी औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा मिलकर जुटाई गई थी। संक्षेप में यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया विभिन्न प्रकार की कंपनियों को प्रत्यक्ष अभिदान तथा अभिगोपन द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह लाभप्रद कंपनियों के शेयरों व ऋणपत्रों को निवेश के रूप में खरीदता है और पूंजी-बाजार को सुदृढ़ बनाने के लिए समय-समय पर उनका क्रय-विक्रय करता रहता है। इसकी निवेश-नीति के अन्तर्गत निवेशों की सुरक्षा व विभिन्नता तथा अधिकतम आय पर बल दिया जाता है।

यूनिट ट्रस्ट जनता की बचतों को विभिन्न आकर्षक योजनाएं बनाकर आकर्षित करता है। इसके प्रबन्धक यूनिटों को देश के विभिन्न भागों में फैले बहुसंख्यक निवेशकों को बेचकर धन एकत्रित करते हैं और इस धन को कम्पनियों में लगाते हैं। सार्वजनिक निगमों के बॉण्डों को छोड़कर यूनिट ट्रस्ट की निधियां वित्तीय, विनिर्माण व सार्वजनिक उपयोग वाले उद्योगों में लगी हुई हैं। इसके निवेशों पर ब्याज व लाभांश के रूप में प्राप्त आय का 90 प्रतिशत भाग यूनिटों के धारकों को लाभांश के रूप में बांट दिया जाता है। इस प्रकार यूनिटों के क्रय द्वारा आम जनता इसकी वित्तीय क्रियाओं में भी भाग लेती है। दूसरी ओर, यूनिट ट्रस्ट द्वारा निवेशित धन राशि औद्योगिक संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वित्तीय संस्थाओं का विस्तृत अध्ययन आप एक अलग पाठ्यक्रम में करेंगे।

6.3.3 पट्टाधृति कम्पनियां (Leasing Companies)

विनिर्माण कम्पनियां अपनी दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी पट्टाधृति कम्पनी से धन प्राप्त कर सकती हैं। इसके लिए पट्टाधृति कम्पनी द्वारा एक पट्टा-अनुबंध के अधीन आवश्यक सम्पत्ति (जैसे प्लाण्ट या मशीनरी) का क्रय किया जाता है। तत्पश्चात् यह सम्पत्ति एक निश्चित अवधि के लिए विनिर्माण कम्पनी को किराये पर इस्तेमाल हेतु दे दी जाती है। अनुबंध की अवधि समाप्त होने पर विनिर्माण कम्पनी (अर्थात पट्टेदार) उस सम्पत्ति को अपनी इच्छानुसार किसी परस्पर निर्धारित घटे हुए मूल्य पर खरीद सकती है। पट्टे की अवधि के दौरान सम्पत्ति का स्वामित्व पट्टाधृति कम्पनी (अर्थात् पट्टाकर्ता) के पास रहता है। इसके अतिरिक्त, अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विनिर्माण कम्पनी द्वारा एक अन्य व्यवस्था अपनायी जा सकती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत विनिर्माण कम्पनी द्वारा चालू बाजार भाव पर अपनी किसी विद्यमान स्थायी सम्पत्ति का विक्रय किसी पट्टाधृति कंपनी को इस शर्त पर कर देती है कि पट्टाधृति कंपनी द्वारा उक्त सम्पत्ति एक निश्चित समयावधि के लिए विक्रेता को पट्टे पर वापस दी जायेगी। इसे 'बेच देना व पट्टे पर वापस लेना'' (Sale and Lease Back) की व्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भौतिक रूप से सम्पत्ति का कब्जा दिए बिना ही विनिर्माण कम्पनी को तुरन्त वित्त उपलब्ध हो जाता है और वह निश्चित समयान्तरों पर ''पट्टे का किराया'' देकर सम्पत्ति का उपयोग करती रहती है। किसी भी प्रकार के पट्टाधृति अनुबंध के अन्तर्गत पट्टाधृति कम्पनी के व्यय एवं लाभ के अतिरिक्त ब्याज का तत्त्व भी पट्टे के किराये में शामिल रहता है। वास्तव में पट्टाधृति कम्पनी औद्योगिक संस्थाओं में अपने धन का निवेश करती है और इसके प्रतिफल के रूप में इसे एक निश्चित आय होना आवश्यक है।

6.3.4 विदेशी स्रोत (Foreign Sources)

भारतीय कंपनियां विदेशी स्रोतों से भी पूंजी इकट्ठी कर सकती हैं। इन स्रोतों के अन्तर्गत i) विदेशी सहयोगी, ii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं तथा iii) अनिवासी भारतीय आते हैं।

विदेशी सहयोगी (Foreign Collaborators)

भारत सरकार से अनुमति मिलने पर भारत की बड़ी-बड़ी कंपनियां किसी अनुबंध के अधीन अपने विदेशी सहयोगियों से दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त कर सकती हैं। यद्यपि विदेशी निवेश के लिए कोई पूर्व-निश्चित क्षेत्र नहीं है तथापि विदेशी सहयोगी ईक्विटी पूंजी खरीदकर, तकनीकी ज्ञान सुलभकर, आधुनिक मशीनरी उपलब्ध करा कर तथा प्लाण्ट संबंधी रेखाचित्र व डिजाइन तथा एकस्व अधिकार

प्रदान कर भारतीय कम्पनियों को वित्तीय सहायता दे सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं (International Financial Institutions)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक वित्तीय संस्थाएं हैं जो कि संसार के सभी देशों में औद्योगिक विकास हेतु दीर्घकालीन वित्तीय सहायता देती हैं। इनमें से प्रमुख संस्थाएँ हैं : i) विश्व बैंक, तथा ii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम।

विश्व बैंक (World Bank) : यह अन्तर्राष्ट्रीय निवेशों को उत्पादक स्रोतों में प्रवाहित करने के लिए किया गया विश्वव्यापी प्रयास है। यह केवल उन्हीं विशिष्ट परियोजनाओं के लिए ऋण प्रदान करता है जो राष्ट्रीय विकास योजनाओं के अन्तर्गत आती हैं और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ व प्राथमिकता के योग्य हैं। इसके द्वारा दिए गए ऋणों के संबंध में भारत सरकार की गारंटी आवश्यक है। यद्यपि ये ऋण संस्था विशेष को प्रत्यक्ष रूप से अथवा किसी सरकारी एजेन्सी (जैसे औद्योगिक विकास बैंक) के माध्यम से दिये जा सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation) : इसकी स्थापना 1956 में की गयी थी। यह विश्व बैंक की सम्बद्ध संस्था है। विश्व बैंक केवल सदस्य-सरकारों को या उन सरकारों द्वारा दी गई गारंटी पर ही निजी उद्यमों को ऋण देता है। यह औद्योगिक उद्यमों की जोखिम-पूंजी में धन नहीं लगाता। फलस्वरूप, विश्व बैंक आलोचना का पात्र बन गया है। इस आलोचना से बचने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम की स्थापना की गई। यह निगम अविकसित देशों में सरकार की गारंटी के बिना भी निजी उद्योगों को 8 से 10 वर्ष तक की अवधि के लिए ऋण देता है। ऐसी सहायता राष्ट्रीय विकास योजनाओं के अन्तर्गत प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों को ही मिल सकती है। सहायता प्राप्त औद्योगिक संस्था में निगम द्वारा कम से कम 1,00,000 डालर या उसके बराबर की पूंजी लगायी जाती है, यद्यपि अधिकतम पूंजी निर्धारित नहीं है। स्पष्ट है कि निगम केवल बड़ी रकम के ऋण आवेदन स्वीकार करता है। इससे सहायता लेने की इच्छुक संस्था की कुल-सम्पत्ति का मूल्य कम से कम पांच लाख डालर होना आवश्यक है।

अनिवासी भारतीय (Non-resident Indians)

विदेशों में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों व भारतीय नागरिकों को भी औद्योगिक कम्पनियों में शेयरों व ऋणपत्रों के अभिदान भरने की अनुमति है। अनिवासी भारतीय अथवा उनके द्वारा नियंत्रित कम्पनियों द्वारा कुल निवेश किसी भारतीय कम्पनी की प्रदत्त ईक्विटी शेयर पूंजी के 5 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। साथ ही, एक अनिवासी अथवा उसके द्वारा नियंत्रित कम्पनी का कुल निवेश उक्त प्रदत्त ईक्विटी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। अनिवासी भारतीय किसी औद्योगिक कम्पनी द्वारा निर्गमित नए शेयरों व ऋणपत्रों का केवल 40 प्रतिशत ही खरीद सकते हैं। परन्तु यदि वे शेयर व ऋणपत्रों को कुछ समय बाद बेचकर अपनी पूंजी स्वदेश वापिस भेजने का विकल्प रखते हैं तो किसी भी दशा में उनके द्वारा निवेश की राशि 40 लाख रुपये से अधिक नहीं हो सकती। इस नियम के अपवादस्वरूप कुछ ऐसे उद्योग भी हैं जिनको सरकार द्वारा प्राथमिकता दी जाती है, जैसे औद्योगिक मशीनरी, वैज्ञानिक यंत्र, उर्वरक, रसायन, औषध, होटल व्यवसाय, निर्यात-कार्य आदि।

6.3.5 संचित लाभ (Retained Profits)

कम्पनी की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विगत वर्षों के अवितरित लाभ का प्रयोग करना "संचित लाभ का पुनर्निवेश" कहलाता है। लाभप्रद कम्पनियों के लिए लाभ का पुनर्निवेश वित्त-पोषण का एक महत्त्वपूर्ण आंतरिक स्रोत है। प्रायः कम्पनियां अपने समस्त लाभ के कुछ भाग का वितरण लाभांश के रूप में न करके उसका पुनर्निवेश व्यवसाय में ही कर देती हैं। यह पुनर्निवेश रिजर्व के रूप में किया जाता है। इस व्यवस्था को "आंतरिक वित्त प्रबन्ध" भी कहते हैं। संचित लाभ का पुनर्निवेश कम्पनी के योजनाबद्ध विस्तार अथवा व्यावसायिक क्रियाओं की विभिन्नता हेतु किया जाता है। इसके द्वारा स्थायी सम्पत्तियों का नवीनीकरण, प्रसारण अथवा आधुनिकीकरण संभव हो जाता है। यही नहीं, इसके द्वारा पूंजी जुटाने में न तो किसी वैधानिक कानूनी औपचारिकता का पालन करना होता है और न ही किसी का नियंत्रण स्वीकार करना पड़ता है। अर्जित लाभ से अधिक पूंजी प्राप्त करने का अभिप्राय शेयर होल्डरों के चालू लाभांश को कम करना है। अतः इस व्यवस्था का उपयोग केवल उस दशा में करना चाहिए जबकि लाभांश की दर उसी प्रकार की अन्य कम्पनियों द्वारा घोषित लाभांश की दर के अनुरूप है। शेयर बाजार के

उतार-चढ़ाव तथा शेयर होल्डरों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए कम्पनी द्वारा अर्जित लाभ का एक हिस्सा लाभांश के रूप में बांटना आवश्क है। पूंजी प्राप्त करने के बाह्य स्रोतों की तुलना में संचित लाभ के पुनर्निवेश में प्रतिभूतियों को बेचने हेतु व्यय नहीं करना पड़ता। परन्तु संचय के लिए लाभ सुलभ न होने की दशा में यह स्रोत निरर्थक हो जाता है। यही इसकी एक मात्र दुर्बलता है।

रेखाचित्र 6.1 को देखिए। यह कम्पनियों द्वारा दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों को दर्शाता है।

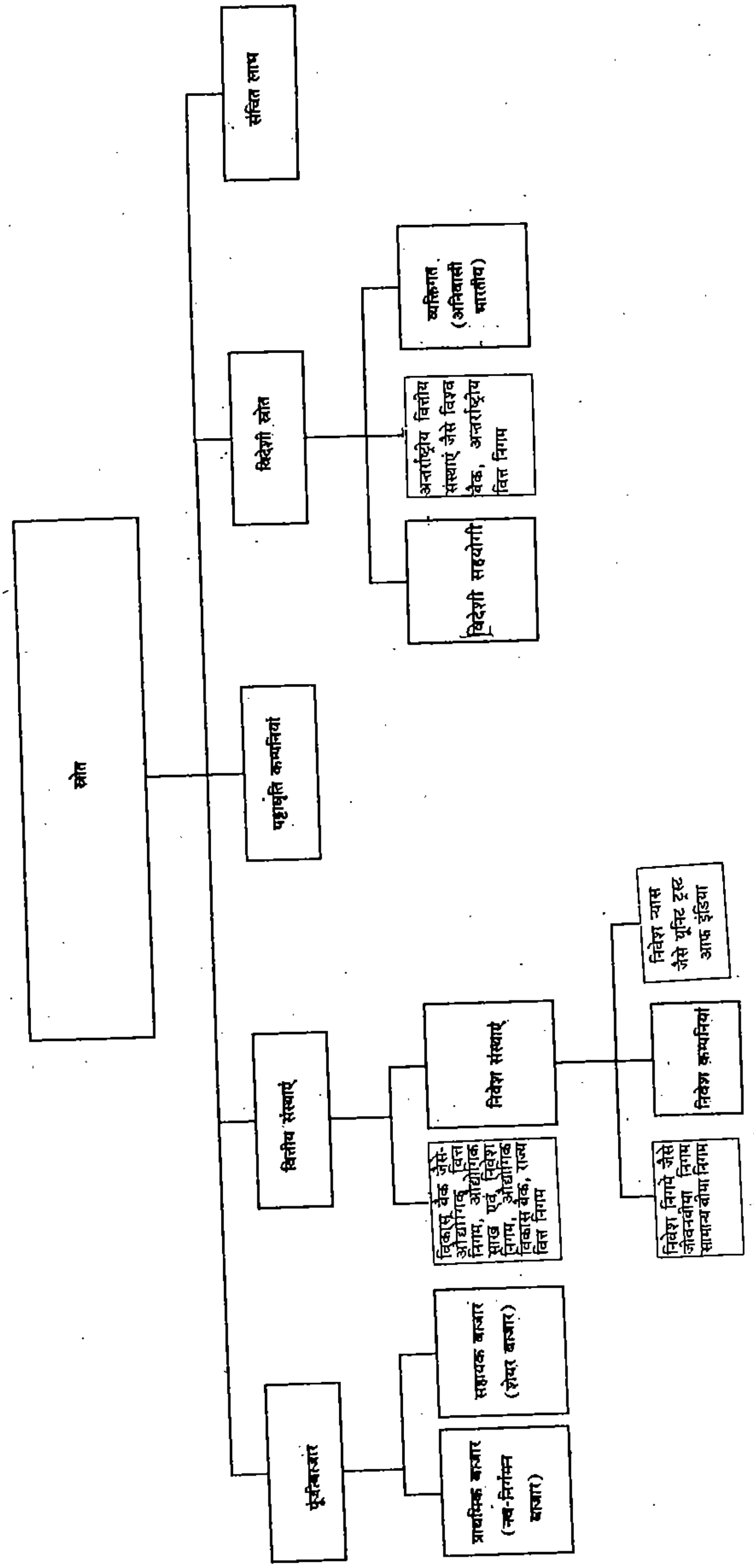

रेखाचित्र 6.1: दीर्घकालीन वित्त के स्रोत

बोध प्रश्न ग

1 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम एक .... बैंक है।

ii) कम्पनियां भारतीय औद्योगिक विकास वित्त निगम से .... वर्ष की अवधि के भीतर वापस देय ऋण प्राप्त कर सकती हैं।

iii) भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम .... वर्ष तक के लिए दीर्घकालीन ऋण देता है।

iv) औद्योगिक विकास बैंक, अन्य विकास बैंकों द्वारा कम्पनियों को दिये गये दीर्घकालीन ऋणों के .... की सुविधा प्रदान करता है।

v) राज्य वित्त निगम द्वारा किसी औद्योगिक संस्था को .... प्रदत्त पूंजी के .... प्रतिशत से अथवा .... लाख रुपये से अधिक (इनमें से जो भी कम हो) ऋण नहीं दिया जा सकता।

2 बताइए कि निम्न कथन सत्य हैं या असत्य।

i) भारतीय जीवन बीमा निगम एक निवेश न्यास है।

ii) यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया अपनी निधियों को कम्पनियों के शेयरों व ऋणपत्रों में निवेशित कर सकता है।

iii) किसी औद्योगिक संस्था द्वारा किसी निवेश कम्पनी से अपनी अभिदत्त पूंजी का केवल 20 प्रतिशत ही दीर्घकालीन वित्त के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

iv) एक साझेदारी फर्म भारतीय औद्योगिक वित्त निगम से ऋण मंज़ूर करवा सकती है।

v) राज्य वित्त निगमें कम्पनियों के अलावा एकल व्यापारियों एवं साझेदारी फर्मों को भी ऋण देती है।

vi) यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया द्वारा निर्गमित इकाइयां (यूनिट) जनता द्वारा किसी भी समय अंकित मूल्य पर खरीदी जा सकती हैं।

vii) विकास बैंक, व्यापारिक बैंकों के समान होते हैं।

viii) निवेश कम्पनियों को शेयर निर्गमन के द्वारा कम्पनियां पूंजी इकट्ठी कर सकती हैं।

3 निम्नलिखित में से सत्य और असत्य बताइए।

i) 'बेच देना व पट्टे पर वापस लेना'' की व्यवस्था पट्टाधृति कम्पनी एवं विनिर्माण संस्था के बीच करार पर आधारित होती है।

ii) कुछ समय के लिए पट्टे के अधीन इस्तेमाल की गयी सम्पत्तियों को निर्धारित समयावधि की समाप्ति पर निरपवाद रूप से पट्टाधृति कम्पनी को वापस लौटा देना चाहिए।

iii) विदेशी कम्पनियां भारत में निर्गमित शेयरों हेतु अभिदान कभी नहीं भेज सकतीं।

iv) पुनर्भुगतान के संबंध में सरकार की गारंटी न होने पर भी विश्व बैंक प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक फर्मों को ऋण दे सकता है।

v) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम बीस वर्ष की अवधि के लिए ऋण देता है।

vi) अनिवासी भारतीय किसी कम्पनी की प्रदत्त ईक्विटी पूंजी के 10 प्रतिशत से अधिक राशि के नए शेयरों के लिए अभिदान नहीं कर सकते।

vii) किसी कम्पनी को अपने अर्जित लाभ में से लाभांश का भुगतान तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि उच्च-स्तर के लाभ कमाने हेतु व्यवसाय के विस्तार के लिए इसके सभी लाभों का पुनर्निवेश किया जाना संभव हो।

6.4 अभिगोपन (Underwriting)

इस बात का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं कि विकास बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक सीमित कंपनियों के शेयरों व ऋणपत्रों का अभिगोपन किया जाता है। इनके अतिरिक्त निवेश-न्यासों, शेयर-दलालों, निर्गमन गृहों (Issue Houses) तथा इसी प्रकार के अन्य संगठनों द्वारा भी शेयरों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमनों का अभिगोपन किया जाता है। प्रतिभूतियों के निर्गमनों का अभिगोपन करने वाली इन संस्थाओं एवं व्यक्तियों को "अभिगोपक" कहते हैं। अब हम अभिगोपन के संबंध में विस्तार से चर्चा करेंगे।

6.4.1 अभिगोपन क्या है?

शेयरों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक अभिदान हेतु प्रविवरण जारी करने से पहले सामान्यतः कम्पनी के प्रवर्तक ऐसी व्यवस्था करते हैं जिसके द्वारा निर्गमन के प्रति आम जनता में आशाप्रद प्रतिक्रिया हो। इस व्यवस्था के अभाव में उन्हें यह डर लगा रहता है कि कहीं जनता इन शेयरों या ऋणपत्रों को खरीदने के लिए पर्याप्त आवेदन न भेजे और परिणामस्वरूप उनको "न्यूनतम अभिदान" (Minimum Subscription) की राशि न मिल सके जो अनिवार्य होती है। अतः इस जोखिम से बचने के लिए कम्पनी के प्रवर्तक प्रायः वित्तीय संस्थाओं से इस बात का आश्वासन प्राप्त कर लेते हैं कि जनता से पर्याप्त मात्रा में आवेदन प्राप्त न होने की दशा में ये वित्तीय संस्थाएं व दलाल आवेदनों की कमी स्वयं अपनी ओर से आवेदन देकर पूरी कर देंगे। इस व्यवस्था को प्रतिभूतियों का अभिगोपन करना कहते हैं। इसी प्रकार वर्तमान कंपनियां भी यदि शेयरों और डिबेंचरों को जारी करके और वित्त जुटाना चाहती हैं तो उन्हें पहले से ही निश्चित हो जाना होता है कि पर्याप्त मात्रा में आवेदन प्राप्त हो जाएंगे।

अभिगोपन जनता के समक्ष शेयर प्रस्तुत करने से पहले ही किया गया एक समझौता है। यह समझौता एक ओर अभिगोपन संस्था या दलाल तथा दूसरी ओर कम्पनी के प्रवर्तकों या निदेशकों के बीच होता है। इस समझौते के अधीन अभिगोपक इस बात के लिए सहमत होता है कि वह जनता द्वारा कम्पनी के समस्त शेयरों या उन शेयरों के किसी निश्चित भाग को न खरीदे जाने की दशा में, निर्धारित कमीशन लेकर उन्हें स्वयं खरीद लेगा। इस प्रकार अभिगोपन समझौते के अधीन अभिगोपन करने वाली संस्था या दलाल शेयरों और ऋणपत्रों की बिक्री का दायित्व अपने ऊपर ले लेता है। इस सेवा के प्रतिफल के रूप में अभिगोपन कमीशन दिया जाता है। प्रायः यह कमीशन अभिगोपित प्रतिभूतियों के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत होता है।

6.4.2 अभिगोपन की शर्तें एवं प्रतिबंध

अभिगोपन की व्यवस्था करने हेतु कम्पनी द्वारा अभिगोपकों के साथ एक समझौता (संधि) किया जाता है। यदि कम्पनी का निर्माण हो चुका है, तो अभिगोपन का अनुबन्ध कम्पनी के साथ किया जाता है, और यदि उसका निर्माण अभी नहीं हुआ है तो यह समझौता प्रवर्तकों के साथ होता है। अभिगोपन समझौते में निम्नलिखित बातों का विशेष रूप से उल्लेख होता है :

i) ऐसे शेयरों व ऋण पत्रों की संख्या, जिनके अभिगोपन हेतु अभिगोपकों ने अपनी सहमति दी है।

ii) अभिगोपकों द्वारा ली गई इस आशय की जिम्मेवारी कि जनता द्वारा न खरीदे गये शेयरों या ऋणपत्रों को वे स्वयं खरीद लेंगे।

iii) कम्पनी द्वारा दिया गया यह वचन कि प्रविवरण में उल्लिखित निर्गमन संबंधी शर्तों को अभिगोपकों की सहमति के बिना नहीं बदला जाएगा।

iv) अभिगोपकों द्वारा कंपनी को दिया गया यह अधिकार कि वह शेष बिना बिके शेयरों या ऋणपत्रों का आबंटन अभिगोपकों को कर दे।

v) अभिगोपकों को दी जाने वाली कमीशन की दर तथा उस कमीशन के भुगतान की विधि।

अभिगोपक एक प्रकार का "बीमा करने वाला" (Insurer) होता है। वह शेयरों के विक्रय का बीमा करता है और जनता द्वारा सम्पूर्ण या कुछ शेयरों को न खरीदे जाने की दशा में उन्हें स्वयं

लेने का वचन देता है। उसका दायित्व इस कथित संभावना के घटित होने पर ही उत्पन्न होता है। यदि जनता सम्पूर्ण शेयरों को लेने हेतु आवेदन-पत्र भेज देती है तो ऐसी दशा में अभिगोपक द्वारा शेयरों को खरीदने का प्रश्न नहीं उठता। परन्तु उक्त दोनों ही दशाओं में वह अभिगोपित किये गये सम्पूर्ण शेयरों के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत अभिगोपन-कमीशन के रूप में पाने का अधिकारी होगा।

कभी-कभी अभिगोपक शेयरों या डिबेंचरों के एक विशिष्ट समूह (block) को खरीदना चाहता है। इसे शेयरों के अभिदान का दृढ़ प्रस्ताव (firm offer) कहते हैं। इस आशय का एक वाक्यांश अभिगोपन समझौते में जोड़ दिया जाता है। फलस्वरूप, अभिगोपक को इस बात का आश्वासन मिल जाता है कि शेयरों का एक विशिष्ट समूह, जिसके लिए उसने दृढ़ प्रस्ताव किया था, का आबंटन उसे ही किया जायेगा।

6.4.3 विधिक विनियम

अभिगोपन कमीशन के संबंध में कम्पनी द्वारा कम्पनी अधिनियम की निम्नलिखित शर्तों का पालन किया जाना आवश्यक है :

i) अभिगोपन कमीशन का भुगतान कंपनी के अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होना चाहिए।

ii) अभिगोपन कमीशन शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमित-मूल्यों का क्रमशः 5 प्रतिशत व 2-1/2 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

iii) जिन शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमन के संबंध में उपयुक्त कमीशन दिया जाता है उनकी संख्या या दर का उल्लेख प्रविवरण या प्रविवरण के स्थान पर विवरण में अवश्य किया जाना चाहिए।

iv) अभिगोपन कमीशन का भुगतान पूंजी अथवा लाभ में से किया जा सकता है।

6.4.4 अभिगोपन के लाभ एवं सीमाएं

अभिगोपन का सबसे बड़ा लाभ प्रवर्तकों को होता है। निर्गमित पूंजी के अभिदान की पूरी गारंटी मिल जाने से उनकी जोखिम कम हो जाती है। वे प्रतिभूतियों के विक्रय एवं वितरण की चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं। उन्हें पूंजी जुटाने के लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता। प्रतिभूतियों में जनता के लिए पर्याप्त आकर्षण न होने पर भी अभिगोपक कम्पनी को वित्त सुलभ कर देते हैं। कम्पनी द्वारा व्यापार आरंभ करने से पहले स्थायी सम्पत्तियों का क्रय व अन्य प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है और इन सब कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। अभिगोपन अनुबंध हो जाने के बाद प्रवर्तक आत्मविश्वास के साथ प्रारंभिक कार्यवाही पूरी करने में जुट जाते हैं। वे पूंजी की प्रतीक्षा किए बिना ही स्थायी सम्पत्तियों के क्रय आदि के समझौते कर लेते हैं। उन्हें जनता की प्रतिक्रिया जानने हेतु और "न्यूनतम अभिदान की राशि" प्राप्त होने तक रुकना नहीं पड़ता। इस प्रकार अभिगोपन के द्वारा समय की बचत होती है और व्यावसायिक क्रियाओं का प्रारंभ सुदृढ़ आधार पर किया जा सकता है।

अभिगोपन के माध्यम से कम्पनी को प्रतिभूतियों के निर्गमन से संबंधित मामलों पर अनुभवी व कुशल वित्तीय संस्थाओं का परामर्श मिल जाता है। प्रत्येक अभिगोपक कम्पनी के साथ समझौता करने से पहले उसकी वित्तीय योजनाओं का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करता है। इस प्रक्रिया के दौरान वह वांछित सुधारों हेतु सुझाव देकर भविष्य में आने वाली किसी वित्तीय रुकावट से छुटकारा दिलाता है। किसी प्रतिष्ठित अभिगोपक के साथ अनुबंध हो जाने से निवेशकर्ता को यह विश्वास हो जाता है कि वित्तीय योजना श्रेष्ठ होने पर ही अभिगोपक ने उन शेयरों का अभिगोपन स्वीकार किया होगा। अतः इससे कम्पनी की साख बढ़ती है और कम्पनी को अपनी जरूरत की सारी पूंजी तुरंत मिल जाती है।

अभिगोपकों के प्रयास से कम्पनी की प्रतिभूतियां दूर-दूर के निवेशकों तक फैल जाती हैं। व्यवहार में अभिगोपकों का देश-विदेश के शेयर दलालों व एजेण्टों के साथ व्यापारिक संबंध बना रहता है। ये दलाल व एजेण्ट अपने-अपने क्षेत्रों में कम्पनी की प्रतिभूतियों का वितरण करते हैं और इस सेवा के बदले में कमीशन लेते हैं। अतः कम्पनी की प्रतिभूतियों के विक्रय का क्षेत्र अधिक व्यापक हो जाता

है और प्रबंध नियंत्रण हथियाने वाले गुटों के बनन का सभावना भी कम हो जाती है। आम निवेशक के दृष्टिकोण से भी कम्पनी की प्रतिभूतियों का अभिगोपन लाभदायक है। किसी विख्यात अभिगोपक द्वारा दिये गये वचन के कारण वह अपने हित को सुरक्षित समझता है।

प्रतिभूतियों के अभिगोपन का एक मात्र दोष यह है कि इससे पूंजी की लागत बढ़ जाती है। अतः निर्गमित शेयरों व ऋणपत्रों की इस अतिरिक्त लागत को पूरा करने हेतु प्रस्तावित पूंजी के निवेश पर आय की दर पर्याप्त रूप से ऊंची होनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में अभिगोपन के महत्त्व को देखते हुए प्रतिष्ठित लाभप्रद कम्पनियां भी अपने अतिरिक्त शेयरों व ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमन हेतु इसकी व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार अभिगोपन व्यय एक अपरिहार्य लागत बन गया है। यही कारण है कि छोटी कम्पनियों को भी अभिगोपन हेतु भारी व्यय करना पड़ता है, जो उनके लिए कठिन हो सकता है।

6.4.5 अभिगोपन एजेन्सियां व संस्थाएं

पीछे की गयी चर्चा में हम यह बता चुके हैं कि कोई भी व्यक्ति, साझेदारी फर्म, कम्पनी अथवा वित्तीय संस्था अभिगोपक हो सकती है। इन सबको अभिगोपन एजेन्सियों अथवा संस्थाओं की संज्ञा दी जा सकती है। भारत में विकास बैंकों, व्यापारिक बैंकों, निवेश-न्यासों, निवेश कम्पनियों, शेयर-दलालों आदि द्वारा अभिगोपन संबंधी सुविधायें प्रदान की जाती हैं। हमारे देश की कुछ महत्त्वपूर्ण अभिगोपन एजेन्सियां निम्नलिखित हैं :

1 **विकास बैंक :** भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, राज्य वित्त निगमें, आदि।

2 **निवेश संस्थाएं :** भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया और निवेश कम्पनियां।

3 **व्यापारिक बैंक :** स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, सैंट्रल बैंक, बैंक ऑफ इण्डिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, आदि।

4 **अन्य :** शेयर दलाल, ऋण-दाता, आदि।

बोध प्रश्न घ

सही प्रश्न के आगे √ का निशान लगाइये।

1 अभिगोपन का आशय

- i) शेयरों के क्रय हेतु वचन देना है।
- ii) ऋण-पत्रों के क्रय हेतु वचन देना है।
- iii) शेयरों के निर्गमन के संबंध में सार्वजनिक अभिदान का आश्वासन देना है।
- iv) शेयरों या ऋणपत्रों के अभिदान की जिम्मेदारी लेने से है, यदि जनता ने इनके लिए पर्याप्त अभिदान नहीं दिया है।

2 अभिगोपन कमीशन का भुगतान प्रतिशत के रूप में किया जाता है :

- i) शेयरों के अंकित मूल्य के।
- ii) शेयरों के बाजार भाव के।
- iii) जनता द्वारा खरीदे गये शेयरों के मूल्य के।
- iv) जनता को क्रय हेतु पेश किये गये सभी शेयरों के निर्गमित मूल्य के।

3 कम्पनी द्वारा देय अभिगोपन कमीशन की अधिकतम राशि अभिगोपित शेयरों के निर्गमित मूल्य का

- i) 2 प्रतिशत हो सकती है।
- ii) 4 प्रतिशत हो सकती है।
- iii) 5 प्रतिशत हो सकती है।

iv) 7.5 प्रतिशत हो सकती है।

4 अभिगोपन कमीशन का भुगतान अधिकृत होना चाहिए .

i) निदेशक मंडल द्वारा

ii) संस्था के अन्तर्नियम द्वारा

iii) संस्थ सीमा नियम द्वारा

iv) कम्पनी के प्रबंध निदेशक द्वारा

6.5 सारांश

स्थायी परिसंपत्तियों में केवल दीर्घकालीन वित्त का निवेश किया जा सकता है। विनिर्माण कम्पनियों में दीर्घकालीन वित्त सापेक्ष रूप से अधिक आवश्यक होता है। अन्य प्रकार के व्यवसाय संगठनों की तुलना में सार्वजनिक सीमित कंपनियां बड़े पैमाने पर दीर्घकालीन निधियां प्राप्त कर सकती हैं। साधारणतया कंपनियां अवितरित लाभों के पुनर्निवेश के अलावा पूंजी बाजार, विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं, पट्टाधृति कंपनियों तथा विदेशी स्रोतों से दीर्घकालीन वित्त जुटा सकती हैं।

पूंजी बाजार का आशय व्यक्तियों और संस्थाओं के बीच होने वाले उन लेन-देनों से होता है जिनमें दीर्घकालीन पूंजी की प्राप्ति एवं आपूर्ति निहित होती है।

कंपनियां शेयरों व ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा दीर्घकालीन पूंजी जुटाती हैं। नयी कंपनियों द्वारा प्रारंभ में जुटाई जाने वाली दीर्घकालीन पूंजी से संबंधित लेन-देन नव-निर्गमन बाजार में किये जाते हैं। परन्तु वह व्यवस्था जिसके अन्तर्गत निदेशकों के मित्रों तथा रिश्तेदारों को आपसी बातचीन के आधार पर शेयरों या ऋणपत्रों का आबंटन किया जाता है, "शेयरों का निजी प्रस्तुतीकरण" कहलाता है।

शेयरों व ऋणपत्रों का सार्वजनिक निर्गमन करने वाली कम्पनी द्वारा 12 मास की अवधि में एक करोड़ रुपये से अधिक धनराशि एकत्रित किये जाने की दशा में पूंजी निर्गमन नियंत्रक की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। परन्तु शेयर जारी करने वाली सार्वजनिक सीमित कंपनियां कुछ शर्तों को पूरा करने पर उक्त प्रावधान से मुक्त हो जाती हैं। ऋण पत्रों का सार्वजनिक निर्गमन करने वाली कम्पनी के लिए पूंजी निर्गमन नियंत्रक से अनुमति लेना आवश्यक होता है।

व्यावसायिक उपक्रमों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने हेतु राज्य-स्तर व राष्ट्रीय स्तर पर अनेक विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं हैं—जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, भारतीय विकास बैंक, तथा भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम। इन संस्थाओं को **विकास बैंक** की संज्ञा दी जाती है। अन्य प्रकार की संस्थाएं (जैसे **निवेश न्यास** अथवा **निवेश कम्पनियां**) भी कंपनियों के शेयरों व ऋणपत्रों हेतु अभिदान करती हैं। ये विकास बैंक व निवेश संस्थाएं ऋण देने के अलावा औद्योगिक कंपनियों के ऋणों की गारंटी देती हैं और उनके द्वारा निर्गमित शेयरों व ऋणपत्रों का अभिगोपन भी करती हैं।

किसी पट्टाधृति कम्पनी से कंपनियों द्वारा सम्पत्तियां किराये पर इस्तेमाल हेतु प्राप्त की जा सकती हैं। पट्टाधृति कंपनियां अपने धन का निवेश उक्त संपत्तियों में करती हैं और इसके बदले में सम्पत्तियों का इस्तेमाल करने वाली कंपनियों से किराया वसूल करती हैं।

कभी-कभी बड़े पैमाने की औद्योगिक संस्थाओं को भारत सरकार से अनुमति मिलने पर विश्व बैंक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम से या फिर विदेशी कंपनियों के सहयोग से दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध हो जाता है। अनिवासी भारतीय भी कुछ प्रतिबंधों के अधीन भारतीय कंपनियों द्वारा निर्गमित शेयरों व ऋणपत्रों के लिए अभिदान भर सकते हैं। अर्जित लाभ में से कुछ लाभांश न बांटे जाने की दशा में संचित लाभ का पुनर्निवेश कंपनियों के लिए दीर्घकालीन वित्त का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत बन जाता है।

अभिगोपन, कम्पनी व ऐसे व्यक्तियों के मध्य एक समझौता है, जो इस बात का वचन देते हैं कि यदि एक निश्चित समय के अन्दर कम्पनी द्वारा जारी किये गये समस्त या कुछ शेयरों या ऋणपत्रों

को जनता द्वारा नहीं लिया गया तो वे स्वयं उन या ऋण-पत्रों को ले लेंगे और उनकी राशि का भुगतान करेंगे। कंपनी और इन व्यक्तियों के बीच हुए इस प्रकार के अनुबंध को "अभिगोपन संविदा" कहा जाता है तथा उन व्यक्तियों को जो शेयरों व ऋणपत्रों की बिक्री का वचन देते हैं, अभिगोपक कहा जाता है। कम्पनी के अभिगोपकों को उनकी सेवाओं के बदले समझौते के अधीन तय की गयी दर से अभिगोपन कमीशन दिया जाता है। तय की गयी दर कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्धारित अधिकतम दर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

अभिगोपन अनुबंध से कम्पनियों को वित्त सुलभ हो जाने का आश्वासन मिल जाता है। कई बार अभिगोपक कम्पनियों को विशेषज्ञ अभिमत (Expert opinion) देते हैं। कोई भी अभिगोपक कम्पनी की वित्तीय-सुदृढ़ता के बारे में संतुष्ट हो जाने पर ही अभिगोपन समझौता करता है। इसके फलस्वरूप, नये शेयरों के अभिदान भरने वाले निवेशकों को सापेक्ष रूप से कम जोखिम का सामना करना पड़ता है। परन्तु अभिगोपन के कारण पूंजी की लागत बढ़ जाती है। भारत में विकास बैंक, व्यापारिक बैंक, निवेश कंपनियां तथा शेयर दलाल अभिगोपन का काम करते हैं।

6.6 शब्दावली

पूंजी बाजार (Capital Market) : वे लेन-देन जिनके माध्यम से दीर्घकालीन पूंजी निवेशकों द्वारा लगायी जाती है और कम्पनियों द्वारा प्राप्त की जाती है। यह दीर्घकालीन पूंजी का बाजार है।

परिवर्तनीय ऋणपत्र (Convertible Debenture) : वे ऋणपत्र जिनको किसी समयावधि के बाद ईक्विटी शेयरों में बदलने का प्रावधान होता है।

विकास बैंक (Development Banks) : वित्तीय संस्थाएं जो राष्ट्रीय विकास योजना के अनुरूप उद्योगों की दीर्घावधि व मध्यावधि पूंजी प्रदान करती हैं।

निवेश संस्थाएं (Investment Institutions) : ऐसी वित्तीय संस्थाएं जो व्यक्तिगत बचतों को प्रोत्साहित करती हैं और जिनका मुख्य कार्य निवेशकों की बचतों को लाभप्रद उद्योगों में लगाकर समुचित आय प्राप्त करने में उनकी सहायता करना होता है।

निवेश न्यास (Investment Trust) : एक विशिष्ट वित्तीय संस्था जो निवेशकों को अपने शेयर व ऋणपत्र बेचकर धन इकट्ठा करती है और उन्हें विभिन्न प्रकार के लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से इस धन का सामूहिक निवेश लाभप्रद कम्पनियों में करती है।

मुद्रा बाजार (Money Market) : अल्पकालीन निधियों का बाजार जिसमें विनिमय पत्रों, प्रतिज्ञापत्रों व अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों का कारोबार किया जाता है।

नव-निर्गमन बाजार (New Issue Market) : दीर्घकालीन वित्त हेतु व्यवस्था जिसके अन्तर्गत कम्पनियों द्वारा नये शेयरों व ऋणपत्रों का निर्गमन सुविधाजनक हो जाता है।

निजी प्रस्तुतीकरण (Private Placement) : शेयरों व ऋणपत्रों का सार्वजनिक निर्गमन करने से पहले उन्हें निजी समझौते द्वारा आबंटित करना।

संचित लाभ (Retained Profits) : अर्जित लाभ का वह भाग जिसे शेयर होल्डरों को लाभांश के रूप में नहीं बांटा गया होता है।

विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं (Special Financial Institutions) : औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित की गई वित्तीय संस्थाएं।

अभिगोपन (Underwriting) : कम्पनी व अभिगोपकों के मध्य एक ऐसा समझौता जिसके अंतर्गत निर्धारित कमीशन के बदले अभिगोपकों से इस बात का आश्वासन मिल जाता है कि कंपनी द्वारा निर्गमन किये गये शेयरों या ऋणपत्रों को जनता द्वारा न खरीदे जाने की दशा में वे स्वयं उन शेयरों व ऋणपत्रों को खरीद लेंगे।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत* (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एण्ड संस, 1988) अध्याय 2, 3, खंड पांच।

बी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय* (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 20, 21

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एवं एस.सी. जोशी : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 15, 16

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 2, 3 खंड चार।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 (i) स्थायी संपत्तियों (ii) निजी, सार्वजनिक (iii) बदला (iv) वापस

2 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य

ख 1 (i) सत्य (ii) असत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) असत्य (vi) असत्य (vii) सत्य (viii) असत्य

2 i) पूंजी निर्गमन नियंत्रक

ii) अल्पकालीन, दीर्घकालीन

iii) सात

iv) परिवर्तनीय ऋणपत्र

v) निजी प्रस्तुतीकरण

vi) निगमन

3 (1) iii (2) vi (3) i (4) v (5) ii (6) iv

ग 1 (i) विकास (ii) 25 (iii) 15 (iv) पुनर्वित्तीयन (v) अपनी, 10, 10

2 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) असत्य (v) सत्य (vi) सत्य (vii) असत्य (viii) सत्य

3 (i) सत्य (ii) असत्य (iii) असत्य (v) असत्य (vi) असत्य (vii) असत्य

घ (1) iv (2) iv (3) iii (4) ii

6.9 स्वपरख प्रश्न

1 निम्नलिखित का अर्थ संक्षेप में समझाइए।
क) मुद्रा बाजार,
ख) पूंजी बाजार, तथा
ग) नव-निर्गमन बाजार

2 उन स्रोतों का उल्लेख कीजिए जिनसे कंपनियां दीर्घकालीन वित्त प्राप्त कर सकती हैं। दीर्घकालीन वित्त के स्रोतों के रूप में निवेश कंपनियों तथा निवेश न्यासों के बीच अंतर कीजिए।

3 शेयरों के "निजी प्रस्तुतीकरण" से क्या आशय है? क्या ऋणपत्रों का निजी प्रस्तुतीकरण संभव है?

4 क्या जनता को शेयर व ऋणपत्र जारी करने से पहले पूंजी निर्गमन नियंत्रक की अनुमति लेना अनिवार्य है? कंपनी द्वारा ऋणपत्रों का निर्गमन करने हेतु किन-किन शर्तों का पालन करना पड़ता है?

5 विकास बैंक से आपका क्या अभिप्राय है? राष्ट्रीय स्तर के दो बैंकों के कार्य बताइए।

6 यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया के कार्यों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

7 क) "पट्टाधृति कंपनी" से क्या आशय है? एक विनिर्माण कंपनी द्वारा पट्टाधृति कंपनी से किस प्रकार दीर्घकालीन वित्त प्राप्त किया जा सकता है?

ख) "बेच देना व पट्टे पर वापस लेना" से आप क्या समझते हैं?

8 निम्नलिखित पर व्याख्यात्मक टिप्पणियां लिखिए :

क) दीर्घकालीन वित्त के स्रोत के रूप में संचित लाभ

ख) दीर्घकालीन वित्त के विदेशी स्रोत

ग) अनिवासी भारतीयों द्वारा शेयरों में निवेश पर प्रतिबंध

9 शेयरों व ऋणपत्रों के अभिगोपन से आप क्या समझते हैं? कंपनियों द्वारा दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने में यह किस प्रकार सहायक होता है? शेयरों व ऋणपत्रों के अभिगोपन संबंधी शर्तों व प्रतिबंधों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

10 शेयरों व ऋणपत्रों का निर्गमन करने वाली एक सार्वजनिक कंपनी ने भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के साथ अभिगोपन संविदा किया है। इस संविदा के अधीन 10 रुपये मूल्य के 1,00,000 ईक्विटी शेयरों व 100 रुपये मूल्य के 50,000 ऋणपत्रों का अभिगोपन किया जाना अपेक्षित है। अभिगोपन कमशीन का भुगतान इस संबंध में कंपनी अधिनियम के अंतर्गत देय अधिकतम दर से किया जाएगा। जनता से 70,000 शेयरों और 40,000 ऋणपत्रों हेतु अभिदान प्राप्त हुए। शेष बिना बिके शेयर व ऋणपत्र अभिगोपकों ने खरीद लिये। अभिगोपन कमीशन की राशि की गणना कीजिए।

इकाई 7 स्टॉक एक्सचेंज

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 स्टॉक एक्सचेंज क्या है?

7.3 स्टॉक एक्सचेंज के कार्य

- 7.3.1 प्रमुख कार्य
- 7.3.2 गौण कार्य

7.4 स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार की पद्धति

7.5 स्टॉक एक्सचेंजों में होने वाले लेन-देन के प्रकार

7.6 कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द

7.7 स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का सूचीकरण

7.8 सट्टा और स्टॉक एक्सचेंज

7.9 स्टॉक एक्सचेंजों में कीमतों को प्रभावित करने वाले कारक

7.10 लाभ व हानियां

- 7.10.1 लाभ
- 7.10.2 हानियां

7.11 स्टॉक एक्सचेंजों का विनियमन एवं नियंत्रण

7.12 सारांश

7.13 शब्दावली

7.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.16 स्वपरख प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- स्टॉक एक्सचेंज का अर्थ और उसका महत्त्व स्पष्ट कर सकें
- स्टॉक एक्सचेंजों के आर्थिक कार्यों की व्याख्या कर सकें
- स्टॉक एक्सचेंज में किए जाने वाले व्यापार की पद्धति को स्पष्ट कर सकें
- यह बता सकें कि स्टॉक एक्सचेंज में किस प्रकार के लेन-देन होते हैं और उन में कौन से महत्त्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया जाता है
- सूचीकरण का महत्त्व बता सकें
- सट्टे का अर्थ बता सकें
- स्टॉक एकसचेंज में कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव के लिए उत्तरदायी कारणों की व्याख्या कर सकें
- स्टॉक एक्सचेंज के लाभ और कमियों का वर्णन कर सकें
- स्टॉक एक्सचेंज के नियमन एवं नियंत्रण की आवश्यकता का विश्लेषण कर सकें
- प्रतिभूति संविदा (नियमन) अधिनियम 1956 के प्रावधानों के बारे में बता सकें।

7.1 प्रस्तावना

इकाई 5 और 6 में आप पूंजी की आवश्यकता तथा अल्पकालीन और दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने के साधनों की जानकारी प्राप्त कर चुके है। आप यह भी जानते हैं कि कम्पनी साधारणतया शेयर और ऋणपत्र निर्गमित करके पूंजी जुटाती है जो निगम प्रतिभूतियाँ (Corporate Securities) कहलाती हैं। कम्पनियों की ही भांति केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें भी बांण्डों तथा प्रपत्रों को जिन्हें सरकारी प्रतिभूतियां (Government Securities) कहा जाता है, वित्त प्राप्त करने के लिए जनता में निर्गमित करती है। अन्य संस्थाएं जैसे पोर्ट ट्रस्ट, नगरपालिकाएँ तथा सरकारी उपक्रम भी इसी प्रकार की प्रतिभूतियां निर्गमित करते हैं। अधिकांश निवेशक इन प्रतिभूतियों को ब्याज अथवा लाभांश के रूप में आय प्राप्त करने के लिए खरीदते हैं। परन्तु उनमें से बहुत से निवेशक भी अपनी वित्तीय की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अथवा अधिक आय की आशा में किन्ही दूसरी प्रतिभूतियों में निवेश करने के लिए, इन प्रतिभूतियों को बेचने का निश्चय कर लेते हैं। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति, जिन के पास बचत की कुछ रकम है अथवा वे संस्थान जिनके पास अतिरिक्त धन है, विभिन्न प्रतिभूतियों में निवेश करना चाहेंगे।

कोई भी निवेशंक जिसे अपनी प्रतिभूतियों को बेचना होता है, किसी ऐसे व्यक्ति (दूसरें निवेशक) को ढूंढता है जो उन्हें खरीदने का इच्छुक हो। परन्तु जिन प्रतिभूतियों को बेचा जाना है, उन्हीं के खरीददारों को ढूंढ पाना आसान काम नहीं होता। यदि विक्रेता ऐसे क्रेता को ढूंढ भी ले, तो क्रेता विक्रेता की विक्रय करने की शीघ्रता का लाभ उठाकर उन प्रतिभूतियों की कम कीमत देना चाहेगा। ऐसी ही स्थिति क्रेता के सामने भी आ सकती है। उन प्रतिभूतियों का विक्रेता उसे आसानी से मिल जाएगा, यह जरूरी नहीं है। अस्तु, प्रतिभूतियों के क्रेता तथा विक्रेता दोनों को ही एक दूसरे को पहचानने में तथा क्रय-विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों की कीमत पर आपसी लाभ के लिए रजामंद होने में कठिनाई आती है। इन समस्याओं को हल करने के लिए वे दोनों ही एक सुविधाजनक स्थान पर मिल सकते हैं। स्टॉक एक्सचेंज ऐसा ही एक सुविधाजनक स्थान है। यह एक संस्था है जो अपने सदस्यों के माध्यम से, जिन्हें दलाल कहा जाता है, विद्यमान प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय की सुविधा प्रदान करती है।

इस इकाई में आप स्टॉक एक्सचेंज का अर्थ, अर्थव्यवस्था में इसका महत्त्व और स्टॉक एक्सचेंज में लेनदेन की कार्यविधि के सबंध में अध्ययन करेंगे तथा भारत में स्टॉक एक्सचेंज के लेन-देन का नियमन किस प्रकार किया जाता है आदि की जानकारी भी प्राप्त करेंगे।

7.2 स्टॉक एक्सचेंज क्या है

यदि आप स्टॉक एक्सचेंज शब्द को दो भागों में बांटे तो आपको दो शब्द मिलेंगे— एक शब्द है"स्टॉक" जिसका अर्थ है कम्पनी की पूंजी का एक भाग अथवा अंश, तथा दूसरा शब्द है "एक्सचेंज" जिसका अर्थ है विनिमय अर्थात् क्रय और विक्रय। अस्तु हम कह सकते है कि स्टॉक एक्सचेंज एक ऐसा बाजार है जहां विभिन्न कम्पनियों के शेयरों तथा ऋणपत्रों का क्रय और विक्रय होता है। यहां न केवल शेयरों तथा ऋणपत्रों का बल्कि केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया, स्टील अथोरिटी आफ इंडिया, नेशनल थर्मल पावर निगम आदि जैसी संस्थाओं द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों का भी इसके पाटिया पर क्रय और विक्रय होता है। यह बाजार केवल अपने सदस्यों के लिए ही खुला रहता है जिसमें बहुत से तो दलाल होते हैं। स्टॉक एक्सचेंज प्रायः एक संघ, समिति अथवा कम्पनी के रूप में संगठित किया जाता है। इसकी सदस्यता की संख्या सीमित होती है और स्थान रिक्त होने पर नए सदस्य बनाए जाते हैं। प्रत्येक सदस्य को निर्धारित सदस्यता शुल्क देना होता है।

प्रतिभूति संविदा (नियमन) अधिनियम, 1956 ने स्टॉक एक्सचेंज की परिभाषा देते हुए इसे **"एक संघ, संगठन, अथवा व्यक्तियों का समूह कहा है, जो निगमित भी हो सकता है और अनिगमित भी, तथा जिसकी स्थापना का उद्देश्य प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय और लेन-देन के व्यवसाय में सहायता पहुंचाना तथा इसका नियमन एवं नियंत्रण करना है।"**

एम.वी. पायली के अनुसार, "प्रतिभूति विनिमय बाजार ऐसे स्थान हैं जहां सूचीगत प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय, निवेश अथवा सट्टे के उद्देश्य से किया जा सकता है।"

डॉ. के.एल. गर्ग ने स्टॉक एक्सचेंज का वर्णन करते हुए कहा है, ''यह व्यक्तियों का एक संघ है जो निश्चित नियमों व रिवाजों के अनुसार जनता के लिए कमीशन पर प्रतिभूतियां खरीदते तथा बेचते है।

उपरोक्त चर्चा तथा परिभाषाओं के आधार पर हम स्टॉक एक्सचेंज की विशेषताओं को यों बता सकते हैं:

1 स्टॉक एक्सचेंज एक संगठित बाजार है।

2 केन्द्रीय तथा राज्य व स्थानीय सरकारों, पोर्ट ट्रस्ट्स, जन उपयोगी संस्थाओं, ज्वांइट स्टॉक कम्पनियों, सार्वजनिक निगमों आदि के द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों (शेयर, ऋणपत्र, बॉण्ड्स आदि) का क्रय और विक्रय स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर होता है।

3 स्टॉक एक्सचेंज में निवेशकों के लिए सदस्यों या उनके अधिकृत एजेंटों के बीच लेन-देन होते हैं।

4 स्टॉक एक्सचेंज में सभी लेन-देन संबंधित स्टॉक एक्सचेंज के नियमों व विनियमों से संचालित होते है।

भारत में 14 स्टॉक एक्सचेंज विभिन्न नगरों व केन्द्रों मे कार्य कर रहे है। उदाहरण के लिए बंबई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, अहमदाबाद, हैदराबाद, इंदौर, बंगलौर, कोचिन, कानपुर, पुणे, लुधियाना, गुवाहाटी तथा जयपुर। ये सभी प्रतिभूति संविदा (नियमन) 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत कार्य करते हैं।

बोध प्रश्न क

सही उत्तरों पर सही (√) का निशान लगाइए।

1 अ) स्टॉक एक्सचेंज एक बाजार है जहाँ क्रय और विक्रय होता है:

i) स्वर्ण, चांदी और बुलियन का ( )
ii) वस्तुओं का ( )
iii) प्रतिभूतियों का ( )
iv) उपर्युक्त सभी का ( )

ब) स्टॉक एक्सचेंज में क्रय और विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियां निर्गमित की जाती हैं:

i) ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों द्वारा ( )
ii) केन्द्रीय सरकार द्वारा ( )
iii) पब्लिक ट्रस्टों द्वारा ( )
iv) उपर्युक्त सभी के द्वारा ( )

स) स्टॉक एक्सचेंज में क्रेता: ( )

i) सरकार होती हैं ( )
ii) कंपनियां होती हैं ( )
iii) निवेशक होते हैं ( )
iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं होता ( )

2 स्टॉक एक्सचेंज का अर्थ लिखिए।

....
....
....
....
....

....

....

....

....

7.3 स्टॉक एक्सचेंज के कार्य (Functions of a Stock Echange)

स्टॉक एक्सचेंज वित्तीय बाजार का एक अंग होने के नाते देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अब हम आर्थिक दृष्टिकोण से स्टॉक एक्सचेंज के कार्यों पर चर्चा करने जा रहे है। इन कार्यो की व्याख्या (क) प्रमुख कार्यों, तथा (ख) गौण कार्यों के आधार पर की जा सकती है।

7.3.1 प्रमुख कार्य

1 **विक्रेता एवं कीमत की निरंतरता :** स्टॉक एक्सचेंज प्रतिभूतियों के विक्रय में सरलता प्रदान करता है क्योंकि मांग और पूर्ति के आधार पर स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय श्रेष्ठ मूल्य पर किया जा सकता है। लेनदेन के निरंतर होने कारण व्यवहारों में निरंतरता पाई जाती है और प्रतिभूतियों की चालू कीमतों का रिकार्ड रखा जाता है तथा समाचारपत्रों में प्रकाशित किया जाता है। इसके अलावा, क्रय और विक्रय की निरंतरता के कारण कीमतों के उतार-चढ़ाव पर भी अंकुश रहता है।

2 **अतिरिक्त बचत (Surplus savings) को जुटाना :** स्टॉक एक्सचेंज देश के पूंजी बाजार का एक अभिन्न अंग है। स्टॉक एक्सचेंजों के कारण ही देश के कोने-कोने की बचतें वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए औद्योगिक एवं व्यापारिक उपक्रमों को प्राप्त हो जाती हैं।

3 **आर्थिक एवं व्यावसायिक दशाओं का मापयंत्र :** प्रतिभूतियों के क्रय और विक्रय की तीव्रता के परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों की कीमतों में उतार-चढ़ाव से आर्थिक एवं व्यावसायिक परिस्थितियों का निवेशकों द्वारा किया गया मूल्यांकन ज्ञात हो जाता है। अस्तु, आर्थिक एवं व्यावसायिक समृद्धि की अवधि में प्रतिभूतियों की कीमतें चढ़ती हैं। इसके विपरीत, आर्थिक गतिहीनता अथवा बाजारों में मंदी के फलस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में कमी आने के कारण उत्पन्न स्थिति की अवधि में प्रतिभूतियों की कीमतें गिरती हैं। वास्तव में, प्रतिभूतियों की कीमतों में होने वाला परिवर्तन अत्यंत संवेदनशील होता है, क्योंकि आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दशाओं में होने वाले परिवर्तन का बहुत शीघ्र उनपर प्रभाव पड़ता है। अस्तु, लेन-देनों से उत्पन्न प्रतिभूतियों की कीमतों पर पड़े प्रभाव की प्रवृत्ति देश की आर्थिक एवं व्यावसायिक स्थिति की दशा का ज्ञान कराती है और इसी कारण स्टॉक एक्सचेंज को देश की आर्थिक दशा का मापयंत्र (Barometer) कहा जाता है।

4 **पूंजी की गतिशीलता :** स्टॉक एक्सचेंज प्रतिभूतियों के लिए खुला तथा निरंतर बाजार प्रदान करते हैं। वे पूंजी को गतिशील बनाते है तथा सुरक्षित निवेश की सुविधा प्रदान करते हैं। बचतों को प्रतिभूतियों में निवेशित किया जाता है और प्रतिभूतियों को नकदी में बदला जाता है जिससे अन्य प्रतिभूतियां खरीदी जा सकें। इस प्रकार स्टाक एक्सचेंज पूंजी को गतिशीलता प्रदान करते हैं तथा लाभप्रद निवेश को सुविधाजनक बनाते है।

5 **पूंजी निर्माण में सहयोग :** बचत करने वालों को निवेश के अवसरों का ज्ञान होने पर बचत की मात्रा में वृद्धि होती है। स्टॉक बाजार निवेशकों को यह ज्ञान प्रदान करते है कि कहां और कैसे उचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए निवेश किया जाना चाहिए।

6 **आघात अवशोषक (Shock absorber) :** सटोरियों द्वारा क्रय और विक्रय की गई प्रतिभूतियों की कीमतों में स्टॉक एक्सचेंज संतुलन बनाते हैं। भविष्य में कीमत बढ़ने के अनुमान से

सटोरिए प्रायः प्रतिभूतियां खरीदते हैं। उनके द्वारा क्रय करने से प्रतिभूतियों की कीमतें इतनी नहीं घटतीं जितनी कि उनके द्वारा क्रय न करने पर घटतीं है । फिर, जब कीमतें ऊंची हो जाती हैं तो सटोरिये कीमतों में कमी आने के अनुमान से पहले से ही बेचना शुरू कर देते हैं। उनके द्वारा प्रतिभूतियों का विक्रय करना कीमतों को बहुत अधिक ऊंचा जाने से रोकता है। इसप्रकार, सट्टे से लेन-देन कीमतों के अत्यधिक बढ़ने और घटने की प्रवृत्ति का नियमन करते है।

7 **छानबीन करने की प्रक्रिया (Sifting process) :** विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों की सापेक्ष जोखिम, मिलने वाले प्रतिफल आदि की पूरी तरह से छान-बीन कर लेने के पश्चात् ही प्रायः निवेशक अपनी बचतों का निवेश करना पसन्द करते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में निवेश करने के तुलनात्मक लाभ-हानि की जानकारी उन्हें स्टॉक एक्सचेंज में होने वाले लेन-देनों से होती है। इस प्रकार वे विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में से श्रेष्ठ प्रतिभूति को चुनकर अन्य को छोड़ सकते हैं और सुदृढ़ आधार पर निवेश संबंधी निर्णय ले सकते हैं।

8 **साधनों के विभाजन में सरलता प्रदान करते हैं :** स्टॉक बाजारों में होने वाले लेन-देनों के परिणामस्वरूप कम लाभ देने वाले उपक्रमों से हटकर नकदी पूंजी अधिक लाभ देने वाले उपक्रमों को प्राप्त होने लगती है। अस्तु **स्टॉक एवसचेंज की विद्यमानता पूंजी की गतिशीलता प्रदान करती है अर्थात् सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में पूंजी प्रवाहित होती है।** विकास की ओर अग्रसर होने वाले उपक्रम अपने कार्यों के लिए निवेशकों की बचतों को ऐसे उपक्रमों से, जिनका भविष्य अपेक्षाकृत अंधकारमय होता है, अपनी ओर अधिक आकृष्ट कर लेते हैं। इसप्रकार अर्थव्यवस्था के लिए उपलब्ध वित्तीय साधनों का विभाजन उचित आधार पर होता है। यह कहा जाता है, "स्टॉक एक्सचेंज के न होने पर समाज की बचतें, जो आर्थिक विकास और उत्पादन क्षमता की संचालक शक्ति है (Sinews of economic progress and productive efficiency) हैं, उनका पूर्णतः उपयोग नहीं किया जा सकेगा तथा उनकी बरबादी भी होगी।

7.3.2 गौण कार्य

1 **निवेश की सुरक्षा तथा लेन-देन में समानता :** स्टॉक एक्सचेंजों पर प्रत्येक कम्पनी की प्रतिभूतियों का लेन-देन नहीं होता। उन कम्पनियों को, जो अपनी प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर कराना चाहती है, कुछ शर्तों को पूरा करना पड़ता है। स्टॉक एक्सचेंज के अधिकारी कम्पनी की असलियत और उसकी वित्तीय सक्षमता के विषय में अपनी संतुष्टि करते हैं, जिससे निवेशक धोखा खाने से बच जाता है। बहुत-सी प्रकार की प्रतिभूतियां होती हैं और निवेशक को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में व्यवहार करने वाली कम्पनियों (जैसे इंजीनियरिंग संबंधी माल, उपभोग संबंधी माल आदि) की प्रतिभूतियों में निवेश करने के सापेक्षिक लाभों को ज्ञात करने का अवसर प्राप्त रहता है। प्रत्येक प्रदेश अथवा राज्य और प्रत्येक उद्योग को इस बात का समान अवसर मिलता है कि वे निवेशकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करें कि वे अपनी बचतों को उनमें लगायें।

2 **तरलता में सरलता :** निवेशक प्रायः अपने निवेश की तरलता पसंद करते हैं अर्थात् निवेश पर पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त करने के साथ-साथ नकदी में आसानी से परिवर्तन चाहते हैं। स्टॉक बाजार निवेशकों को यह आश्वासन प्रदान करते हैं। ये बाजार प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय में सहायक होते हैं। इसलिए निवेशक नये निगर्मनों में अंशदान करने के लिए खुशी-खुशी आगे आते हैं। अस्तु, स्टॉक एक्सचेंज निवेशों की तरलता का आश्वासन देते हैं, जोकि निवेशकों की आवश्यकता को पूरा करता है।

3 **बिक्री के संबंध में सही तथा निरंतर समाचार :** स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर प्रतिदिन क्रय और विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों तथा लेन-देनों की अंतिम कीमतों का रिकार्ड नियमित रूप से स्टॉक एक्सचेंज द्वारा रखा जाता है। यह सूचना समाचार पत्रों तथा अन्य सूचना देने वाले माध्यमों को भी दी जाती है जिसमें पाटिया बंद होने के समय तक की महत्त्वपूर्ण प्रतिभूतियों की कीमतें भी शामिल होती हैं। साप्ताहिक विज्ञापनों में पाटिया बंद होने के समय तक प्रचलित प्रतिभूतियों की कीमतें निवेशकों के सूचनार्थ छापी जाती है। यह सूचना कीमतों में उतार-चढ़ाव की प्रवृत्ति ज्ञात करने में सहायक होती है तथा स्वस्थ सट्टे को बढ़ावा देती है।

4 **सूचीगत कम्पनियों के बारे में पूरी सूचना :** संगठित स्टॉक एक्सचेंज अपने यहां सूचीगत कम्पनियों के बारे में सूचना प्रदान करते हैं तथा "अधिकृत वार्षिक पुस्तिका" (Official Year Book) के रूप में यह सूचना प्रकाशित करते हैं। निवेशकों के लिए यह सूचना निवेश-निर्णय लेने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती हैं।

5 **पुनः निवेश करने के लिए निर्णय लेने में सहायक :** कभी-कभी निवेशक एक प्रकार की प्रतिभूतियों मे किए गए निवेश को निकाल कर अधिक आय देने वाली अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों में लगाने के इच्छुक हो जाते है। यदि किसी कम्पनी के शेयर अथवा ऋणपत्रों की मांग अधिक है तो बाजार में उनकी कीमतों में वृद्धि होगी, जिसका अर्थ यह होगा कि निवेशकों ने इस कम्पनी के वर्तमान निष्पादन तथा भविष्य में होने वाले निष्पादन का अन्य कम्पनियों की तुलना में अच्छा मूल्यांकन किया है। दूसरी ओर यदि किसी कंपनी के शेयरों अथवा ऋणपत्रों की अधिक मात्रा में बिक्री करने की इच्छा व्यक्त की जा रही है अर्थात् बिक्री अधिक है और खरीददार नहीं है तो इनकी कीमत बाजार में गिरेगी, जो इस बात का संकेतक होगी कि निवेशक उस कम्पनी की वर्तमान आय तथा भविष्य में होने वाली आय से संतुष्ट नहीं है। इस प्रकार, प्रतिभूतियों की कीमतों में होने वाले परिवर्तन एक अमुक कम्पनी की प्रतिभूतियों की मांग व पूर्ति का उचित दिग्दर्शन कराते हैं।

6 **निवेशकों के लिए सुरक्षा :** प्रत्येक स्टॉक एक्सचेंज के अपने नियम व विनियम होते हैं, जिनके आधार पर वहां पर होने वाली कार्यवाहियों को नियंत्रित किया जाता है। केवल सदस्य ही प्रतिभूतियों का लेन-देन कर सकते है। सदस्यों द्वारा लेन-देनों में नियमों का कड़ाई के साथ पालन किया जाता है, अतः बेईमानी व गड़बड़ी के विरुद्ध निवेशकों का हित सुरक्षित रहता है।

7.4 स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार की पद्धति

मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में कम्पनियों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा निर्गमित सभी प्रतिभूतियों का लेन-देन नहीं होता। केवल सूचीगत प्रतिभूतियों का ही लेन-देन होता है। प्रतिभूतियों के सूचीकरण के विषय में आप इसी इकाई में आगे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर केवल सदस्य अथवा उनके अधिकृत एजेंट ही प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कर सकते हैं। यदि आप प्रतिभूतियों का क्रय अथवा विक्रय करना चाहते है तो आपको किसी स्टॉक एक्सचेंज के दलाल से संपर्क करना होगा, जो उस एक्सचेंज का सदस्य हो।

जब आप कुछ शेयर खरीदना चाहते है, तो आपको उन शेयरों को खरीदने के लिए दलाल को कहना होगा। कौन-सी प्रतिभूति खरीदनी चाहिए, इसके लिए भी आप अपने दलाल पर निर्भर रह सकते हैं। क्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों का निर्णय ले लेने के पश्चात् आपको उन प्रतिभूतियों की अनुमानित कीमत दलाल के पास जमा करनी होगी।

दलाल यह कार्य ा अपने अधिकृत लिपिक को सौंप देता है जो, उन प्रतिभूतियों के लिए निर्धारित समय में स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर पहुंच कर जोर-जोर से अपनी मांग को दोहराता है। वह प्रतिभूतियों अथवा प्रतिभूति का विवरण, क्रय की जाने वाली संख्या तथा कीमत, जिसपर वह उस प्रतिभूति को खरीदना चाहता है, बतलाता है। दूसरे दलाल उसकी मांग का उत्तर देते हैं। वे दूसरे दलाल या तो आपके दलाल द्वारा किए गए प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं अथवा प्रतिप्रस्ताव/मांग रखते है। इस प्रक्रिया द्वारा सौदा तय होता है।

प्रत्येक दलाल के पास एक नोट बुक रहती है जिसे **सौदा बही** कहते हैं। इस बही पर प्रतिभूति बेचने वाला दलाल अपने हस्ताक्षर करता है। ये हस्ताक्षर दूसरे पक्षकार द्वारा सौदे की पुष्टि का साक्ष्य माने जाते है। प्रत्येक दिन के अंत में प्रत्येक दलाल अपनी-अपनी नोट बुक स्टॉक एक्सचेंज के अधिकारी के पास लाता है। तत्पश्चात् सभी क्रय-विक्रय सौदों का विक्रय सौदों से मिलान किया जाता है। भुगतान वाले दिन आपका दलाल कीमत चुकाकर प्रतिभूति की सुपुर्दगी ले लेता है। आपको अपने दलाल को क्रय की गई प्रतिभूति की कीमत व दलाली चुकानी होती है। यह दलाली एक

निश्चित प्रतिशत होती है, जो स्टॉक एक्सचेंज द्वारा निर्धारित की जाती है। दलाल तब अपने ग्राहक के नाम से एक कान्ट्रैक्ट नोट तैयार करता है और उसे दे देता है। कान्ट्रैक्ट नोट में क्रय की गई प्रतिभूति की संख्या, विवरण तथा कीमत (दलाली सहित) लिखी जाती है।

इसी प्रकार की प्रक्रिया प्रतिभूति की बिक्री के समय अपनाई जाती है। चित्र 7.1 को देखिए। इसमें स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों की क्रय तथा विक्रय की प्रक्रिया को दिखाया गया है।

चित्र 7.1: स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों के क्रय तथा विक्रय की प्रक्रिया

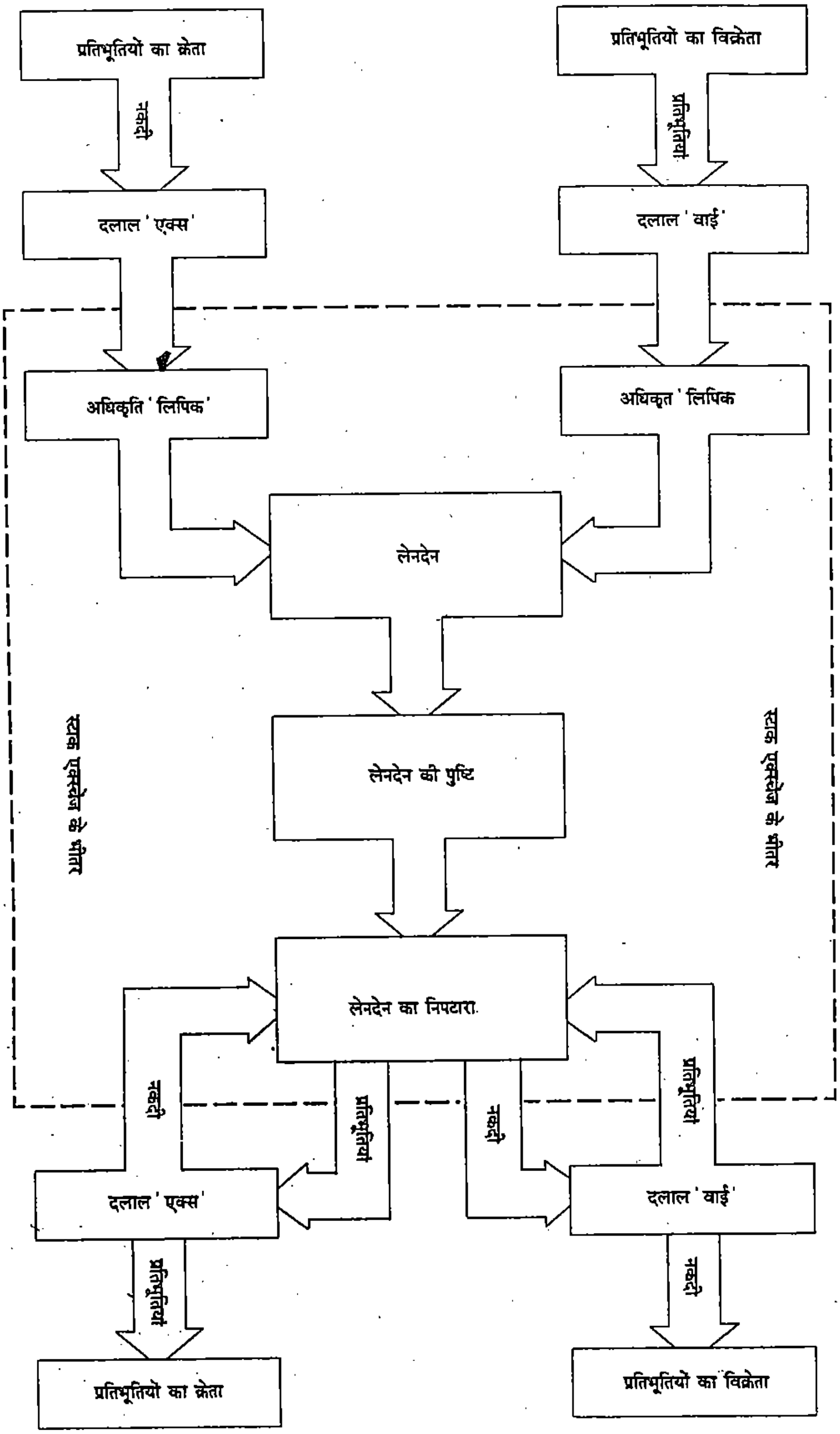

7.5 स्टॉक एक्सचेंज में होने वाले लेन-देन के प्रकार (Type of Dealings in a Stock Exchange)

स्टॉक एक्सचेंज में कई प्रकार के सौदे किए जाते हैं। आइए हम यहां संक्षेप मे उन पर विचार करें।

1 हाज़िर सुपुर्दगी वाले सौदे (Spot Delivery Contracts) : इस प्रकार के सौदों निपटान (settlement) तत्काल किया जाता है अर्थात् लेन-देन की सुपुर्दगी तथा कीमत का भुगतान उसी दिन अथवा अधिक से अधिक दूसरे दिन कर दिया जाता है। पर अब यह आम प्रथा नहीं रही है।

2 तैयार सुपुर्दगी वाले सौदे (Ready Delivery Contracts) : इस प्रकार के सौदों का निपटान (settlement) कुछ अवधि के अंदर किया जाता है। प्रायः 12 दिन की अवधि होती है और निपटारा अगले निपटारे के दिन किया जाता है। इस प्रकार के सौदों में निपटारे की तिथि टाली नहीं जाती।

3 भावी सुपुर्दगी के सौदे (Forward Delivery Contracts) : इस प्रकार के सौदे भी निपटान तिथि के दूसरे दिन पूरे किए जाते है, परन्तु इच्छानुसार इनको दूसरी निपटान तिथि तक टाला जा सकता है। यह सुविधा विशिष्ट सूची (सूची अ) में शामिल स्क्रिपों के लिए ही प्राप्त है। इस प्रकार के सौदे सट्टा हेतु किए जाते है, जिनमें क्रेता की मंशा सुपुर्दगी लेने तथा भुगतान करने की नहीं होती है। वह केवल दूसरे सौदे से पहले सौदे को सहारा देता है और मूल्यांतर से होने वाले लाभ अथवा हानि को उठाता है।

उदाहरण के लिए, संजय ने मोदी रबर के 1,000 शेयर 50 रु. प्रति शेयर की दर पर भाव चढ़ने की आशा से खरीदा। यदि आशा के अनुकूल भाव चढ़ता है तो वह 1,000 शेयरों की बिक्री का सौदा कर मूल्यांतर से होने वाले लाभ को प्राप्त कर लेगा। यदि आशा के विरुद्ध भाव गिरता है तो वह गिरे भाव पर विक्रय के लिए सौदा कर मूल्यांतर से होने वाली हानि वहन कर लेगा। परन्तु यदि उसे पुनः भाव चढ़ने की आशा हो, तो वह अपने सौदे को निपटाने की अगली तिथि तक टालने के लिए कह सकता है और इसके लिए उसे निर्धारित शुल्क देना पड़ता है। तकनीकी तौर पर तिथि को आगे बढ़ाने को **स्थगन अथवा बदला** कहा जाता है और दिया जाने वाला शुल्क बदला शुल्क (budla charges) कहा जाता है। इस शुल्क को कांटेगो और बैकवार्डेशन, जो आगे इस इकाई में वर्णित है, भी कहा जाता है। कभी-कभी पेशेवर बदलावाले, तेजड़िया सटोरिये को निर्धारित ब्याज की दर पर ऋण भी देते हैं, जिससे विक्रय की तिथि को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

भावी सुपुर्दगी के सौदे, भावी सौदों (Future Trading) से भिन्न होते हैं। भावी सौदों का अर्थ यह होता है भविष्य की तिथि पर क्रय अथवा विक्रय करने का समझौता करना। भारत में इस प्रकार का लेन-देन अब करने की मनाही है।

7.6 कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द (Some Important Terms)

स्टॉक एक्सचेंज में प्रयुक्त शब्दावली व्यवसाय जगत में सामान्यतः प्रयोग की जाने वाली सामान्य शब्दावली से कुछ भिन्न होती है। अधिकृत रिकार्ड तथा स्टॉक एक्सचेंज के लेन-देनों का लेखा रखने के लिए इस शब्दावली को अपनाया गया है।

तेजड़िया अथवा लम्बा (Bull or Long) : मूल्य वृद्धि की आशा से प्रतिभूतियों के क्रय करने वाला व्यक्ति तेजड़िया (bull) कहलाता है। जब कभी प्रतिभूतियों के मूल्य में वृद्धि की आशा बंधती है, इन व्यक्तियों की गतिविधि सक्रिय हो जाती है। वह भविष्य में बिक्री करने के उद्देश्य से उसका क्रय करता है। उसे तेजीवाला भी कहते है। उसका अनुमान सही निकलने पर उसे लाभ होता है, किंतु अनुमान विपरीत होने पर उसे हानि उठानी होती है। मान लीजिए कि वह 100 शेयरों को 105 रु. प्रति शेयर खरीदने का सौदा करता है। निपटारे की तिथि पर शेयर का भाव 110 रु. हो जाता है। वह अपने दलाल को सौदा पाटने के लिए कहकर 500 रु. का लाभ अर्जित कर लेता

है। दूसरी ओर, यदि इन शेयरों का भाव गिर जाता है तो उसे इस सौदे पर हानि उठानी होगी। ऐसी स्थिति में वह प्रतिकूल मूल्य के कारण बदला शुल्क (जिसे काटेंगो भी कहा जाता है) देकर वह इस निपटान की तिथि को आगे बढ़ाने के लिए भी कह सकता है। उसे "तेजड़िया" इसलिए कहा जाता है कि वह कृत्रिम रूप से मूल्यों को चढ़ाने की प्रवृत्ति में विश्वास करता है, ठीक वैसे ही जैसे सांड प्राणी को सींगों पर उठाकर फेंकता है।

मंदड़िया अथवा नाटा (Bear or short) : मूल्य में गिरावट की आशा से बिक्री करने वाला व्यक्ति मंदड़िया कहलाता है। मंदड़िया उन प्रतिभूतियों को बेचने का संविदा करता है जो उसके पास अभी है ही नहीं। वह ऐसा इसलिए करता है कि निपटाने की तिथि पर सौदा तिथि की तुलना में मूल्य गिरेंगे और वह गिरे भावों पर खरीद कर अपना आज का सौदा निपटा देगा। जब उसका अनुमान सही होता है तो उसे लाभ होता है और जब बाजार उसके विपरीत हो जाता है तो उसे हानि उठानी पड़ जाती है। यदि बाजार उसके विपरीत हो जाता है अर्थात् बाजार चढ़ता है तो वह बदला शुल्क (जिसे बैकवार्डेशन भी कहा जाता है) देकर निपटाने की तिथि को आगे बढ़ाने के लिए कह सकता है। मंदड़िया द्वारा बिक्री की जाने वाली प्रतिभूतियां न्यून-बिक्री (short selling) कहलाती है। वह इन प्रतिभूतियों को बाजार से क्रय कर अपने क्रेता को सुपुर्द करता है।

चंचल (Stag) : चंचल वह व्यक्ति है जो कम्पनियों के नवीन निर्गमित शेयर में लेन-देन करता है। वह कम्पनी के प्रविवरण के आधार पर शेयरों के लिए आवेदनपत्र भेजता है और आबंटन (allotment) के तुरंत बाद उनको प्रीमियम पर बेच देता है। वह तेजड़िया की ही भांति होता है, क्योंकि वह भी प्रतिभूतियों के बाजार में चढ़ाव की ही आशा करता है। वह बड़ी संख्या में शेयरों के आबंटन के लिए आवेदन करता है, क्योंकि उसे कम्पनी को आवेदन राशि ही आवेदन के समय चुकानी होती है। चंचल कभी-कभी बाजार में प्रतिभूतियों की कीमत में वृद्धि करने के लिए कृत्रिम मांग उत्पन्न कर देता है। यदि इन शेयरों की मांग कम हो जाती है और उसके द्वारा आवेदित सभी शेयर उसे आबंटित हो जाते है तो उसे ये शेयर बट्टे पर बेचने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में उसे घाटा हो जाता है।

स्थगन शुल्क (Contango) : यह बदला शुल्क है। निपटान की तिथि से सौदे की अगली निपटान की तिथि तक स्थगित करने के लिए तेजड़िया अपने दलाल को यह शुल्क चुकाता है। बदला शुल्क की यह राशि प्रतिभूतियों के वर्ग, उनकी संख्या, कीमत तथा सौदे की तिथि को बाजार में प्रचलित ब्याज की दर पर निर्भर करती है। प्रायः यह निपटारे के दिन प्रतिभूति की बाजार कीमत और सौदे की कीमत में अन्तर का आधा होता है।

ऊधा बदला शुल्क (Backwardation) : यह भी एक प्रकार का बदला शुल्क है जो मंदड़िया द्वारा निपटान की तिथि को स्थगन कराने के लिए तेजड़िया को मिलता है।

लाभांश सहित (Cum-dividend) : अंग्रेजी शब्द "कम" का अर्थ है "साथ" अथवा "सम्मिलित हुआ"। जब शेयर का भाव लाभांश सहित बताया जाता है तो क्रेता को उन शेयरों पर मिलने वाले लाभांश को प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है। यह लाभांश विक्रय के पश्चात् प्राप्त होता है। क्रय मूल्य में अर्जित लाभांश भी सम्मिलित होता है। ऐसा इसलिए होता है कि क्रेता पंजीकृत शेयर होल्डर बन जाता है और उसे कम्पनी द्वारा घोषित किया गया लाभांश प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। प्रतिभूतियों के लेन-देन अधिकांशतः लाभांश सहित होते हैं।

लाभांश रहित (Ex-dividend) : यह शब्द उन शेयरों के क्रय मूल्य को बताता है जिसमें कम्पनी द्वारा घोषित लाभांश प्राप्त करने का अधिकार क्रेता को नहीं मिलता। घोषित अथवा अर्जित लाभांश उसी व्यक्ति को मिलता है जिसका नाम कम्पनी के रजिस्टर में लिखा होता है। अतः जब क्रेता कम्पनी की पुस्तकों के बन्द हो जाने के पश्चात् शेयर खरीदता है, तो उसे लाभांश-रहित अंश ही क्रय करना होता है।

समेटना (Cornering) : यह बाजार की ऐसी स्थिति की द्योतक है जिसमें किसी प्रतिभूति की लगभग सम्पूर्ण पूर्ति किसी एक व्यक्ति (तेजड़िया) अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा एकत्र कर ली जाती है। ऐसी स्थिति में मंदड़िया उनको क्रय करने में असमर्थ रहता है और प्रतिभूतियों की सुपुर्दगी देने के अपने वचन का पालन करने में उसे कठिनाई होती है। यह शब्द बाहरी व्यक्ति द्वारा बड़ी

मात्रा में प्रतिभूतियों को क्रय करने के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है। उसका उद्देश्य कम्पनी के वर्तमान प्रबंध को हटाना अथवा उसको उलझन में डालना भी होता है।

मार्जिन जमा व्यापार (Margin Trading) : प्रतिभूतियों के लेन-देन के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत दलाल के पास जमा कराने के उपरान्त उन प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय की प्रथा को मार्जिन जमा व्यापार कहा जाता है। मूल्य के प्रतिशत रूप में जमा कराई जाने वाली राशि अंतर राशि (margin money) अथवा अंतर (margin) कहलाती है। इसका उद्देश्य संभाव्य हानि, यदि हो तो, को पूरा करना होता है। मार्जिन राशि जमा कराई जाने के समय, दलाल उस राशि को ग्राहक के मार्जिन राशि के खाते में जमा कर देता है। ग्राहक के नाम में प्रतिभूतियों को रखने के लिए मार्जिन राशि का जमा कराना पूर्व-शर्त होती है। ग्राहक के नाम में रखी गई प्रतिभूतियों पर होने वाली हानि के लिए अतिरिक्त राशि जमा कराने के लिए दलाल उसे कहता है। ग्राहक द्वारा यह रकम जमा न करने पर, दलाल प्रतिभूतियों को बेचकर यह हानि पूरी कर सकता है।

अन्तर बाजार अथवा मूल्यान्तर के सौदे (Arbitrage) : उस बाजार में जहां कीमत कम हो, क्रय करना और दूसरे बाजार में जहां कीमत ऊंची हो उन्हीं प्रतिभूतियों को बेचना "अन्तर बाजार अथवा मूल्यांतर के सौदे" (Arbitrage Operation) कहे जाते हैं। इस प्रकार के व्यवहारों के द्वारा एक निरंतर बाजार के सभी लाभ प्राप्त हो जाते है तथा विभिन्न स्टॉक एक्सचेंज में प्रचलित भिन्न-भिन्न मूल्यों में एकता लाने में इस प्रकार के लेन-देनों से स्टॉक एक्सचेंज के क्षेत्र में भी वृद्धि होती है। कीमतें एक-सी हो जाती है। उनमें अंतर केवल सम्प्रेषण व्यय तथा राशि हस्तांतरण की लागत के बराबर ही रह पाता है।

बाजार में तोड़फोड़ अथवा भाव बढ़ाना (Rigging the Market) : यह ऐसी स्थिति का बोध कराता है जब कुछ विशिष्ट शेयरों का मूल्य कृत्रिम रूप से बढ़ाया जाता है। प्रायः यह कार्य तेजड़ियों (आनुमानिक क्रेता) द्वारा किया जाता है जो मांग को बढ़ाकर बाजार को चढ़ा देते हैं। ऐसे व्यक्ति, जिनके पास बड़ी मात्रा में ये शेयर रहते हैं, प्रायः इनका क्रय-विक्रय करते हैं जिससे बाजार क्रियाशील बना रहता है और तब वे अपने शेयरों को बेचकर मुनाफा कमाते हैं।

निपटारे का दिन (Settlement Day) : प्रत्येक स्टॉक एक्सचेंज में क्रय-विक्रय किए गए लेन-देन का भुगतान करने के लिए एक विशेष दिन निर्धारित कर दिया जाता है। यह दिन प्रत्येक सप्ताह का सोमवार अथवा शनिवार होता है। दूसरे शब्दों मे, प्रत्येक सप्ताह इस दिन लेन-देनों का निपटारा किया जाता है। सटोरिए इस दिन अपने सौदे का निपटारा कर देते हैं अथवा बदला शुल्क देकर अगले निपटारा दिन के लिए सौदे का स्थगन करा लेते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, केवल संबंधित स्टॉक एक्सचेंज की सूची "अ" में सम्मिलित शेयरों के सौदों के निपटारे के दिन का ही स्थगन होता है।

रिक्त हस्तांतरण (Blank Transfer) : शेयरों की बिक्री करने पर विक्रेता को एक हस्तांतरण पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। इस पत्र में शेयरों तथा क्रेता का विवरण लिखा जाता है। हस्तांतरण पत्र पर निर्धारित दर से स्टाम्प कर भी लगाया जाता है। इस पत्र को कम्पनी के पास भेजने के पश्चात् ही शेयरों के हस्तांतरण का पंजीकरण होता है और कम्पनी के सदस्यों के रजिस्टर में हस्तांतरणकर्ता के नाम के स्थान पर हस्तांतरिती का नाम लिख दिया जाता है। किन्तु जब हस्तांतरण पत्र पर हस्तांतरिती का नाम लिखे बिना ही विक्रेता अपने हस्ताक्षर कर देता है तो वह **"रिक्त हस्तांतरण"** कहलाता है। अस्थायी रूप में प्रतिभूतियों को क्रय-विक्रय करने के लिए रिक्त हस्तांतरण सुविधाजनक रहता है। रिक्त हस्तांतरण से कुछ समय तक प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय स्टाम्प कर चुकाए बगैर किया जा सकता है। इससे अत्यधिक सट्टे को प्रोत्साहन मिलता है। अतः इसको रोकने के लिए हस्तांतरणकर्ता के हस्ताक्षर होने से पूर्व निर्धारित प्रपत्र के रूप में हस्तांतरण पत्र कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास भेजना जरूरी बना दिया गया है। इस प्रपत्र में प्रस्तुति की तिथि भी लिखी जाती है। तत्पश्चात् एक निश्चित अवधि के भीतर हस्तांतरण का पंजीकरण करने के लिए कम्पनी के पास यह प्रपत्र भेजना जरूरी है। सूचीगत प्रतिभूतियों की दशा में हस्तांतरण प्रपत्र पर प्रस्तुति की तिथि लिखने के उपरांत, सदस्यों के रजिस्टर को प्रथम बार बंद करने से पूर्व उसकी सुपुर्दगी कर देनी चाहिए। असूचीगत प्रतिभूतियों की दशा में हस्तांतरण प्रपत्र की सुपुर्दगी प्रस्तुति की तिथि के दो माह के भीतर कर देनी चाहिए।

सूची अ में सम्मिलित प्रतिभूतियां अथवा विशिष्ट प्रतिभूतियां (List A Securities or Specified Securities) : प्रत्येक स्टॉक एक्सचेंज में कुछ विशिष्ट प्रतिभूतियां होती है, जिनके लिए स्थगन सुविधा मिली होती है। इन प्रतिभूतियों को सूची अ में "सम्मिलित प्रतिभूतियां" अथवा "विशिष्ट प्रतिभूतियां" कहा जाता है।

सूची ब में सम्मिलित प्रतिभूतियां अथवा नकदी प्रतिभूतियां (List B Securities or Cash Securities) : सूची अ की प्रतिभूतियों के अतिरिक्त प्रतिभूतियां ब सूचीगत प्रतिभूतियां अथवा नकदी प्रतिभूतियां कहलाती हैं। इन प्रतिभूतियों के लेन-देनों का निपटारा एक निर्धारित अवधि में होना अनिवार्य होता है। इनके लिए स्थगन की अनुमति नहीं दी जाती।

जॉबर (Jobber) : लन्दन स्टॉक एक्सचेंज में दो प्रकार के सदस्य होते हैं — दलाल तथा जॉबर। लन्दन स्टॉक एक्सचेंज के प्रत्येक सदस्य को यह सूचना देनी होती है कि वह जॉबर के रूप में कार्य करेगा अथवा दलाल के रूप में। दलाल को अपने ग्राहकों के लिए लेन-देन करने होते है और इसके लिए उसे दलाली (कमीशन) मिलती है। वह अपने नाम में प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय नहीं कर सकता। जॉबर इसके विपरीत, प्रतिभूतियों का स्वतंत्र रूप से लेन-देन कर सकता है। वह अपने नाम से प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय कर सकता है तथा दलाल अथवा अन्य किसी जॉबर के साथ भी लेन-देन कर सकता है। भारतवर्ष में जॉबर और दलाल के बीच कोई अंतर नहीं है। स्टॉक एक्सचेंज का कोई भी सदस्य दलाल के रूप में कार्य कर सकता है तथा अपने नाम से भी प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय कर सकता है। बम्बई स्टॉक एक्सचेंज में सदस्यों को अनौपचारिक रूप में दो वर्गों में बांटा गया है: (i) दलाल, और (ii) तरावनीवाला। दलाल तथा जॉबर दोनों रूपों में कार्य करने वाला सदस्य "तरावनीवाला" कहलाता है। भारत में अधिकांश सदस्य इसी वर्ग के है।

बोध प्रश्न ख

1 आप गामा लिमिटेड के 100 शेयर क्रय करना चाहते हैं। इस उद्देश्य के लिए आपको किस प्रक्रिया को अपनाना पड़ेगा। वर्णन कीजिए।

....
....
....
....

2 हाज़िर सुपुर्दगी वाले सौदों और तैयार सुपुर्दगी वाले सौदों में क्या अंतर है?

....
....
....
....

3 भावी सुपुर्दगी का संविदा क्या है?

....
....
....
....

4 बताएं कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य।

i) स्टॉक एक्सचेंज निवेश को तरलता प्रदान करते हैं.................................. ( )

ii) प्रतिभूतियों के मूल्यों में होने वाले परिवर्तन देश की आर्थिक तथा व्यावसायिक परिस्थितियों को परिलक्षित करते है .... ( )

iii) स्टॉक एक्सचेंज अत्यधिक सट्टे को बढ़ावा नहीं देता.................................. ( )

iv) एक बाजार में जहां कीमतें कम हो, क्रय करना और उन्हीं प्रतिभूतियों को दूसरे बाजार में जहां कीमते ऊंचीं हों, विक्रय करना, अंतर बाजार के सौदे (arbitrage operation) कहा जाता है.................................. ( )

v) स्टॉक एक्सचेंज देश मे पूंजी निर्माण की सुविधा प्रदान करते है.................................. ( )

5 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) मूल्यवृद्धि की आशा में प्रतिभूतियों को क्रय करने वाला व्यक्ति...................................... कहलाता है। ( )

ii) तैयार सौदों के लेन-देन का.................................दिनों के भीतर निपटारा हो जाता है ( )

iii) विक्रेता की प्रार्थना पर निपटारे की तिथि का स्थगन करने के लिए दिया जाने वाला बदला शुल्क................................ कहलाता है। ( )

iv) विशिष्ट शेयर के बाजार मूल्य को कृत्रिम रूप से चढ़ाना...................................... कहलाता है। ( )

v) स्क्रिप प्रायः बेचे गए................................ लाभांश होते हैं ( )

7.7 स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का सूचीकरण (Listing of Securi ties on a Stock Exchange)

हम पहले लिख चुके है कि कम्पनियों के द्वारा निर्गमित सभी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर नहीं होता। केवल सूचीगत प्रतिभूतियों का ही क्रय-विक्रय किया जाता है। अब हम विस्तार से सूचीकरण के बारे में बताते हैं। सूचीकरण का अर्थ है, स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर क्रय-विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों की सूची में नवीन प्रतिभूतियों को शामिल करना। यदि कोई संयुक्त पूंजी कंपनी अथवा अन्य संस्था, जिसने नवीन शेयरों का निर्गमन किया है, स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर, इन प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कराना तथा उनके मूल्यों को प्रकाशित कराना चाहती है तो उसे इन प्रतिभूतियों को स्टॉक एक्सचेंज की विद्यमान सूची में सम्मिलित कराना होगा। इसके लिए कम्पनी को निर्दिष्ट सूचनाएं भरकर एक आवेदन-पत्र स्टॉक एक्सचेंज को देना होता है। प्रतिभूति संविदा (विनियमन) नियम, 1957 के अनुच्छेद 19 स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों के सूचीकरण के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं का उल्लेख करता है। "सूचीकरण से आशय है कि प्रतिभूतियों ने स्टॉक एक्सचेंज अधिकारियों को वैधता, सुरक्षा तथा कार्यशीलता के संबंध में संतुष्ट कर दिया है।" जब कोई प्रतिभूति स्टॉक एक्सचेंज में क्रय-विक्रय के लिए स्वीकृत कर ली जाती है तो इससे किसी भी प्रकार से कम्पनी की लाभ में गांरटी नहीं होती है। यह निवेशकों द्वारा विचार करने के लिए स्टॉक एक्सचेंज का कोई प्रमाण-पत्र भी नहीं होता। किंतु यह परोक्ष रूप से निवेशक के मन पर छाप लगा देता है कि सूचीगत प्रतिभूति में निवेश किया जा सकता है, क्योंकि प्रतिभूतियों का निर्गमन करने वाली कम्पनी ने स्टॉक एक्सचेंज के अधिकारियों को इस बात से संतुष्ट कर दिया है कि आवश्यक बातों को पूरा कर लिया गया है और कुछ भी छुपाया नहीं गया है। निवेशक को कम्पनी की सच्चाई के बारे में अपने को आश्वस्त करने का सूचीकरण एक उचित आधार प्रदान करता है।

सूचीकरण के लाभ : प्रतिभूतियों के सूचीकरण का प्रमुख लाभ यह है कि निवेशक जिन प्रतिभूतियों को क्रय अथवा विक्रय करना चाहता है उनके बारे में उसे सभी आवश्यक सूचना प्राप्त हो जाती है। सूचीकरण के कुछ अन्य लाभ इस प्रकार हैं:

1 यह प्रतिभूतियों के लिए निरंतर बाजार प्रदान करता है।

2 यह कम्पनी के नाम को प्रसिद्धि देता है।

3 प्रबंधकों द्वारा मूल्यों में गड़बड़ी करने पर यह परोक्ष रूप से रोक लगाता है।

कम्पनी की दृष्टि में प्रतिभूतियों का सूचीकरण दो प्रकार से उपयोगी होता है। (1) यह कम्पनी की साख में वृद्धि करता है और (2) यह प्रतिभूतियों के बाजार को विस्तृत बनाता है। **निवेशकों की दृष्टि से** सूचीकरण लेन-देन की सुरक्षा तथा तरलता प्रदान करता है। किन्तु, सूचीकरण, कंपनी की वित्तीय सुदृढ़ता का कोई प्रमाण-पत्र नहीं है। न ही यह प्रतिभूतियों को क्रय करने के लिए सिफारिश करता है। **यह केवल इतना ही बताता है कि कंपनी वैधानिक रूप से निगमित हुई तथा निगमन के समय यह एक संपन्न चालू फर्म थी।** यह सूचीगत प्रतिभूतियों के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है।

7.8 सट्टा और स्टॉक एक्सचेंज (Speculation & Stock Exchange)

सट्टा शब्द अंग्रेजी के speculation शब्द के लिए इस्तेमाल होता है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द "स्पेकूलेर" से हुई है। इसका अर्थ है "दूर से देखना अथवा भविष्य में होने वाली घटनाओं के बारे में पहले से ही निर्णय लेना।" किन्तु शेयर बाजार में, इसका अर्थ प्रतिभूतियों के लेन-देन से होता है, यह ध्यान रखते हुए कि वर्तमान तथा भविष्य में उनके मूल्यों में होने वाले अंतर से मुनाफा प्राप्त किया जा सके। यू.एस.ए के एमरी ने सट्टा का अर्थ इन शब्दों में व्यक्त किया है – "सट्टा का अर्थ है वस्तुओं, प्रतिभूतियों अथवा अन्य सम्पति का इस आशा से क्रय अथवा विक्रय करना कि उनके मूल्यों में अनुमानित परिवर्तन होने से लाभ प्राप्त हो। **सट्टा लेन-देन, निवेश के लेन-देन से भिन्न होते हैं।** ग्राहम, डौड तथा कौटल ने सट्टा तथा निवेश में अंतर इस प्रकार किया है:

"निवेश कार्य वह है जो गहन विश्लेषण के पश्चात् मूलधन की सुरक्षा तथा संतोषजनक प्रतिफल की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इन अनिवार्यताओं को पूरा करने वाले कार्य सट्टा कहलाते हैं।"

स्टॉक एक्सचेंज की कार्य प्रणाली जान लेने के बाद आप इस अंतर को भली प्रकार समझ सकते हैं। स्टॉक एक्सचेंज सूचीगत प्रतिभूतियों, जिन्हें "स्क्रिप्स" भी कहा जाता है, की बिक्री के लिए व्यवस्था करता है। इस बाजार का वास्तविक कार्य इन स्क्रिपों का क्रय और विक्रय करना है। क्रेता और विक्रेता दो प्रकार के सौदे करते हैं: एक निवेश के लिए और दूसरा सट्टे के लिए। वे क्रेता जो निवेश से बंधी हुई आय चाहते हैं, "असली निवेशक" कहलाते हैं। वे मूल्य चुकाने के बाद स्क्रिपों की सुपुर्दगी ले लेते हैं। इस प्रकार के लेन-देन निवेश के लेन-देन कहे जाते हैं। दूसरे प्रकार के लेन-देन में उद्देश्य मूल्यांतर में लेन-देन करना होता है। क्रेता स्क्रिपों की खरीद, उनको मुनाफे पर भविष्य में बेचने के लिए करते हैं। वे सटोरिये कहलाते है और उनके द्वारा किए गए लेन-देन सट्टा लेन-देन कहलाते हैं।

सट्टा तथा निवेश (Speculation and Investment) : यद्यपि सट्टा तथा निवेश कुछ दशाओं में भिन्न होते हैं, किन्तु व्यवहार में कौन वास्तविक निवेशक है और कौन शुद्ध सटोरिया, यह कहना बहुत ही दुष्कर है। क्रेता और विक्रेता दोनों ही आंशिक रूप में सटोरिए होते हैं। और आंशिक रूप में निवेशक। उनमें अंतर केवल मात्रा का ही होता है। आइए एक उदाहरण लें। एक क्रेता 100 शेयर 110 रु. प्रति शेयर लेने के लिए तैयार होता है। निपटारे के दिन, इन शेयरों का मूल्य 120 रु. प्रति शेयर हो जाता है। क्रेता या तो विक्रेता से 100 शेयरों की सुपुर्दगी की मांग कर सकता है और उसे 110 रु. की दर पर भुगतान कर सौदा पूर कर सकता है, अथवा विक्रेता को अंतर देने के लिए अर्थात् सौदा की तिथि का मूल्य (110 रु.) और निपटारे के दिन का मूल्य (120 रु.) कहकर सौदा पाट सकता है। यदि वह शेयरों की सुपुर्दगी के लिए जोर देता है, तब हम इसे निवेश का सौदा कहेंगे। लेकिन जब वह दोनों के मूल्यों का अंतर लेकर सौदा पाटता है तो यह सट्टा सौदा कहा जायेगा। कभी-कभी क्रेता निवेश की इच्छा से किए गए सौदे को, भाव बहुत ऊंचा बढ़ जाने के कारण, अंतर लेकर पाटने का निर्णय ले लेता है और इस प्रकार मुनाफा जेब में डाल लेता है। दूसरी ओर, जब भाव बहुत नीचे चला जाता है तब अधिक हानि न होने की आशंका से बचने के लिए वह उन्हें बेचने का निर्णय ले लेता है। इस प्रकार एक असली निवेशक भी प्रतिभूतियों को क्रय और विक्रय करने पर विचार कर सकता है और समयानुसार प्रतिभूतियों के मूल्यों में होने वाले उतार-चढ़ाव का लाभ उठा सकता है। फिर भी वह सटोरया के नाम से नहीं पुकारा जाएगा, क्योंकि उसकी मंशा निवेश करने की है, मूल्यांतर से लाभ उठाने की नहीं।

सट्टा और जुआ (Speculation and Gambling) : ऐसा भी सोचा जा सकता है कि सट्टा तथा जुआ एक ही है। बेशक सट्टे और जुए में कुछ समान गुण हैं। उदाहरण के लिए, दोनों का ही आधार भविष्य में होने वाली अनिश्चित घटनाएं हैं; दोनों मे ही हानि होने की जोखिम निहित है तथा दोनों में ही एक की हानि दूसरे को लाभ देती है। इन समानताओं के रहते हुए भी हम इन दोनों में निम्नलिखित अंतर कर सकते हैं।

1 सट्टा दूरदर्शिता पर आधारित होता है, जबकि जुआ दूरदर्शिता से दूर रहता है।

2 सट्टे का विचार मूल्यों में होने वाले अंतर से लाभ उठाना होता है, जबकि जुआ शुद्ध रूप से बाजी पर आधारित होता है। या तो बाजी जीती जाती है अथवा हारी जाती है।

3 सट्टे में हानि की जोखिम का पूर्वानुमान लगा लिया जाता है, जबकि जुआ कृत्रिम रूप से हानि की जोखिम उत्पन्न करता है।

4 सट्टा विवेकपूर्ण कार्य माना जाता है, इसका आधार तर्क है, जबकि जुआ एक विवेकहीन व्यापार है।

5 सट्टे को मान्यता प्राप्त है जबकि जुआ एक दण्डनीय कार्य है।

7.9 स्टॉक एक्सचेंजों में कीमतों को प्रभावित करने वाले कारक

प्रतिभूतियों के मूल्य, विशेषकर ईक्विटी शेयरों के, कभी-कभी बहुत अधिक तथा तीव्रता के साथ घटते-बढ़ते है। मूल्यों में परिवर्तन मुख्य रूप से सटोरियों के क्रय और विक्रय के कार्यों के कारण होतें है। किन्तु उनके सट्टे संबंधी लेन-देनों को मान लेने के साथ-साथ मूल्य उतार-चढ़ाव के कुछ और भी कारण हैं। साधारणतः ये उतार-चढ़ाव निमनलिखित कारणो से होते हैं।

1 ब्याज की दर : यदि बैंकों द्वारा ऋण तथा ओवर ड्राफ्ट पर ली जाने वाली ब्याज की दर में परिवर्तन होता है तो सट्टे संबंधी लेने-देने में भी परिवर्तन होता है और परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। इस प्रकार यदि बैंक ब्याज की नीची दर पर क्रेडिट देता है तो लोग बैंक से ऋण लेकर प्रतिभूतियों में निवेश करने के लिए उत्साहित होंगे ओर लाभ उठाना चाहेंगे। परिणामवस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्य में वृद्धि होगी। दूसरी ओर, जब बैंक द्वारा दिये जाने वाले क्रेडिट पर ब्याज की दर ऊंची चढ़ती है तो ऋण लेने में कमी आएगी और प्रतिभूतियों की मांग अपेक्षाकृत कम होगी। परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्य में गिरावट आएगी।

2 वित्तीय संस्थाओं के कार्य : जब वित्तीय संस्थाएं बड़ी मात्रा में प्रतिभूतियां क्रय करना शुरू करती है तो मूल्य बढ़ना शुरू हो जाता है, क्योंकि इससे जनता के मन में उस कंपनी की साख बढ़ जाती है और चहुं ओर से उनकी मांग में वृद्धि होने लगती है। इसी प्रकार, यदि वित्तीय संस्थाएं इन प्रतिभूतियों को बड़ी मात्रा में बेचना शुरू कर देती हैं, तो कीमतें गिरने लगती हैं।

3 कंपनी का निष्पादन : कंपनी के शेयरों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव से कंपनी की सफलता का ज्ञान होता है, जिससे भविष्य में होने वाले उसके लाभों तथा लाभांश की घोषणा का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा इसलिए होता है कि कंपनी की लाभ अर्जन करने की क्षमता और अनुमानित लाभांश की दर निवेशों पर प्राप्त होने वाले प्रतिफल तथा शेयरों के भावी मूल्यों में वृद्धि के बारे में निवेशकों के अनुमान को प्रभावित करती हैं। यदि भविष्य आशाजनक है, तो शेयरों की मांग में वृद्धि होगी ओर उनके भाव चढ़ेंगे। इसके विपरीत, यदि लाभ अर्जन करने और लाभांश के भुगतान के दृष्टिकोण से कंपनी के कार्य असंतुष्टि की प्रवृत्ति दिखलाते है तो प्रतिभूतियों की मांग में गिरावट आने के कारण शेयरों के मूल्य गिरने लगेंगे।

4 व्यवसाय-चक्र (Business cycles) : समय-समय पर व्यावसायिक स्थितियां तेजी और मंदी दिखलाती रहती हैं। समृद्धि की स्थिति होने पर प्रतिभूतियों का मूल्य चढ़ता है, क्योंकि तब तेजड़िया सटोरियों की कार्यवाही बढ़ जाती है, वे प्रतिभूतियों की खरीद करते जाते है। परन्तु जब पर्याप्त राशि न रहने के कारण सटोरिया अपने दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो जाते है, तो वे बिक्री करने के लिए विवश हो जाते है, परिणामस्वरूप मूल्य तेजी से गिरने लगते है और बाजार में मंदी आ जाती है।

5 निदेशक मंडल में परिवर्तन : कभी-कभी कुछ विशिष्ट कंपनियों के निदेशक मंडलों मे परिवर्तन होने से उन कंपनियों के शेयरों के मूल्यों में भी उतार-चढ़ाव होने लगते हैं। प्रसिद्ध निदेशक की मृत्यु होने अथवा उसके द्वारा त्याग-पत्र देने संबंधित खबरों से कंपनी के भविष्य के बारे में शंका अथवा भय उत्पन्न होने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रायः उस कंपनी के शेयरों के मूल्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है।

6 सहानुभूति के कारण परिवर्तन : एक से अधिक स्टॉक एक्सचेंजों के पाटियों पर एक सी ही प्रतिभूतियों के क्रय और विक्रय की दशा में, एक स्टॉक एक्सचेंज में मूल्य परिवर्तन का प्रभाव दूसरे स्टॉक एक्सचेंजों पर भी पड़ने लगता है। यदि एक स्टॉक एक्सचेंज में कुछ प्रतिभूतियों के मूल्य में किसी अमुक कारणवश गिरावट आती है तो उन्हीं प्रतिभूतियों के मूल्य अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में भी गिरने लगते हैं। सटोरियों के बीच समाचारों का तत्काल संप्रेषण होने के कारण ऐसा होता है।

7 राजनैतिक घटनाएं : सरकार के बदलने, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में परिवर्तनों, संघर्ष तथा राजनैतिक उतार-चढ़ाव तथा राष्ट्रों के बीच युद्ध, प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव के कारण बन जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि व्यवसाय तथा उद्योग की दशाएं प्रायः राजनैतिक घटनाओं से प्रभावित होती हैं।

8 सरकारी नीति में परिवर्तन : कराधान, आयात-निर्यात, मूल्य नियंत्रण, लाइसेंसिंग आदि के बारे में सरकारी नीति में परिवर्तन भी प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सरकार लाभांश को आयकर से मुक्त कर देती है तो प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जायेंगे। दूसरी ओर यदि सरकार कंपनी के लाभों पर आयकर की दर में वृद्धि कर देती है तो मूल्यों में गिरावट आ जाएगी। वास्तव में, आजकल सरकार की नीति में परिवर्तन प्रतिभूतियों के मूल्यों उतार-चढ़ाव का प्रमुख कारण बन गए हैं।

9 विविध कारक : बहुत से ऐसे कारक हैं जो स्टॉक एक्सचेंजों से प्रत्यक्ष रूप में संबंध नहीं रखते-तथापि वे सटोरियों की मानसिक प्रतिक्रियाओं के कारण प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, मौसम में अप्रत्याशित परिवर्तन तथा कम अथवा अति वृष्टि (जो कृषि उत्पाद पर प्रभाव डालती है), उर्वरक, खाद्य तेल, सूती वस्त्र आदि का निर्माण करने वाली कंपनियों की प्रतिभूतियों के शेयरों के मूल्यों को प्रभावित करते है। इसी प्रकार दीर्घ अवधि तक ताला बंदी भी प्रतिभूतियों के मूल्यों में कमी ला सकती है। अथवा प्रधानमंत्री जैसे शासन के प्रमुख व्यक्तियों की बीमारी प्रतिभूतियों के मूल्य को गिरा सकती है।

बोध प्रश्न ग

1 प्रतिभूतियों का सूचीकरण क्यों आवश्यक है?

....

....

....

....

....

....

2 सट्टा से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य।

i) सट्टा और जुआ एक ही है।

ii) सामान्यतः सट्टा लेन-देन और निवेश के लेन-देन में अंतर करना कठिन हो जाता है।

iii) सट्टा लेन-देनों में मूल्यांतर से लाभ कमाना ही मंशा होती है।

iv) सट्टा विभिन्न स्टॉक एक्सचेंजों में प्रचलित स्क्रिपों के मूल्यों में समानता लाने में सहायक होता है।

v) अत्यधिक सट्टा हानिकार नहीं होता।

vi) स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का सूचीकरण करना कंपनी की वित्तीय सुदृढ़ता की गारंटी देता है।

vii) प्रतिभूतियों का सूचीकरण यह बोध कराता है कि सूचीकरण ने प्रतिभूति ने स्टॉक एक्सचेंज अधिकारियों की आवश्यकताओं को पूरा कर दिया है।

viii) यदि कंपनी के लाभ तथा लाभांश की दर संतोषजनक है तो शेयरों के मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति होगी।

ix) स्टॉक एकसचेंज के पाटिया पर किसी भी प्रतिभूति का लेन-देन किया जा सकता है।

4 **रिक्त स्थानों को भरिये।**

i) प्रतिभूतियों के सूचीकरण का अर्थ है........................प्रतिभूतियों को स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर लेनदेन की जाने वाली प्रतिभूतियों की सूची शामिल करना।

ii) प्रतिभूतियों का सूचीकरण प्रतिभूति के लिए........................बाजार प्रदान करता है।

iii) यदि मंदड़िया सटोरिये क्रियाशील रहते है तो प्रतिभूति के मूल्यों मे........................ की प्रवृत्ति उत्पन्न हों जाती है।

iv) यदि बैंक ऋण पर ब्याज में........................ होती है, तो प्रतिभूतियों का मूल्य गिरने लगता है।

7.10 लाभ व हानियाँ

7.10.1 लाभ

स्टॉक एक्सचेंज के कार्यों की जानकारी कर लेने के पश्चात् हम उनके लाभों पर निम्नलिखित के दृष्टिकोणों से विचार कर सकते हैं।

1. कंपनियां
2. निवेशक
3. समस्त समाज

कम्पनी के दृष्टिकोण से :

i) **कंपनी की साख तथा ख्याति में वृद्धि :** सभी कंपनियों को अपने शेयरों को स्टॉक एक्सचेंज में क्रय और विक्रय का अधिकार नहीं होता। कंपनी को सूचीगत प्रतिभूतियों की सूची में अपने शेयरों को सम्मिलित कराने के लिए स्वीकार करा लेना आवश्यक होता है जिससे स्टॉक एक्सचेंज में उनका क्रय और विक्रय हो सके। स्वीकृति देने से पूर्व, स्टॉक एक्सचेंज के अधिकारी इस बात की जांच करते हैं कि कंपनी वित्तीय रूप से सुदृढ़ है तथा योग्य व्यक्तियों द्वारा प्रबंधित है। अतः वे कंपनियां, जिनकी प्रतिभूतियां सूचीगत हो जाती है, सुदृढ़ कंपनियां मान ली जाती है। अन्य कंपनियों की तुलना में ऐसी कंपनियां अधिक ख्याति तथा साख वाली मानी जाती हैं।

ii) **विस्तृत बाजार :** कंपनियों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों का मूल्य स्टॉक एक्सचेंज में क्वोट (quote) होने से इन प्रतिभूतियों की बाजार में बिक्री में वृद्धि होती है। सम्पूर्ण विश्व मे फैले हुए निवेशक इन प्रतिभूतियों की जानकारी कर लेते है और इनमें निवेश करने का अवसर प्राप्त करते हैं।

iii) **प्रतिभूतियों के मूल्य में वृद्धि :** सम्पूर्ण विश्व के निवेशकों को इन प्रतिभूतियों के संबंध में ज्ञान हो जाने से इनकी मांग में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप इनका मूल्य भी चढ़ता है।

iv) **निवेश के बारे में कंपनी को जानकारी :** स्टॉक एकसचेंज में क्वोटेशन द्वारा कंपनियों को

प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव तथा क्रेताओं की मांग की तीव्रता के बारे में ज्ञान हो जाता है। इसलिए अतिरिक्त पूंजी की व्यवस्था करते समय शेयरों और ऋणपत्रों को जारी करने या न करने तथा निर्गमन की शर्तें क्या हों, इसके विषय में उचित निर्णय लेने में सुविधा होती है।

निवेशक के दृष्टिकोण से :

i) **निवेश की सुविधा :** स्टॉक एक्सचेंज निवेशकों को निवेश की सुविधा प्रदान करते हैं। स्टॉक एक्सचेंज की प्रक्रियां से तरलता तथा प्रतिभूतियों मे निवेश की सुरक्षा का आश्वासन मिल जाता है। स्टॉफ एक्सचेंज के पाटिया पर निवेशक प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय अपनी इच्छा के अनुसार कर सकते हैं।

ii) **निवेशकों के हितों की सुरक्षा :** स्टॉक एक्सचेंज सुव्यवस्थित बाजार होते है तथा 1956 के प्रतिभूति संविदा (नियमन) अधिनियम द्वारा विनियमित होते है। वे केंद्रीय सरकार के नियंत्रण में कार्य करते है। अतः प्रतिभूतियों के क्रेता तथा विक्रेताओं के हितों की सुरक्षा होती है।

iii) **क्वोटेशन का प्रकाशन :** पाटिया पर बोली जाने वाली प्रतिभूतियों की कीमतों का प्रकाशन नियमित रूप से सभी स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा किया जाता है। इससे क्रेताओं तथा विक्रेताओं को प्रतिभूतियों के मूल्यों की जानकारी में सहायता मिलती है, जिसके आधार पर वे उन्हें खरीदने अथवा बेचने का निर्णय लेते हैं।

iv) **उच्च सहायक मूल्य :** बैंक तथा ऋणदाताओं द्वारा सूचीगत प्रतिभूतियों को हानि के विरुद्ध सहायता के रूप में पसन्द किया जाता है, क्योंकि ऋणी तथा देनदारों की त्रुटि की दशा में उनके द्वारा गिरवी रखी गई प्रतिभूतियों को सुविधापूर्वक बेचा जा सकता है।

v) **पूंजी का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग :** स्टॉक एक्सचेंज निवेशकों को विभिन्न प्रतिभूतियों की तुलनात्मक मांग की जानकारी उपलब्ध कराते हैं। निवेशक इन प्रतिभूतियों की बिक्री और खरीद के आधार पर ऐसी जानकारी कर लेते हैं। परिणामस्वरूरूप लाभ अर्जन करने वाली कंपनियां अधिक निवेशकों को आकृष्ट करती हैं तथा कम लाभ अर्जन करने वाली कंपनियों की तुलना में वे आगे बढ़ती है। अस्तु, निवेशक अपनी बचतों को अधिक लाभ अर्जन करने वाली कम्पनियों में लगा पाते हैं।

समस्त समाज के दृष्टिकोण से:

यदि हम समस्त समाज के दृष्टिकोण से स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यप्रणाली को देखें तो उनकी उपयोगिता, इनकी भूमिका में देखने को मिलेगी जो ये बचत व निवेश के लिए उपर्युक्त वातावरण बनाने में निंभाते हैं।

i) **पूंजी निर्माण में सहायक :** स्टॉक एक्सचेंज की सुविधा लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित करती है, क्योंकि ये निवेश के अवसर प्रदान करते है तथा बिना किसी कठिनाई के प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय किया जा सकता है। इससे देश में पूंजी-निर्माण की वृद्धि होती है अर्थात बचत उत्पादक पूंजी बन जाती है।

ii) **औद्योगिक विकास को बढ़ावा :** बड़ी-बड़ी औद्योगिक फर्मों के लिए दीर्घकालीन पूंजी, आसानी से प्राप्त की जा सकती है क्योंकि व्यवस्थित बाजारों द्वारा बचतों के निवेश के लिए प्रतिभूतियों के क्रय और विक्रय की सुविधा प्रदान की जाती है। औद्योगिक इकाइयों की स्थापना तथा विकास से अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास में योगदान होता है। स्टॉक एक्सचेंजों में प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय न केवल देश के निवेशकों द्वारा ही किया जाता है, वरन् विदेशी निवेशकों द्वारा भी होता है। स्टॉक एक्सचेंज की विद्यमानता विदेशों से पूंजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करती है तथा उद्योगों के विकास में सहायक होती है।

iii) **पूंजी का उचित प्रयोग :** अधिक लाभ अर्जित करने वाली तथा विकास की ओर अग्रसर होने वाली औद्योगिक इकाइयों में निवेशक अधिक आकृष्ट होते हैं। स्टॉक एक्सचेंज कम लाभ अर्जन करने वाली तथा हानि उठा रही कंपनियों से (प्रतिभूतियों की बिक्री द्वारा) निवेश की रकम निकालकर अधिक लाभ अर्जन करने वाली इकाइयों में लगाने की सुविधा प्रदान करते है, अतः वित्तीय साधनों का उचित उपयोग हो पाता है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को इससे लाभ पहुंचता है।

iv) **प्रतिभूतियों की कीमतों में उतार-चढ़ाव को कम करता है :** भविष्य में मूल्य वृद्धि की आशा मे जब विशिष्ट प्रतिभूतियां खरीदी जाती हैं तो विद्यमान क्रय मूल्य ऊपर उठता है। दूसरी

और, भविष्य में मूल्य की गिरावट की आशा से वर्तमान में प्रतिभूतियों के बेचने से वर्तमान के ऊंचे मूल्यो में वृद्धि पर नियंत्रण लगता है। इस प्रकार, प्रतिभूतियों के मूल्यों में होने वाले भारी उतार-चढ़ाव को प्रतिभूतियों के नियमित लेन-देनों द्वारा रोका जाता है।

v) **सरकार को ऋण लेने की सुविधा :** भारतीय रिजर्व बैंक सरकार के लिए ऋण प्राप्ति के हेतु सरकारी प्रतिभूतियों का निर्गमन करती है जिन्हें स्टॉक एक्सचेज के पाटिया पर खरीदा और बेचा जा सकता है। निवेशक, जो सरकारी प्रतिभूतियों के निर्गमन में अंशदान करते है, वे आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सरलता से बेच भी सकते है। इस प्रकार ऋण लेने के लिए सरकार भी बहुत सीमा तक स्टॉक एक्सचेंजों पर निर्भर करती है।

7.10.2 हानियां

अभी तक हमने यह जानकारी की है कि स्टॉक एक्सचेंज कंपनियों, निवेशकों तथा समस्त समाज के दृष्टिकोण से कितने उपयोगी है। किन्तु अन्य संस्थाओं की ही भांति स्टॉक एक्सचेंज भी दोष मुक्त नहीं है। यदि स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यवाही पर नियंत्रण न रखा जाए तो वे कंपनियों तथा निवेशकों दोनों के ही लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। अतः हमको स्टॉक एकसचेंजों की कमियों की जांच करनी चाहिए।

संक्षेप में, स्टॉक एक्सचेंजों की अधिकतर कमियां, दलालों और जॉबरों द्वारा सट्टा संबंधी क्रय और विक्रय करने के कारण है। इसी के फलस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव उत्पन्न होता है।

अत्यधिक सट्टेबाजी : यह स्टॉक एक्सचेंज से सम्बद्ध कार्यों के उत्पन्न सामान्य बुराइयों में से एक है। सट्टा का आशय भविश्य के मूल्यों को ध्यान में रखकर प्रतिभूतियों के क्रय और विक्रय से होता है। सटोरियों का सामान्यतः मुख्य उद्देश्य प्रतिभूतियों के लेन-देन से मूल्यांतरों से लाभ उठाना होता है। यदि वे स्टोरिया क्रेता हैं तो उनकी मंशा प्रतिभूतियों की सुपुर्दगी लेना अथवा उनका मूल्य चुकाना नहीं होता है। मूल्य इसलिए चढ़ते हैं कि ये क्रेता क्रय करने के लिए बोली लगाते हैं। दूसरी ओर, स्टोरिया विक्रेताओं के पास प्रतिभूतियां नहीं होंती, और न ही वे प्रतिभूतियों का मूल्य प्राप्त करने और उनकी सुपुर्दगी देने की मंशा रखते है। किन्तु उनके द्वारा विक्रय करने की बोली लगाने से मूल्यों में गिरावट आती है। क्रेताओं के पास सामान्यतः राशि की कमी होती है। यदि उनको प्रतिभूतियों का मूल्य चुकाना पड़े तो मूल्यों के चढ़ाव का कोई सच्चा कारण न होने से उनमें एकदम गिरावट आ जायेगी। इसी प्रकार, यदि विक्रेताओं को प्रतिभूतियों की सुपुर्दगी देनी पड़े तो वे भी ऐसा करने में असमर्थ होंगे। इस प्रकार की स्थिति असली निवेशकों को भ्रम में डाले रखती है। प्रतिभूतियों के मूल्य में परिवर्तन कंपनी के भविष्य की स्थिति का सही सूचकांक नहीं बन पाते और असली निवेशक इस पर विश्वास नहीं कर सकते।

मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव : स्टॉक एक्सचेंज के कार्यों की और भी कमियां हैं। वे हैं— अनिश्चित राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति तथा कुछ स्वार्थी पक्षकारों द्वारा फैलाई जाने वाली अफवाहें जिनके कारण प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन आता है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों में एकदम परिवर्तन होने के बारे मे सरलता से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। सामान्यतः चतुर सटोरिये मूल्यों के परिवर्तनों को कम करने में सहायक होते हैं। किन्तु जब सटोरियों द्वारा मूल्यों के चढ़ाव अथवा गिरावट अपने लाभ के उद्देश्य से अफवाहें फैलाई जाती है, तो मूल्यों में अत्यधिक चढ़ाव अथवा गिरावट आ जाती है और असली निवेशक क्रय अथवा विक्रय करने का निर्णय नहीं ले पाता। मूल्यों के तेजी से गिरने पर उनमें से बहुत लोग भयभीत होने लगते हैं और बेचने लगते हैं। दूसरी ओर लोग कीमतों के चढ़ने के कारण जल्दी से खरीदना शुरू कर देते हैं। दोनों ही दशाओं में निवेशकों को भारी नुकसान उठाना पड़ जाता है।

7.11 स्टॉक एक्सचेंजों का विनियमन एवं नियंत्रण

हमने पहले स्टॉक एक्सचेंजों के महत्त्व, कार्य एवं कार्य प्रणाली की जानकारी प्राप्त की है। वे पूंजी निर्माण तथा देश के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। स्टॉक एक्सचेंजों के सदस्य, दलाल, निवेशक तथा सटोरिये ही ऐसे लोग हैं जो स्टॉक बाजार के क्रियाकलापों में भाग लेते है।

ये सभी व्यक्ति इस बाजार के कार्य से लाभान्वित होते हैं। परन्तु स्टॉक एक्सचेंजों की अनेक बुराइयों के कारण ये दलालों के लिए जुआ खेलने के अड्डों के नाम से बदनाम हो गए हैं।

समय-समय पर इन बुराइयों की ओर सरकार का ध्यान दिलाया गया है। परिणामस्वरूप सन् 1956 में प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम पास हुआ, जो कि वित्त बाजारों, संस्थाओं तथा जनता के व्यापक हितों की सुरक्षा के लिए स्टॉक बाजारों के कार्यों व कार्य प्रणाली का विनियमन एवं नियंत्रण करता है। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं:

1 एक क्षेत्र में केवल एक ही मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज होगा। इस पर ऐकिक नियंत्रण रहेगा।

2 मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज के बाहरी क्षेत्र के डीलरों तथा दलालों को लाइसेंस लेना होगा।

3 प्रत्येक मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज को संविदाओं का विनियमन व नियंत्रण करने के लिए अपने उपनियम बनाने का अधिकार होगा। इन उपनियमों के लिए केंद्रीय सरकार का अनुमोदन प्राप्त करना होगा। ये उपनियम निम्नलिखित बातों पर लागू होंगे—(i) बाजार को खोलने और बंद करने के समय, (ii) व्यापारिक घंटों का निर्धारण, (iii) समाशोधन गृह की स्थापना, (iv) अनामी अंतरण को रोकना (अब ये कंपनी अधिनियम द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं), (v) स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का सूचीकरण करना, (vi) स्थगन अथवा बदला पद्धति का विनियमन अथवा रोक, (vii) सदस्यों द्वारा किए जाने वाले लेन-देनों का सीमा निर्धारण करने तथा उनके दिन शुरू होने की स्थिति, (viii) आपातकाल में प्रतिभूतियों का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य निर्धारण करना, तथा (ix) जाबरों तथा दलालों के कार्यों का विभाजन और तरावनी (जॉबिंग) के सौदों का विनियमन।

4 इन एक्सचेंजों के प्रबंध से विचार-विमर्श करने के उपरांत केन्द्रीय सरकार को इन उपनियमों (बाई लॉज) को बनाने अथवा संशोधन करने का अधिकार होगा।

5 भावी सौदों का लेन-देन प्रतिबंधित होगा, क्योंकि इनको जुआ-संविदा माना गया है।

6 अप्रत्याशित दशा में केन्द्रीय सरकार स्टॉक एक्सचेंज की गवर्निंग बॉडी की मान्यता समाप्त कर सकती है अथवा उसे हटा सकती है।

7 मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज को अपने कार्यों के बारे में सामयिक रिटर्न भेजने होंगे तथा सरकार द्वारा एक्सचेंज अथवा सदस्यों से मांगी जाने वाली सूचना को भेजना होगा।

8 प्रतिभूतियों के सूचीकरण के विषय में केंद्रीय सरकार को व्यापक अधिकार होंगे। वह किसी भी सार्वजनिक कंपनी को अपनी प्रतिभूतियों का सूचीकरण कराने के लिए विवश कर सकती है। किसी कंपनी द्वारा अपील करने पर वह स्टॉक एक्सचेंज द्वारा उसको प्रतिभूतियों का सूचीकरण न करने का आदेश रद्द कर सकती है अथवा उस आदेश में परिवर्तन कर सकती है। हाल ही में भारत की केंद्रीय सरकार ने एक उच्च स्तरीय संस्था गठित की है जिसका नाम है Securities Exchange Board of India। यह संस्था प्रतिभूतियों के बाजारों को स्वस्थ, तथा सुव्यवस्थित विकास करने के लिए आवश्यक पथ प्रदर्शन करेगी, जिससे निवेशकों में विश्वास जमेगा तथा उनको पर्याप्त सुरक्षा भी मिलेगी।

बोध प्रश्न घ

1 बताएं कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य।

i) स्टॉक एक्सचेंज कंपनी की साख तथा ख्याति में वृद्धि करते हैं। ( )

ii) स्टॉक एक्सचेंज प्रतिभूतियों के लेन-देनों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। ( )

iii) कंपनी अधिनियम, 1956 द्वारा स्टॉक एक्सचेंजों का विनियमन होता है। ( )

iv) भारतीय स्टॉक एक्सचेंजों में प्रतिभूतियों के भावी सौदों के लेन-देन की अनुमति नहीं है। ( )

2 सही उत्तर पर ठीक √ का निशान लगाइए।

क) स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय करने की सुविधा

i) स्थानीय बाजार के रूप में मिलती है। ( )

ii) प्रदेशीय बाजार के रूप में मिलती है। ( )

iii) राष्ट्रीय बाजार के रूप में मिलती है। ( )

iv) अंतर्राष्ट्रीय बाजार के रूप में मिलती है। ( )

ख) स्टॉक एक्सचेंज आवश्यकता पूरी करते हैं।

i) कंपनियों की, जो पूंजी जुटाना चाहती हैं। ( )

ii) व्यक्तियों की, जो निवेश करना चाहते हैं। ( )

iii) समाज की, जो सुधरना चाहता है। ( )

iv) उपरोक्त सभी की। ( )

ग) स्टॉक एक्सचेंज की कार्यवाही से

i) मूल्यों में भारी उतार-चढ़ाव होता है। ( )

ii) मूल्यों का सामान्यीकरण होता है। ( )

iii) (i) व (iii) दोनों होते हैं। ( )

iv) उपरोक्त में कोई भी नहीं होता। ( )

घ) स्टॉक एक्सचेंज

i) केंद्रीय सरकार के क्षेत्र में आते हैं। ( )

ii) राज्य सरकार के क्षेत्र में आते हैं। ( )

iii) स्थानीय नगरपालिका के क्षेत्र में आते हैं। ( )

iv) उपरोक्त किसी के क्षेत्र में नहीं आते। ( )

ङ) स्टॉक एक्सचेंज सुविधा प्रदान करते है

i) प्रतिभूतियों के क्रय ओर विक्रय के लिए। ( )

ii) प्रतिभूतियों में सट्टे के लिए। ( )

iii) प्रतिभूतियों का जुआ खेलने के लिए। ( )

iv) उपरोक्त सभी के लिए। ( )

7.12 सारांश

स्टॉक एक्सचेंज पूंजी बाजार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। कंपनियों, पब्लिक ट्रस्टों, केन्द्रीय तथा प्रदेशीय सरकारों तथा स्थानीय सरकारों द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय करने का यह बाजार है। यह एक संगठित बाजार है तथा प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम 1956 के अधीन यह केंद्रीय सरकार द्वारा मान्यता पाता है एवं नियंत्रित किया जाता है। इसके सदस्यों को अपने नाम से अथवा अपने अधिकृत एजेंटो (अधिकृत क्लर्कों) द्वारा प्रतिभूतियों का लेन-देन करने का अधिकार होता है। स्टॉक एक्सचेंज के पाटिया पर होने वाले सभी लेन-देन संबंधित स्टॉक एक्सचेंज द्वारा बनाए गए नियमों तथा उप-नियमों के अधीन किए जाते हैं। स्टॉक एक्सचेंज न केवल राष्ट्रीय स्तर पर वरन् कभी-कभी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बचतों के निवेश के लिए अवसर प्रदान करते हैं। स्टॉक एक्सचेंज निवेशक को न केवल तरलता और सुरक्षा प्रदान करते है वरन् औद्योगिक इकाइयों को पूंजी प्रदान करते हैं और इस प्रकार देश के औद्योगिक विकास मे सहायक होते है।

स्टॉक एक्सचेंज से लेन-देन करने के लिए आपको किसी दलाल से सम्पर्क करना होगा तथा उसका परामर्श लेकर उसको क्रय अथवा विक्रय करने के लिए आदेश देना होगा। स्टॉक एक्सचेंज में प्रायः

तीन प्रकार के सौदे होते हैं—(i) हज़िर सुपुर्दगी (ii) तैयार सुपुर्दगी (iii) भावी सुपुर्दगी के सौदे। तेजड़िए, मंदड़िए और चंचल तीन प्रकार के डीलर स्टॉक एक्सचेंज में मिलते है। तेजड़िए प्रतिभूति के मूल्य में चढ़ाव की आशा रखते है। मंदड़िए प्रतिभूति के मूल्य में भविष्य में गिरावट की आशा रखते हैं। चंचल डीलर कंपनियों द्वारा निर्गमित की गई नई प्रतिभूतियों में व्यवहार रुचियां रखते हैं। वें प्रतिभूतियों के लिए बड़ी मात्रा में आवेदन करते है और उनका आबंटन होते ही बेचना शुरू कर देते है। स्टॉक एक्सचेंज में प्रयोग में आने वाली कुछ शब्दावली के विशेष अर्थ है। इस प्रकार की शब्दावली का उदाहरण है—बदला शुल्क, तेजी बदला (कांटेगो), समेटना, मूल्य में अंतर के सौदे, आदि।

सभी कंपनियों की सभी प्रतिभूतियों का भाव स्टॉक एक्सचेंज में क्वोट नहीं किया जाता। कंपनी को संबंधित स्टॉक एक्सचेंज की प्रबंध-कारिणी से अपनी प्रतिभूतियों के मूल्यों को क्वोट कराने के लिए आज्ञा लेनी होती है। यह आज्ञा प्रतिभूतियों का सूचीकरण कहलाती है और कंपनी द्वारा कुछ अनिवार्य सूचनाओं को देने के बाद ही यह आज्ञा कंपनी को दी जाती है।

यह कहा जाता है कि स्टॉक एक्सचेंज सट्टा को प्रोत्साहित करता है और उसके पाटिए पर क्रय-विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव होता है। किन्तु सट्टा के भी अपने लाभ होते हैं। पूंजी को जुटाने तथा प्रतिभूतियों के बाजार को विस्तृत बनाने के साथ ही यह मूल्यों के उतार-चढ़ाव में समानता लाकर उन्हें सामान्य बनाता है। स्टॉक एक्सचेंज पर मूल्यों को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हैं, जैसे कंपनियों की वित्तीय स्थिति, सट्टा दबाव, व्यवसाय चक्र, राजनैतिक घटनाएं तथा वित्तीय संस्थाओं की कार्यवाही, आदि।

स्टॉक एक्सचेंजों के कई महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य भी है और वे निवेशिकों, कंपनियों तथा समस्त समाज के लिए लाभदायक होते है। स्टाक एक्सचेंजों की कार्य प्रणाली में कई बुराइयों के आ जाने के कारण, केन्द्रीय सरकार ने 1956 में प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम बनाया। तब से स्टॉक एक्सचेंजों को केंद्रीय सरकार से मान्यता प्राप्त करनी होती है तथा उसके नियंत्रण में कार्य करना होता है। उन्हें अपने नियम व उप-नियम भी बनाने होते है।

7.13 शब्दावली

मूल्यांतर के सौदे (Arbitrage) : जो बाजार मंदा हो वहां प्रतिभूतियों को खरीदना और उन्हीं प्रतिभूतियों को दूसरे बाजार में जहां भाव अपेक्षकृत चढ़ा हो, बेचना।

अधिकृत लिपिक (Authorised clerk) : दलाल का एक कर्मचारी जिसे स्टॉक एक्सचेंज में दलाल के नाम में लेन-देन करने का अधिकार होता है।

उथ्या बदला शुल्क (Backwardation) : विक्रेता (मंदड़िया) द्वारा अगले निपटारे दिन तक सौदे का स्थगन करने के लिए दिया जाने वाला बदला शुल्क।

मंदड़िया (Bears) : सटोरिया, जो भविष्य में मूल्य की गिरावट की आशा करते है। अतः वे वर्तमान में प्रतिभूतियों का विक्रय करते है और भविष्य में मूल्य गिरने पर क्रय करते हैं।

बदला शुल्क (Budla Charges) : अगले निपटारे के दिन तक सौदे के स्थगन के लिए दिया जाने वाला शुल्क।

तेजड़िया (Bulls) : सटोरिया, जो भविष्य में प्रतिभूतियों के मूल्य में चढ़ाव की आशा करते हैं अतः वे वर्तमान में प्रतिभूतियों का क्रय करते है और भविष्य में मूल्य चढ़ने पर उनका विक्रय करते हैं।

स्थगन (Carry over) : सौदे के निपटान को अगले निपटारे के दिन के लिए बदला शुल्क चुकाकर टालना।

स्थगन शुल्क (Contango) : क्रेता (तेजड़िया) द्वारा अगले निपटारे के दिन के लिए सौदे को टालने के लिए दिया गया शुल्क।

संविदा नोट (Contract Note) : दलाल द्वारा अपने ग्राहक को भेजा जाने वाला विवरण, जिसमें ग्राहक के नाम पर क्रय अथवा विक्रय की गई प्रतिभूतियों का विवरण (मूल्य भी) लिखा जाता है।

लाभांश सहित (Cum-dividned) : जब शेयरों का भाव लाभांश सहित बताया जाता है तो क्रेता को उन शेयरों पर मिलने वाला अथवा प्रतिभूतियों की बिक्री के बाद घोषित लाभांश प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है।

लाभांश रहित (Ex-dividend) : जब शेयरों का भाव लाभांश रहित बताया जाता है तो क्रेता को बिक्री के बाद घोषित लाभांश प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहता।

भावी सुपुर्दगी संविदा (Forward Delivery Contract) : प्रतिभूतियों को क्रय अथवा विक्रय करने का संविदा, जिसके अंतर्गत भुगतान अगले निपटारे के दिन तक स्थगित किया जा सकता है।

जॉबर (Jobber) : स्टॉक एक्सचेंज का एक सदस्य जो अपने नाम में प्रतिभूतियों का क्रय अथवा विक्रय करता है।

अंतर राशि (Margin) : संभाव्य हानि को पूरा करने के लिए ग्राहक द्वारा दलाल के पास जमा की जाने वाली राशि।

तैयार सुपुर्दगी (Ready Delivery) : सौदे की तिथि के सात दिन के अंदर निपटारा करना होता है, अर्थात् स्टॉक एक्सचेंज के द्वारा निर्धारित निपटारे के दिन।

रेमिजर (Remisier) : वह व्यक्ति जो ग्राहक प्राप्त करने में दलाल की सहायता करता है।

सौदावही (Sauda Bahi) : दलालों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाला नोट बुक, जिसमें वे स्टॉक एक्सचेंज के पाटिए पर किए गए क्रय और विक्रय के प्रतिदिन के सौदे लिखते है।

स्क्रिप (Scrips) : शेयरों, ऋण-पत्रों, बॉण्डों आदि के रूप में प्रतिभूतियां।

निपटारे का दिन (Settlement Day) : स्टॉक एक्सचेंज के सौदों का निपटारा करने के लिए निर्धारित दिन।

सट्टा (Speculation) : मूल्यों के अंतर से लाभ कमाने के उद्देश्य से प्रतिभूतियों का लेन-देन।

हाज़िर सुपुर्दगी (Spot Delivery) : लेन-देन के सौदों का सौदा करने की तिथि पर निपटारा करना।

स्टैग (चंचल) (Stag) : तेजड़िया की प्रवृति रखने वाले सटोरिया जो नई प्रतिभूतियों के निर्गमन के समय भारी मात्रा के लिए आवेदन करते हैं। और उनका आबंटन होने के तुरंत बाद ही उनको बेच देते हैं।

स्टॉक अथवा प्रतिभूति बाजार (Stock or Securities Market) : एक संगठित बाजार, जिसके पाटिए पर प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय होता है।

तरावनी वाला (Tarawani Wala) : यह स्टॉक एक्सचेंज का सदस्य है जो जॉबर तथा दलाल दोनों ही रूपों में कार्य करता है।

7.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वी. पी. सिंह एवं टी. एन. छाबड़ाः *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबन्ध का परिचय* (इलाहाबादः किताब महल, 1988) अध्याय 22 खंड पांच

जी. एल. जोशी, जी. एल. शर्मा, एल.एस.सी. जोशीः *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबन्ध* (दिल्लीः श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 17

राम नारायण गोयलः *आधुनिक व्यवसाय – संगठन एवं प्रबंध* (इलाहाबादः किताब महल, अध्याय 1, 2 खंड पांच

7.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 (अ) iii (ब) iv (स) iii

ख 4 (i) सत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य

5 (i) तेजड़िया (ii) 7 (iii) उधा बदला शुल्क (iv) रिगिंग (v) सहित

ग 4 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) सत्य (iv) सत्य (v) असत्य (vi) असत्य (vii) सत्य (viii) असत्य (ix) असत्य

4 (i) नई (ii) निरंतर (iii) गिरावट (iv) वृद्धि

घ 1 (i) सत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य

2 क (iii) ख (i) ग (iii) घ (i) ङ (i)

7.16 स्वपरख प्रश्न

1 स्टॉक एक्सचेंज की परिभाषा दीजिए और उसके आर्थिक कार्यों का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिए।

2 आधुनिक समाज में स्टॉक एकसचेंज का क्या महत्त्व है? संक्षेप मे इसका वर्णन कीजिए। इसकी कमियों को भी बताइए।

3 स्टॉक एक्सचेंज को देश की आर्थिक एवं व्यापारिक दशाओं का माप यंत्र क्यों कहा जाता है।

4 प्रतिभूतियों के लेन-देनों में प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए—

(i) मूल्यांतर के सौदे (ii) भावी सुपुर्दगी संविदा (iii) तेजड़िया
(iv) रिगिंग (v) स्थगन शुल्क (vi) लाभांश सहित
(vii) अंतर-राशि व्यापार (viii) अधिकृत लिपिक।

5 स्टॉक एक्सचेंज में क्रय और विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों के मूल्यों में बार-बार और बहुत अधिक उतार-चढ़ाव क्यों होता है? इनके कारणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

6 सूचीकरण से क्या तात्पर्य है? कंपनी तथा निवेशक के दृष्टिकोण से स्टाक एक्सचेंज में प्रतिभूतियां का सूचीकरण कराने के लाभों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

7 स्टॉक एक्सचेंज में लेन-देन करने की विधि का वर्णन कीजिए। आपके पास एक कंपनी के 500 शेयर हैं। यदि आप इन्हें बेचना चाहते है तो आप क्या प्रक्रिया अपनाएंगे? ये शेयर आपको 10 रु. प्रति शेयर सम मूल्य पर आबंटित किए गए थे।

8 प्रतिभूति संविदा (नियमन) अधिनियम 1956 बनाए जाने के क्या कारण थे? इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

टिप्पणी : इन प्रश्नों की सहायता से आप इस इकाई को भली प्रकार समझ पाएंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु विश्वविद्यालय को ये उत्तर न भेजिए। ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए दिए जा रहें हैं।

इकाई 6 : दीर्घकालीन वित्त के स्रोत एवं अभिगोपन का परिशिष्ट

1991 में भारत सरकार ने आर्थिक उदारीकरण (economic liberalisation) के कार्यक्रम की शुरूआत की। तब से अब तक पूंजी बाजार के क्षेत्र में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो चुके हैं। अत: इन परिवर्तनों को शामिल करने के लिए इस इकाई में संशोधन करना आवश्यक हो गया। इस परिशिष्ट में ऐसी कुछ प्रमुख घटनाओं की चर्चा की गई है जिनका संबंध आपके पाठ्यक्रम के साथ है।

इस इकाई के परिच्छेद 6.3.1 **पूंजी बाजार** में जहां पर पूंजी निर्गमनों के नियंत्रण (पृष्ठ 27-28) के संबंध में चर्चा की गई है उसे वहां से निकाल दें। ऐसा करना इस लिए आवश्यक है कि जून 1992 में भारत सरकार ने पूंजी निर्गमन नियंत्रक (Controller of Capital Issues) का पद समाप्त कर दिया।

परिच्छेद **6.3.4 विदेशी स्रोत** में (पृष्ठ 32) दीर्घकालीन वित्त के तीन प्रमुख विदेशी स्रोतों, विदेशी सहयोगियों, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और अनिवासी भारतीयों के संबंध में चर्चा की गई है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार नामक चौथे स्रोत को भी जोड़ना है। 1992 में भारत सरकार ने भारतीय कंपनियों को अनुमति दे दी कि वे ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीटों और बांडो के रूप में अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार में पूंजी जुटा सकते हैं। इस संबंध में नीचे पूंजी बाजार-सुधार (Capital Market Reforms) के प्वाइंट 12 में संक्षेप में चर्चा की गई है।

पूंजी बाजार-सुधार

जून 1991 में शुरू किये गए आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अंग के रूप में भारत सरकार ने अनेक पूंजी बाजार सुधारों की शुरूआत की। सरकार के पूंजी बाजार-सुधार कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य हैं, निवेशकों के हितों की रक्षा करना, बाजार को और कुशल बनाना, शेयर बाजारों में किए जाने वाले लेनदेनों को और अधिक पारदर्शी बनाना, अनुचित व्यापार व्यवहारों पर रोक लगाना तथा भारत के पूंजी बाजार को अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के समकक्ष बनाना। पूंजी बाजार सुधारों के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं :

1. **पूंजी निर्गमन नियंत्रक की समाप्ति :** जून 1992 में पूंजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 को निरस्त कर दिया गया तथा पूंजी निर्गमन नियंत्रक (CCI) का कार्यालय बंद कर दिया गया। इस प्रकार शेयरों की कीमत और प्रीमियम पर सभी प्रकार के नियंत्रणों को हटा दिया गया। सेक्यूरिटिज एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया (SEBI) की अनुमति मिलने के बाद जब भी चाहे तब कंपनियां पूंजी बाजार से संपर्क कर सकती हैं और शेयरों पर अपनी इच्छानुसार प्रीमियम निश्चित कर सकती हैं।

2. **भारतीय सेक्यूरिटिज एक्सचेंज बोर्ड (SEBI) को कानूनी मान्यता :** फरवरी 1992 में भारत सरकार ने सेक्यूरिटिज एक्सचेंज बोर्ड को कानूनी मान्यता प्रदान की जिससे यह बोर्ड भारत में पूंजी बाजार को विनियमित कर सके तथा इसमें सुधार ला सके। इस बोर्ड को पूंजी बाजार के विभिन्न पक्षों से संबंधित अधिकार दिए गए हैं, जैसे कि (क) स्टॉक एक्सचेंजों, विभिन्न मध्यस्थों तथा म्युचुअल फंडो को विनियमित करना, (ख) निवेशकों को जानकारी देने तथा मध्यस्थों को प्रशिक्षित करने के संबंध में प्रोत्साहन देना तथा (ग) प्रतिभूति बाजार में भेदिया के रूप में व्यापार (insider trading), जालसाजी तथा कपटपूर्ण और अनुचित व्यापारिक व्यवहारों पर रोक लगाना। SEBI ने इस संबंध में अनेक कदम उठाए हैं।

3. **प्राथमिक बाजार (Primary Market) में कार्य :** सिक्यूरिटिज एक्सचेंज बोर्ड ने प्राथमिक बाजार में जो नये सुधार किये हैं उनमें शामिल हैं, सार्वजनिक निर्गमन प्रलेखों में समुन्नत प्रकटन मानक, विवेकपूर्ण मानदंडों को लाना तथा निर्गमन प्रक्रियाओं का सरलीकरण। कंपनियों के लिए आवश्यक कर दिया गया है कि नये निर्गमनों को जारी करते समय वे अपनी प्रायोजनाओं से संबंधित सभी महत्वपूर्ण तथ्यों और जोखिम संबंधी विशिष्ट तत्वों को जनता के सामने ला दें। सभी निर्गमन प्रलेखों को SEBI द्वारा पुनरीक्षित होना आवश्यक कर दिया गया है जिससे यह निश्चित हो जाए कि प्रकटन केवल पर्याप्त ही नहीं बल्कि प्रामाणिक और सही भी है। ऐसा होने से प्राथमिक बाजार में निवेशकों को निवेश संबंधी निर्णय लेने के संबंध में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

   मर्चेंट बैंकर और निर्गमन के बैंकर (Banker to the Issue) को SEBI के नियामक ढांचे के अंतर्गत लाया जाता है और एक आचरण - संहिता (Code of Conduct) जारी की जाती है।

अग्रणी मैनेजरों (lead managers) के कार्यों को अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण और पारदर्शी बनाने के उद्देश्य से प्रस्ताव प्रलेख (offer document) में किए गए प्रकटन से संबंधित अग्रणी मैनेजरों के कर्मिष्ठता प्रमाणपत्र को स्वयं प्रस्ताव प्रलेख का ही एक अंग बना दिया गया है।

समुचित और यथार्थ प्रकटन को सुनिश्चित करने के लिए SEBI ने सार्वजनिक निर्गमन के लिए विज्ञापन की एक संहिता की शुरूआत की। निर्गमन की लागत को कम करने के लिए निर्गमन के अभिगोपन को वैकल्पिक बना दिया गया। परन्तु इस संबंध में शर्त यह है कि यदि किसी निर्गमन का अभिगोपन नहीं किया गया और यदि जनता को प्रस्तावित राशि का 90% वसूल न हो पाया तो निवेशकों से प्राप्त समस्त राशि उन्हें लौटा दी जाएगी।

स्टॉक इन्वेस्ट की शुरूआत : जो निवेशक शेयरों और डिबेंचरों के सार्वजनिक निर्गमन के लिए आवेदन करते हैं उनके हित की सुरक्षा के लिए प्राथमिक बाजार में एक नये प्रकार के प्रपत्र की शुरूआत की गई है जिसे स्टॉक इन्वेस्ट (Stock Invest) कहा जाता है। निवेशक जो रकम जमा करता है उसके लिए खाते में लियन लिख कर निवेशक को उस जमा की रकम के बराबर का स्टॉक इन्वेस्ट जारी कर दिया जाता है। नये शेयरों और डिबेंचरों के लिए आवेदन करते समय निवेशक इस स्टॉक इन्वेस्ट का उपयोग कर सकते हैं। आबंटन करने की स्थिति में ही कोई कंपनी स्टॉक इन्वेस्ट से होने वाली आय की रकम को ले सकती है अन्यथा निवेशकों को ही ब्याज मिलता है। इस प्रकार आबंटन न होने की स्थिति में निवेशकों को आवेदन राशि (application money) न मिलने की समस्या समाप्त हो जाती है। इसके साथ ही साथ आवेदन राशि पर निवेशक निश्चित ब्याज प्राप्त कर सकते हैं।

संस्थागत निवेशकों द्वारा स्टॉक इन्वेस्ट के उपयोग को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से इस सुविधा को केवल म्युचुअल फंडो तथा व्यक्तिगत निवेशकों तक ही सीमित कर दिया गया है।

5. **द्वितीयक बाजार (Secondary Market) में कार्य :** प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम 1956 के अधीन एक अधिसूचना के द्वारा स्टॉक एक्सचेंजों को विनियमित करने की शक्ति SEBI को दे दी गई। कोई कंपनी जब अपनी प्रतिभूतियों को सूचीबद्ध करने (listing of securities) के लिए स्टॉक एक्सचेंजों को आवेदन करती है तब स्टॉक एक्सचेंजों से अपेक्षा की जाती है कि वे सुनिश्चित कर लें कि संबंधित कंपनी के पास SEBI द्वारा जारी किया अभिस्वीकृति कार्ड (acknowledgement card) है। इस कार्ड को जारी करने के पहले SEBI यह सुनिश्चित करने के लिए प्रस्ताव प्रलेख की जांच कर लेता है कि कंपनी ने प्रस्ताव प्रलेख में समस्त प्रकटन कर दिया है।

स्टॉक एक्सचेंजों को सलाह दी जाती है कि यह सुनिश्चित करने के लिए वे सूचीयन करार (listing agreement) में संशोधन करें कि सूचीगत कंपनी स्टॉक एक्सचेंज को वार्षिक विवरण प्रस्तुत करती है जिसमें वित्तीय योजनाओं और प्रस्ताव प्रलेखों में दिखाए गए फंडो के प्रायोजित उपयोग और वास्तविक आंकड़ों के बीच का अंतर स्पष्ट रूप से दिखाया गया हो। ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि शेयरधारी कंपनियों के कार्य निष्पादन और उनके द्वारा किए गए वादों के बीच के अंतर को देख सकें।

क्योंकि स्टॉक एक्सचेंजों के संचालन मंडलों (Governing Boards) में दलालों का ही बोलबाला रहता था अतः SEBI ने उनका पुनर्गठन करके उनमें लोक प्रतिनिधित्व को बढ़ा दिया।

स्टॉक एक्सचेंजों में कंपनियों की सदस्यता (corporate membership) की शुरूआत कर दी गई। दलालों और उप-दलालों को SEBI के नियामक ढांचे के अंदर लाया गया और SEBI के साथ उनके पंजीकरण को अनिवार्य कर दिया गया। SEBI ने दलालों के लिए पूंजी पर्याप्तता मानक (Capital adequacy norm) का भी प्रावधान कर दिया।

पहले 'ए' ग्रूप की प्रतिभूतियों में वायदा व्यापार (forward trading) पर रोक लगा दी गई और बाद में उन्हें नये रूप में लाया गया। 'बी' ग्रूप की प्रतिभूतियों को सौदों के नवीकरण पर निषेध है जिससे सौदों का निपटान एक सप्ताह के अंतर्गत हो जाए।

ओवर दि काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया (OTCEI) और भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSEI) की स्थापना की गई और ये देशव्यापी स्तर स्टॉक ट्रेडिंग, इलैक्ट्रोनिक प्रदर्शन, समाशोधन और निपटान सुविधाओं के साथ कार्य करने लगे।

6. **निजी म्युचुअल फंड को अनुमति :** निजी म्युचुअल फंडों को अनुमति दे दी गई है और ऐसे कुछ फंड अब तक स्थापित भी किये जा चुके हैं। ऐसे सभी फंडो को SEBI के साथ पंजीकृत होना आवश्यक है। यू. टी. आई. को भी SEBI के नियामक अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत लाया गया है। म्युचुअल को फंडों को अनुमति है कि वे सार्वजनिक निर्गमनों में निश्चित आबंटन के लिए आवेदन करें। म्युचुअल फंडों द्वारा विज्ञापन के संबंध में मार्गदर्शी सिद्धांत जारी किए गये हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार म्युचुअल फंडों से अपेक्षा की

जाती है कि वे सभी जोखिम तत्वों को प्रकट करें, ऊँची दर की आय का आकर्षण प्रस्तुत न करें तथा विवेकपूर्ण लेखा और रिपोर्ट संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करें। म्यूचुअल फंडों द्वारा निवेश के क्षेत्र में सुधार की दृष्टि से सार्वजनिक निर्गमनों के अभिगोपन की उन्हें अनुमति दी गई है तथा मुद्रा बाजार के प्रपत्रों में निवेश संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांतों को उदार बना दिया गया है।

7. **बोनस शेयरों और पूर्वाधिकार शेयरों (Preference Shares) के निर्गमन के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त :** कंपनियों द्वारा बोनस शेयरों के निर्गमन के मार्गदर्शी सिद्धान्त को उदार बना दिया गया है। चालू बाजार कीमत से कम कीमत पर प्रवर्तकों को शेयरों के अधिमानी आबंटन (preferential allotment) की प्रथा समाप्त कर दी गई और इस संबंध में SEBI ने नये मार्गदर्शी सिद्धांत जारी किया है।

8. **अधिकरण का विनियमत (Regulation of Takeovers) :** SEBI ने शेयरों के बहुत बड़ी मात्रा में अधिग्रहण और अधिकरण के संबंध में विनियमों को लागू किया। उसने ऐसी शर्तों को भी निर्धारित किया जिसके अंतर्गत शेयर होल्डरों को प्रकटन तथा अनिवार्य सार्वजनिक प्रस्ताव करने की व्यवस्था है।

9. **निवेशकों की शिकायतों का निवारण :** निवेशकों की शिकायतों के निवारण को प्रोत्साहित करना है तथा इस संबंध में निवेशकों के मान्यता प्राप्त संघों को भी भागीदार बनाना है। इससे चूक करने वाली कंपनियों के खिलाफ उपभोक्ता अदालतों (Consumer Courts) में मुकदमा करने में सहायता मिलती है।

10. **विदेशी सांस्थानिक निवेशकों (Institutional Investors) का प्रवेश :** विदेशी सांस्थानिक निवेशक भारत के प्राथमिक और द्वितीयक बाजारों में निवेश कर सकते हैं। इन निवेशकों को भारतीय सेक्यूरिटिज एक्सचेंज बोर्ड (SEBI) तथा भारतीय रिजर्व बैंक के साथ पंजीकृत होना होगा। अब तक ऐसे लगभग 300 विदेशी सांस्थानिक निवेशक पंजीकृत किए जा चुके हैं। जून 1996 के अंत तक इन निवेशकों ने भारत में लगभग 6.2 बिलियन डालर का निवेश किया।

11. **अंतरण प्रक्रिया में ढील :** 'जम्बो अंतरण विलेख' एवं स्टॉप शुल्क के समेकित भुगतान की शुरूआत के साथ देशी सांस्थानिक निवेशकों और विदेशी सांस्थानिक निवेशकों के लिए अंतरण के लिए प्रतिभूतियों को जमा करने की प्रक्रिया को अत्यधिक सरल बना दिया गया है। आमतौर पर प्रतिभूतियों के प्रत्येक बाजार लौट के साथ एक अंतरण विलेख जमा करना होता है। बहुत बड़ी संख्या में शेयरों को खरीदने वाले सांस्थानिक निवेशकों के सम्मुख समस्या यह थी कि उन्हें अनेक अंतरण विलेखों को भरना होता था। 'जम्बो अंतरण विलेख' की स्थिति में निवेशकों को प्रत्येक बाजार लौट के साथ अंतरण विलेख प्रस्तुत नहीं करना पड़ता बल्कि वे बहुत बड़ी संख्या वाले शेयरों के लिए समेकित अंतरण विलेख प्रस्तुत कर सकते हैं।

12. **अनुमति-प्राप्त यूरो निर्गमन (Permitted Euro Issue) :** भारतीय कंपनियों को अनुमति दी गई है कि वे ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीटों (GD Rs), यूरो-कन्वर्टिबुल बांडों और वारंटों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार में पूंजी का निर्गमन कर सकती हैं। मई 1992 और मार्च 1996 के बीच 52 कंपनियों ने GDR के रूप में 4.6 बिलियन अमरीकी डालर पूंजी जुटाया तथा 9 कंपनियों ने बांडों के रूप में एक बिलियन अमरीकी डालर पूंजी जुटाया।

13. **अनिवासी भारतीयों (NRIs) के लिए उदार निवेश-मानक :** अनिवासी भारतीयों के लिए निवेश-मानकों को उदार बना दिया गया है जिससे भारतीय रिजर्व बैंक से पहले से अनुमति लिए बिना ही अनिवासी भारतीय तथा विदेशी निगमित निकाय भारत में सीधे ही शेयरों और डिबेंचरों को खरीद सकें।

14. **अभिरक्षण सेवाओं और जमा प्रणाली की शुरूआत (Introduction of Custodial Services and Depository System) :** स्टॉक एक्सचेंजों में लेनदेनों के समाशोधन और निपटान कार्यों को और अधिक कुशल बनाने की दृष्टि से अभिरक्षण सेवाएं और राष्ट्रीय जमा प्रणाली लागु की गई हैं। इस संबंध में इसी पुस्तिका में आगे के पृष्ठों पर विचार किया गया है।

इकाई 7 : स्टॉक एक्सचेंज का परिशिष्ट

आप जानते हैं कि इस इकाई के परिच्छेद 7.4 (पृष्ठ 45-46) पर चर्चित स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार का संबंध स्टॉक एक्सचेंज के हॉल मे बोली लगाने की परंपरागत पद्धति के साथ है। यह कार्य पूर्णत: शारीरिक है। हाल के वर्षों में भारत के स्टॉक एक्सचेंज कंप्यूटर के उपयुक्त बनाई गई (computerised) स्क्रीन पद्धति के अनुसार कार्य करने लगे हैं। बम्बई और दिल्ली के स्टॉक एक्सचेंज तो स्क्रीन आधारित व्यापार पद्धति को कार्यान्वित कर ही चुके हैं। देश के अन्य स्टॉक एक्सचेंज भी इस पद्धति को कार्यान्वित करने के कार्य में लगे हुए हैं। स्क्रीन आधारित प्रणाली में व्यापार रिंग नहीं होता। सदस्य कम्पयूटर टर्मिनलों के द्वारा कार्य करते हैं जो स्टॉक एक्सचेंज में केन्द्रीय कम्प्यूटर से जुड़े हुए होते हैं। इस पद्धति में अधिकतर क्रियाएं केवल कम्प्यूटर द्वारा ही होती हैं। यह पद्धति अधिक पारदर्शी तथा कार्यकुशल है।

आपको जानना चाहिए कि हाल के वर्षों में दो नए स्टॉक एक्सचेजों की स्थापना की गई है। वे हैं (i) ओभर दि काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया (OTCEI) और 2) राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSE)। ये दोनों ही रिंग रहित स्क्रीन आधारित कंप्यूटर के उपयुक्त बनाई गई व्यापार पद्धति हैं। इन दोनों का ही जाल समस्त देश में फैला हुआ है। आगे के परिच्छेदों में इन दोनों ही एक्सचेंजों के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है। स्टॉक एक्सचेंजों में लेनदेनों के समाशोधन और निपटान कार्यों को और अधिक कुशल बनाने की दृष्टि से भारत सरकार ने अभिरक्षण सेवाओं (Custodial Services) और राष्ट्रीय जमा प्रणाली (National Depository System) को लागू किया। आगे के परिच्छेदों में इन दोनों संकल्पनाओं के संबंध में भी विचार किया गया है।

ओवर दि काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया (OTCEI)

ओवर दि काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया, जिसे आमतौर पर भारतीय ओ टी सी एक्सचेंज कहा जाता है, का निगमन 1990 में हुआ और सितंबर 1992 से यह कार्य करने लगा। **इसका मुख्य उद्देश्य निवेशकों को निवेश की सुविधाजनक, कुशल और पारदर्शी विधि प्रदान करना और उद्यमियों को सहायता देना है जिससे वे अपनी प्रायोजनाओं के लिए लागत-प्रभावी ढंग से वित्त जुटा सकें।** ओ टी सी ई आई का प्रवर्तन अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं (यू टी आई, आई सी आई सी आई, आई डी बी आई और आई एफ सी आई), बीमा कंपनियों (एल आई सी और जी आई सी) और बैंकों के व्यापारिक बैंकिंग सहायकों (एस बी आई पूंजी बाजार और कैन बैंक वित्तीय सेवाओं) के द्वारा कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अधीन हुआ। प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 की धारा 4 के अधीन यह एक मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज है। अत: ओ टी सी एक्सचेंज की सूची में दर्ज कंपनियों को वे सभी लाभ प्राप्त करने का अधिकार है जो लाभ भारत के किसी अन्य स्टॉक एक्सचेंज की सूची में दर्ज कंपनियों को मिलते हैं।

अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीयन के लिए संबंधित कंपनी के पास कम से कम 3 करोड़ रु0 की ईक्विटी पूंजी होनी चाहिए। अत: 3 करोड़ रु0 से कम ईक्विटी वाली कंपनियों के लिए पूंजी जुटाना कठिन होता है क्योंकि इन कंपनियों का स्टॉक एक्सचेंज में सूचीयन नहीं हो सकता। लेकिन 30 लाख रु0 से अधिक और 25 करोड़ रु0 से कम वाली कंपनियों का OTCEI के साथ सूचीयन हो सकता है। इस प्रकार कम पूंजी वाली कंपनियों को भी OTCEI पूंजी जुटाने का अवसर प्रदान करता है।

OTCEI प्रणाली

OTCEI एक रिंग रहित व्यापार प्रणाली है। अन्य स्टॉक एक्सचेंजों जैसे इसमें व्यापार रिंग नहीं होता जहां पर सदस्य व्यापार के लिए स्टॉक एक्सचेंज की पाटिया पर जाते हैं। बम्बई के मुख्य कार्यालय में **OTCEI का केन्द्रीय कम्प्यूटर है।** OTCEI के सदस्य/व्यापारी समस्त देश में बिखरे हुए हैं। इस समय (जून 1956) देश के 16 नगरों में लगभग 400 सदस्य/व्यापारी हैं। प्रत्येक सदस्य/व्यापारी के कार्यालय में एक **काउंटर** होता हैं जहां पर **ऑन-लाइन-कंप्यूटर टर्मिनल** होता है जो टेलीकॉम जाल के द्वारा बम्बई स्थित OTCEI केन्द्रीय कंप्यूटर से जुड़ा होता है। व्यापार (प्रतिभूतियों के क्रय या विक्रय) के लिए आवश्यक सभी सूचनाएं इन कंप्यूटर टर्मिनलों पर उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार ये सदस्य/व्यापारी विभिन्न नगरों में स्थित अपने-अपने कार्यालयों में बैठे रहकर ही आपस में व्यापार कर सकते हैं। प्रत्येक काउंटर में एक **ओ टी सी स्क्रीन** होता है जो पी टी आई कंप्यूटर के द्वारा ओ टी सी केन्द्रीय कंप्यूटर से भी जुड़ा हुआ होता है। यह ओ टी सी स्क्रीन प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय के सभी अंतिम कोटेशनों को निरंतर ही दिखाता रहता है। एक **केन्द्रीय समाशोधन बैंक** है जिसमें सभी सदस्यों के लिए अपना खाता रखना आवश्यक है। यह बैंक काउंटरों के बीच के भुगतानों का समाशोधन कर देता है। उसी प्रकार **रजिस्ट्रार** होते हैं जो कंपनियों के

एजेंट होते हैं। कंपनियां इनकी नियुक्ति आबंटन और अंतरण संबंधी कार्यों को करने और शेयर होल्डरों के रजिस्टरों को रखने के लिए करती हैं। ये रजिस्ट्रार शेयर पत्रों को सुरक्षित रख कर अभिरक्षक (Custodian) का भी काम करते हैं।

खरीदी-बेची जाने वाली प्रतिभूतियां

OTCEI पर तीन प्रकार की प्रतिभूतियां खरीदी-बेची जाती हैं। नीचे इनके संबंध में संक्षेप में चर्चा की गई है।

1. **सूचीगत प्रतिभूतियां (Listed Securities) :** ये कंपनियों के शेयर/डिबेंचर हैं जो केवल OTCEI पर ही सूचीगत होते हैं। समस्त भारत के किसी भी ओ टी सी काउंटर पर इन्हें खरीदा या बेचा जा सकता है। लेकिन देश के किसी अन्य स्टॉक एक्सचेंज की सूची में इनका नाम नहीं होता। इस समय 95 सूचीगत शेयर और 15 सूचीगत डिबेंचर हैं।

2. **अनुमति-प्राप्त प्रतिभूतियां (Permitted Securities) :** अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीगत कुछ शेयरों/डिबेंचरों तथा यू टी आई और अन्य म्युचुअल फंडों की यूनिटों को OTCEI पर अनुमति-प्राप्त प्रतिभूतियों के रूप में खरीदने-बेचने की अनुमति दी गई है। इस समय OTCEI पर 320 अनुमति-प्राप्त शेयरों और 24 अनुमति-प्राप्त डिबेंचरों का क्रय-विक्रय होता है।

3. **इनिसिएटेड डिबेंचर (Initiated Debentures) :** कोई भी एका (entity) जिसके पास किसी विशिष्ट स्क्रीप के कम से कम एक लाख डिबेंचर हों, वह ऐसी प्रतिभूतियों के लिए आवश्यक बाजार बनाने के लिए किसी OTCEI सदस्य/व्यापारी को नियुक्त करके OTCEI पर व्यापार के लिए इन डिबेंचरों को प्रस्तुत कर सकता है।

सूचीयन की प्रक्रिया

OTCEI के साथ सूचीयन की प्रक्रिया अन्य एक्सचेंजों से भिन्न है। सूचीयन प्रक्रिया से संबंधित मुख्य कार्यों को नीचे संक्षेप में स्पष्ट किया गया है :

प्रायोजक का चुनाव : कंपनी को OTCEI के सदस्यों में से एक को अपना प्रायोजक चुन लेना चाहिए। यह प्रायोजक कंपनी/प्रायोजना का तकनीकी/आर्थिक मूल्यांकन करेगा, उसकी वित्तीय क्षमता का विश्लेषण करेगा, उसके पूंजी निर्गमन का प्रबंध करेगा तथा सार्वजनिक व्यापार (public trading) के प्रथम 18 मास के लिए खरीद-बिक्री के क्वोटों को प्रस्तुत करेगा।

पंजीकरण के लिए आवेदन : प्रायोजक के चुनाव के बाद कंपनी निर्गमन की जाने वाली प्रतिभूतियों के पंजीकरण के लिए निर्धारित फार्मेट में OTCEI को आवेदन करेगी। विवरण की जांच करने के बाद OTCEI पंजीकरण की अनुमति दे देगा।

निर्गमन की नोटिश : कंपनी को चाहिए कि वह निर्गमन की तिथि से कम से कम 21 दिन पहले निर्गमन की नोटिश प्रस्तुत करे जिसके साथ प्रविवरण (prospectus) और आवेदन की छपी हुई प्रतियां भी होनी चाहिए।

सूचीयन : आबंटन की स्वीकृति प्राप्त होने के बाद सूचीयन-आवेदन पत्र तथा सूचीयन करारनामे को OTCEI को फाइल किया जाता है। इसके बाद सूचीयन करार निष्पादित किया जाता है। अंत में OTCEI सूचीयन की अनुमति दे देगा और एक निश्चित तिथि से क्रय-विक्रय के लिए प्रतिभूतियों को प्रवेश दे देगा।

कंपनी के लिए आवश्यक होता है कि वह कीमत-निर्धारण, अभिगोपन, सार्वजनिक प्रस्ताव के प्रतिशत, प्रवर्तक के योगदान, लॉक-इन अवधि, निर्गमनों के संरक्षण, प्रलेखों आदि से संबंधित SEBI के मार्गदर्शी सिद्धांतों का पालन करे। सूचीयन आवश्यकताओं, प्रक्रियाओं तथा विक्रय प्रलेखीकरण के लिए निर्गमन/प्रस्ताव के लिए SEBI/OTCEI की अनुमति आवश्यक होती है। योग्यता संबंधी निम्नलिखित कुछ मापदंडों को भी ध्यान में रखना होता है।

- किसी अन्य मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीगत कंपनियां साथ ही साथ OTCEI पर अपने शेयरों को सूचीगत नहीं कर सकतीं।
- पट्टे पर देने, अवक्रय, वित्तीयन, निवेश, मनोरंजन-पार्क आदि से संबंधित कंपनियां OTCEI पर सूचीगत नहीं हो सकतीं।

- MRTP/FERA के अंतर्गत आने वाली कंपनियों का OTCEI पर तभी सूचीयन हो सकता है जब वे किसी अन्य मान्यता-प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीयन संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने की स्थिति में हों।

OTCEI पर व्यापार

OTCEI के साथ सूचीगत कंपनियों के शेयरों/डिबेंचरों का समस्त भारत के किसी भी OTC काउंटर पर क्रय-विक्रय किया जा सकता है। निवेशकों के लिए OTC एक्सचेंजों पर प्रतिभूतियों को खरीदना या बेचना आसान होता है। व्यापार के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पड़ते हैं।

- भारत के किसी भी OTC काउंटर पर जाएं।
- कीमत डिसप्ले स्क्रीन पर सर्वोत्तम कीमत देखें और बेचने/खरीदने के संबंध में निर्णय लें।
- काउंटर आपरेटर से कहें कि वह आपके लिए खरीदने/बेचने का काम करे। आपरेटर कंप्यूटर में आपके आर्डर फीड कर देगा।
- आपके लिए सर्वोत्तम कीमत पर आपके क्रय/विक्रय की स्वत: ही पुष्टि हो जाती है।
- तुरंत ही भुगतान करें (क्रय की स्थिति में) या अपनी स्क्रिप दे दें (बेचने की स्थिति में)।
- लेन-देन की छपी हुई पुष्टि ले लें जिसमें कीमत तथा दलाली (brokerage) अलग-अलग दिखाई गई होती हैं।
- एक सप्ताह के अंतर्गत ही स्क्रिप की सुपुर्दगी हो जाती है या भुगतान प्राप्त हो जाता है।

बिना किसी कागजी कार्यवाही की प्रणाली वाले OTCEI के काउंटर पर एक विशिष्ट प्रकार का व्यापार प्रलेख छपा हुआ निकलता है जो शेयर पत्र का स्थान ले लेता है तथा इसका उपयोग लेनदेन एवं अंतरण कार्यों के लिए किया जाता है। मूल शेयर पत्र अभिरक्षक के पास सुरक्षित रहता है।

लाभ

कंपनियों को लाभ : OTCEI के साथ अपनी प्रतिभूतियों को सूचीगत करने से कंपनियों को निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं :

- निर्गमन संबंधी खर्च बचते हैं।
- छोटी कंपनियों को भी सूचीगत करने के लाभ (30 लाख रु० से अधिक और 25 करोड़ रु० से कम की निर्गमित ईक्विटी)।
- केवल एक एक्सचेंज पर सूचीगत करके समस्त देश में व्यापार करना।

निवेशकों को लाभ : निवेशकों के लिए OTCEI पर क्रय-विक्रय करना सरल और सुविधाजनक होता है। निवेशकों को इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं।

- OTCEI पर प्रत्येक निवेश करने वाले को मुफ्त में ही एक इन्वेस्ट OTC कार्ड मिलता है। किसी भी काउंटर पर एक सीधा-सादा फ़ार्म भर कर इसे प्राप्त किया जा सकता है या किसी को जब OTC इशू के लिए शेयरों का आबंटन होता है तब भी उसे यह कार्ड मिलता है। इन्वेस्ट OTC कार्ड एक ही बार मिलता है, यह स्थायी प्रकार का होता है तथा इसका प्रयोग सभी लेनदेनों और OTC इशू के लिए आवेदनों के लिए करना चाहिए। यह कार्ड आपके निवेशों की सुरक्षा की व्यवस्था करता है।

- OTC स्कैन सर्वोत्तम क्रय/विक्रय कीमतों को दिखाता है। जिस कीमत पर आपका लेनदेन होता है और इस लेनदेन के लिए दलाली की जो रकम ली जाती है वे पुष्टि प्रलेख पर छपी हुई होती हैं। इस प्रकार आपका हित सुरक्षित रहता है तथा इस संबंध में कम से कम विवाद होते हैं।

- OTCEI पर सूचीगत प्रत्येक स्क्रिप के पास क्रय-विक्रय की तिथि से 18 मास की अवधि के लिए कम से कम दो मार्केट मेकर होते हैं। मार्केट मेकर निरंतर क्रय/विक्रय क्वोटों को प्रस्तुत करते रहते हैं। इससे स्क्रिपों की तरलता बढ़ती है जिससे निवेशकों को लाभ होता है।

- प्रत्येक OTC काउंटर देशव्यापी समस्त OTC एक्सचेंजों के लिए एक ही खिड़की का काम करता है। इस प्रकार आप अपने आस-पास के काउंटर पर क्रय/विक्रय कर सकते हैं।

- जब आप OTCEI स्क्रिप में लेनदेन करते हैं तब 7 दिन के अंतर्गत ही शेयरों का अंतरण किया जा सकता है। इस संबंध में शर्त यह है कि स्क्रिपों की आपकी समेकित धृति (holdings) कंपनी की निर्गमित पूंजी (issued capital) से 0.5% से अधिक न हो।

राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSE)

OTCEI के ही समान भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज भी पूर्णत: स्वचालित स्क्रीन आधारित व्यापार प्रणाली है। इसका निगमन कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन हुआ है। इसका प्रवर्तन अखिल भारतीय वित्त संस्थाओं, बीमा कंपनियों, कुछ राष्ट्रीयकृत वाणिज्य बैंकों तथा SBI पूंजी बाजार, आधारिक संरचना लिजिंग और वित्तीय सेवा तथा स्टॉक होल्डिंग कार्पोरेशन ऑफ इंडिया जैसी कुछ अन्य सार्वजनिक संस्थाओं ने किया है।

उद्देश्य

राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- ईक्विटियों, ऋण प्रपत्रों तथा मिश्र प्रतिभूतियों (hybrids) के लिए देशव्यापी व्यापार की सुविधाएं स्थापित करना।
- समुचित संचार के जाल द्वारा निवेशकों को समस्त देश में पहुंच की समान सुविधाएं प्रदान करना।
- इलैक्ट्रानिक व्यापार प्रणाली के उपयोग द्वारा निवेशकों के लिए उचित, कुशल तथा पारदर्शी प्रतिभूति बाजार की व्यवस्था करना।
- कम अवधि के निपटान चक्र तथा पुस्तक प्रविष्टि निपटान प्रणाली की व्यवस्था करना।
- प्रतिभूति बाजारों के वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार कार्य करना।

क्रय-विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियां

OTCEI तथा भारत के अन्य स्टॉक एक्सचेंजों की तुलना में राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज पर अनेक प्रकार की प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। इसके दो खंड हैं : 1. थोक ऋण बाजार खंड (Wholesale Debt Market Segment) और 2. पूंजी बाजार खंड (Capital Market Segment)।

1. **थोक ऋण बाजार खंड :** राष्ट्रीय एक्सचेंज इस देश में पहली बार थोक ऋण बाजार (जिसे आमतौर पर मुद्रा बाजार कहा जाता है) के लिए स्क्रीन आधारित व्यापार सुविधाएं प्रदान करने का कार्य करता है। थोक ऋण बाजार खंड संस्थाओं और निगमित निकायों के लिए कुछ प्रपत्रों (जैसे सरकारी प्रतिभूतियों, ट्रेजरी बिलों, सार्वजनिक क्षेत्रक के बांडो (PSU), यू टी आई की यूनिट 64, वाणिज्यिक पत्रों, जमा प्रमाणपत्रों, आदि) में अत्यधिक मूल्य के लेनदेन की सुविधा है।

2. **पूंजी बाजार खंड :** अन्य स्टॉक एक्सचेंजों के ही जैसे इस खंड के अंतर्गत ईक्विटियों, परिवर्तनीय डिबेंचरों आदि में व्यापार तथा अपरिवर्तनीय डिबेंचरों जैसे ऋण प्रपत्रों में खुदरा व्यापार होता है। जिन मध्यम आकार की तथा बड़ी-बड़ी कंपनियों में देश भर के निवेशक रुपया लगाते है उनका व्यापार राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में होता है। इनके अंतर्गत वे प्रतिभूतियां आती हैं जिनका व्यापार इस समय अन्य स्टॉक एक्सचेंजों में होता है।

बाजार प्रणाली

राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज देशव्यापी व्यापार की सुविधाएं तथा समस्त देश में निवेशकों को एक समान पहुंच की सुविधाएं प्रदान करता है। यह पूर्णत: स्वचालित स्क्रीन आधारित व्यापार प्रणाली है। इस एक्सचेंज में परंपरागत स्टॉक एक्सचेंजों जैसा न तो व्यापार की पाटिया (trading floor) होती है और न ही व्यापारियों को मुद्रा बाजार में लेनदेन की व्यवस्था के लिए टेलीफोन का आश्रय लेना होता है। बाजार कार्य तो अपने-अपने कार्यालयों में बैठकर ही कंप्यूटर टर्मिनल के प्रयोग द्वारा किया जाता है।

दूरसंचार (telecommunication) जाल इस स्वचालित व्यापार प्रणाली का आधार स्तंभ है। राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज के बम्बई स्थित मुख्य कार्यालय में एक **केन्द्रीय कंप्यूटर** है। प्रत्येक **व्यापारी सदस्य** अपने कार्यालय में स्थित कंप्यूटर टर्मिनल के द्वारा राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज पर अन्य सदस्यों के साथ क्रय-विक्रय करेगा। थोक ऋण बाजार खंड के व्यापारी सदस्यों के कंप्यूटर टर्मिनल केन्द्रीय कंप्यूटर के साथ अत्यधिक गति वाली टेलीफोन लाइनों द्वारा जुड़े होते हैं। पूंजी बाजार खंड के व्यापारी सदस्य अपने कार्यालय में VSAT$_s$ (Very Small Apetture Terminals) का प्रयोग

करके सेटेलाइट लिंक से जुड़े हुए होते हैं। केबुल टी. वी के डिश ऐंटेना के समान ही ये छोटी आकार की डिशें होती हैं जो बहुत ही खर्चीली नहीं होती।

सदस्यों के कार्यालय में क्रेता अपने क्रय आर्डर को तथा विक्रेता अपने विक्रय आर्डर को टर्मिनलों के द्वारा प्रविष्ट कर देता है। इन क्रय एवं विक्रय आर्डरों का एक्सचेंज कंप्यूटर प्रणाली द्वारा स्वत: ही मिलान हो जाता है। सभी प्राप्त आदेशों को कीमत-समय वरीयता के अनुसार रखा जाता है। अन्य शब्दों में इसे कहा जा सकता है कि आर्डर जैसे-जैसे प्राप्त होते हैं वैसे-वैसे प्रत्येक प्रतिभूति कीमत और उससे संबंधित आर्डर की प्रविष्टि के समय के अनुसार कंप्यूटर आर्डरों की छंटनी कर देता है। व्यापारी सदस्यों द्वारा आर्डर से संबंधित शर्तों के अनुसार कंप्यूटर सर्वोत्तम मेल (match) को ढूंढ़ता है। जैसे ही उसे सर्वोत्तम मेल मिल जाता है वैसे ही सौदा हो जाता है। यदि शीघ्र ही उसे मेल प्राप्त नहीं होता (जैसा कि कम तरल प्रतिभूतियों की स्थिति में होता है) तो आर्डर को कंप्यूटर में रोके रखा जाता है।

आर्डर देने वाले सदस्य की पहचान को राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज के कंप्यूटर की व्यापार प्रणाली में प्रकट नहीं किया जाता। व्यापारी सदस्यों की पहचान को छिपाए रखने से इस प्रणाली में बड़े-बड़े सदस्यों के आर्डरों को भी लगाया जाता है और इस प्रकार बहुत बड़े आकार के आर्डर बाजार कीमतों को प्रभावित नहीं कर पाते।

यह प्रणाली व्यापार कार्य में पूर्ण पारदर्शिता बनाए रखती है। निवेशक खरीदी-बेची जाने वाली प्रतिभूतियों की कीमतें देख सकते हैं। निवेशक देख सकते हैं कि प्रणाली में उनके आर्डरों को लगाया गया या नहीं, किस दर पर सौदा हुआ, दूसरी पार्टी कौन है तथा किस समय सौदा किया गया। यह व्यापार प्रणाली व्यापारी सदस्यों को पर्याप्त लचीलापन प्रदान करती है। आर्डर को प्रविष्ट करते समय सदस्य कीमत, समय या आकार संबंधी शर्तें आर्डर पर लगा सकते हैं।

लाभ

व्यापारी सदस्यों को लाभ : व्यापारी सदस्यों (दलालों) को जो लाभ होते हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

- वे अपने ग्राहकों (निवेशकों) को कुशल सेवाएं प्रदान कर सकते हैं।
- उन्हें रिंग में जाना नहीं पड़ता। वे अपने कार्यालय में बैठे-बैठे क्रय-विक्रय कर सकते हैं। इस प्रकार उन्हें स्टॉक एक्सचेंज के पास में कार्यालय को रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती। अत: कार्यालय की लागत कम हो जाती है।
- उनके कार्यालय का पिछला भार बहुत ही कम हो जाता है क्योंकि इस प्रणाली से क्रय-विक्रय का विवरण प्राप्त हो जाता है।
- विदेशी संस्थाएं राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज द्वारा दी जाने वाली स्वचालित और विनियमित बाजार को बेहतर मानती हैं। इस प्रकार व्यापार की मात्रा से अत्यधिक वृद्धि होने से दलालों को लाभ होता है।
- यह प्रणाली बाजार में क्रय-विक्रय में भाग लेने वालों के लिए 'सर्वोत्तम कीमत' (best price) सुनिश्चित करती है।
- इस प्रणाली के द्वारा सदस्यों के बीच लेनदेन को उचित बनाए रखा जाता है।
- तुरंत और कुशलतापूर्वक निपटान हो जाता है।

निवेशकों को लाभ : इस प्रणाली से निवेशकों को अनेक प्रकार के लाभ होते हैं।

- निवेशक बाजार में सर्वोत्तम कीमत के संबंध में सुनिश्चित हो जाता है। कंट्राक्ट नोटों पर कीमत और दलाली को अलग-अलग दिखाया जाता है। व्यापार होने की तिथि तथा समय भी दिखाए जाते हैं।
- इस प्रणाली को अच्छी तरह से कार्यान्वित तथा विनियमित किया जाता है जिससे निवेशकों को उचित सौदा प्राप्त हो जाता है।
- यह प्रणाली शीघ्रता से कार्य करने वाली है जिससे रुपया/प्रतिभूतियां शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार तरलता बढ़ती है।

कंपनियों को लाभ : राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज कंपनियों को निम्नलिखित लाभ पहुंचाता है :

- राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में एक ही सूचीयन (listing) के होने से कंपनियों की पहुंच समस्त देश के निवेशकों तक हो पाती है। यदि राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज न हो तो कंपनियों को समस्त देश के निवेशकों तक पहुंचने के लिए अनेक स्टॉक एक्सचेंजों में अपने शेयरों/प्रतिभूतियों को सूचीगत करना होगा।

- कंपनियों की सूचीयन लागत (listing cost) बहुत ही कम हो जाती है क्योंकि उन्हें अनेक स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीगत नहीं होना पड़ता, बल्कि राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज में सूचीगत होकर वे देशव्यापी व्यापार कर सकती हैं।
- शेयरों/प्रतिभूतियों के निर्गमन को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

राष्ट्रीय जमा प्रणाली और अभिरक्षण सेवाएं (National Depository System and Custodial Services)

राष्ट्रीय जमा प्रणाली

वर्तमान प्रणाली के अंतर्गत स्टॉक एक्सचेंजों में प्रतिभूतियों का निपटान स्क्रिपों की वस्तुतः सुपुर्दगी के द्वारा होता है, जिनके साथ अंतरण विलेखों को भी भरकर देना होता है। हाल के वर्षों में स्टॉक एक्सचेंजों में व्यापार की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण इस प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रीय जमा प्रणाली को लाना आवश्यक हो गया। जमा प्रणाली बैंक जैसी ही एक संस्था है। बैंकों की स्थिति में आप नकद जमा करते हैं और आपको एक रसीद तथा खाता विवरण (पास बुक) मिलता है। **जमा (depositories) की स्थिति में निवेशक अपनी प्रतिभूतियों को जमा करते हैं और उन्हें उनके लिए रसीद तथा खाता विवरण मिलता है।** जब जमा प्रणाली कार्य करने लगती है तब भुगतान के बदले प्रतिभूतियों को देने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रणाली के अंतर्गत जब भी कोई निवेशक प्रतिभूति बेचता या खरीदता है तब उसके खाते को सौदा की गई प्रतिभूति के आवश्यक प्रकार और मात्रा से डेबिट या क्रेडिट कर दिया जाता है। इस प्रकार जमा प्रणाली समाशोधन और निपटान प्रणाली की कड़ी बन जाती है।

जमा प्रणाली में जमा की गई प्रतिभूतियों का अभौतिकीकरण (dematerialisation) हो जाता है। कोई निवेशक जमा प्रणाली के साथ सौदा केवल मध्यस्थों (intermediaries) के द्वारा ही कर सकता है जो जमा प्रणाली का सहभागी (participant) होता है। इस प्रकार निवेशक सहभागी के साथ लेनदेन करता है जो जमा प्रणाली के साथ लेनदेन करता है। इस संबंध में अध्यादेश तो पास कर दिया गया परंतु जमा प्रणाली के स्थापित होने में कुछ समय लगेगा क्योंकि इसकी स्थापना को सुविधाजनक बनाने के लिए वर्तमान नियमों और विनियमों में परिवर्तन की आवश्यकता है।

यह प्रणाली निवेशकों के लिए अत्यंत सहायक होगी जिन्हें गलत सुपुर्दगी, खो जाने वाले शेयर पत्रों, जाली शेयर पत्रों, जाली अंतरण विलेखों, डाक के विलंब और अंतरण से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जमा प्रणाली समाशोधन तथा निपटान में शीघ्रता भी लाएगी। इस प्रणाली से कंपनियों को भी लाभ होगा क्योंकि इसके चलते हजारों की मात्रा में शेयर पत्रों को छापने, जारी करने तथा डाक से भेजने से संबंधित खर्च कम होंगे। खाता पुस्तकों के बंद होने तथा रिकार्ड तिथियों के फलस्वरूप शेयरों का अंतरण करने से संबंधित कार्यभार भी कम होगा। कंपनियां अपनी कंपनी के शेयरधारण स्वरूप के संबंध में नवीनतम सूचना रख सकेंगी। इस प्रणाली से स्टॉक बाजार के मध्यस्थों को भी लाभ होगा क्योंकि इससे उनके कार्यलय में कागजी कार्यवाही कम हो जाएगी। निपटान प्रणाली के अधिक कुशल होने से व्यापार की मात्रा बढ़ेगी। सांस्थानिक निवेशकों के संबंध में यह विशेष रूप से सही है जिन्हें वर्तमान प्रणाली के अंतर्गत अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

अभिरक्षण सेवाएं

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, अभिरक्षक (Custodian) मध्यस्थ होता है जो प्रतिभूतियों को सुरक्षित रखता है या अपने ग्राहकों के खाते का रक्षक होता है। अभिरक्षक अपने ग्राहकों की ओर से दलालों से स्क्रिपों को लेता है तथा अंतरण विलेखों को भरने तथा आवश्यक मात्रा में शेयर अंतरण स्टैंपों को लगाने के बाद उन्हें अंतरण के लिए भेज देता है। ग्राहकों के शेयर जब तक बिक नहीं जाते तब तक अभिरक्षक उन्हें अपनी सुरक्षा में भी रखता हैं। अपने ग्राहकों की ओर से वह विभिन्न एजेंसियों के साथ डिविडेंडों, बोनस और राइट (Rights) को प्राप्त करने का आवश्यक अनुवर्ती कार्य भी करता है। वह अपने निवेशकों को यह भी बताता रहता है कि उसकी नवीनतम निवेश-स्थिति क्या है।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01
व्यावसायिक संगठन

खंड

3

विपणन

इकाई 8
विज्ञापन 5

इकाई 9
विज्ञापन के माध्यम 23

इकाई 10
आंतरिक (देशीय) व्यापार तथा वितरण के माध्यम 37

इकाई 11
थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी 55

इकाई 12
आयात और निर्यात व्यापार की कार्यविधि 76

खंड 3 विपणन

विपणन मुख्यत: व्यावसायिक क्रियाकलाप की पूरी प्रणाली से संबद्ध है जो उत्पाद के नियोज, मूल्य-निर्धारण, विक्रय संवर्द्धन तथा वर्तमान और भावी ग्राहकों को माल के वितरण का प्रबंध करता है। इसके कार्य हैं : उत्पाद की योजना बनाना, उत्पाद तैयार करना, मूल्य निर्धारण करना, विज्ञापन और वितरण। इस खंड में 5 इकाइयाँ (इकाई 8-12) हैं जिनमें विपणन के दो मुख्य पक्षों, विज्ञापन और वितरण पर बल दिया गया है।

इकाई 8 में विज्ञापन के स्वरूप और महत्त्व की चर्चा की गई है तथा यह भी बताया गया है कि अच्छे विज्ञापन के क्या मूलभूत लक्षण हैं।

इकाई 9 में विज्ञापन के विविध माध्यमों, आदर्श माध्यम के गुण और उपयुक्त माध्यम के चुनाव के संबंध में विचार किया गया है।

इकाई 10 में देशीय व्यापार में प्रयुक्त वितरण के माध्यमों तथा माध्यमों के चुनाव को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन है। इसमें वितरण प्रणाली में मध्यस्थ की भूमिका की भी व्याख्या की गई है।

इकाई 11 में देशीय व्यापार में थोक व्यापारियों और फुटकर व्यापारियों की भूमिका की चर्चा की गई है तथा फुटकर व्यापारियों और थोक व्यापारियों के विशिष्ट लक्षणों एवं उनके विभिन्न प्रकारों के बारे में बताया गया है।

इकाई 12 का संबंध विदेशी व्यापार से है। इसमें विदेशी व्यापार के महत्त्व और समस्याओं के संबंध में बताया गया है। इसमें माल के आयात और निर्यात में अपनाई जाने वाली प्रणाली का भी वर्णन किया गया है।

इकाई 8 विज्ञापन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 विज्ञापन क्या है?
8.3 विज्ञापन तथा प्रचार में अंतर
 8.3.1 प्रचार क्या है?
 8.3.2 विज्ञापन प्रचार से किस प्रकार भिन्न होता है?
8.4 विज्ञापन के उद्देश्य
8.5 समाज में विज्ञापन की भूमिका
 8.5.1 विज्ञापन के विरोध में तर्क
 8.5.2 विज्ञापन के पक्ष में तर्क
8.6 प्रभावी विज्ञापन के अनिवार्य तत्त्व
 8.6.1 संदेश से संबंधित गुण
 8.6.2 उपभोक्ता तक पहुंच से संबंधित गुण
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.11 स्वपरख प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विज्ञापन की परिभाषा बता सकें
- विज्ञापन तथा प्रचार में अंतर बता सकें
- व्यावसायिक फर्मों के लिये विज्ञापन के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकें
- समाज में विज्ञापन की भूमिका का विवेचन कर सकें, और
- प्रभावी विज्ञापन के तत्त्वों को बता सकें।

8.1 प्रस्तावना

रेडियो सुनते, टेलीविजन देखते, समाचारपत्र अथवा पत्रिका पढ़ते या सड़क पर चलते समय बहुत से विज्ञापन संदेशों से आपका सामना होता है। ये प्राय: उत्पादों अथवा सेवाओं को क्रय करने के लिए आपको प्रेरित करते हैं। वास्तव में ये विज्ञापन कंपनियों द्वारा यह बताने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं कि ग्राहक उनके उत्पादों अथवा सेवाओं का किस प्रकार प्रयोग कर सकते हैं। आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में विज्ञापन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह जनता को बाजार में उपलब्ध उत्पादों और सेवाओं की किस्मों से अवगत कराता है।

इस इकाई में हम यह विचार करेंगे कि विज्ञापन का अर्थ क्या है, यह प्रचार से किस प्रकार भिन्न है, विज्ञापन के क्या उद्देश्य हैं, समाज में विज्ञापन की क्या भूमिका है और प्रभावी विज्ञापन के क्या गुण हैं?

8.2 विज्ञापन क्या है?

विज्ञापन का क्या अर्थ है, यह समझने के लिए हम इस इकाई का प्रारंभ करते हैं। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन द्वारा दी गई विज्ञापन की परिभाषा इस प्रकार है — **"किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा विचारों, वस्तुओं अथवा सेवाओं की अव्यक्तिगत प्रस्तुति, जिसके लिये शुल्क दिया गया है, विज्ञापन कहलाती है।"**

इस परिभाषा में निम्नलिखित चार बातें शामिल हैं।

1 शुल्क के रूप में
2 अव्यक्तिगत प्रस्तुति
3 विचार, वस्तुएँ तथा सेवाएँ
4 पहचाना जा सकने वाला विज्ञापनकर्ता

इस परिभाषा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, उपरोक्त विचारों का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। आइये इन विचारों की विस्तृत रूप से चर्चा करें :

1 शुल्क रूप में (Paid form): प्रत्येक विज्ञापन के लिए संदेश प्रस्तुत करने वाले माध्यम को कुछ शुल्क दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि संदेश पत्रिका में प्रकाशित हुआ है तो उस पत्रिका में प्रयोग किए गए स्थान तथा छपाई के लिए भुगतान करना होगा। यदि संदेश निःशुल्क छापा जाता है, तो यह विज्ञापन नहीं माना जाता है।

2 अव्यक्तिगत प्रस्तुति (Non-personal presentation): जब कोई विक्रेता किसी वस्तु के बारे में ग्राहक से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करता है, तो यह व्यक्तिगत प्रस्तुतीकरण कहलाता है। जब कहीं संदेश जन-माध्यम जैसे रेडियो, टेलीविजन, समाचारपत्र, सीधे पत्र-व्यवहार, होर्डिंग आदि द्वारा दिया जाता है, तो यह अव्यक्तिगत माध्यम कहलाता है। अन्य शब्दों में, विक्रेता द्वारा संप्रेषण ग्राहक से सामने होकर संवाद नहीं हो पाता। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्राहक को विक्रेता द्वारा दिया जाने वाला संदेश विज्ञापन नहीं कहा जायेगा।

3 विचार, वस्तुएँ तथा सेवाएँ (Ideas, goods and services): इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विज्ञापन न केवल माल ही बेचने में सहायक है वरन् विचारों तथा सेवाओं को भी इस माध्यम से बेचा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बैंक, बीमा कंपनियाँ, एयर लाइनें, रेस्तरां, ड्राइक्लीनर तथा इसी प्रकार के अन्य संस्थान बचत करने, घूमने, स्वादपूर्ण भोजन करने आदि के लाभों संबंधी अपनी सेवाओं तथा विचारों का विज्ञापन उसी प्रकार करते हैं जैसे मोटर गाड़ियों, साबुन, हेयर आइल आदि के उत्पादक अपने उत्पादों के लाभों का वर्णन करते हैं। अस्तु, "विचार, माल तथा सेवाएँ" शब्द यह बताते हैं कि विज्ञापन का संबंध वास्तविक माल के विक्रय संवर्द्धन से कहीं अधिक होता है।

4 पहचाना जा सकने वाला विज्ञापनकर्ता (Identified sponsorer): विज्ञापन का प्रायोजक विज्ञापनकर्ता होता है। पहचाना जा सकने वाला विज्ञापनकर्ता से तात्पर्य है कि वह उत्पादक अथवा विक्रेता, जो वस्तुओं का विज्ञापन करता है, विज्ञापन संदेश से पहचाना जाता है। दूसरे शब्दों में, संदेश प्राप्त करने वाले को विज्ञापन के स्रोत तथा उद्देश्य दोनों की ही पहचान होनी चाहिए। अगर कोई विज्ञापन किसी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा नहीं दिया गया है तो वह विज्ञापन नहीं कहलाएगा।

चित्र 8.1 में प्रदर्शित संदेश को ध्यानपूर्वक देखिए। हम इस संदेश का विश्लेषण यह ज्ञात करने के लिए करेंगे कि यह विज्ञापन कहलाना चाहिए अथवा नहीं। प्रथम, संदेश समाचारपत्रों में छपा है, जो कि एक अव्यक्तिगत माध्यम है। द्वितीय, यह संदेश छापने वाले समाचारपत्र को भुगतान किया गया होगा। तृतीय, यह संदेश उत्पाद की किस्म से संबंध रखता है — ओ सी एम सूटिंग्स, एक विश्वसनीय वस्त्र। चतुर्थ, प्रायोजक अथवा विज्ञापनकर्ता का नाम अर्थात् वी.एक्स.एल. इंडिया लि., स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि विज्ञापन का उद्देश्य ग्राहक को ओ सी एम सूटिंग्स खरीदने के लिए प्रोत्साहित करना है। अस्तु, हम यह कह सकते हैं कि चित्र 8.1 में छपा संदेश विज्ञापन है।

इस विज्ञापन में ध्यान देने योग्य बातें हैं :

वस्तु	:	सूटिंग्स (टैक्सटाइल)
माध्यम	:	समाचारपत्र
संदेश	:	ओ सी एम सूटिंग्स एक विश्वसनीय वस्त्र वी.एक्स.एल. इंडिया लि. का एक उत्पाद
प्रायोजक	:	वी.एक्स.एल. इंडिया लि.
भुगतान	:	प्रकाशकों द्वारा निर्धारित दर पर समाचारपत्र में छापने के लिए संदेश के विज्ञापनकर्ता ने भुगतान किया है।

चित्र 8.1
विज्ञापन का उदाहरण

स्रोत : एक समाचारपत्र से लिया गया

चित्र 8.2

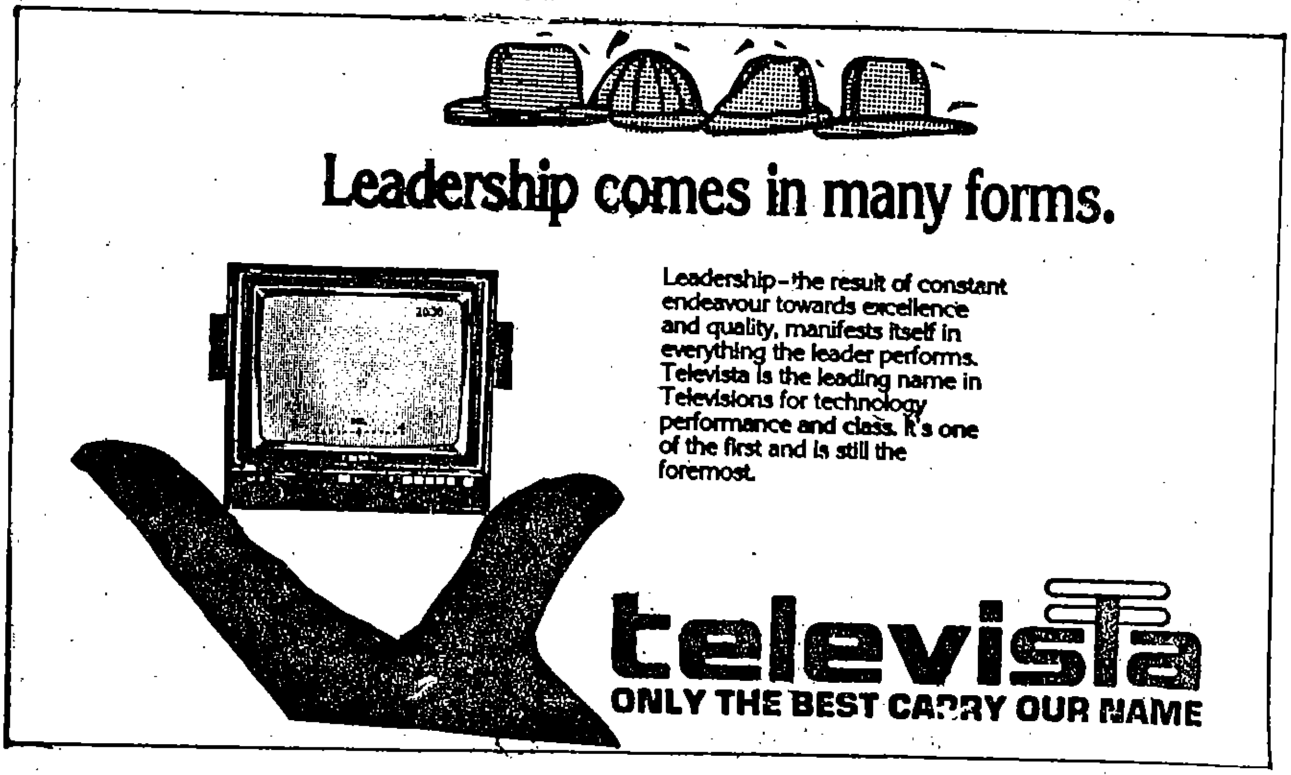

बोध प्रश्न क

चित्र 8.2 को सावधानीपूर्वक देखिए तथा इसका विश्लेषण कीजिए। माध्यम, वस्तु, संदेश तथा प्रायोजक के विषय में विवरण दीजिए। क्या आप इसे विज्ञापन कहेंगे। इस अभ्यास को करने से पूर्व चित्र 8.1 को आप देख सकते हैं।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.3 विज्ञापन तथा प्रचार में अंतर

क्या विज्ञापन प्रचार (publicity) से भिन्न हैं? कभी-कभी विज्ञापन तथा प्रचार एक ही अर्थ व्यक्त करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं, जो सही नहीं है। वास्तव में, विज्ञापन प्रचार से भिन्न है। इससे पूर्व कि हम यह बताएँ कि ये कैसे भिन्न हैं, हमें सर्वप्रथम प्रचार का अर्थ समझ लेना चाहिए।

8.3.1 प्रचार क्या है?

जनता को किसी कंपनी अथवा इसके उत्पाद के विषय में गैर-प्रायोजक व्यापारिक महत्त्व की कोई सूचना किसी अव्यक्तिगत माध्यम से देना प्रचार कहलाता है। इस सूचना को देने के लिए कंपनी को कोई भुगतान नहीं करना पड़ता। इस व्याख्या में आपको निम्नलिखित चार अभिव्यक्तियाँ मिलेंगी।

1 गैर प्रायोजित
2 व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संदेश/सूचना
3 अव्यक्तिगत माध्यम द्वारा
4 कंपनी द्वारा भुगतान न किया जाना

आइए, इन चारों अभिव्यक्तियों की विस्तार से व्याख्या करें जिससे स्पष्ट रूप से प्रचार का अर्थ समझा जा सकेगा।

1 गैर प्रायोजित (Non-sponsored) : यह सूचना कंपनी द्वारा नहीं दी जाती है। ऐच्छिक रूप से इस संदेश को माध्यम छापता अथवा प्रकाशित करता है। दूसरे शब्दों में, प्रचार सामग्री का कोई प्रायोजक नहीं होता।

2 व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संदेश/सूचना (Commercially significant information) : प्रचार में कंपनी अथवा उसके उत्पाद के विषय में सूचना प्रसारित की जाती है। यह सूचना कंपनी के लिए व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए।

3 अव्यक्तिगत माध्यम द्वारा प्रसार करना (Disseminated by non-personal media) : सूचना को अव्यक्तिगत माध्यम, जैसे रेडियो, टेलीविजन, समाचारपत्र अथवा पत्रिका आदि द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। यह संदेश वार्तालाप अथवा वाद-विवाद द्वारा (रेडियो अथवा टेलीविजन) अथवा संपादकीय अथवा समाचार (जैसे समाचारपत्रों अथवा पत्रिकाओं) द्वारा प्रसारित किया जा सकता है।

4 कंपनी द्वारा कोई भुगतान न किया जाना (Without a financial charge to the company) : माध्यम द्वारा प्रचार-सामग्री ऐच्छिक रूप से प्रस्तुत की जाती है। सूचना का प्रसारण करने के लिए कंपनी को कोई भुगतान नहीं करना पड़ता।

प्रचार कंपनी के लिए अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी। जब प्रचार कंपनी के उत्पाद के लिए अनुकूल होता है तो यह उत्पाद की माँग को अनुकूलतः प्रभावित करता है। दूसरी ओर, प्रतिकूल प्रचार की माँग को गिरा भी सकता है। आइए अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रचार के कुछ उदाहरणों पर विचार करते हैं। आपने पत्रिकाओं तथा समाचारपत्रों में फिल्मों की समीक्षा पढ़ी होगी। ये समीक्षाएँ पत्रिकाओं अथवा समाचारपत्रों के स्टाफ द्वारा लिखी जाती हैं। फिल्म का प्रोड्यूसर किसी भी रूप में इनसे संबद्ध नहीं होता। इन समीक्षाओं में कहानी, संगीत, फोटोग्राफी, प्रमुख कलाकारों के कार्यों आदि के बारे में चर्चा की जाती है। इन समीक्षाओं को प्रचार कहा जाता है। यदि समीक्षा में की गई टिप्पणियाँ अच्छी नहीं होती है तो फिल्म के बारे में पाठकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे उस फिल्म को देखने के लिए लालायित नहीं रहते। यह प्रतिकूल प्रचार का एक उदाहरण है। यदि समीक्षा में की गई टिप्पणी अच्छी होगी तो पाठकों के मन पर फिल्म के बारे में अच्छा प्रभाव पड़ेगा और उनमें से बहुत से उसे देखने जायेंगे। यह अनुकूल प्रचार का एक उदाहरण है।

अनुकूल प्रचार प्राप्त करने के लिए कंपनियाँ जन-संपर्क करती हैं। ये जन-संपर्क कार्य विपणन विभाग के कार्य क्षेत्र में नहीं आते। प्रायः ये एक पृथक् विभाग द्वारा किए जाते हैं जिसे जन-संपर्क विभाग का नाम दिया जाता है।

बोध प्रश्न ख

नीचे दिए गए फिल्म को देखिए। यह प्रचार का एक उदाहरण है। इसको सावधानी से पढ़िए तथा कारण देते हुए लिखिए कि यह पाठकों पर अनुकूल प्रभाव डालेगा अथवा प्रतिकूल।

Sunday TV films

"Aaina"

(Hindi/1974/5-45 p.m.)

A melodramatic tale of a family immersed in trouble. Its increasing problems are made more problematic by the quick multiplication of children with the priest father gradually being denuded of clients. The harassed mother is forever complaining – what with six children to support and a new one on the way.

Luckily, the eldest sister is a loving kind and keeps the younger ones happy by playing and telling them stories. Once she decided to play the role of an all-powerful Devi and asked the kids to name their wishes and they shall be fulfilled. Little did she reasise then that the role would stick to her for ever.

Time comes when she had to take up the role of the mock drama in real life in order to feed the hungry mouths. Initially, she takes up a job but finally lands in the world's oldest profession as the family demands go up. The climex comes when the "goodess Didi" is disowned by all those whom she supports and brings up

Her only solace in those days is the mirror in which she keeps looking at her face and there is a sympathetic friend too. Dialogue is rather well worded and on the whole a well made film within the formula format.

K. Balachander, the multi-lingual south Indian movie maker, directs one of his early Hindi ventures. There is fine music by Naushad and the lead role is played by Mumtaz rather poignantly. Others include Rajesh Khanna, Nirupa Roy and Hangal.

8.3.2 विज्ञापन प्रचार से किस प्रकार भिन्न होता है?

हम जान चुके हैं कि विज्ञापन क्या है तथा प्रचार क्या है? अब हम इस स्थिति में हैं कि दोनों के बीच का अंतर स्पष्ट कर सकें। चित्र 8.1 को सावधानी से पढ़िए। इसमें विज्ञापन तथा प्रचार दोनों की विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है। इसे देखने के पश्चात् आप इन दोनों शब्दों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

तालिका 8.1

विवरण	विज्ञापन	प्रचार
1 माध्यम	अव्यक्तिगत माध्यमों जैसे रेडियो, दूरदर्शन (टी.वी.), समाचार-पत्र, पत्रिकाओं आदि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।	अव्यक्तिगत माध्यमों जैसे रेडियो, टी.वी., समाचार-पत्र, पत्रिकाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।
2 प्रायोजक	विज्ञापनकर्ता की पहचान की जा सकती है। प्रायः कोई कंपनी इसका प्रायोजन अपने उत्पाद अथवा सेवा के लिए करती है।	प्रायोजक की पहचान नहीं की जा सकती। माध्यम ऐच्छिक रूप से इसको प्रस्तुत करता है।
3 भुगतान	माध्यम को कंपनी प्रयोग किए गए स्थान अथवा समय के लिए भुगतान करती है।	कंपनी माध्यम को कोई पैसा नहीं देती।
4 उद्देश्य	इसका उद्देश्य कंपनी के उत्पाद के बारे में अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करना होता है।	कंपनी के उत्पाद के बारे में इसका अनुकूल अथवा प्रतिकूल कोई भी प्रभाव वह सकता है।

बोध प्रश्न ग

1 तालिका 8.1 सावधानी से देखिए तथा विज्ञापन और प्रचार में समानता और अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

2 नीचे तीन स्थितियाँ दी गई हैं। क्या वे विज्ञापन अथवा प्रचार कही जा सकती है? अथवा इनमें से कोई भी नहीं है। संक्षेप में लिखिए।

i) दवाएँ बनाने वाली एक कम्पनी का सेल्समैन एक डॉक्टर के पास गया और उस कम्पनी द्वारा उत्पादित बहुत सी दवाओं की उपयोगिता के बारे में उसे बताया।

....

....

....

....

ii) श्रीमती रेणु प्रतिदिन "वज्रदंती" दंत मंजन का प्रयोग करती है। एक दिन उन्होंने अपनी पड़ोसिन श्रीमती कमला को बताया कि भारत में उपलब्ध दंत मंजनों में वज्रदंती सर्वश्रेष्ठ है। इसके पश्चात् श्रीमती कमला ने भी वज्रदंती मंजन का प्रयोग करना आरंभ कर दिया।

....

....

....

iii) एक कार निर्माता कम्पनी ने विज्ञापन दिया कि उसकी कार एक लिटर प्रेट्रोल में 15 किलोमीटर जाती है। कुछ मास पश्चात् एक प्रमुख समाचार-पत्र में छपा कि उक्त कार एक लिटर में 10 किलोमीटर ही चलती है तथा कार का निर्माता यह विज्ञापित करके कि एक कार एक लिटर में 15 किलोमीटर जाती है, जनता को भ्रमित कर रहा है। इस समाचार के छपने के पश्चात् कार की बिक्री में कुछ कमी आ गई।

....

....

....

3 आगे चित्र 8.3 में प्रस्तुत की गई दो मदों को देखिए। उनका सावधानी से अध्ययन कीजिए तथा पहचानिए कि इनमें कौन विज्ञापन है तथा कौन प्रचार हैं। अपने तर्क भी दीजिए।

चित्र 8.3

Item I

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
INDIRA GANDHI NATIONAL OPEN UNIVERSITY

YMCA CULTURAL CENTRE JAI SINGH ROAD NEW DELHI-1

TENDER NOTIFICATION NO : 1/ADMN/88-89
FOR RESIDENTIAL ACCOMMODATION

University is in need of residential accommodation as follows :

a) For porviding hostel accommodation to some of its officers, 3 flats of 3 bedrooms each, preferably in one building or a compact building with 8-9 bedrooms, near Tughlakabad (preferably in Saket, Alaknanda, Yamuna/Kaveri Apartments, Kalkaji Extn., etc.) and

b) Residential accommodation for housing its staff members- -25 to 30, 2 bedroom flats in a single block or contiguous blocks in areas like Maidan Garhi, Saket, Noida, Patparganj, etc.

Interested parties may send their offers in sealed covers superscribed "Tender for Residential/Hostel accommodation" indicating the terms and conditions, details of accommodation, location, owner's name and address on or before 25th May, 1988.

REGISTRAR

Item II

IGNOU degree course

By A Staff Reporter

NEW DELHI, May 12, The Indira Gandhi National Open University here will admit 10 + 2 or the equivalent stream of candidates to its B.A. and B.Com courses commencing in August.

An IGNOU release said there would be no restriction of minimum or maximum age regarding these candidates.

Also, there would be no entrance examinations for these candidates and they would be admitted purely on merit, with reference to their marks at the 10+2 examination.

A candidate admitted to B.A./B.Com can complete it in three years or a maximum period of eight years.

8.4 विज्ञापन के उद्देश्य

आपने विज्ञापन के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। यह प्रचार से किस प्रकार भिन्न होता है यह भी जान लिया है। अब हम विज्ञापन के उद्देश्यों के बारे में चर्चा करेंगे। व्यावसायिक फर्में निम्नलिखित उद्देश्यों में से एक अथवा अधिक की प्राप्ति के लिए विज्ञापन करती हैं :

1 नवीन वस्तुओं का परिचय देना
2 संभाव्य ग्राहकों को क्रय करने के लिए लुभाना
3 ग्राहकों को याद दिलाना
4 ब्रांड की छवि स्थापित करना।
5 उत्पाद के नवीन प्रयोगों की सूचना ग्राहकों को देना
6 ब्रांड की विशिष्टता (गुण) उजागर करना
7 विक्रेताओं को सहयोग देना
8 फुटकर व्यापार में हाथ बँटाना
9 विविध

1 **नवीन वस्तुओं का परिचय देना (Introduction of new products) :** समय-समय पर निर्माता नवीन वस्तुओं को बाजार में लाते हैं जिससे वे वहाँ पहले से ही विद्यमान उत्पादों के उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता कर सकें। नवीन उत्पाद का विज्ञापन करना आवश्यक होता है जिससे ग्राहक उत्पाद का परिचय प्राप्त कर सकें, उसकी उपयोगिता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें तथा यह जान सकें कि वह कहाँ उपलब्ध हो सकेगी और उसके संबंध में अधिक जानकारी किस प्रकार प्राप्त हो सकेगी, आदि। वास्तव में नवीन उत्पाद की बिक्री का संवर्धन करने के लिए विज्ञापन अति महत्त्वपूर्ण होता है।

उदाहरण के लिए 8.4 को देखिए। आप देख सकेंगे कि कैसे कॉन्टीनेन्टल कंबलों के नवीन उत्पादों की जानकारी विज्ञापन द्वारा एसमा वूलेन्ज मिल्स ने दी। यह नवीन उत्पाद की विशेषताओं का वर्णन करता है तथा व्यापारिक जानकारी प्राप्त करने के लिए स्थान का पता भी दे रहा है।

चित्र 8.4

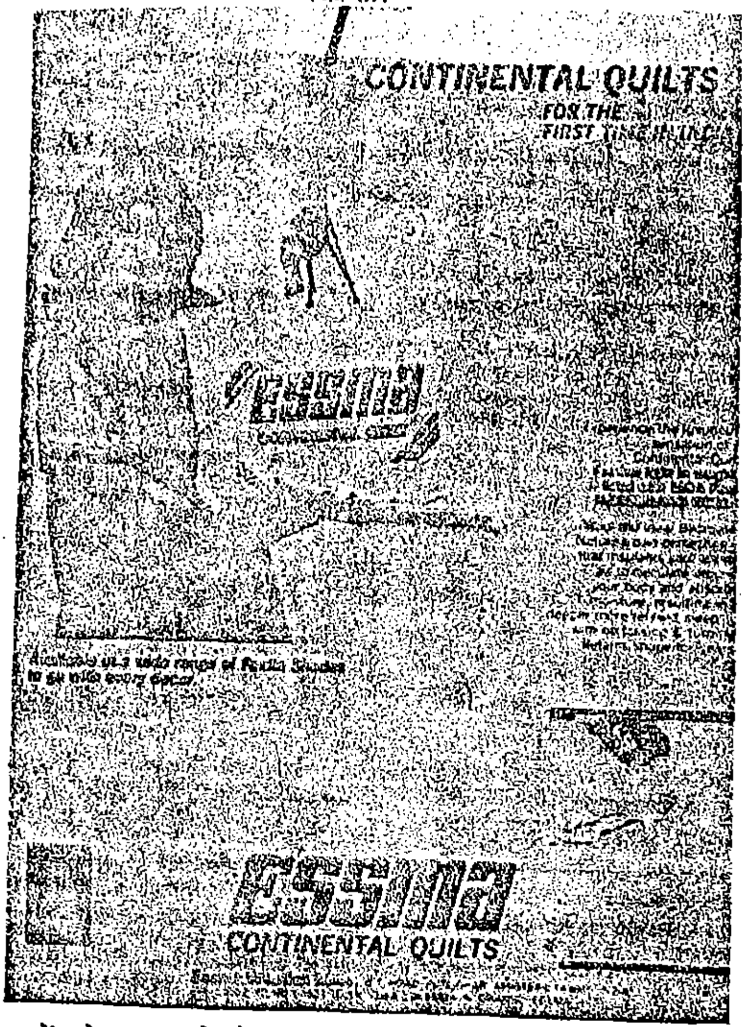

2 **संभाव्य ग्राहकों को क्रय करने के लिए लुभाना (Inducing potential customers to buy) :** विज्ञापन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है वस्तु को क्रय करने के लिए संभाव्य ग्राहकों को लुभाना। विज्ञापन श्रेष्ठ साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा विद्यमान उत्पाद की बिक्री में वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए विज्ञापनदाता को उत्पाद की उपयोमिता, किस्म, मूल्य लाभ आदि पर ज़ोर देना चाहिए, जिससे संभाव्य ग्राहकों को आकर्षित करके उन्हें पक्का ग्राहक बनाया जा सके। यदि उत्पाद का इस प्रकार विज्ञापन किया जाता है तो व्यापारी विक्रय में वृद्धि की आशा करते हैं और अपने पास बड़ी मात्रा में स्टॉक रखते हैं; अस्तु, विज्ञापन ग्राहकों और व्यापारियों के बीच अपना प्रभाव तुरंत दिखा देता है।

3 **ग्राहकों को याद दिलाना (Reminding users) :** प्रतियोगी बाजार में विभिन्न फर्में अपने नवीन उत्पादों को बाजार में प्राय: लाती रहती हैं। ये सभी बाजार में विज्ञापित किए जाते हैं। फलस्वरूप, उपभोक्ताओं द्वारा पुराने उत्पादों को भुला दिया जाता है। इस संभावना को दूर करने के लिए निर्माता ग्राहकों की रुचि बनाए रखने के लिए निरंतर विज्ञापन देते रहते हैं। अस्तु, विज्ञापन इस प्रकार किए जाते हैं कि ये विद्यमान ग्राहकों को उत्पाद की याद दिलाते रहें।

4 **ब्रांड की छवि स्थापित करना (To create brand image) :** व्यावसायिक फर्में उत्पाद की प्रतिमा बाजार में स्थापित करने के लिए प्राय: विज्ञापन देती हैं और ग्राहकों की रुचि उस उत्पाद के प्रति बनाए रखने में सफल होती हैं। ऐसा करने से उनके पुराने ग्राहक नए उत्पादों की ओर आकृष्ट नहीं होते हैं। विज्ञापन का यह उद्देश्य प्रसिद्ध निर्माताओं के उत्पादों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

चित्र 8.5 में "थम्स अप" पेय के विज्ञापन को देखिए। शीर्ष पर लिखा वाक्य है, 'बहुत से प्रसिद्ध खिलाड़ी इस पेय में रुचि रखते हैं' तथा विज्ञापन में दो खिलाड़ियों को पेय का आनन्द लेते हुए भी दिखाया है। इसका मुख्य उद्देश्य है पेय की छवि स्थापित करना कि थम्स अप स्फूर्तिदायक पेय है जो महान खिलाड़ियों द्वारा भी स्वीकारा जा चुका है। "थम्स अप" का ब्रांड नाम दो खिलाड़ियों के संयोजन द्वारा जनता के मानस पटल पर छापा जा रहा है।

चित्र 8.5
ब्रांड की छवि स्थापित करने के लिए विज्ञापन

5 **उत्पाद के नवीन प्रयोगों की सूचना ग्राहकों को देना (To intimate customers about new uses of products) :** कभी-कभी विज्ञापन का प्रयोग, विद्यमान वस्तु के नवीन प्रयोगों की जानकारी ग्राहकों को देने के लिए किया जाता है अथवा उत्पाद के कुछ नवीन गुणों की ओर उन्हें आकृष्ट करने के लिए किया जाता है। इस दशा में, विज्ञापन का मूल उद्देश्य उसी प्रकार के उत्पादों से अपने उत्पाद की तुलना कर उसकी श्रेष्ठता का संदेश ग्राहकों को देना होता है।

6 **ब्रांड की विशिष्टता (गुण) उजागर करना (To highlight brand character) :** कुछ उत्पादों के विषय में ग्राहकों के मन में किसी विशेष गुण के होने की चाह रहती है। इसी गुण के आधार पर बहुत से ब्रांडों में से किसी विशेष ब्रांड को ही चुनने का वे निर्णय लेते हैं। यदि उत्पाद में वह गुण विद्यमान होता है तो विज्ञापन द्वारा उस गुण की विशिष्टता पर जोर दिया जाता है तथा उसके लाभों को प्रदर्शित किया जाता है। इसी प्रकार, यदि उत्पाद में कोई विशिष्ट गुण है जिसको उपभोक्ता के लिए वांछनीय लाभ से जोड़ा जा सकता है, तो इस गुण को उभारने के लिए विज्ञापन का प्रयोग किया जाता है।

चित्र 8.6 में प्रस्तुत विज्ञापन को देखिए। इसमें बताया गया है कि 'गोदरेज फ्रिज' किस प्रकार अन्य फ्रिजों से बेहतर है।

7 **विक्रेताओं को सहयोग देना (Dealer support) :** कभी-कभी विज्ञापन का उद्देश्य विक्रेताओं तथा वितरकों को सहयोग देना होता है। अस्तु, समाचार-पत्रों में बहुत से विज्ञापन देखने को मिलते हैं जिनमें विक्रेताओं तथा वितरकों की सूची भी उत्पाद के गुणों के साथ-साथ दी हुई होती है।

चित्र 8.7 को देखिए। इस विज्ञापन में उत्पाद के कुछ विवरणों के साथ-साथ नीचे की ओर वितरकों की सूची भी दी हुई है।

चित्र 8.6

ब्रांड गुण को उजागर करने के लिए दिया जाने वाला विज्ञापन

नया गोदरेज 165 लिटर रेफ्रीजरेटर

चित्र 8.7

[illegible] विज्ञापन

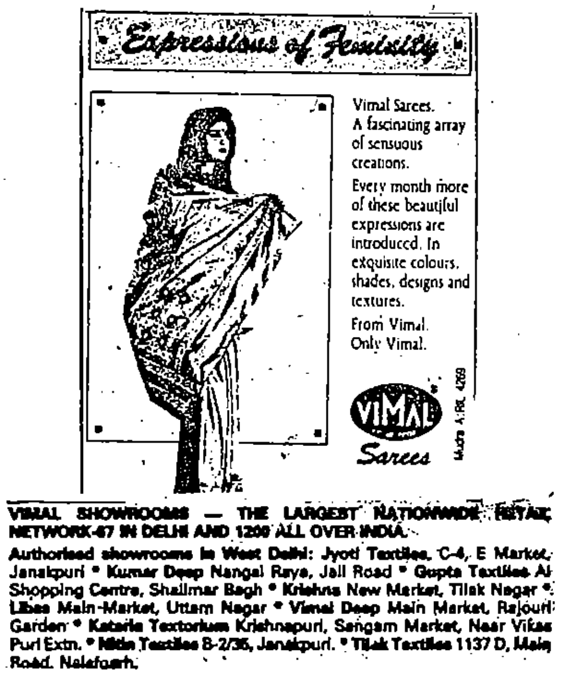

8 **फुटकर व्यापार में हाथ बँटाना (Trafficking the retail trade) :** कुछ विशेष अवसरों पर फुटकर बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से विज्ञापन दिया जाता है जो गैर मौसम छूट, विशेष पर्वों और त्योहारों पर विशेष छूट, उपहार योजनाएँ, निकासी विक्रय (Clearing sale) आदि के रूप में होता है। इस प्रकार के विज्ञापनों का उद्देश्य विशेष छूट की ओर ग्राहकों को आकर्षित करना होता है।

चित्र 8.8 में प्रस्तुत विज्ञापन का सावधानी से अध्ययन कीजिए। इसमें उत्पाद के प्रकारों के बारे में सूचना देने के साथ-साथ "कोप्टैक्स तमिलनाडु हैंडलूम्स" द्वारा पर्व पर 20-40 प्रतिशत विशेष छूट की भी सूचना दी गई है।

9 **विविध (Miscellaneous) :** कुछ दशाओं में विज्ञापन का उद्देश्य दूरदराज़ के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को, जहाँ विक्रेता नहीं पहुँच पाते, सूचित करना होता है। इसी प्रकार दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले उपभोक्ताओं को अथवा विदेशों में रहने वालों को नए उत्पादों से परिचित कराना भी विज्ञापन का उद्देश्य होता है।

चित्र 8.8
फुटकर व्यापार में हाथ बँटाने वाला विज्ञापन

8.5 समाज में विज्ञापन की भूमिका

पिछले पृष्ठों में आपने विज्ञान के उद्देश्यों तथा किसी फर्म के लिए इसकी उपयोगिता के बारे में पढ़ा। सामाजिक दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास पर विज्ञापन का रचनात्मक प्रभाव पड़ता है। परंतु यह विचारधारा सभी को स्वीकार्य नहीं है। समाज के लिए विज्ञापन के प्रयोग के पक्ष

तथा विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से सर्वप्रथम हम विज्ञापन के विपक्ष में दिए जाने वाले तर्कों पर विचार कर रहे हैं।

8.5.1 विज्ञापन के विरोध में तर्क

1 **विज्ञापन कीमतों में वृद्धि करता है :** बहुतों का मत है कि विज्ञापन माल की कीमतों में वृद्धि करता है। विज्ञापन करने में भारी व्यय होता है। यदि इस व्यय को रोका जाए तो माल की लागत में कमी आएगी और उपभोक्ता उत्पाद को सस्ते मूल्य पर प्राप्त कर सकेंगे। यदि विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय उत्पाद की किस्म सुधारने में लगाया जाए तो उपभोक्ता उसी कीमत पर अच्छे किस्म का माल प्राप्त कर सकेंगे।

2 **विज्ञापन से एकाधिकार (monopoly) का जन्म होता है :** यह प्रसिद्ध है कि बड़ी व्यापारिक फर्म विज्ञापन के माध्यम द्वारा अपने ब्रांड की प्रतिमा निर्मित कर लेती है। उपभोक्ता भी ब्रांड के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। तब नये उत्पादों का बाज़ार में ठहरना कठिन हो जाता है। दूसरे शब्दों में, विद्यमान बड़े उत्पादक विज्ञापन का सहारा लेकर नए प्रतियोगियों को बाज़ार में आने से रोकते हैं। अस्तु, विज्ञापन बाज़ार में प्रवेश पर रोक लगाता है और परिणामस्वरूप एकाधिकार को जन्म देता है। फिर, विज्ञापन में वृद्धि करने से बिक्री में भी वृद्धि होती है। इस कारण, पुरानी फर्म विज्ञापन पर अपना व्यय बढ़ाती जाती है और अपनी बिक्री में वृद्धि करती हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें मोटा मुनाफा होता है जो उन्हें विज्ञापन पर और अधिक व्यय करने की सामर्थ्य प्रदान करना है। अस्तु, उनके प्रतियोगियों को, जिनके पास वित्तीय साधन अधिक नहीं होते, इन पुरानी फर्मों के सामने प्रतियोगिता में ठहरना कठिन हो जाता है।

3 **विज्ञापन से साधनों का अकुशल बँटवारा होता है :** विज्ञापन उपभोक्ताओं को ही लाभ पहुँचाने के लिए नहीं दिए जाते हैं। वे प्रमुख रूप से जो भी उत्पादित किया गया, उसके लिए उपभोक्ताओं की माँग को प्रभावित करने के उद्देश्य से किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, विज्ञापन लोगों की रुचि को बदलने के लिए किए जाते हैं, जिससे जो भी निर्मित माल हो, उसे वे खरीद लें। इससे उपभोक्ताओं के व्यय में विकार उत्पन्न होता है और उत्पादकों की बाज़ार शक्ति बढ़ती है। अस्तु, व्यक्तियों को क्या खरीदना चाहिए यह विज्ञापन परोक्ष रूप में निर्धारित करता है। इस प्रक्रिया में, उत्पादन के साधनों अर्थात् भूमि, श्रम और पूँजी का प्रयोग समाज के श्रेष्ठ हित में नहीं हो पाता।

4 **विज्ञापन अवांछनीय सामाजिक प्रभावों को जन्म देता है :** कुछ और भी आलोचनाएँ विज्ञापन के सामाजिक प्रभावों तथा सांस्कृतिक दोषों के बारे में की जाती हैं।

क) आपत्तिजनक अनुरोध जैसे सेक्स, भय आदि का प्रयोग ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन में किया जाता है।

ख) ग्राहकों से सैकड़ों व हजारों उत्पाद खरीदने के अनुरोध किए जाते हैं। वे इन सभी उत्पादों को खरीदने और उनका आनन्द लेने में समर्थ नहीं होते। इससे बहुत सी दशाओं में उन्हें कुण्ठा और निराशा हाथ लगती है।

ग) विज्ञापन का प्रयोग आपत्तिजनक व हानिकारक वस्तुओं, जैसे सिगरेट, शराब आदि की बिक्री बढ़ाने के लिए किया जाता है।

घ) यह समाज में लोगों के रहन-सहन व मूल्यों में भी बदलाव लाता है। प्रायः ग्राहकों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उत्पादों का संवर्द्धन करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। अस्तु, विज्ञापन पर समाज में भौतिक मूल्यों को बढ़ावा देने का आरोप लगाया जाता है।

ङ) समय-समय पर समाज के कुछ वर्गों के लिए विज्ञापन कुछ हानिकारक तत्त्वों का चित्रण करता है जिससे विभिन्न वर्गों में तनाव उत्पन्न होता है।

5 **विज्ञापन प्रेस की स्वतंत्रता के विरुद्ध भी कार्य कर सकता है :** समाचारपत्रों को विज्ञापन से भारी आय होती है। यदि कुछ बड़ी व्यावसायिक फर्मों द्वारा दिए जाने वाले विज्ञापनों की आय पर ही समाचार-पत्रों के माध्यम को निर्भर रहना हो तो इन बड़ी फर्मों के प्रतिकूल जाने वाली

जनहित की सूचनाओं को प्रकाशित करना कठिन हो जायेगा। बड़ी फर्में इन माध्यमों को विज्ञापन न देने का डर दिखाकर, इनको अपने इशारों पर चलाती हैं। इस प्रकार माध्यम की वित्तीय निर्भरता समाचार-पत्रों की स्वाधीनता के विरुद्ध कार्य कर सकती है।

6 **विज्ञापन अनावश्यक प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करता है :** सूचना देने वाले विज्ञापन तथा प्रतियोगी विज्ञापन में अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है। सूचना देने वाले विज्ञापन वे हैं जो किसी उत्पाद अथवा सेवा के विषय में ग्राहकों को उपयोगी सूचना प्रदान करते हैं। इस प्रकार विज्ञापन वांछनीय माने गए हैं, जबकि प्रतियोगी विज्ञापन प्रमुख रूप से माँग को एक ब्रांड से हटाकर दूसरे ब्रांड तक पहुँचाते हैं। इस स्थिति में विज्ञापन कोई अतिरिक्त माँग उत्पन्न नहीं कर पाता। अत: इस प्रकार का विज्ञापन अवांछनीय होता है। कुछ दशाओं में विज्ञापन दिए गए माल के गुण परीक्षण के समय पता चलता है कि माल वैसा नहीं है जैसा कि विज्ञापन में दावा किया गया था। इस प्रकार के भ्रामक विज्ञापन और भी अधिक अवांछनीय होते हैं।

8.5.2 विज्ञापन के पक्ष में तर्क

अभी हम जान चुके हैं कि विज्ञापन समाज के लिए सदैव लाभदायक नहीं होते। किंतु ये कुछ लाभ भी प्रदान करते हैं। विज्ञापन के पक्ष में दिए गए तर्क इस प्रकार हैं :

1. **विज्ञापन माल की लागत में कटौती करता है :** कुछ व्यक्तियों का मत है कि विज्ञापन से उत्पाद की लागत में कटौती होती है। विज्ञापन के माध्यम से जब ग्राहकों को किसी उत्पाद के बारे में सूचना प्राप्त होती है तो उस उत्पाद की माँग में वृद्धि होती है और फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन में वृद्धि से बड़ी मात्रा के उत्पादन की बचतों का लाभ मिलता है। इन बचतों का लाभ विज्ञापन की लागत के दुष्प्रभाव को दूर कर देता है। अत: विज्ञापन के कारण उत्पादन की लागत में वृद्धि होना जरूरी नहीं है। इसके अतिरिक्त विज्ञापन की लागत व्यावसायिक संदेश वाहनों के अन्य माध्यमों जैसे व्यक्तिगत विक्री (personal selling) की तुलना में बहुत कम होती है। विज्ञापन के न होने पर व्यावसायिक फर्मों को अधिक खर्चीले साधन अपनाने पड़ेंगे।

2 **विज्ञापन एकाधिकार को जन्म देता है, यह आवश्यक नहीं है :** विज्ञापन के परिणामस्वरूप एकाधिकारी उत्पन्न होता है, यह कथन सदैव सच नहीं होता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि विज्ञापन के क्षेत्र में पहले पहल करने वाला ही उपभोक्ताओं का हृदय जीत लेता हो और बाद के विज्ञापनकर्ताओं को हानि उठानी पड़ती है। यह विश्वास करने के लिए भी साक्ष्य नहीं हैं कि अधिक विज्ञापन से अधिक बिक्री होती है। साबुन और सिगरेट के निर्माता अपना ब्रांड जल्दी-जल्दी बदलते हैं तथा नए ब्राण्डों को विज्ञापित करते हैं, यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है कि उपभोक्ता कुछ नवीनता चाहते हैं। यदि नवीन विज्ञापनदाता के पास अच्छी किस्म का माल है तो उपभोक्ता उसके माल को स्वीकारेंगे, इसकी बहुत कुछ आशा रहती है। नवीन विज्ञापनदाताओं द्वारा बाजार में पहले से अपना पैर जमाए हुए नेताओं को प्रतियोगिता में पीछे छोड़ने के पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं।

3 **विज्ञापन माँग के अनुसार साधनों का बँटवारा कराता है :** माल की माँग उत्पन्न करने से विज्ञापन साधनों के बँटवारे को प्रभावित करता है। यह व्यक्तियों को बाज़ार में माल की उपलब्धि के बारे में बताता है। इस सूचना के आधार पर उपभोक्ता उन उत्पादों को पंसद कर क्रय करते हैं जो उनकी आवश्यकताओं को अधिक प्रभावी ढंग से पूर्ण कर सकें। अस्तु, उस माल की जो उपभोक्ताओं की माँग को अधिक अच्छी प्रकार पूरा करता हो अधिक माँग रहती है और उत्पादक अपने साधनों को उसी प्रकार विभक्त करते हैं। अस्तु, विज्ञापन माँग के अनुसार साधनों का बँटवारा कराते हैं तथा आर्थिक विकास में सहयोग देते हैं।

4 **विज्ञापन तथा सामाजिक मूल्य :** यह भी कहा जाता है कि सामाजिक मूल्य तथा रीति-रिवाज व्यक्तिपरक अथवा स्वानुभूतिमूलक होते हैं। जो एक व्यक्ति के लिए आपत्तिजनक है वह दूसरे के लिए न हो, यह संभव है। इसी प्रकार एक समय पर जो अच्छा है वही दूसरे समय पर अच्छा नहीं माना जाता। यह भी स्वीकारा जा चुका है कि कुछ बेईमान व्यवसायी विज्ञापन का दुरुपयोग करते

हैं। किन्तु इस दुरुपयोग के लिए विज्ञापन को दोषी नहीं ठहराना चाहिए। विज्ञापन का यह दुरुपयोग कानून द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

5 **विज्ञापन समाचार-पत्रों जैसे जन माध्यम की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करता है :** जनसम्पर्क माध्यम जैसे समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं आदि को उनकी आय का बड़ा भाग विज्ञापन से प्राप्त होता है, जो उन्हें वित्तीय दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बनाता है। इस प्रकार समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं के प्रकाशक उन्हें काफी कम मूल्य पर बेच पाते हैं। विज्ञापन के न होने पर ये पत्र-पत्रिकाएँ ऊँचे मूल्य पर ही बेची जा सकेंगी। विज्ञापन छापने से प्राप्त आय माध्यम को आत्मनिर्भर बना देती है। इस वित्तीय स्वायत्तता के कारण ये माध्यम जन-हित के समाचारों को मुक्त रूप से तथा निर्भर होकर छाप सकते हैं। अस्तु, विज्ञापन प्रेस की स्वतंत्रता में वृद्धि करता है, यह कहा जा सकता है।

6 **विज्ञापन उपयोगी सूचना प्रदान करता है :** विज्ञापन द्वारा उपभोक्ताओं को उत्पाद, कीमत, किस्म, बिक्री की शर्तों, सेवाओं आदि के विषय में उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह सूचना प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत है, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो दूरस्थ स्थानों पर रहते और विक्रेताओं के संपर्क में नहीं आ पाते। अस्तु, विज्ञापन सूचना देने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो उपभोक्ता के लिए उपयोगी होती है।

7 **विज्ञापन रोज़गार को जन्म देता है :** विज्ञापन के पक्ष में एक और तर्क है कि यह रोज़गार उत्पन्न करता है। बड़ी संख्या में कलाकार, डिजाइनर, मॉडल, तकनीशियन आदि विज्ञापन ऐजेंसियों तथा जन-माध्यम में काम करते हैं और अपनी रोज़ी-रोटी कमाते हैं।

8.6 प्रभावी विज्ञापन के अनिवार्य तत्त्व

जैसा कि आप जानते हैं विज्ञापन का अंतिम उद्देश्य ग्राहकों को लुभाना और उन्हें माल अथवा सेवाएँ खरीदने के लिए प्रभावित करना होता है। प्रभावी होने के लिए, विज्ञापन के पास सही प्रकार का संदेश तथा संप्रेषण के लिए सही प्रकार का माध्यम होना ज़रूरी है जिससे वह सही व्यक्तियों तक, सही समय पर न्यूनतम लागत पर पहुँच सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, विज्ञापन उचित ढंग से नियोजित व डिज़ाइन किया जाना चाहिए। अन्यथा, यह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहेगा और इस पर किया गया व्यय बेकार जाएगा।

प्रभावी विज्ञापन को डिज़ाइन (रूपरेखा बनाना) करना चुनौती का काम होता है। इसके लिए कोई निश्चित सूत्र (फार्मूला) नहीं है। किंतु कुछ मार्गदर्शक बातों को विज्ञापन का डिज़ाइन करते समय ध्यान में रखना चाहिए। श्रेष्ठ विज्ञापन के आवश्यक गुणों को मोटे रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है —

1 संदेश (message) से संबंधित गुण,

2 उपभोक्ता तक पहुँच (consumer reach) से संबंधित गुण।

आइए, इन गुणों की विस्तार से चर्चा की जाए।

8.6.1 संदेश से संबंधित गुण

उत्पाद के बारे में क्या कहा जा रहा है, से ही नहीं वरन् कैसे कहा जा रहा है, से विज्ञापन प्रभावी होता है। संदेश ऐसा होना चाहिए कि वह लक्षित व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करके उनमें रुचि पैदा कर दे। अतः संदेश को डिज़ाइन करते समय, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1 **वांछनीयता (Desirability) :** संदेश, उत्पाद के विषय में कुछ वांछनीय एवं रोचकता लिए हुए होना चाहिए। अन्यथा, विज्ञापन ग्राहकों को नहीं लुभा पायेगा और वे उत्पाद नहीं खरीदेंगे।

2 **विशिष्टता (Exclusiveness) :** यह आवश्यक होता है कि ग्राहक यह समझ सकें कि विज्ञापित पदार्थ अन्य से किस प्रकार श्रेष्ठ है। अतः विज्ञापन संदेश द्वारा उत्पाद की विशेषताओं का वर्णन

होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संदेश में अनन्य अथवा उत्पाद के विषय में विशेष बातों का, जो अन्य पदार्थों अथवा पदार्थ श्रेणियों में नहीं मिलती, जिक्र होना चाहिए। तभी लोगों को यह पता चल पाएगा कि कैसे और क्यों यह विज्ञापित पदार्थ अन्य पदार्थों से श्रेष्ठ है।

3 **विश्वसनीयता (Credibility) :** संदेश में जो कुछ भी कहा जा रहा है वह विश्वसनीय होना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि संदेश किसी उत्पाद की मनगढ़ंत विशेषताओं का उल्लेख करता है, तब ग्राहक विज्ञापन को गंभीरता से नहीं लेंगे। संदेश वास्तव में उत्पाद के गुणों के अनुरूप होना चाहिए, जिससे ग्राहक उनका परीक्षण कर उन्हें स्वीकार कर सकें। अत: संदेश विश्वास करने तथा परीक्षण योग्य होना चाहिए।

4 **आकर्षक (Attractive) :** यदि संदेश आकर्षक होगा तो वह सरलता से ग्राहकों का ध्यान आकर्षित कर लेगा। यदि संदेश आकर्षक नहीं है तो यह लोगों के मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाएगा। अत: ऐसे शब्द अथवा चित्र जो ग्राहकों का ध्यान आकर्षित कर सकें, विज्ञापन में प्रयोग किए जाने चाहिए।

5 **स्मरणीय तथा पुन: याद करने में सरल (Memorable and easy to recall) :** संदेश सरल होना चाहिए जिससे उसे याद करने में कठिनाई न हो। जब कभी ग्राहक वस्तु खरीदने के लिए जाएँ तो विज्ञापित संदेश उनके सामने आ जाए और उत्पाद के बारे में उनकी याद तरोताज़ा हो जाए। अत:, संदेश में प्रयोग किए जाने वाले शब्द सरल होने चाहिए जिससे उन्हें बार-बार याद रखने में कठिनाई न हो।

8.6.2 उपभोक्ता तक पहुँच से संबंधित गुण

संदेश के अपने गुणों के अलावा, विज्ञापन का प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि यह संदेश लक्षित ग्राहकों तक कहाँ तक पहुंच पाता है। इस कार्य के लिए, विज्ञापन डिज़ाइन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1 **उपयुक्तता (Appropriateness) :** विज्ञापन संदेश ऐसे माध्यम द्वारा दिया जाना चाहिए जो लक्षित ग्राहक की पहुँच के भीतर हो। उदाहरण के लिए, यदि लक्षित ग्राहकों में अधिकांश के पास टेलीविजन सेट नहीं है तो टेलीविजन पर दिया जाने वाला विज्ञापन संदेश उन तक नहीं पहुँच पाएगा। इसी प्रकार यदि अधिकांश ग्राहक अनपढ़ हैं तो समाचार-पत्रों में दिया गया विज्ञापन उन तक नहीं पहुँच सकेगा। अत: उपयुक्त माध्यम का प्रयोग विज्ञापन को प्रभावी बनाने में अत्यधिक महत्त्व रखता है।

2 **बारंबारता (Frequency) :** एक निर्धारित समय में कोई विज्ञापन संदेश कितनी बार दुहराया जाता है, यह बारंबारता कहलाती है। इससे दो विज्ञापन संदशों के बीच रखे गए समय का भी बोध होता है। दूसरे शब्दों में, कितनी बार और कितनी देर के बाद विज्ञापन संदेश दोहराया जा रहा है, ही बारंबारता का अर्थ है। दोहराने का मुख्य उद्देश्य ग्राहकों के मस्तिष्क में संदेश की याद को बनाए रखना होता है। यदि बारंबारता अधिक होती है, तो ग्राहक चिढ़ कर संदेश की ओर ध्यान देना बंद कर देते हैं। अत: बारंबारता अनुकूलतम होनी चाहिए।

3 **समय (Timing) :** विज्ञापन संदेश देने का विशिष्ट समय भी विज्ञापन के समान ही महत्त्व वाला कारक है। उदाहरण के लिए, यदि विज्ञापन टी.वी. पर ऐसे समय प्रदर्शित किया जा रहा है जबकि बहुत से ग्राहक टी.वी. बंद किए बैठे हों, तो संदेश का प्रभाव उस तुलना में कम होगा जब अधिकांश ग्राहक टी.वी. प्रोग्राम देख रहे हों। अत: विज्ञापन का समय ऐसा होना चाहिए कि वह अधिकांश ग्राहकों तक संदेश पहुँच सके।

बोध प्रश्न घ

1 व्यावसायिक फर्मों द्वारा विज्ञापन जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है उनकी सूची प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....

2 सूचनात्मक विज्ञापन तथा प्रतियोगात्मक विज्ञापन के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

3 प्रभावी विज्ञापन के गुण बताइए।

....

....

....

4 बताइए कि निम्नलिखित कथनों में कौन से सत्य हैं और कौन से असत्य।

i) विज्ञापन समाज के लिए कतई उपयोगी नहीं है।

ii) विज्ञापन रोज़गार उत्पन्न करता है।

iii) विज्ञापन सदैव एकाधिकार को प्रोत्साहित करता है।

iv) ग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए विज्ञापन का मोहक होना आवश्यक नहीं है।

v) कुछ विज्ञापनों का अवांछनीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव होता है।

vi) समाचार-पत्रों के माध्यम से विज्ञापन तभी उचित होता है जब कि अधिकांश संभाव्य ग्राहक अनपढ़ हों।

8.7 सारांश

किसी पहचाने जा सकने वाले विज्ञापनकर्ता द्वारा अपने विचारों, वस्तुओं अथवा सेवाओं को अव्यक्तिगत रूप से शुल्क देकर व्यक्त करना विज्ञापन कहलाता है। किसी कम्पनी अथवा उसके उत्पाद के लिए व्यापारिक महत्त्व वाली सूचना का गैर प्रायोजक समाचार प्रचार कहलाता है। प्रचार अव्यक्तिगत माध्यम द्वारा जनता के बीच किया जाता है और इसके लिए कंपनी से शुल्क नहीं लिया जाता।

विज्ञापन, प्रचार से भिन्न होता है, यद्यपि दोनों ही अव्यक्तिगत माध्यम का प्रयोग करते हैं। विज्ञापन का प्रायोजन किसी कंपनी के द्वारा किया जाता है और माध्यम को संदेश का प्रसार करने के लिए शुल्क दिया जाता है। दूसरी ओर, प्रचार का प्रायोजन किसी कंपनी द्वारा नहीं किया जाता तथा माध्यम को कोई शुल्क भी नहीं दिया जाता।

व्यावसायिक फर्में विज्ञापन का प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्यों में से किसी एक अथवा अधिक के लिए करती हैं (1) नवीन उत्पादों को प्रस्तुत करने के लिए, (2) संभाव्य ग्राहकों को लुभाने के लिए, (3) प्रयोगकर्ताओं को याद दिलाने के लिए, (4) ब्रांड की छवि स्थापित करने के लिए, (5) किसी उत्पाद के नवीन प्रयोगों के बारे में ग्राहकों को सूचित करने के लिए, (6) ब्रांड गुण की विशिष्टता उजागर करने के लिए, (7) व्यापारी को समर्थन प्रदान करने के लिए, (8) फुटकर व्यापार में भाग लेने के लिए तथा, (9) अन्य उद्देश्य जैसे दूरस्थ क्षेत्रों के ग्राहकों को सूचना देने के लिए जब वे विक्रेताओं की पहुँच के बाहर

होते हैं। यद्यपि विज्ञापन बहुत से उपयोगी उद्देश्यों को पूरा करता है तथा फर्मों को लाभ पहुँचाता है तथापि सामाजिक दृष्टिकोण से इसके धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ? के प्रभाव होते हैं। विज्ञापन अनावश्यक रूप से माल की कीमतों में वृद्धि करता है, विशेष रू .तियोगी विज्ञापन पर व्यय किया जाता है, जिसका उद्देश्य ग्राहकों का ध्यान अन्य उत्पादों की ओर से हटाना मात्र ही होता है और ऐसा करने से ग्राहकों को कोई वास्तविक लाभ नहीं पहुँच पाता। बड़ी व्यावसायिक फर्में विज्ञापन के माध्यम से ब्रांड छवि स्थापित करती हैं और इस प्रकार नवीन प्रतियोगियों को बाज़ार में आने से रोकती हैं। इससे एकाधिकार उत्पन्न हो सकता है। यदि, नवीन प्रतियोगी श्रेष्ठ उत्पाद लाते हैं तो वे बाजार में पहले से जमे हुए नेताओं के सामने प्रतियोगिता में खड़े रह पाते हैं। विज्ञापन परोक्ष रूप में यह निर्धारित करता है कि लोगों को किस वस्तु का उपभोग करना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य उत्पादित वस्तु को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ताओं की माँग को प्रभावित करना होता है। प्राय: लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर विज्ञापन के हानिकारक प्रभाव भी होते हैं।

व्यावसायिक फर्मों द्वारा प्रायोजित विज्ञापनों के द्वारा समाज को विभिन्न रूपों में लाभ पहुँचता है। माल की माँग के आधार पर विज्ञापन साधनों का बँटवारा करता है तथा आर्थिक विकास में सहयोग देता है। यह उपभोक्ताओं को उपयोगी सूचनाएँ प्रदान करता है, रोज़गार बढ़ाता है तथा जन-माध्यम को स्वतंत्र रूप से निर्भय होकर जन-हित के समाचार-संदेश छापने में सहयोग देता है। प्रभावी होने के लिए, विज्ञापन को उचित प्रकार के संदेश, उचित माध्यम द्वारा संप्रेषित करना चाहिए जिससे ये उपयुक्त व्यक्तियों के पास, उचित समय पर संभावित न्यूनतम लागत से पहुँच सकें। विज्ञापित उत्पाद के विषय में कुछ विशिष्ट तथा वांछनीय संप्रेषण संदेश के द्वारा किया जाना चाहिए। यह संदेश विश्वसनीय, आकर्षक, याद रखने में सरल तथा सरलता से पुन: याद किया जाने वाला होना चाहिए। यह उपयुक्त माध्यम द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए तथा इसकी पुनरावृत्ति उतनी बार की जानी चाहिए जितनी बार करने से संदेश जीवित रह सके। विज्ञापन का समय इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि यह अधिकांश लक्षित ग्राहकों तक पहुँच सके।

8.8 शब्दावली

विज्ञापन (Advertising) : विचारों, वस्तुओं अथवा सेवाओं को, पहचाने जा सकने वाले विज्ञापनकर्ता द्वारा शुल्क देकर अव्यक्तिगत रूप से प्रेषित करने का कोई भी रूप।

प्रचार (Publicity) : किसी कंपनी अथवा उसके उत्पाद के बारे में व्यापारिक रूप से महत्त्वपूर्ण सूचना का गैर व्यक्तिगत माध्यम द्वारा प्रस्तुतीकरण जिसके लिए कंपनी से कोई शुल्क नहीं लिया जाता।

ब्रांड निष्ठा (Brand Loyalty) : क्रय करते समय माल के किसी विशिष्ट ब्रांड के लिए ही झुकाव।

ब्रांड छवि (Brand Image) : उत्पाद से जुड़े हुए किसी विशिष्ट ब्रांड नाम के प्रति अनुकूल राय।

जन-माध्यम (Mass Media) : बड़ी संख्या में लोगों तक संदेश संप्रेषित करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले संप्रेषण के माध्यम।

8.9 कुछ उपयोग पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत* (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 4 खंड पाँच

बी.पी. सिंह एव टी.एन. छाबड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय* (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 15 खंड चार

जी.एल. जोशी, जी.एल.शर्मा एवं एस.सी. जोशी, *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 13

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क उत्पाद : 'टेलीविस्टा' टेलीविजन
माध्यम : समाचार-पत्र

संदेश : नेतृत्व बहुत से रूपों में आता है।
नेतृत्व-गुण तथा श्रेष्ठता के प्रति निरंतर प्रयास का परिणाम, नेता द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य में दृष्टिगत होता है। टेलीविस्टा टेलीविजन सेटों में प्रमुख नाम है, जो तकनीक निष्पादन तथा वर्ग में श्रेष्ठ है। यह प्रथम आने वाले टेलीविजनों में से एक है और अभी भी सर्वश्रेष्ठ बना हुआ है।

प्रयोजक : टेलीविस्टा टी.वी. के निर्माता तथा इसके एजेंट।

ख समीक्षक के अनुसार 'आइना' फिल्म फार्मूलों के आधार पर सुनिर्मित फिल्म है। यह भी कहा गया है कि संवाद सुन्दर हैं, नौशाद द्वारा दिया गया संगीत बढ़िया है तथा मुमताज द्वारा अदा की गई नायिका की भूमिका बड़ी मार्मिक है। कुल मिलाकर इस समीक्षा का पाठक पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

ग 1 **समानता :** इन दोनों ही दशाओं में लक्षित व्यक्तियों से आमने-सामने का संप्रेक्षण नहीं हो पाता। दोनों ही अव्यक्तिगत जन-माध्यम, जैसे, रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र पत्रिका आदि, द्वारा प्रेषित किए जाते हैं।

अंतर : विज्ञापन में पहचान वाला प्रायोजक होता है जबकि प्रचार में पहचाना जा सकने वाला प्रयोजक नहीं होता।

विज्ञापन की दशा में कंपनी माध्यम को शुल्क देती है। प्रचार की दशा में कंपनी माध्यम को कोई शुल्क नहीं देती।

विज्ञापन संदेश प्रमुखतः कंपनी अथवा उसके उत्पाद के लिए अनुकूल प्रभाव बनाते हैं। प्रचार कंपनी अथवा उसके उत्पाद के लिए अनुकूल अथवा प्रतिकूल दोनों ही प्रकार का प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

2 i) विक्रय प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत जो एक व्यक्तिगत संप्रेषण माध्यम है। अतः न तो यह विज्ञापन है और न ही प्रचार।

ii) व्यक्ति के द्वारा यह प्रस्तुति जन-माध्यम में सम्मिलित नहीं है। अतः यह न तो विज्ञापन है और न ही प्रचार।

iii) समाचार-पत्र, जो एक अव्यक्तिगत माध्यम है, ने सूचना ऐच्छिक रूप से प्रस्तुत की है। कंपनी ने समाचार-पत्र को कोई शुल्क नहीं दिया है। यह प्रचार के अंतर्गत आता है (प्रतिकूल प्रचार)।

3 मद 1 विज्ञापन है। यह इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय (रजिस्ट्रार) द्वारा आवासीय स्थान के लिए टेंडर मंगाने के लिए प्रस्तुत किया गया है।
मद 2 प्रचार है। यह स्टाफ रिपोर्टर द्वारा लिखा गया है तथा पाठकों के सूचनार्थ समाचार-पत्र द्वारा ऐच्छिक रूप से प्रकाशित किया गया है।

घ 4 i) असत्य ii) सत्य iii) असत्य iv) असत्य v) सत्य vi) असत्य

8.11 स्वपरख प्रश्न

1 विज्ञापन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? विज्ञापन किन उद्देश्यों को पूरा करता है?
2 उपभोक्ता के दृष्टिकोण से विज्ञापन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये?
3 किन दशाओं में विज्ञापन समाज के लिए हानिकारक होते हैं?
4 श्रेष्ठ विज्ञापन के क्या लक्षण होते हैं? एक प्रभावी विज्ञापन का डिज़ाइन करने के लिए कुछ सुझाव दीजिए।
5 'विज्ञापन बर्बादी है'। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए?

नोट : ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

इकाई 9 विज्ञापन के माध्यम

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 माध्यम का अर्थ एवं महत्त्व
9.3 माध्यमों के प्रकार तथा उनकी विशेषताएँ
 9.3.1 प्रेस माध्यम
 9.3.2 रेडियो
 9.3.3 टेलीविजन
 9.3.4 बाह्य माध्यम
 9.3.5 प्रत्यक्ष डाक
 9.3.6 विविध
9.4 आदर्श माध्यम के आवश्यक गुण
9.5 माध्यमों का मूल्यांकन
9.6 माध्यम का चयन
9.7 विज्ञापन एजेंसियों का महत्त्व
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.12 स्वपरख प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विज्ञापन के क्षेत्र में माध्यम के महत्त्व का विश्लेषण कर सकें
- विज्ञापन के प्रत्येक माध्यम की विशेषताओं का वर्णन कर सकें
- माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कर सकें और
- विज्ञापन एजेंसियों की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इकाई 8 में आप पढ़ चुके हैं कि विज्ञापन किसे कहते हैं, यह प्रचार से किस प्रकार भिन्न है, विज्ञापन के उद्देश्य क्या हैं, समाज में विज्ञापन का क्या महत्त्व है तथा प्रभावशाली विज्ञापन के क्या लक्षण होते हैं। जैसा कि आप जानते हैं व्यावसायिक फर्मों के लिए विज्ञापन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण साधन है जिससे अपनी वस्तुओं और सेवाओं के संबंध में तथा उनकी उपयोगिता, किस्म, उपलब्धि के स्थान आदि के संबंध में जानकारी दी जाती है। इन सबका मुख्य उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है। यह उद्देश्य केवल तभी पूरा होता है जबकि विज्ञापन का संदेश भावी ग्राहकों तक पहुँचे। इस संदर्भ में प्रयोग में लाया जाने वाला माध्यम अर्थात् वह साधन जिसके द्वारा संदेश पहुँचाया जाता है, अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। इस इकाई में हम विज्ञापन के क्षेत्र में माध्यम के महत्त्व का, विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों की विशेषताओं का, एक आदर्श माध्यम के लक्षणों का तथा माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों का वर्णन करेंगे।

9.2 माध्यम का अर्थ एवं महत्त्व

किसी विज्ञापन के संदेश को ग्राहकों तक पहुँचाने के लिए अपनायी गई विधि अथवा साधन को विज्ञापन

का माध्यम कहा जाता है। दूसरे शब्दों में **माध्यम विज्ञापन के संदेशों को भावी ग्राहकों तक पहुँचने वाला वाहन अथवा वाहक है।** अत: समाचार-पत्र विज्ञापन का एक माध्यम है क्योंकि यह उत्पादों तथा सेवाओं से संबंधित संदेश लिखित रूप में ग्राहकों तक पहुँचाता है। इसी प्रकार रेडियो विज्ञापन के प्रसारण का तथा विज्ञापन संबंधी सूचनाओं को श्रोताओं तक पहुँचाने का एक अन्य माध्यम है। टेलीविजन के माध्यम से दिए गए विज्ञापन उत्पादों तथा सेवाओं से संबंधित संदेश दर्शकों तक पहुँचाते हैं। विज्ञापन के लिए पोस्टरों, पर्चों (hand bills) सिनेमा स्लाइडों, वस्तुओं के बाह्य प्रदर्शन आदि का प्रयोग भी किया जाता है। ये सब विज्ञापन के माध्यम हैं। माध्यमों के प्रयोग का मूलभूत उद्देश्य भावी ग्राहकों को उत्पादों तथा सेवाओं की जानकारी देना होता है।

विज्ञापन क्रिया में दृश्य तथा मौखिक संदेश तैयार करना तथा उनकी सूचना लोगों तक पहुँचाना आदि शामिल हैं ताकि उन्हें किसी उत्पाद, सेवा अथवा दृष्टिकोण से अवगत कराया जा सके तथा उन्हें उसकी ओर आकृष्ट किया जा सके। सभी विज्ञापनों का अंतर्निहित उद्देश्य है — विक्रय में वृद्धि करना। आधुनिक युग में बड़े पैमाने के उत्पादन के साथ विक्रय वृद्धि के लिए जन-माध्यमों की सेवाओं की आवश्यकता होती है जो विज्ञापन का संदेश भावी ग्राहकों को अधिक से अधिक संख्या तक पहुँचा सकें। इस प्रकार **विज्ञापन के माध्यम वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।** उपयुक्त माध्यम का प्रयोग किए बिना सैकड़ों तथा हज़ारों की संख्या वाले भावी ग्राहकों से भरपूर बाज़ारों में विक्रय वृद्धि के बारे में सोचना भी असंभव है। इसका कारण यह है कि सेल्समैन व्यक्तिगत रूप से केवल कुछ ही लोगों अथवा फुटकर दुकानों से संपर्क स्थापित कर सकते हैं। इसी प्रकार उत्पादक तथा व्यापारी भी अपने उत्पादों तथा सेवाओं की जानकारी देने के लिए बहुत अधिक लोगों से व्यक्तिगत रूप से संपर्क स्थापित नहीं कर सकते। छोटे उत्पादक तथा छोटे व्यापारी अपनी वस्तुएँ व्यक्तिगत पहुँच के माध्यम से बेचने में समर्थ हो सकते हैं। लेकिन विक्रय-वृद्धि के इस तरीके का उपयोग आज के बड़े पैमाने के उत्पादन वाले उद्योगों में नहीं किया जा सकता। वस्तुत: बड़े पैमाने के उद्योगों तथा संचार के नए तरीकों के विकास के साथ बहुत बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित करने वाले रेडियो, टेलीविजन, चित्रपट आदि विभिन्न माध्यमों के द्वारा विज्ञापन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

माध्यमों का उपयोग न केवल अधिकाधिक उपभोक्ताओं तक प्रायोजित संदेश के संचार को सुगम बनाता है, अपितु इस संदेश को जितनी बार आवश्यक हो उतनी बार दोहराने में भी सहायक होता है। इससे विज्ञापन के प्रभाव को प्रबल करने में तथा किसी उत्पाद अथवा सेवा में उपभोक्ताओं की रुचि को बनाए रखने में भी सहायता मिलती है। विशेष प्रकार के माध्यमों के उपयोग से संदेश के आकार को स्थान अथवा समय के अनुसार समायोजित करके सूचना को आवश्यक विस्तार से दे पाना संभव हो पाता है। उदाहरण के लिए समाचार-पत्रीय माध्यम (समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं) का उपयोग आवश्यक स्थान के लिए व्यय का भुगतान करके किया जा सकता है तथा रेडियो और टेलीविजन का उपयोग विज्ञापन में लगने वाले समय के आधार पर किसी उत्पाद के विज्ञापन के लिए किया जा सकता है। वस्तुत: अधिक स्थान अथवा लंबे समय के उपयोग के लिए लागत का अधिक होना स्वाभाविक होता है।

ऐसे जन माध्यमों को माँग-सृजन तथा विक्रय वृद्धि का एक सर्वश्रेष्ठ साधन माना जा सकता है, जिनका उपयोग देश के दूरस्थ भागों अथवा विदेशों में जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। छोटी व्यावसायिक फर्मों के संदर्भ में भी कुछ विशेष प्रकार के माध्यमों जैसे पर्चों (hand bills), पोस्टरों तथा साइन बोर्डों के उपयोग से व्यक्तिगत संपर्क की अपेक्षा अधिक लोगों तक पहुँचा जा सकता है। जिन माध्यमों का उपयोग स्थानीय उद्देश्यों के लिए किया जाता है, वे व्यक्तिगत विक्रय की अपेक्षा कम खर्चीले होते हैं।

इन सबके अतिरिक्त, माध्यमों द्वारा विज्ञापन से व्यक्तिगत विक्रय को उपयोगी सहायता मिलती है। जब भावी उपभोक्ताओं को विज्ञापन के माध्यम से उत्पादों की उपयोगिता तथा गुणवत्ता की जानकारी पहले से ही प्राप्त हो तो सेल्समैनों और व्यापारियों के लिए उन्हें इनके बारे में प्रभावित करना आसान हो जाता है। अत: माध्यमों द्वारा विज्ञापन को व्यक्तिगत विक्रय का पूरक माना जा सकता है।

9.3 माध्यमों के प्रकार तथा उनकी विशेषताएँ

विज्ञापन के लिए विभिन्न माध्यमों का उपयोग किया जाता है। किंतु विभिन्न प्रकार के माध्यमों में भी

बहुत सी बातों में भिन्नता पाई जाती है जैसे भौगोलिक पहुँच, भिन्न-भिन्न प्रकार के उपभोक्ता जिन तक माध्यम पहुँच सकते हैं, उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के तरीके, तत्संबंधी लागत आदि के संबंध में। उनके विशिष्ट लक्षणों के आधार पर माध्यमों को निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1 प्रेस (समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ)
2 रेडियो
3 टेलीविजन
4 बाह्य माध्यम
5 प्रत्यक्ष डाक
6 विविध

आइये, अब हम इन सभी माध्यमों में से प्रत्येक के विशिष्ट लक्षणों का तथा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इनकी उपयुक्तता का विवेचन करें।

9.3.1 प्रेस माध्यम (Press Media)

समाचार-पत्रीय माध्यम एक मुद्रित माध्यम है जिसके अंतर्गत समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ आदि आते हैं। समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं में मुख्य अंतर उनके प्रकाशन के समय से संबंधित है। समाचार-पत्र प्रतिदिन प्रकाशित किए जाते हैं जबकि पत्रिकाओं का प्रकाशन सामयिक होता है, जैसे साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक अथवा अर्धवार्षिक। लेकिन दोनों ही अवस्थाओं में संदेश मुद्रित शब्दों के माध्यम से पहुँचाया जाता है तथा कई बार साथ में चित्र तथा तस्वीरें भी दे दी जाती हैं। मुद्रित शब्दों तथा संलग्न चित्रों को जितना भी संभव हो उतना ही आकर्षक, अनुप्रेरक तथा सूचनात्मक बनाया जा सकता है। लेकिन समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के अपने कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

समाचार-पत्र : विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र शिक्षित जन-समूह द्वारा व्यापक एवं नियमित रूप से पढ़े जाते हैं। समाचार-पत्र पढ़ना शहरों तथा नगरों के अधिकतर लोगों की तथा गाँवों के कुछ साक्षर लोगों की तो प्रतिदिन की आदत सी हो गई है। कई लोग समाचार-पत्रों में दिए जाने वाले विज्ञापनों के अभ्यस्त हो चुके हैं तथा उन्हें सूचनाओं के स्रोतों के रूप में ध्यान से पढ़ते हैं। भारत में कुछ राष्ट्रीय दैनिक पत्रों का प्रचलन तो लाखों की संख्या में है। क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित किए जाने वाले समाचार-पत्र भी व्यापक प्रचलन में हैं तथा कुछ का प्रचलन तो एक से अधिक राज्यों में है। इस प्रकार विज्ञापन के माध्यम के रूप में समाचार-पत्र लोगों की बहुत बड़ी संख्या तक संदेश पहुँचाते हैं। दूसरे, समाचार-पत्रीय विज्ञापन की लागत रेडियो, टेलीविजन आदि अन्य माध्यमों द्वारा किए गए विज्ञापन की लागत से कम होती है। विज्ञापन के लिए कितने स्थान का उपयोग करना है उसके संबंध में निर्णय आवश्यकता तथा संबंधित लागत के अनुरूप लिया जा सकता है। तीसरे, यदि आवश्यक हो तो समाचार-पत्र विज्ञापन को प्रतिदिन दोहराने की सुविधा भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्रता की स्थिति में अधिक समय नष्ट किए बिना तुरंत विज्ञापन छपवा देना भी संभव हो सकता है। अंत में, जिन लोगों तक संदेश पहुँचाना है, उन्हें ध्यान में रखते हुए उपयुक्त समाचार-पत्र का चयन करना संभव होता है। यदि राष्ट्र के समस्त लोगों तक संदेश पहुँचाना हो तो ऐसे समाचार-पत्र का चयन करना चाहिए जिसका प्रचलन राष्ट्रव्यापी हो। लेकिन यदि संदेश केवल एक विशेष क्षेत्र के लोगों तक ही पहुँचाना हो तो उस क्षेत्रीय भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र का चयन किया जा सकता है। चूंकि समाचार-पत्र जन-साधारण द्वारा पढ़े जाते हैं, अत: इनका उपयोग सभी लोगों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के लिए एक उपयुक्त माध्यम के रूप में किया जा सकता है। बहुत से लोग प्रात: काल में समाचार-पत्र पढ़ते हैं और फिर बाद में उन्हें अलग से रख देते हैं। इसी कारण समाचार-पत्रों में दिए गए विज्ञापन का जीवन-काल बहुत छोटा होता है।

पत्रिकाएँ : पत्रिकाओं को आवधिक समाचार-पत्र भी कहा जा सकता है क्योंकि उनका प्रकाशन निश्चित समय के अंतरालों पर किया जाता है, जैसे — साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि। पाठकों के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न प्रकार की पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। उदाहरण के लिए इंडिया टुडे, इलस्ट्रेटेड वीकली, धर्मयुग आदि कुछ लोकप्रिय पत्रिकाएँ हैं जिनमें लेख, समाचार, कहानियाँ, आदि प्रकाशित की जाती हैं। बच्चों के लिए अलग पत्रिकाएँ होती हैं जिनमें उनकी पसंद की कहानियाँ प्रकाशित की जाती हैं, जैसे टारगेट, चंदामामा आदि। व्यापारियों तथा अधिकारियों के लिए भी बिज़नेस

इण्डिया, फोरच्यून, कॉमर्स आदि पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। इसी प्रकार स्पोर्ट्स वीक, स्पोर्ट्स स्टार आदि खेल पत्रिकाएँ हैं, फेमीना, वीमेन्स एरा आदि महिलाओं की पत्रिकाएँ हैं, इंडियन जर्नल आफ मार्केटिंग, इंडियन मेडिकल जर्नल आदि व्यावसायिक पत्रिकाएँ हैं, स्टार ऐंड स्टाइल, फिल्म फेयर आदि फिल्मी पत्रिकाएँ हैं, आदि-आदि। प्रचलन की दृष्टि से पत्रिकाएँ अपने उतने व्यापक रूप से नहीं पढ़ी जातीं जितने की समाचार-पत्र। दूसरी ओर प्रत्येक पत्रिका केवल एक विशिष्ट वर्ग के पाठकों द्वारा ही पढ़ी जाती हैं। चूंकि पत्रिकाएँ साधारणतया एक लंबे समय तक पढ़ी जाती हैं, इसलिए पत्रिकाओं का जीवन-काल समाचार-पत्रों की अपेक्षा अधिक लंबा होता है। अत: विज्ञापनकर्ता को, जिन लोगों तक विज्ञापन पहुँचाना है, उसी के अनुरूप माध्यम के रूप में पत्रिकाओं का चयन किया जाता है। उदाहरण के लिए चिकित्सा संबंधी पुस्तकों, औषधियों, शल्य चिकित्सा संबंधी उपस्करों, चिकित्सा संबंधी उपकरणों आदि के विज्ञापन साधारणतया चिकित्सा संबंधी पत्रिकाओं में दिए जाते हैं। कार्यालय उपस्कर, कंप्यूटर आदि के निर्माता अपने उत्पादों का विज्ञापन व्यावसायिक पत्रिकाओं, व्यापारिक पत्रिकाओं आदि में देते हैं। कुल मिलाकर रेडियो, टेलीविज़न आदि माध्यमों की अपेक्षा पत्रिकाओं में विज्ञापन देना अधिक सस्ता पड़ता है।

लेकिन पत्रिकाओं की कुछ सीमाएँ भी होती हैं। इनमें से एक का संबंध प्रकाशन के समय से है जो कि आवधिक होता है। यद्यपि प्रकाशित विज्ञापनों का जीवन काल लंबा होता है लेकिन उनका प्रकाशन नियत अवधि पर ही किया जाता है, समाचार-पत्रों की तरह प्रतिदिन नहीं किया जाता। एक अन्य सीमा है — विज्ञापन के आकार एवं रचना के चयन में लोच का अभाव। डिज़ाइन उतनी शीघ्रता से नहीं बदली जा सकती जितनी कि समाचार-पत्रों में। इसके अतिरिक्त किसी पत्रिका के प्रचलन से उस पत्रिका के पाठकों की संख्या का तथा उनके द्वारा उसे पढ़ने में लगाए गए समय का पता नहीं चलता। एक सीमित प्रचलन वाली पत्रिका एक व्यापक प्रचलन वाली पत्रिका की अपेक्षा अधिक ध्यान से और विस्तारपूर्वक पढ़ी जा सकती है अथवा अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जा सकती है।

9.3.2 रेडियो

कम मूल्य पर रेडियो की उपलब्धता के कारण कम आय वाले लोग भी रेडियो खरीद सकते हैं। इसी कारण भारत में विज्ञापन के माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण अत्यंत लोकप्रिय हो चुका है। भारत में बहुत अधिक संख्या में लोगों के पास अपने रेडियो हैं। इसी कारण रेडियो प्रसारण के माध्यम से विज्ञापन की अपील को देश के विभिन्न भागों में जनसाधारण तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। भारत में विज्ञापनों का प्रसारण ऑल इंडिया रेडियो (विविध भारती कार्यक्रम) द्वारा विशिष्ट चैनेलों पर किया जाता है। रेडियो पाकिस्तान तथा रेडियो सिलोन भी भारतीय जनता के लिए विज्ञापनों का प्रसारण करते हैं। जन माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण जन आग्रह (mass appeal) वाली विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं जैसे चित्रपट, बिजली के पंखे, रेफ्रिजरेटर, सिलाई मशीन, चमड़े की वस्तुएँ, यात्रा में काम आने वाले थैलों आदि के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। रेडियो द्वारा विज्ञापन का लाभ यह है कि श्रव्य माध्यम होने के कारण इसका संदेश प्राप्त करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। श्रोताओं का साक्षर होना भी आवश्यक नहीं है। अनेक संदेश मौखिक रूप में मुद्रित संदेश की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। रेडियो द्वारा विज्ञापन की सीमाएँ इस प्रकार हैं — 1) यह समाचार-पत्रीय माध्यम की अपेक्षा अधिक महँगा होता है, 2) विज्ञापन का जीवन काल बहुत छोटा होता है तथा 3) संदेश को विस्तार में याद रखना कठिन होता है।

9.3.3 टेलीविजन

पिछले पंद्रह वर्षों में अधिक से अधिक लोगों तक संदेश पहुँचाने के माध्यम के रूप में टेलीविजन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। लेकिन विज्ञापन के माध्यम के रूप में इसका महत्त्व देश के अधिकांश दूरदराज़ के भागों तक सूचना पहुँचाने के लिए अधिकाधिक प्रसारण केंद्रों की स्थापना के साथ तथा उपग्रह प्रसारण के उपयोग के साथ बहुत बढ़ गया है।

जो व्यक्ति टेलीविजन नहीं खरीद सकते वे भी सामुदायिक केंद्रों तथा सार्वजनिक स्थानों पर टेलीविजन के कार्यक्रम देख सकते हैं। आजकल इसकी व्यापक पहुँच के कारण तथा दर्शकों पर दृश्य संप्रेषण के प्रभाव के कारण विज्ञापन के माध्यम के रूप में टेलीविजन का महत्त्व बढ़ रहा है। इसमें ध्वनि (sound), दृष्टि (vision) तथा गति (movement) का सम्मिश्रण होने के कारण उत्पाद तथा उससे होने वाले लाभों के प्रदर्शन के लिए विज्ञापन के रूप में इसका उपयोग वांछनीय हो गया है। इसी कारण समाचार-पत्रीय

माध्यम तथा रेडियो की अपेक्षा यह माध्यम अधिक प्रभावशाली होता है। इस माध्यम की मुख्य कमी विज्ञापन की भारी लागत है, विशेषकर किसी लोकप्रिय कार्यक्रम के पहले अथवा बाद में जिसे प्रमुख समय (prime time) कहा जाता है। इसलिए केवल बड़े-बड़े उद्यम ही इस माध्यम का उपयोग करने की स्थिति में होते हैं। इसकी एक अन्य कमी यह है कि वाणिज्यिक विज्ञापन की अवधि केवल कुछ ही सेकंड की होती है। इसके अतिरिक्त इतने कम समय में इतनी बड़ी संख्या में विज्ञापनों को आत्मसात करना दर्शकों के लिए प्रायः कठिन होता है।

9.3.4 बाह्य माध्यम (Outer Media)

विज्ञापन के बाह्य माध्यम से तात्पर्य उस माध्यम से है जिसका उपयोग घर अथवा कार्यालय के भीतर न होकर बाहर जाते हुए अथवा यात्रा करते हुए लोगों तक पहुँचने के लिए किया जाता है। पुस्तिकाएँ (pamphlets), विज्ञापन-पत्र (posters), विज्ञापन-पट्ट (hoardings) नियोन चिह्न (neon signs), विद्युत प्रदर्शन, आदि इस वर्ग के माध्यम के अंतर्गत आते हैं। स्थानीय क्षेत्रों में विक्रय वृद्धि के लिए विज्ञापन के माध्यम के रूप में पुस्तिकाओं (छपे हुए पर्चों) का उपयोग बहुधा किया जाता है। चौराहों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों और सड़कों के किनारों पर स्थित बाजारी क्षेत्रों आदि से गुजरने वाले लोगों को पुस्तिकाएँ बाँटी जाती हैं। विज्ञापन-पत्र (कागजों पर छपे हुए संदेश) साधारणतया दीवारों, सड़कों पर लगे स्तम्भों, बिजली के खम्भों आदि पर चिपकाऐ जाते हैं। सार्वजनिक परिवहन के वाहनों जैसे ट्रामों, बसों तथा रेल के डिब्बों के भीतर भी विज्ञापन-पत्र चिपकाये जाते हैं। इन सभी अवस्थाओं में कुछ रकम का भुगतान करने पर ही स्थान प्रदान किया जाता है।

नियोन चिह्न तथा विद्युत प्रदर्शन साधारणतया छतों पर तथा व्यस्त चौराहों पर लगाये जाते हैं ताकि लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सके। ये केवल रात को ही देखे जा सकते हैं। विज्ञापन पट्टों से तात्पर्य ऐसे विशाल तख्तों से है जिन पर संदेश लिखा होता है तथा कभी-कभी आदम-कद तस्वीर भी खींची हुई होती है जिन्हें सार्वजनिक स्थानों पर लगा दिया जाता है। विज्ञापन-पट्ट जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए विशेष रूप से तैयार किए जाते हैं। चूंकि विज्ञापन-पट्टों का आकार साधारणतया काफी बड़ा होता है, इसलिए विज्ञापन काफी दूर से देखा जा सकता है।

पुस्तिकाओं, विज्ञापन-पत्रों, नियोन चिह्नों, विद्युत प्रदर्शनों, विज्ञापन-पट्टों जैसे बाह्य माध्यमों में ध्यानाकर्षण मूल्य का अंश भिन्न-भिन्न होता है। चौराहों आदि से गुजरने वाले जिन लोगों को पुस्तिकाएँ प्राप्त होती हैं, उन पर उनका प्रभाव अस्थायी होता है क्योंकि उनके मस्तिष्क में कुछ अन्य बातें घूमती रहती हैं। विज्ञापन-पत्रों का दोष यह है कि केवल उन लोगों को ही उनके अस्तित्व की जानकारी हो पाती है जो उन पर ध्यान देते हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक स्थानों पर लगाये गए विज्ञापन-पत्रों का जीवन-काल बहुत छोटा होता है क्योंकि या तो उनके ऊपर विज्ञापन चिपका दिए जाते हैं अथवा अन्य विज्ञापन-पत्र चिपकाने वाले एजेन्टों द्वारा उन्हें हटा दिया जाता है। नियोन चिह्न तथा विद्युत प्रदर्शन साधारणतया अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं लेकिन ये केवल रात्रि के समय ही प्रभावकारी होते हैं। बड़े आकार के होने तथा महत्त्वपूर्ण स्थानों पर लगे होने के कारण विज्ञापन-पट्टों का ध्यानाकर्षण मूल्य अधिकतम होता है। विज्ञापन-पट्टों को तैयार करने तथा उनकी स्थापना के लिए आवश्यक भारी प्रारंभिक व्यय के कारण उनकी लागत बहुत अधिक होती है। किसी सार्वजनिक स्थान पर इनकी स्थापना के लिए दिया जाने वाला किराया भी काफी अधिक होता है। नियोन चिह्न विद्युत प्रदर्शनों को तैयार करने तथा उनकी स्थापना की लागत भी काफी अधिक होती है। सार्वजनिक स्थानों पर इनकी स्थापना के लिए दिए जाने वाले किराये के अतिरिक्त नियोन गैस अथवा विद्युत शक्ति के उपयोग के लिए भी बहुत अधिक आवर्ती व्यय करने पड़ते हैं। दीवारों तथा खम्बों पर लगाये जाने वाले विज्ञापन-पत्र प्रारंभ में कम खर्चीले होते हैं। सार्वजनिक परिवहनों (बसों तथा रेल के डिब्बों) के भीतर निर्दिष्ट स्थान पर लगाये जाने वाले विज्ञापन-पत्रों के लिए सामयिक प्रभारों का भुगतान करना पड़ता है। इस सब के बावजूद सभी बाह्य माध्यम अधिकांश रूप में रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा विज्ञापन की अपेक्षा कम खर्चीले होते हैं।

9.3.5 प्रत्यक्ष डाक (Direct Mail)

संभावित ग्राहकों को डाक द्वारा व्यक्तिगत पत्र भेजना भी विज्ञापन का एक तरीका है जिससे काफी लाभ हो सकता है। ये संप्रेषण अधिकतर विज्ञप्तियों के रूप में होते हैं तथा कई बार इनके साथ सूची-पत्र (catalogues) अथवा मूल्य सूचियाँ (price lists) भी दी जाती हैं। डाक द्वारा विज्ञप्ति-पत्र भेजने के पीछे मूल उद्देश्य विज्ञापन का संदेश प्रत्यक्ष रूप से ग्राहकों तक पहुँचाना तथा विश्वसनीय ढंग से

विस्तृत जानकारी देकर अपने उत्पाद अथवा सेवा में उनकी रुचि को जागृत करना होता है। इसके लिए एक डाक सूची तैयार की जाती है तथा व्यक्तिगत शब्दावली का प्रयोग करके सावधानीपूर्वक पत्र का प्रारूप तैयार किया जाता है। व्यक्तिगत स्पर्श होने के कारण उस संदेश के अधिक प्रभावकारी होने की आशा रहती है। इसके द्वारा विस्तृत जानकारी दी जा सकती है और इसीलिए यह अधिक विश्वसनीय भी होता है। **बड़े पैमाने पर सार्वजनिक उपयोग वाले उत्पादों के लिए प्रत्यक्ष डाक उपयुक्त माध्यम नहीं है।** यह उन उत्पादों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है जहाँ उन लोगों को आसानी से पहचाना जा सके, जिनसे सम्पर्क स्थापित करना है। उदाहरण के लिए औषधियों का निर्माण अथवा वितरण करने वाली कम्पनी उन चिकित्सकों तथा रसायन शास्त्रियों को आसानी से पहचान सकती है जिन्हें उत्पाद से संबंधित प्रत्यक्ष सूचना दी जाती है। इसी प्रकार पुस्तकों का प्रकाशन करने वाली कम्पनी विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को आसानी से पहचान सकती है और अपने प्रकाशनों के विक्रय को बढ़ाने के लिए उन्हें विज्ञप्ति-पत्र (circulars) भेज सकती है। लेकिन प्रत्यक्ष डाक सौंदर्य साबुन, हाथ-घड़ी अथवा कलम का विक्रय बढ़ाने के लिए विज्ञापन का उपयुक्त माध्यम नहीं है। इस प्रकार के उत्पादों के दूर-दूर तक फैले हुए असंख्य उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष डाक द्वारा विज्ञप्ति-पत्र भेजना काफी महँगा होगा तथा समय भी बहुत लगेगा। सम्भावित ग्राहकों को डाक द्वारा भेजी गई पुस्तिकाएँ, सूची-पत्र आदि भी प्रत्यक्ष डाक के अन्तर्गत आते हैं। ये भी ग्राहकों के एक चुने हुए वर्ग के लिए ही उपयुक्त होते हैं।

9.3.6 विविध (Miscellaneous)

उपरोक्त माध्यमों के अतिरिक्त कुछ अन्य माध्यम भी हैं जिनका विज्ञापन के लिए उपयोग किया जाता है। इनमें से कुछ माध्यम हैं—सिनेमा घरों में स्लाइडें, चलचित्र (फिल्म), प्रदर्शनियां, अलमारियों में (शो-केस में) प्रदर्शन, आदि। कैलेंडर, डायरी, चाबी के छल्ले, बटुए, कागज भार (पेपर वेट) आदि भी, जिन पर विज्ञापनकर्ता के नाम तथा पते सहित संदेश छपा हुआ होता है, विज्ञापन के माध्यम माने जाते हैं। सिनेमाघरों में चलचित्र शुरू होने से पहले अथवा मध्यांतर में दिखलाई जाने वाली स्लाइडें विज्ञापन के स्रोत साधनों में से एक हैं। चलचित्र शुरू होने से पहले दिखाया जाने वाला लघु चलचित्र विज्ञापन का एक अपेक्षाकृत अधिक महँगा माध्यम है। लेकिन इसके लाभ टेलीविजन द्वारा विज्ञापन के लाभों के समान होते हैं। इसके अतिरिक्त इन लघु चलचित्रों की अवधि टेलीविजन के विज्ञापन की अपेक्षा अधिक लम्बी (लगभग 5 मिनट) होती है। लेकिन पट्टिकाएँ (slides) अथवा चलचित्र, प्रदर्शन समय में सिनेमा घर में उपस्थित केवल कुछ स्थानीय लोगों द्वारा ही देखे जा सकते हैं।

प्रदर्शिनियाँ भी वस्तुओं के विज्ञापन के अवसर प्रदान करती हैं। प्रदर्शनियों में उपभोक्ता वस्तुओं को दिखाया जा सकता है तथा औद्योगिक वस्तुओं, जैसे मशीनरी आदि के प्रयोग का प्रदर्शन किया जा सकता है। प्रदर्शनियों का दोष यह है कि उनकी अवधि सीमित होती है।

जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए रेलवे स्टेशनों, हवाई अड्डों, बस अड्डों आदि सार्वजनिक स्थानों पर वस्तुओं का प्रदर्शन करने वाले शो-केस लगाए जाते हैं। इनमें स्थान के लिए किराया देना पड़ता है। उत्पादों की आकर्षण क्षमता तथा उन्हें प्रदर्शित करने का ढंग विज्ञापन के इस माध्यम के मुख्य लक्षण है।

बोध प्रश्न क

1 **विज्ञापन के माध्यम से क्या तात्पर्य है?**

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सत्य हैं तथा कौन से असत्य।

i) समाचार-पत्रों द्वारा विज्ञापन टेलीविजन द्वारा विज्ञापन की अपेक्षा सस्ता होता है।

ii) प्रतिदिन उपयोग में आने वाली उपभोक्ता वस्तुओं के लिए विज्ञापन के माध्यम के रूप में विशिष्ट पत्रिकाएँ सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं।

iii) रेडियो द्वारा विज्ञापन उतना प्रभावकारी नहीं होता जितना कि टेलीविजन द्वारा विज्ञापन।

iv) रेडिया प्रसारण की अपेक्षा समाचार-पत्रों के द्वारा विज्ञापन संदेश अधिक उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जा सकता है।

v) विज्ञापन-पत्रों (posters) की अपेक्षा विज्ञापन-पट्टों (hoardings) का ध्यानाकर्षण मूल्य अधिक होता है।

vi) उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन के लिए प्रत्यक्ष डाक सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है।

3 स्तम्भ "अ" की मदों का स्तम्भ "ब" की मदों से मिलान कीजिए।

स्तम्भ "अ"	स्तम्भ "ब"
1 रेडियो	क मुद्रित माध्यम
2 टेलीविजन	ख दृश्य माध्यम
3 समाचार-पत्र	ग श्रव्य-दृश्य माध्यम
4 नियोन चिह्न	घ श्रव्य माध्यम

9.4 आदर्श माध्यम के आवश्यक गुण (Requisites of an Ideal Medium)

विभिन्न माध्यमों के विशिष्ट लक्षणों के बारे में आप पढ़ चुके हैं। आइये अब हम विज्ञापन के आदर्श माध्यम के आवश्यक गुणों का अध्ययन करें। व्यापक रूप से आदर्श माध्यम की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है।

1 **पहुँच (Reach)** : माध्यम ऐसा होना चाहिए जिससे अधिक से अधिक संख्या में लक्ष्य श्रोताओं तक पहुँचा जा सके।

2 **संदेश (Message)** : संदेश को माध्यम के द्वारा समुचित ढंग से पहुंचाया जाना संभव होना चाहिए।

3 **किफ़ायती (Economical)** : माध्यम लागत की दृष्टि से किफ़ायती होना चाहिए।

4 **लचीला (Flexible)** : माध्यम ऐसा होना चाहिए जिससे वस्तु के आकार, रचना, विन्यास, रंग आदि में परिवर्तन करना आसान हो।

5 **पुनरावृत्ति के अवसर (Scope for repetition)** : माध्यम ऐसा होना चाहिए जिसमें कुछ समय के अंतरालों पर संदेश को दोहराया जा सके।

6 **प्रभावशाली (Effective)** : माध्यम ऐसा होना चाहिए जिसके उपयोग से विक्रय वृद्धि के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

9.5 माध्यमों का मूल्यांकन (Evaluation of Media)

आप विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों के संबंध में तथा आदर्श माध्यम के आवश्यक गुणों के संबंध मे जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब प्रश्न उठता है कि इनमें से कौन-से माध्यम को सर्वोत्तम माना जा सकता है। वास्तव में किसी भी एक माध्यम को सभी परिस्थितियों में उपयुक्त नहीं माना जा सकता। इसके लिए आइये, हम एक आदर्श माध्यम की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक माध्यम का विश्लेषण करें। विभिन्न माध्यमों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए तालिका 9.1 को ध्यान से पढ़िये। आप पायेंगे कि किसी भी एक माध्यम में आदर्श माध्यम के सभी लक्षण विद्यमान नहीं हैं। प्रत्येक माध्यम कुछ दृष्टियों से आदर्श है तथा कुछ अन्य दृष्टियों से नहीं। उदाहरण के लिए समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में व्यापक प्रचलन, लोच, दर्शकों के चुनाव की सुविधा आदि गुण होते हैं, लेकिन वे निरक्षर लोगों तक संदेश पहुँचाने के लिए उपयोगी नहीं होते। टेलीविजन दृश्य माध्यम है जो कि अत्यंत प्रभावकारी होता है, किन्तु यह माध्यम काफी महँगा होता है। रेडियो का कोई दृश्य प्रभाव नहीं होता। बाह्य माध्यम केवल स्थानीय विज्ञापनों के लिए उपयोगी होते हैं। यदि भावी ग्राहकों की संख्या बहुत अधिक हो तो प्रत्यक्ष डाक उपयुक्त नहीं होता। इस प्रकार कोई माध्यम किसी विशेष स्थिति में उपयुक्त हो सकता है लेकिन किसी अन्य स्थिति में नहीं भी हो सकता है। अत: माध्यम का चयन करते समय आपको काफी सतर्क रहना होता है तथा स्थिति की आवश्यकताओं के अनुरूप ही उसका चयन करना उपयुक्त होता है।

28

तालिका 9.1
विज्ञापन के माध्यमों के लक्षण

	समाचार-पत्र	पत्रिकाएँ	रेडियो	टेलीविजन	बाह्य माध्यम	प्रत्यक्ष डाक
प्रचलन अथवा पहुँच	शिक्षित लोगों में अधिकतम प्रचलन	शिक्षित लोगों में सीमित प्रचलन	लोगों की बड़ी संख्या तक पहुँचता है	रेडियो के श्रोताओं की अपेक्षा दर्शक कम होते हैं	मुख्य रूप से स्थानीय लोगों तक सीमित	केवल डाक सूची के सदस्यों तक सीमित
ध्यानाकर्षण अवधि	एक या दो घंटे की बहुत कम अवधि	एक सप्ताह अथवा इससे अधिक समयावधि	कुछ सेकंड की अवधि	कुछ सेकंड की अवधि	संक्षिप्त ध्यानाकर्षण, अनिश्चित	संक्षिप्त ध्यानाकर्षण, निश्चित
लागत	स्थान के अनुसार परिवर्तनशील	समाचार-पत्रों की अपेक्षा कम महँगी	समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं से अधिक महँगा	सबसे अधिक महँगा	विज्ञापन पट्टों को छोड़कर अन्य वाह्य माधम समाचार पत्रों की अपेक्षा कम महँगे होते हैं	औसत रूप से महँगा, डाक सूची के आकार पर निर्भर
आकार, डिजाइन आदि की लोच	अत्यंत लोचदार	समाचार-पत्रों की अपेक्षा कम लोचदार	सीमित लोच जो समय की उपलब्धता पर निर्भर करती है	अधिक लागत के कारण सीमित लोच जो समय की उपलब्धता पर निर्भर करती है	औसत लोच जो लागत पर निर्भर करती है	काफी लोचदार
उपयुक्तता	जन साधारण द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त	औद्योगिक एवं विशिष्ट वस्तुओं के लिए उपयुक्त	जन साधारण द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त	जन साधारण द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त	ब्रांड नाम वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त	सुपरिभाषित बाजार वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त
श्रोताओं के चयन की सुविधा	क्षेत्रीय तथा भाषायी चयन संभव	अधिक चयन के लिए सुविधापूर्ण	सीमित/क्षेत्रीय तथा भाषायी चयन में सुविधा	सीमित/क्षेत्रीय तथा भाषायी चयन में सुविधा	क्षेत्रीय चयन में सुविधा	अधिक चयन सुविधा
पुनरावृत्ति मूल्य	प्रतिदिन पुनरावृत्ति संभव	प्रकाशन की पुनरावृत्ति पर निर्भर	शीघ्र पुनरावृत्ति संभव	शीघ्र पुनरावृत्ति संभव	ग्राहक जब भी इसके समीप से गुजरता है, इसे देखता है	डाक की पुनरावृत्ति पर निर्भर

9.6 माध्यम का चयन (Choice of Media)

आप पढ़ चुके हैं कि विज्ञापन के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यम उपलब्ध होते हैं तथा प्रत्येक माध्यम की अपनी-अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। किसी भी एक विशेष माध्यम में सभी गुण विद्यमान नहीं होते। एक विशेष माध्यम, जो किसी एक परिस्थिति में उपयुक्त है, हो सकता है कि वही किन्हीं अन्य परिस्थितियों में उपयुक्त न हो। अत: निर्माता अथवा वितरक (व्यापारी) को एक अथवा एक से अधिक ऐसे माध्यमों का चयन करना होगा जो उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम हो। निम्नलिखित तत्त्व माध्यम के चयन को प्रभावित करते हैं :

1 **माध्यम की विशेषताएँ (Characteristics of media) :** किसी भी माध्यम की उपयुक्तता का निर्णय करने के लिए वास्तविकता के आधार पर विभिन्न प्रकार के माध्यमों की विशेषताओं का विश्लेषण किया जाना चाहिये। किसी माध्यम विशेष का चयन करने से पहले माध्यमों के निम्नलिखित पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए :

   क) माध्यमों की भौगोलिक पहुँच जैसे राष्ट्रीय, क्षेत्रीय अथवा स्थानीय।

   ख) लोगों तक पहुँचाए जाने वाले संदेश की पुनरावृत्ति तथा अवधि।

   ग) संप्रेषण की विधि जैसे — दृश्य, मौखिक अथवा दोनों।

   घ) माध्यम की ग्राहकों के विशिष्ट वर्गों जैसे महिलाओं, बच्चों, व्यावसायिक अधिकारियों आदि तक पहुँचने की क्षमता। यह ग्राहकों के चयन की सुविधा भी कहलाती है।

   ङ) सूची परिवर्तन की लोच एक अन्य तत्त्व है। टेलीविजन के विज्ञापन तैयार करने में समाचार-पत्र के लिए विज्ञापन तैयार करने की अपेक्षा अधिक समय लगता है। इसी प्रकार कुछ माध्यमों में अल्पकालीन सूचना द्वारा विज्ञापन को वापस लेना सम्भव नहीं होता।

   च) माध्यम की उत्पादन गुणवत्ता।

   छ) स्थायित्व अथवा टिकाऊपन की मात्रा अर्थात् कितने लम्बे समय तक विज्ञापन सम्भावित ग्राहकों की आँखों के सामने अथवा उनकी पकड़ में रह सकेगा। टेलीविजन का विज्ञापन कुछ सेकंड में ही समाप्त हो जाता है, जबकि विज्ञापन-पट्ट उसी संदेश को एक वर्ष अथवा उससे भी अधिक समय तक समीप से गुजरने वाले जन समूह तक संदेश पहुँचाता रहता है।

इस प्रकार एक बड़े निर्माता के लिए ऐसा माध्यम उपयुक्त होगा जिसकी पहुँच राष्ट्रव्यापी हो। व्यापार चिह्न की छवि को लोकप्रिय बनाने के लिए विज्ञापन की अवधि की अपेक्षा विज्ञापन की पुनरावृत्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। दूसरी ओर उत्पाद के संबंध में विस्तृत जानकारी देने के लिए विज्ञापन की अवधि अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। पोलरॉयड कैमरे की उपयोगिता प्रदर्शित करने के लिए मौखिक और दृश्य प्रस्तुतीकरण वाले माध्यम की आवश्यकता होती है। महिलाओं के वस्त्रों का विज्ञापन करने के लिए फैमिना अथवा वीमेन्स एरा जैसी पत्रिकाओं का चयन अधिक उपयोगी होता है।

2 **उत्पाद की प्रकृति (Nature of product) :** प्रभावकारी बनाने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन विभिन्न प्रकार की अपीलों के साथ दिए जाने चाहिए। दैनिक उपभोक्ता की परिचित वस्तुओं के लिए विस्तृत विवरण की आवश्यकता नहीं होती; जबकि औद्योगिक मशीनों के लिए तकनीकी विवरण के लिए जानकारी देना आवश्यक होता है। विज्ञापन का आकार तथा उसके लिए आवश्यक अवधि उत्पाद की प्रकृति पर निर्भर करती है। उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविजन जैसे जन-माध्यमों द्वारा अधिकाधिक संख्या में लोगों तक पहुँचाये जा सकते हैं। लेकिन औद्योगिक वस्तुओं के विज्ञापन व्यापार एवं तकनीकी पत्रिकाओं के माध्यम से अधिक प्रभावकारी ढंग से दिए जा सकते हैं। निर्मित वस्त्रों का विज्ञापन पत्रिकाओं में बहुरंगी छपाई द्वारा किया जाना सर्वोत्तम होता है।

3 **दर्शकों का वर्ग (Type of audience) :** माध्यम का चयन करते समय ध्यान में रखने योग्य महत्त्वपूर्ण बातों में से एक यह भी है कि जिन लोगों तक विज्ञापन संदेश पहुँचाना है, वे किस प्रकार के माध्यम का उपयोग करते हैं। यदि ऐसे लोग निरक्षर हैं, तो समाचार-पत्रीय माध्यम (समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ) प्रभावकारी नहीं होगा। इसी प्रकार यदि विज्ञापन संदेश गाँवों में रहने

वाले लोगों तक पहुँचाना है जहाँ टेलीविज़न उपलब्ध नहीं हैं तो टेलीविजन के माध्यम से दिए गए विज्ञापन निरर्थक होंगे। शहरी क्षेत्रों में गृहिणियों तक संदेश पहुँचाने के लिए सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम रेडियो तथा टेलीविजन हैं तथा व्यावसायिक अधिकारियों के लिए सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम व्यावसायिक पत्रिकाएँ होती हैं। अत: जिन लोगों तक संदेश पहुँचाना है, माध्यम के संदर्भ में उन लोगों की विशेषताएँ उपयुक्त माध्यम के चयन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है।

4 **पहुँच (Coverage) :** प्रत्येक सम्भव माध्यम से सम्भावित ग्राहकों की कितनी संख्या तथा कितने प्रतिशत तक संदेश पहुँचाया जा सकता है, यह भी माध्यम के चयन के निर्णायक तत्त्वों में से एक है। कोई एक माध्यम अन्य माध्यमों की अपेक्षा अधिक संख्या में भावी ग्राहकों तक पहुँच सकता है। अत: उस माध्यम को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जो सबसे अधिक संख्या में ग्राहकों तक पहुँच सकता है। उदाहरण के लिए जिन लोगों तक संदेश पहुँचाना है वे लोग यदि निरक्षर हैं तथा उनके पास टेलीविजन नहीं है तो सिनेमाघरों में लघु चलचित्रों द्वारा विज्ञापन अधिक प्रभावकारी होगा। इसी प्रकार किसी अन्य माध्यम की अपेक्षा प्रत्यक्ष डाक द्वारा अधिक संख्या में चिकित्सकों तक पहुँचा जा सकता है। शहरी ग्राहकों के लिए सिलाई मशीनों के विज्ञापन के लिए महिलाओं की पत्रिकाएँ अधिक प्रभावकारी होंगी क्योंकि इस माध्यम के द्वारा किया गया विज्ञापन और अधिक महिलाओं तक पहुँचाया जा सकता है।

5 **लागत (Cost) :** किसी माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है — लागत। किसी माध्यम की लागत का विश्लेषण दो प्रकार से किया जा सकता है। (1) निरपेक्ष लागत तथा (2) जिन लोगों तक संदेश पहुँचाया गया है, उनके आकार को देखते हुए की गई लागत। किसी माध्यम का समय अथवा स्थान खरीदने के लिए वास्तव में किया गया व्यय ही निरपेक्ष लागत होती है। यदि किसी छोटी फ़र्म ने विज्ञापन के लिए बहुत कम राशि निर्धारित की है तो यह किसी महँगे माध्यम का उपयोग नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए टेलीविजन अत्यंत महँगा माध्यम है जबकि समाचार-पत्र द्वारा विज्ञापन अपेक्षाकृत सस्ता है। लेकिन लागत उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती जितनी कि जिन लोगों तक संदेश पहुँचाया गया है उनकी संख्या को देखते हुए की गई लागत। सापेक्ष लागत एक तुलनात्मक लागत है। चुने गए माध्यम द्वारा जिन लोगों तक संदेश पहुँचाया जा सकता है, उनकी संख्या से निरपेक्ष लागत का संबंध स्थापित करने पर जो लागत आती है वही सापेक्ष लागत कहलाती है। उदाहरण के लिए दो भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में संपूर्ण पृष्ठ के विज्ञापन की लागत कम हो सकती है। लेकिन यदि एक पत्रिका का प्रचलन तीन लाख है जबकि दूसरी का चार लाख है तो विज्ञापनकर्त्ता दूसरी पत्रिका का चयन करेंगे, क्योंकि यह उतने ही पैसों में अधिक लोगों तक पहुँचती है।

9.7 विज्ञापन एजेंसियों का महत्त्व

हम देखते हैं कि विज्ञापन में मुख्य रूप से तीन पक्ष होते हैं : (1) माध्यमों के स्वामी, (2) प्रायोजक तथा (3) विज्ञापन एजेंसियाँ। विभिन्न माध्यमों के स्वामियों को उन माध्यमों के लिए स्थान अथवा समय के विक्रेता माना जा सकता है, जबकि माध्यमों में स्थान अथवा समय को खरीदने वाले प्रायोजक अथवा विज्ञापनकर्ता होते हैं। कई अवस्थाओं में विज्ञापनकर्ता तथा माध्यमों के स्वामी प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से बातचीन करते हैं। विज्ञापनकर्ता माध्यम का चयन करता है तथा माध्यमों के स्वामी के साथ शर्तें तय करता है, जो विज्ञापन के लिये आकार, रचना, अवधि आदि के अनुरूप पूर्वनिर्धारित दरों पर आधारित होती हैं। बड़ी विज्ञापन कम्पनियों में विज्ञापन तैयार करने के लिए उनके अपने दक्ष कर्मचारी होते हैं जो बजट में विज्ञापन एवं विक्रय वृद्धि के लिए निर्धारित की गई रकम के अनुरूप माध्यम के संबंध में निर्णय लेते हैं।

लेकिन समय के साथ-साथ विज्ञापन एजेंसियों का ऐसा विकास हुआ है कि वे विज्ञापनकर्ताओं की ओर से विज्ञापन कार्य करने का उत्तरदायित्व भी लेने लगी हैं। ये एजेंसियाँ अत्यंत कुशल एवं दक्ष होती हैं तथा बड़ी कम्पनियाँ, विज्ञापन के विन्यास, रचना आदि तैयार करने की लागत के अतिरिक्त कुछ शुल्क (फीस) अथवा कमीशन देकर उनकी सेवाओं का लाभ प्राप्त कर सकती हैं। अधिकतर एजेंसियाँ अपने

ग्राहकों की ओर से विज्ञापन के माध्यम के चुनाव सहित विज्ञापन कार्य के सभी पक्षों संबंधी समस्त कार्य सम्भालती हैं। ये एजेंसियाँ माध्यम विशेषज्ञ के रूप में कुशल सेवाएँ प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिन्हें विज्ञापनकर्ता अपने संगठनों में विकसित करने में समर्थ नहीं हो सकते। इनमें से कुछ एजेंसियों के नाम माध्यमों के स्वामियों के पास स्थान तथा समय संबंधी अनुबंधों पर छूट देने के लिए मान्यता प्राप्त एजेंसियों के रूप में लिखे होते हैं। इस छूट का एक भाग एजेंसियों के ग्राहक विज्ञापनकर्ताओं के साथ बाँट लिया जाता है। इस प्रकार, विज्ञापनकर्ता तथा माध्यमों के स्वामियों के बीच संपर्क के क्षेत्र काफी कम हो जाते हैं।

बोध प्रश्न ख

1 विज्ञापन के एक आदर्श माध्यम के लक्षण बताइए।

....

....

....

2 टेलीविजन माध्यम तथा रेडियो माध्यम के बीच मुख्य अंतर क्या है?

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित कथनों में से कौन सत्य है और कौन असत्य?

i) पत्रिका माध्यम की अपेक्षा समाचार-पत्र माध्यम के विज्ञापन का जीवनकाल छोटा होता है।

ii) एक आदर्श माध्यम की लागत हमेशा सबसे कम होती है।

iii) विज्ञापन एजेंसियाँ वस्तुओं के वितरण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती हैं।

iv) जिन लोगों तक संदेश पहुँचाना है, वे यदि निरक्षर हैं, तो समाचार-पत्रीय माध्यम विज्ञापन के लिए उपयुक्त माध्यम नहीं है।

v) जिन लोगों तक संदेश पहुँचाना है, उनकी संख्या यदि बहुत कम हो तो प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन का सर्वोत्तम माध्यम होता है।

vi) राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापन के लिए बाह्य माध्यम उपयुक्त होता है।

vii) टेलीविजन माध्यम सबसे अधिक प्रभावशाली किंतु सबसे मँहगा होता है।

viii) व्यावसायिक पत्रिकाएँ अति उत्तम इलॉक्ट्रॉनिक उपकरणों के विज्ञापन के लिए उपयुक्त होती हैं।

4 स्तम्भ "अ" की मदों का स्तम्भ "ब" की मदों से मिलान कीजिए।

स्तम्भ "अ"	स्तम्भ "ब"
1 खिलौने	क टेलीविजन
2 प्रदर्शन	ख विज्ञापन-पट्ट
3 थोड़े ग्राहक	ग बच्चों की मैगजीनें
4 लघु क्षेत्रों में रहने वाले ग्राहक	घ महिलाओं की पत्रिकाएँ
5 साड़ियाँ	ङ डाक आदेश

9.8 सारांश

किसी विज्ञापन संदेश को सम्प्रेषित करने की विधि अथवा साधन को विज्ञापन का माध्यम कहा जाता है। बड़े पैमाने के उद्योगों में वृद्धि तथा सम्प्रेषण के आधुनिक तरीकों के विकास के कारण अधिकाधिक लोगों को आकर्षित करते वाले विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। माध्यमों के द्वारा न

केवल प्रायोजित संदेश को लोगों तक पहुँचाने में सुविधा होती है, अपितु जब भी आवश्यक हो, उस संदेश को दोहराने में भी सहायता मिलती है। किसी माध्यम विशेष के उपयोग से सूचना को उतने विस्तार में देना संभव हो जाता है जितना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त माध्यमों द्वारा विज्ञापन व्यक्तिगत विक्रय को उपयोगी सहायता प्रदान करता है।

विज्ञापनकर्ता विभिन्न प्रकार के जिन माध्यमों का उपयोग कर सकते हैं, उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है — 1 प्रेस माध्यम (समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ), 2 रेडियो 3 टेलीविजन, 4 बाह्य माध्यम, 5 प्रत्यक्ष डाक, तथा 6 विविध।

समाचार-पत्रीय माध्यम में समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ शामिल हैं। इन दोनों माध्यमों के बीच मुख्य अंतर यह है कि समाचार-पत्र प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं जबकि पत्रिकाओं का प्रकाशन आवधिक होता है, जैसे साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि। विज्ञापन के माध्यम के रूप में समाचार-पत्र एक बड़ी संख्या में शिक्षित लोगों तक संदेश पहुँचाने के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। रेडियो तथा टेलीविजन की अपेक्षा ये अधिक सस्ते होते हैं। ये आवश्यकता पड़ने पर संदेश को दोहराने की सुविधा प्रदान करते हैं। विज्ञापनकर्ता आवश्यकतानुसार राष्ट्रीय, क्षेत्रीय अथवा स्थानीय पहुँच वाले समाचार-पत्रों का चयन कर सकते हैं। यह माध्यम जन साधारण द्वारा उपभोग किए जाने वाले उत्पादों के विज्ञापन के लिए उपयुक्त होता है। लेकिन समाचार-पत्रों का पाठकों पर अस्थायी प्रभावी होता है। प्रत्रिकाओं का प्रकाशन आवधिक होता है तथा वे शिक्षित लोगों के विभिन्न वर्गों तक पहुँचती हैं। पत्रिकाएँ उतने व्यापक रूप से नहीं पढ़ी जातीं जितने कि समाचार-पत्र। दूसरी ओर प्रत्येक पत्रिका एक विशिष्ट वर्ग के पाठकों द्वारा पढ़ी जाती है। अत: जिन लोगों तक विज्ञापन पहुँचना है उन्हीं के अनुसार पत्रिकाओं का चयन किया जा सकता है। लेकिन पत्रिकाओं के प्रकाशनों के बीच कुछ समय का अन्तराल होता है। इसके अतिरिक्त, यह माध्यम विज्ञापन के आकार, रचना आदि के संबंध में लोच प्रदान नहीं करता। पत्रिकाओं की प्रचलन संख्या मात्र से ही इसके पाठकों की संख्या का पता नहीं चलता।

माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण उपभोग्य वस्तुओं तथा जन आकर्षण उत्पादों के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है। श्रोताओं में सभी वर्गों के लोग शामिल होते हैं जो साक्षर भी हो सकते हैं और नहीं भी। मुद्रित संदेश की अपेक्षा मौखिक संदेश अधिक प्रभावशाली होता है, लेकिन संदेश को दोहराया जाना आवश्यक होता है क्योंकि श्रोता जो कुछ सुनते हैं उसे याद रखना उनके लिए कठिन होता है। इसके अतिरिक्त यह समाचार-पत्रीय माध्यम की अपेक्षा अधिक महँगा होता है।

वाणिज्यिक विज्ञापनों के लिए टेलीविजन अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। ध्वनि, दृश्य तथा गति के सम्मिश्रण के कारण माध्यम के रूप में इसकी प्रभावशीलता रेडियो की अपेक्षा अधिक होती है। टेलीविजन के माध्यम से सभी प्रकार की उपभोग्य वस्तुओं का विज्ञापन व्यापक रूप से किया जाता है। इस माध्यम की सीमाएँ इस प्रकार हैं — 1) भारी लागत, तथा 2) प्रसारित संदेश की बहुत कम अवधि — मुश्किल से एक-दो सेकंड। साथ ही इतने कम समय में इतने सारे विज्ञापनों को आत्मसात् करना दर्शकों के लिए कठिन होता है।

विज्ञापन का बाह्य माध्यम वह होता है जिसका उपयोग घर से बाहर जाते हुए अथवा यात्रा करते हुए लोगों तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। इस वर्ग में शामिल माध्यम हैं — पुस्तिकाएँ, विज्ञापन-पत्र, विज्ञापन-पट, नियोन चिह्न, विद्युत प्रदर्शन आदि। इन माध्यमों का ध्यानाकर्षण मूल्य भिन्न-भिन्न होता है। इन बाह्य माध्यमों के उपयोग करने की लागतों में भिन्नता पाई जाती है। अधिक महँगे माध्यम हैं — विज्ञापन-पट, नियोन चिह्न तथा विद्युत प्रदर्शन। लेकिन कुल मिलाकर बाह्य माध्यम रेडियो अथवा टेलीविजन के विज्ञापन की अपेक्षा कम महँगे होते हैं।

प्रत्यक्ष डाक में विज्ञापनकर्ताओं द्वारा लोगों को प्रत्यक्ष रूप से डाक द्वारा भेजे गए विक्रय पत्र, विज्ञप्तियाँ, पुस्तिकाएँ, सूची-पत्र आदि शामिल होते हैं। इनमें से विक्रय पत्र अधिक प्रभावकारी होते हैं क्योंकि वे व्यक्तिगत स्पर्श के साथ संदेश पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा विश्वसनीय ढंग से विस्तृत विवरण दिया जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से दी गई सूचना अधिक प्रभावकारी होती है। यह प्रतियोगी विज्ञापनों द्वारा ध्यान बँटाए बिना ग्राहकों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यह माध्यम जाने-पहचाने व्यक्तियों के एक चुने हुए वर्ग के बीच उत्पादों के विज्ञापन के लिए अधिक उपयुक्त होता है।

विज्ञापनकर्ताओं द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले अन्य प्रकार के माध्यम हैं — पट-प्रदर्शन, चलचित्र, प्रदर्शनियाँ, शो केसों में प्रदर्शन तथा कैलेंडर, डायरी, चाबी के छल्ले तथा बटुए आदि का निशुल्क वितरण, जिन पर लघु संदेश छपा होता है।

विज्ञापन के आदर्श माध्यम में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए — व्यापक पहुँच, संदेश का पर्याप्त संप्रेषण, किफ़ायती, लोचदार, पुनरावृति के अवसर, प्रदर्शन की बारम्बारता तथा परिणामों की दृष्टि से प्रभावकारी। किसी भी एक माध्यम में आदर्श माध्यम के ये सभी लक्षण विद्यमान नहीं होते। प्रत्येक माध्यम कुछ दृष्टियों से आदर्श होता है तथा कुछ दृष्टियों से नहीं। उपयुक्त माध्यम का चयन निम्नलिखित तत्वों से प्रभावित होता है। 1) माध्यम की प्रकृति, 2) उत्पाद की प्रकृति, 3) श्रोताओं का वर्ग, 4) पहुँच, तथा 5) लागत। विज्ञापन एजेंसियाँ कुछ शुल्क अथवा कमीशन लेकर माध्यम विशेषज्ञों के रूप में बड़े-बड़े विज्ञापनकर्ताओं को कुशल सेवाएँ प्रदान करने के उपयोगी कार्य करती हैं। वे विज्ञापन से संबंधित सभी कार्य करती हैं, जिनमें अपने ग्राहकों की ओर से माध्यम का चयन करना भी शामिल है।

9.9 शब्दावली

श्रव्य माध्यम (Audio Media) : ध्वनि के माध्यम से अर्थात् कहे गए शब्दों अथवा संगीत के स्वरों के माध्यम से संदेश पहुँचाना, जैसा कि रेडियो में होता है।

श्रव्य-दृश्य माध्यम (Audio Visual Media) : ध्वनि तथा दृश्यों के माध्यम से संदेश पहुँचाना, जैसा कि टेलीविजन में होता है।

माध्यम (Media) : विज्ञापन संदेश पहुँचाने के साधन अर्थात् संदेश सम्प्रेषण के वाहन।

व्यक्तिगत विक्रय (Personal Selling) : विक्रेताओं द्वारा विक्रय।

मुद्रित माध्यम (Print-Media) : समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से संदेश पहुँचाना।

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत,* नई दिल्ली, सुल्तान चंद एंड संस, 1988, अध्याय चार, खंड पांच।

बी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय,* (इलाहाबाद : किताब महल 1988), अध्याय पंद्रह, खंड चार

जी.एल. जोशी, जी. एल. शर्मा एवं एस.सी. जोशी : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय तेरह।

9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 (i) सत्य, (ii) असत्य, (iii) सत्य, (iv) असत्य (v) सत्य, (vi) असत्य
3 (1) घ, (2) ग, (3) क, (4) ख

ख 3 (i) सत्य, (ii) असत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य (v) सत्य, (vi) असत्य, (vii) सत्य, (viii) सत्य
4 (1) ग, (2) क, (3) ङ, (4) ख, (5) घ

9.12 स्वपरख प्रश्न

1 विज्ञापन के माध्यमों से आपका क्या तात्पर्य है? विज्ञापन के लिये माध्यमों के महत्त्व की व्याख्या कीजिए?

2 विज्ञापन के निम्नलिखित माध्यमों के लक्षणों का विश्लेपण कीजिए।

   1 रेडियो
   2 समाचार-पत्र
   3 टेलीविजन

3 विज्ञापन के बाह्य माध्यमों (outdoor media) से क्या तात्पर्य होता है? कम से कम तीन बाह्य माध्यमों के नाम बताइये तथा उनके लक्षणों का वर्णन कीजिए।

4 एक आदर्श विज्ञापन माध्यम के लक्षणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उपयुक्त माध्यम का चयन करते समय किन बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

5 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

   1 विज्ञापन के माध्यम के रूप में प्रत्यक्ष डाक,
   2 विज्ञापन एजेंसियों की भूमिका,
   3 पत्रिकाओं द्वारा विज्ञापन,
   4 उपयुक्त माध्यम के निर्धारक तत्त्व के रूप में विज्ञापन की लागत।

नोट : ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

इकाई 10 आंतरिक (देशीय) व्यापार तथा वितरण के माध्यम

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 देशीय व्यापार एवं वितरण प्रणाली
10.3 वितरण का माध्यम किसे कहते हैं?
10.4 वितरण के माध्यम के कार्य
10.5 वितरण के विभिन्न माध्यम
10.5.1 उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यम
10.5.2 औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यम
10.6 वितरण के माध्यमों के चयन को प्रभावित करने वाले घटक
10.7 मध्यस्थों के प्रकार
10.7.1 कार्यकारी मध्यस्थ
10.7.2 व्यापारी मध्यस्थ
10.8 मध्यस्थों की भूमिका
10.9 सारांश
10.10 शब्दावली
10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.13 स्वपरख प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- देशीय व्यापार तथा वितरण प्रणाली की व्याख्या कर सकें
- वितरण के माध्यम का आशय एवं इसके कार्य बता सकें
- वितरण के विभिन्न माध्यमों का वर्णन कर सकें
- वितरण के माध्यम के चुनाव को प्रभावित करने वाले घटकों की व्याख्या कर सकें
- विरतण प्रणाली में मध्यस्थों की भूमिका समझा सकें
- विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों में अंतर कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

बड़े पैमाने पर उत्पादन के फलस्वरूप आधुनिक समाज में उपभोक्ता और उत्पादक एक दूसरे से अलग होते जा रहे हैं और उनके बीच फासला बढ़ गया है। भारत के अधिकांश उद्योग कुछ ही स्थानों पर केंद्रित हैं, किन्तु उन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उपभोक्ता देश के कोने-कोने में बिखरे हुए हैं। उदाहरणार्थ, कपड़े की ज्यादातर मिलें बम्बई, अहमदाबाद, कोयम्बटूर आदि स्थानों पर स्थित हैं, जबकि उनमें तैयार किया गया कपड़ा देश की सारी जनता पहनती है। प्रतिष्ठित मारुति-कार हरियाणा में बनती है, परंतु देश-विदेश में रहने वाले लोग इसका क्रय करते हैं। यही बात कृषि-उत्पादों के संबंध में सत्य है। कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के सेवों का आनंद समस्त भारत के लोग लेते हैं। इस तरह का एक अन्य उदाहरण चाय है। चाय का उत्पादन असम में होता है, परंतु इसका इस्तेमाल जगह-जगह किया जाता है। स्पष्ट है कि उत्पादन-केंद्र व उपभोग-केंद्र एक दूसरे से दूर स्थित हैं। फलस्वरूप, उपभोक्ताओं के लिए उत्पादकों के साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार उत्पादकों के

लिए भी सीधे उपभोक्तओं को अपना माल बेचना संभव नहीं होता। अत: निर्मित वस्तुओं को उत्पादन-केंद्रों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने हेतु परिवहन की समुचित व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक है। इस व्यवस्था के अभाव में अनबिका तैयार-माल बेकार हो जाता है और धीरे-धीरे वह कूड़ा-करकट का रूप धारण कर लेता है। माल के उत्पादन तथा उसके उपभोग के बीच समय का भी अंतर होता है। बहुत-सी वस्तुओं का उत्पादन वर्ष-पर्यन्त चलता रहता है, जबकि उनका उपभोग किसी विशेष ऋतु में ही किया जाता है। उदाहरणार्थ, छतरी व रेन कोट का उपयोग केवल वर्षा ऋतु में किया जाता है। इसी प्रकार ऊनी कपड़ों का इस्तेमाल केवल जाड़े में होता है। कुछ अन्य वस्तुएँ यद्यपि किसी ऋतु विशेष में पैदा होती हैं, परंतु उनका उपयोग साल भर चलता रहता है। अत: उपभोग से बहुत पहले उत्पादन किये जाने की दशा में समय का अंतर हो जाना स्वाभाविक ही है। इससे भंडारण की समस्या उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थान एवं समय का अंतर हो जाने से उत्पादक एवं उपभोक्ता एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं और उसके फलस्वरूप क्रमश: परिवहन एवं भंडारण की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वास्तव में उत्पादन की सफलता वितरण की एक कुशल व्यवस्था पर आधारित है। इसीलिए व्यावसायिक क्रियाओं में वस्तुओं के वितरण संबंधी कार्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। **वितरण प्रणाली के द्वारा ही उत्पादित वस्तुएँ सही मात्रा में, सही स्थान पर तथा सही समय पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध की जाती हैं।** संक्षेप में, वितरण प्रणाली केंद्रित उत्पादकों तथा फैले हुए उपभोक्ताओं के बीच की खाई को पाटती है तथा स्थान, समय और रूप की उपयोगिताओं का सृजन करती हैं। प्रस्तुत इकाई में आप वितरण प्रणाली का अध्ययन करेंगे तथा इस बात की जानकारी प्राप्त करेंगे कि :

- वितरण प्रणाली उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक माल के प्रवाह को किस प्रकार सुविधाजनक बनाती है।
- उपभोक्ता वस्तुओं तथा औद्योगिक वस्तुओं के वितरण हेतु सामान्यत: किन-किन माध्यमों का प्रयोग किया जाता है?
- वितरण के माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटक कौन-कौन से हैं?
- वितरण प्रणाली के अंतर्गत सम्मिलित होने वाले विभिन्न मध्यस्थों द्वारा क्या भूमिका निभायी जाती है?

10.2 देशीय व्यापार एवं वितरण प्रणाली

यह तो आपको विदित है कि देश में बनी वस्तुओं का विक्रय देश के अंदर तथा देश के बाहर दोनों जगह किया जा सकता है। किसी देश की सीमाओं के बीच होने वाले लेन-देनों (क्रय-विक्रय) को देशीय व्यापार कहा जाता है। देशीय व्यापार को **आंतरिक (देशी) व्यापार (domestic trade)** भी कहते हैं। इसी आधार पर देश की सीमाओं के बाहर रहने वाले लोगों से लेन-देन को **विदेशी व्यापार (foreign trade)** की संज्ञा दी जाती है। विदेशी व्यापार के विषय में आप इकाई 12 में पढ़ेंगे। इस इकाई में केवल देशीय व्यापार के विषय में जानकारी दी जाएगी।

आजकल देश के शहरों, नगरों व गाँवों के बाज़ारों में अनेकानेक प्रकार की वस्तुओं का लेन-देन होता है। सब जगह विभिन्न प्रकार की छोटी-छोटी दुकानें, जैसे परचून की दुकान, दवाइयों की दुकान, कपड़े की दुकान आदि देखने को मिलती हैं। ये दुकानें उपभोक्ताओं को अपना माल बेचने के उद्देश्य से तरह-तरह की वस्तुओं का प्रदर्शन करती हैं। अधिकांश छोटी दुकानें ऐसी जगहों पर स्थित होती हैं जहाँ ग्राहक सुविधापूर्वक आकर अपनी जरूरत की वस्तुएँ खरीद सकें। इन दुकानों पर बिकने वाली अधिकांश वस्तुएँ उपभोक्ताओं से दूर स्थानों पर या तो किसी कारखाने में या किसी खेत में पैदा की जाती हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि उक्त वस्तुएँ दूर-दूर के शहरों, नगरों या ग्रामों में स्थित दुकानों पर बिकने हेतु किस प्रकार पहुँच जाती हैं। निस्संदेह किसी व्यक्ति अथवा संस्था ने इन वस्तुओं को अंतिम उपभोक्ताओं हेतु उक्त दुकानों पर पहुँचाने का दायित्व निभाया होगा। इस प्रकार **उत्पादन-केन्द्रों से उपभोक्ता-केन्द्रों तक वस्तुओं को पहुँचाने से संबद्ध कार्य-प्रणाली को "वितरण-प्रणाली" कहा जाता है।** वितरण प्रणाली सामान्य उपभोग की वस्तुओं का सुगम एवं सतत प्रवाह बनाए रखने हेतु निम्नलिखित विविध कार्य करती है :

1 **क्रय एवं एकत्रीकरण (Buying and Assembling)** : वस्तुओं को बेचने से पहले उनका क्रय किया जाना अपेक्षित होता है। क्रय का उद्देश्य एकत्रीकरण करना होता है। इसके लिए भिन्न-भिन्न

स्थानों पर स्थित उत्पादकों से संपर्क स्थापित किया जाता है। वितरण के इस कार्य के अंतर्गत वस्तुओं को अलग-अलग स्रोतों (sources) से जुटाना तथा बिक्री होने तक किसी गोदाम अथवा भंडार में उनका एकत्रीकरण करना निहित है। "एकत्रीकरण" उन पदार्थों के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है जो प्राकृतिक रूप व अवस्था में बेचे जाते हैं। इनमें कृषि-पदार्थ, ऊन, रुई, अनाज व खनिज पदार्थ आते हैं। इन सभी पदार्थों का उत्पादन विभिन्न स्थानों पर होता है और उचित वितरण के लिए यह आवश्यक है कि इनका एकत्रीकरण किया जाये।

2 **मानकीकरण एवं श्रेणीकरण (Standardization and Grading) :** व्यवसाय में क्रय व विक्रय को सुगम बनाने की दृष्टि से विभिन्न किस्म के माल का मानकीकरण एवं श्रेणीकरण आवश्यक होता है। मानकीकरण से वस्तुओं के नाप या गुण में एकरूपता आ जाती है। निर्मित माल को उत्पादन के समय ही सामान्यतया आकार, प्रकार, रंग, गुण आदि के आधार पर श्रेणीकृत किया जाता है। अतः बाद में श्रेणीकरण की आवश्कयता नहीं रहती। मानकीकरण व श्रेणीकरण दोनों का उद्देश्य समान किस्म की वस्तुओं को विक्रयार्थ प्रस्तुत करना है। साधारणतया निर्मित माल का श्रेणीकरण उसके उत्पादन की अवस्था में ही कर दिया जाता है। परन्तु कोई किसान अपनी उपज को बेचने से पहले उसका श्रेणीकरण नहीं करता। अतः कृषि-उत्पादों का किस्मानुसार श्रेणीकरण मंडी में मध्यस्थों द्वारा किया जाता है।

3 **ब्रांड नामकरण (Branding) :** "ब्रांड नामकरण" से एक निर्माता की वस्तु तथा दूसरे निर्माता की वस्तु में भेद किया जा सकता है। प्रत्येक निर्माता अपनी वस्तु को सरलता से पहचाने जाने और दूसरे प्रतिस्पर्धियों की वस्तु से अलग दिखाने की इच्छा रखता है। वस्तु की पहचान के लिए एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है ब्रांड नाम देना। इस प्रकार वस्तु को कुछ नाम या व्यापारिक चिह्न दिया जाता है। वस्तु को ब्रांड नाम प्रदान करना विक्रय विकास का आधार होता है। पोस्टमैन तेल, हमाम सोप, ओनिडा टी.वी., ब्रुक बांड चाय आदि कुछ मशहूर ब्रांड हैं। सामान्यतया उपभोक्ता वस्तुओं पर ही ब्रांड लगाया जाता है, लेकिन वर्तमान समय में औद्योगिक वस्तुओं पर भी ब्रांड लगाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

4 **संवेष्टन और डिब्बाबंदी (Packing and Packaging) :** वितरण की दृष्टि से संवेष्टन और डिब्बाबंदी का बहुत महत्त्व है। संवेष्टन का उपयोग मुख्य रूप से वस्तु की सुरक्षा के लिए किया जाता है परंतु विक्रय-संवर्धन (sales promotion) की दृष्टि से भी इसका बहुत महत्त्व है। उपभोक्ता वस्तु की पहचान उसके चिर-परिचित संवेष्टन से ही करता है। उपयुक्त संवेष्टन द्वारा वस्तु को हानिकारक प्रभाव तथा टूट-फूट से बचाया जा सकता है। ग्राहकों को इससे वस्तु के परिवहन, भंडारण एवं उपयोग में सुविधा हो जाती है। कभी-कभी तो केवल संवेष्टन और डिब्बाबंदी के बल पर ही किसी नयी वस्तु को बाज़ार में प्रचलित किया जाता है।

उपरोक्त प्रधान कार्यों के अतिरिक्त वितरण प्रणाली के कुछ गौण कार्य भी हैं, जैसे भण्डारण व परिवहन की व्यवस्था करना, जोखिम-उठाना, बाज़ार सूचनाएँ प्रदान करना, वित्त-प्रबंध करना, आदि। ये सभी कार्य वितरण की शृंखला में सम्मिलित होने वाले विभिन्न मध्यस्थों द्वारा संपन्न होते हैं।

बोध प्रश्न क

1 देशीय व्यापार तथा विदेशी व्यापार में अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित कथनों में से कौन-से सत्य हैं और कौन-से असत्य?

i) वितरण का आशय केवल वस्तुओं के क्रय व विक्रय से होता है।

ii) ब्रांड नाम (branding) होने से क्रेताओं को वस्तुओं की पहचान सुगमतापूर्वक करने में मदद मिलती है।

iii) श्रेणीकरण (grading) तथा डिब्बाबंदी (packaging) समानार्थक शब्द हैं।

iv) वितरण प्रणाली का आशय वस्तुओं को कारखानों से मंडियों तक पहुँचाना होता है।

v) पूर्ति के विभिन्न स्रोतों से वस्तुओं के संकलन को एकत्रीकरण कहा जाता है।

3 बताइए कि निम्नलिखित लेन-देन देशीय व्यापार के अंतर्गत आते हैं अथवा विदेशी व्यापार के।

i) बंबई के एक थोक व्यापारी ने दिल्ली के किसी फुटकर व्यापारी को माल बेचा।

ii) राजेश ने अपने व्यक्तिगत उपयोग हेतु दिल्ली के किसी व्यापारी से एक रंगीन टी.वी. खरीदा। बाद में वह (राजेश) उस टी.वी. को अपने साथ लेकर नेपाल चला गया।

iii) मद्रास के एक थोक व्यापारी ने जापान के किसी विनिर्माता से कैमरों का क्रय किया।

iv) हैदराबाद (भारत) के एक विनिर्माता ने लंदन के किसी थोक व्यापारी को चमड़े का सामान बेचा।

10.3 वितरण का माध्यम किसे कहते हैं (What is a Channel of Distribution)?

पीछे आप पढ़ चुके हैं कि वितरण-प्रणाली का संबंध वस्तुओं को उत्पादन-केन्द्रों से उपभोक्ता-केन्द्रों की ओर प्रवाहित करने की क्रिया से होता है और इस प्रणाली के अंतर्गत बहुत से कार्य सम्मिलित होते हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि वितरण संबंधी कार्यों का निष्पादन वितरण-प्रणाली की विभिन्न एजेंसियों द्वारा किया जाता है। वितरण-प्रणाली में भाग लेने वाले मुख्य पक्ष हैं — i) विनिर्माता, ii) मध्यस्थ अथवा माल के हस्तांतरण में लगे हुए बिचौलिये, iii) व्यापार में सहायक एजेंसियाँ, तथा iv) उपभोक्ता। आइए अब हम प्रत्येक पक्ष द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका का अध्ययन करें।

वस्तुओं का उत्पादन विनिर्माता द्वारा किया जाता है। अत: विनिर्माता वितरण-प्रणाली की प्रारंभिक कड़ी है। वितरण-प्रणाली में भाग लेने वाला दूसरा पक्ष मध्यस्थों (middlemen) का है। मध्यस्थ लोग प्रत्यक्ष बातचीत के आधार पर क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच आपसी संपर्क बनाते हैं और उन्हें व्यापारिक लेन-देन करने में सहायता देते हैं। इनके द्वारा माल का स्वामित्व लेना आवश्यक नहीं है। इनका मुख्य कार्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के विनिर्माताओं का पता लगाना, उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करना और साथ ही वस्तुओं का वितरण करना होता है। उक्त प्रक्रिया के अंतर्गत मध्यस्थ लोग विभिन्न कार्य करते हैं, जैसे — माल का क्रय व विक्रय, एकत्रीकरण, मानकीकरण व श्रेणीकरण, संवेष्टन, जोखिम उठाना आदि। मध्यस्थ के अलावा वितरण-प्रणाली में भाग लेने वाले पक्षों में व्यापार में सहायक एजेंसियाँ भी शामिल होती हैं। ये एजेंसियाँ मध्यस्थों से भिन्न स्वतंत्र व्यावसायिक संगठनों के रूप में प्रस्तुत होती हैं। इनका कार्य मध्यस्थों के ज़रिये उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचने वाले माल के प्रवाह को सुगम बनाना होता है। विज्ञापन एजेंसियाँ, बैंकिंग संस्थाएँ, बीमा कंपनियाँ, परिवहन एजेंसियाँ, संग्रहण की सुविधा प्रदान करने वाले भंडारगृह आदि प्रमुख सहायक एजेंसियाँ हैं। व्यापार में सहायक इन एजेंसियों के विषय में आप इकाई 1 के अंतर्गत पढ़ चुके हैं। वितरण-प्रणाली में भाग लेने वाला चौथा अथवा अंतिम पक्ष उपभोक्ताओं का है।

वितरण के माध्यम के अंतर्गत मुख्य रूप से "मध्यस्थ" आते हैं। इस आधार पर उत्पादकों से उपभोक्ताओं को प्रवाहित होने वाले माल द्वारा अपनाए गए मार्ग को वितरण का माध्यम कहा जा सकता है। यहाँ "प्रवाह" का आशय माल के भौतिक-वितरण एवं स्वामित्व-हस्तांतरण से है। वितरण की शृंखला का

सीधा संबंध माल के हस्तांतरण से होता है। यह हस्तांतरण प्रत्यक्ष-विक्रय द्वारा अथवा विचौलियों के माध्यम से किया जा सकता है। यह तो आपको मालूम है कि अधिकांश उत्पादक अपना माल सीधे उपभोक्ताओं को नहीं वेचते। अपने माल के विक्रय हेतु वे विभिन्न मध्यस्थों की मदद लेते हैं। इन मध्यस्थों द्वारा तीन प्रकार की उपयोगिताओं का सृजन किया जाता है — स्थान मूलक उपयोगिता, कालमूलक उपयोगिता एवं रूप मूलक उपयोगिता। अत: **वितरण का माध्यम उन बिचौलिया-संस्थाओं का एक जाल है जो उत्पादकों का माल उपभोक्ताओं को सौपने हेतु विभिन्न प्रकार के परस्पर-संबंधित एवं तालमेल बिठाने संबंधी कार्यों का निष्पादन करता है।**

10.4 वितरण के माध्यम के कार्य (Functions of Channels of Distribution)

वितरण के माध्यम के कार्यों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1 **लेन-देन संबंधी कार्य (Transactional functions) :** माल के क्रय-विक्रय संबंधी आवश्यक कार्यों को लेन-देन संबंधी कार्य कहते हैं। माल को खरीदने, वेचने एवं जोखिम उठाने के कार्य इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। वितरण के माध्यम इन तीनों कार्यों का निष्पादन भली-भाँति करते हैं। साधारणतया उत्पादक अपना माल मध्यस्थों को वेचते हैं। कालान्तर में मध्यस्थ इस प्रकार खरीदे गये माल का विक्रय उपभोक्ताओं को कर देते हैं। वितरण के माध्यम के अंतर्गत माल का क्रय-विक्रय होने से उसका स्वामित्व वदल जाता है और इसके फलस्वरूप माल का प्रवाह उत्पादकों से उपभोक्ताओं को संचलित होता है। स्मरण रहे कि क्रय-विक्रय के अभाव में कोई भी लेन-देन संभव नहीं हो सकता। वितरण के माध्यम के कारण कुल लेन-देनों की संख्या बहुत कम हो जाती है। साथ ही उत्पादकों की विक्रय-क्षमता भी कई गुना बढ़ जाती है। माल का प्रत्येक क्रय जोखिमपूर्ण होता है। उदाहरणार्थ, एक मध्यस्थ ने लाभ कमाने के उद्देश्य से माल का क्रय किया। परन्तु बाज़ार में माल की कीमत गिर जाने से उसे हानि उठानी पड़ी। स्पष्ट है कि वितरण के माध्यम में भागीदारों को ही हानि की जोखिम उठानी पड़ती है।

2 **माल के भौतिक हस्तांतरण संबंधी कार्य (Logistical functions) :** व्यावसायिक माल के भौतिक विनिमय (physical exchange) हेतु आवश्यक कार्य माल के हस्तांतरण संबंधी कार्य कहलाते हैं। उदाहरणार्थ, एकत्रीकरण, भंडारण, श्रेणीकरण तथा परिवहन संबंधी कार्य माल के भौतिक विनिमय को सुगम बनाते हैं। वितरण का माध्यम इन कार्यों के निष्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

ग्राहकों से प्राप्त आदेशों को शीघ्र पूरा करने के उद्देश्य से माल का पर्याप्त मात्रा में एकत्रीकरण करना आवश्यक होता है। कई बार ग्राहकों को माल छाँटने की सुविधा प्रदान करने हेतु तरह-तरह के माल का एकत्रीकरण किया जाता है। श्रेणीकरण एवं संवेप्टन से माल का उठाव-धराव एवं विक्रय सुगम बन जाता है। भंडारण की उपयुक्त व्यवस्था माल को क्षतिग्रस्त होने से बचाती है और ग्राहकों को माल की नियमित सप्लाई पहुँचाने में सहायक होती है। परिवहन के माध्यम से माल ग्राहकों द्वारा अपेक्षित स्थानों पर उपलब्ध किया जाता है। इन सभी कार्यों को पूरा करने का श्रेय वितरण के माध्यम को जाता है। वितरण के माध्यम के कारण अंतिम उपभोक्ताओं को आवश्यक माल सही समय व सही स्थान पर तथा सुविधा से प्राप्त हो जाता है।

3 **व्यापार में सहायक कार्य (Facilitating functions) :** ये कार्य व्यावसायिक लेन-देनों के साथ-साथ माल के भौतिक विनिमय को सुविधाजनक बनाते हैं। व्यापारियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, माल को छाँटने की सुविधा प्रदान करना, माल का श्रेणीकरण एवं पैकिंग करना, विक्रयोपरान्त अनुरक्षण (maintenance) की सुविधा देना, माल का अंतिम मूल्य निर्धारित करना, बाज़ार सबंधी सूचनाएँ उपलब्ध करना आदि सहायक कार्यों के अंतर्गत आते हैं। व्यापार के सहायक कार्य के कुछ अन्य रूप भी हैं, जैसे माल उधार बेचना तथा विक्रयोपरान्त सेवा (after sales service) प्रदान करना। इनके अलावा प्राय: विक्रेता अपने ग्राहकों को वस्तुओं के उपयोग में सहायता एवं सलाह देता है। उत्पादक अपने व्यापारियों को माल बेचने हेतु उपयोगी परामर्श देते हैं

और उसी प्रकार व्यापारी भी उत्पादकों को ग्राहकों की रुचि, फैशन व माँग के बारे में समय-समय पर सूचित करते हैं।

संक्षेप में, वितरण के माध्यम के विभिन्न कार्य हैं, माल का क्रय, विक्रय, एकत्रीकरण, संग्रहण, श्रेणीकरण, परिवहन, जोखिम उठाना, विक्रयोपरान्त सेवा सुलभ करना, वित्तीय सहायता देना, बाजार संबंधी सूचनाएँ उपलब्ध करना आदि। माल की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इन कार्यों का सापेक्ष महत्त्व कम अथवा अधिक हो सकता है। उदाहरणार्थ, शीघ्र नाशवान माल तथा भारी सामग्री (जैसे-पेट्रोल, कोयला, लोहा) के संबंध में परिवहन तथा भंडारण ज्यादा महत्वपूर्ण है। वाहन तथा कंप्यूटर जैसी अधिक परिष्कृत वस्तुओं की दशा में विक्रयोपरान्त सेवा अधिक आवश्यक है।

10.5 वितरण के विभिन्न माध्यम (Different Channels of Distribution)

पिछले खंड में आप वितरण के माध्यम की प्रकृति तथा इसके कार्यों का अध्ययन कर चुके हैं। अब हम उत्पादकों अथवा विनिर्माताओं द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले वितरण के विभिन्न माध्यमों का विवेचन करेंगे। वितरण के माध्यमों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है : 1) प्रत्यक्ष माध्यम तथा 2) अप्रत्यक्ष माध्यम (मध्यस्थों का उपयोग)।

1 **प्रत्यक्ष माध्यम** (Direct channels) : वितरण के इस माध्यम के अंतर्गत उत्पादक अपनी वस्तुओं का विक्रय सीधे उपभोक्ताओं को करता है। अत: उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच कोई भी मध्यस्थ नहीं होता। उपभोक्ताओं को माल पहुँचाने का यह सबसे छोटा माध्यम है। इस प्रणाली के अंतर्गत उत्पादक अपने यात्री-विक्रेताओं (घर बेचने वाले वेतन भोगी कर्मचारी), फुटकर बिक्री की दुकानों अथवा शोरूम के माध्यम से उपभोक्ताओं के साथ प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करता है। वह अपने विक्रेताओं की सहायता से संभाव्य ग्राहकों का पता लगाकर उनसे माल के लिए आर्डर प्राप्त कर सकता है। प्राप्त आर्डर की पूर्ति हेतु वह अपने स्टॉक में रखे माल का उपयोग कर सकता है। उत्पादक अलग-अलग क्षेत्रों में दुकानें या शोरूम खोलकर भी अपना माल सीधे उपभोक्ताओं को बेच सकते हैं। इस प्रणाली को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है :

1 उत्पादक → यात्री सेल्समैन → उपभोक्ता

2 उत्पादक → फुटकर दुकान/शोरूम → उपभोक्ता

2 **अप्रत्यक्ष माध्यम** (Indirect channels) : उत्पादक द्वारा प्रत्येक वस्तु का विक्रय सीधे उपभोक्ताओं को नहीं किया जा सकता। अत: वह वितरण के माध्यम में भाग लेने वाले विभिन्न मध्यस्थों (जैसे थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी तथा व्यापारिक एजेंट) की सहायता लेता है। मध्यस्थों के माध्यम से माल बेचने को अप्रत्यक्ष माध्यमों की प्रणाली कहा जाता है। अप्रत्यक्ष माध्यम निम्नलिखित चार प्रकार के हो सकते हैं :

1 उत्पादक → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता

2 उत्पादक → थोक व्यापारी → उपभोक्ता

3 उत्पादक → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता

4 उत्पादक → एजेंट → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता

i) **उत्पादक, फुटकर व्यापारी एवं उपभोक्ता** : इस माध्यम में उत्पादक अपना माल सीधे फुटकर व्यापारियों को बेचता है। वह निश्चित समयान्तरों (intervals) पर फुटकर व्यापारियों की आवश्यकताओं का पता लगाकर तदनुसार उनको माल सप्लाई करता है। आवश्यक होने पर स्वयं फुटकर व्यापारी भी अपने क्षेत्र में स्थित उत्पादक के गोदाम से माल प्राप्त करके उसे उपभोक्ताओं को बेचता है।

ii) **उत्पादक, थोक व्यापारी एवं उपभोक्ता** : यह माध्यम उपरोक्त माध्यम से मिलता-जुलता है। अंतर केवल इतना है कि इसके अंतर्गत उत्पादक उपभोक्ताओं को अपना माल थोक व्यापारियों के माध्यम से बेचता है।

iii) **उत्पादक, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी एवं उपभोक्ता :** इस माध्यम के अंतर्गत उत्पादक थोक व्यापारियों तथा फुटकर व्यापारियों दोनों की सेवाओं का उपयोग करता है। वह बड़ी मात्रा में अपना माल थोक व्यापारियों को बेचता है और फिर ये थोक व्यापारी वह माल भिन्न-भिन्न इलाकों के फुटकर व्यापारियों को बेचते हैं। अंत में फुटकर व्यापारी उस माल का विक्रय उपभोक्ताओं को करते हैं।

iv) **एजेंट, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी एवं उपभोक्ता :** उत्पादक केवल व्यापारिक एजेंटों से लेन-देन करता है। व्यापारिक एजेंट उत्पादक का माल थोक व्यापारियों को बेचते हैं और फिर ये थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में माल बेचते हैं। ये फुटकर व्यापारी उसे अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं। वितरण का यह सबसे लंबा मार्ग है।

उपरोक्त आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वितरण के बहुत-से माध्यम प्रचलित हैं। आइए हम देखें कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं के वितरण के माध्यमों में किस प्रकार भिन्नता हो जाती है। इसके लिए मूल रूप से वस्तुओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है : i) उपभोक्ता वस्तुएँ (consumer goods) तथा ii) औद्योगिक वस्तुएँ (industrial goods)। अब हम इन दो प्रकार की वस्तुओं के लिए उपर्युक्त वितरण के माध्यम का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

10.5.1 उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यम

घरेलू उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग किए जाने वाले माल को उपभोक्ता माल कहा जाता है। उपभोक्ता माल के अंतर्गत सामान्यतया स्टेशनरी, कपड़ा, जूते, कार, प्रेशर कुकर, टेलीविजन, बिजली के घरेलू उपकरण, ट्रांजिस्टर आदि वस्तुओं की अनेक मदें सम्मिलित होती हैं। विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यम भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कई बार तो प्रत्येक वस्तु के लिए अलग-अलग मार्ग अपनाया जाता है। चित्र 10.1 को सावधानीपूर्वक देखिए। इससे कुछ उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यमों की जानकारी मिलती है। जैसा कि इस चित्र में दिखाया गया है, कभी-कभी उपभोक्ता द्वारा सीधे फैक्टरी में जाकर वहाँ से माल खरीद लिया जाता है अथवा मूल्य-सूची देखकर विनिर्माता को माल के लिए आर्डर भेज दिया जाता है। कार, वस्त्र, फर्नीचर, पाठ्य-पुस्तकें, जूते आदि टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ सामान्यत: फुटकर व्यापारियों के माध्यम से वितरित की जाती हैं। बहुत से निर्माता अपनी निजी फुटकर-विक्री की दुकानें स्थापित करके भी सीधे उपभोक्ताओं को अपना माल बेचने का प्रयास करते हैं। बाटा कम्पनी की जूतों की दुकानें तथा दिल्ली क्लॉथ मिल्स की कपड़े की फुटकर-विक्री की दुकानें इस प्रकार की विक्री का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। स्पेयर पार्ट, स्टोरियों, विडियो रिकॉर्डर आदि का वितरण समान्यतया थोक व्यापारियों एवं फुटकर व्यापारियों के द्वारा किया जाता है। दैनिक आवश्यकता की उपभोक्ता वस्तुओं, जैसे अनाज, चीनी, नमक, तेल, साबुन, कागज, पेंसिल आदि का वितरण प्राय: एजेंटों अथवा दलालों, थोक व्यापारियों तथा फुटकर व्यापारियों के माध्यम से किया जाता है।

10.5.2 औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यम

यह तो आपको मालूम है कि माल के उत्पादन में इस्तेमाल किए गए माल को औद्योगिक माल कहा जाता है। औद्योगिक वस्तुएँ साधारणतया चार वर्गों में बाँटी जाती हैं :

i) विरचना के सामान (fabricating materials) व पुर्जे,
ii) उपकरण (equipments),
iii) पूर्ति वस्तुएँ (supplies), जैसे कोयला, तेल, ईंधन आदि।
iv) कच्चे-माल जैसे गन्ना, रुई, कहवा, तेल के बीज, कच्चा लोहा आदि।

इनमें से पहले तीन तो कारखानों में बनकर निकलते हैं और चौथा खेतों, वनों अथवा खानों से प्राप्त किया जाता है।

औद्योगिक माल की श्रेणी में सम्मिलित होने वाली विभिन्न वस्तुओं के वितरण के माध्यम भी भिन्न-भिन्न हैं। चित्र 10.2 को ध्यान से देखिए। इसमें कुछ औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यमों को प्रदर्शित किया गया है। हवाई जहाज, मेनफ्रेम कम्प्यूटर्स, भारी मशीनें, तापन संयंत्र आदि अधिक मूल्यवान औद्योगिक वस्तुएँ सीधे क्रेता को बेची जाती हैं। कई बार संभाव्य क्रेता से संपर्क करने हेतु सेल्समैन नियुक्त किये जाते हैं। सापेक्ष रूप से कम मूल्यवान वस्तुएँ, जैसे ट्रक, कन्वेयर सिस्टम आदि की सप्लाई वितरकों के माध्यम से की जाती है। आपको ज्ञात होगा कि उद्योग द्वारा बहुत-सी कृषि वस्तुओं का भी

चित्र 10.1

उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यम

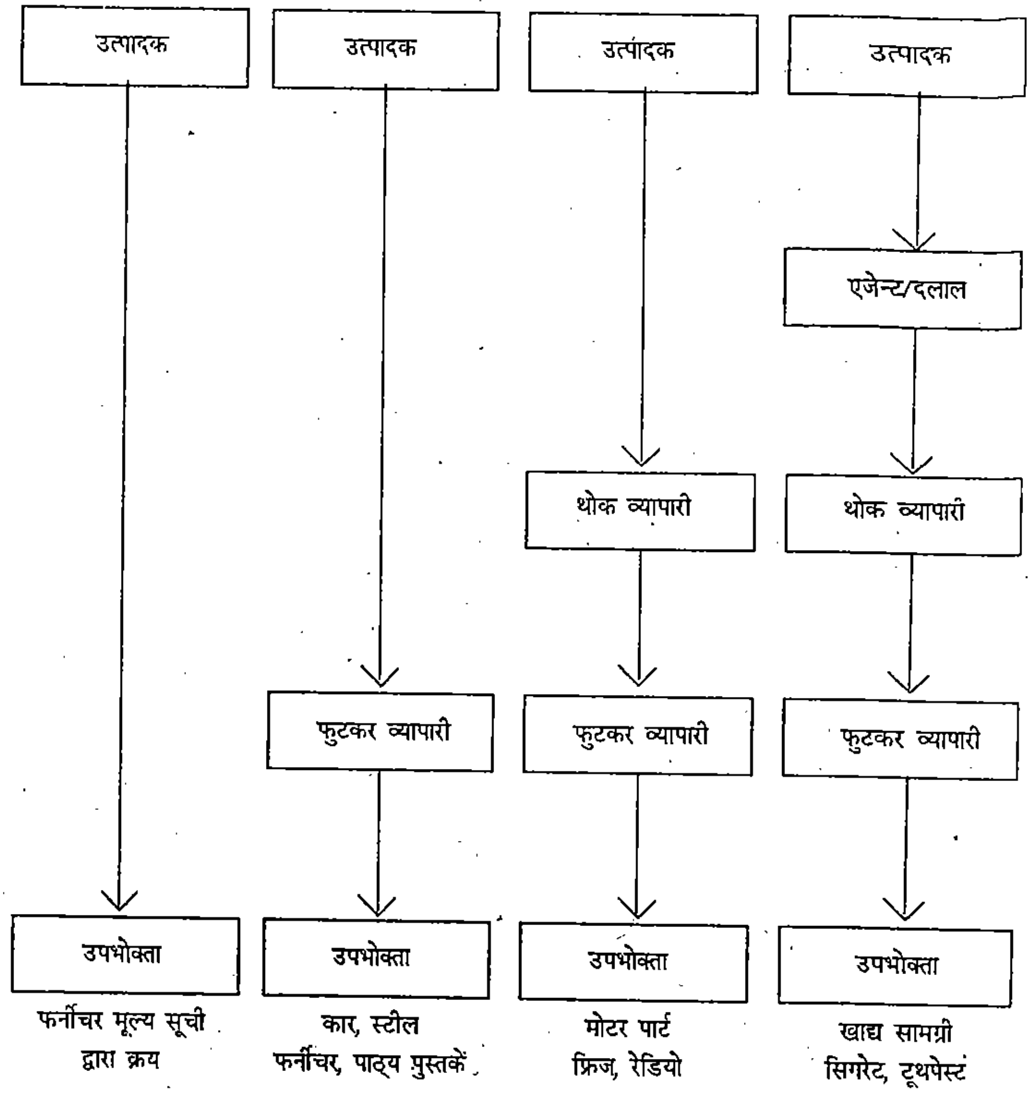

चित्र 10.2

औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यम

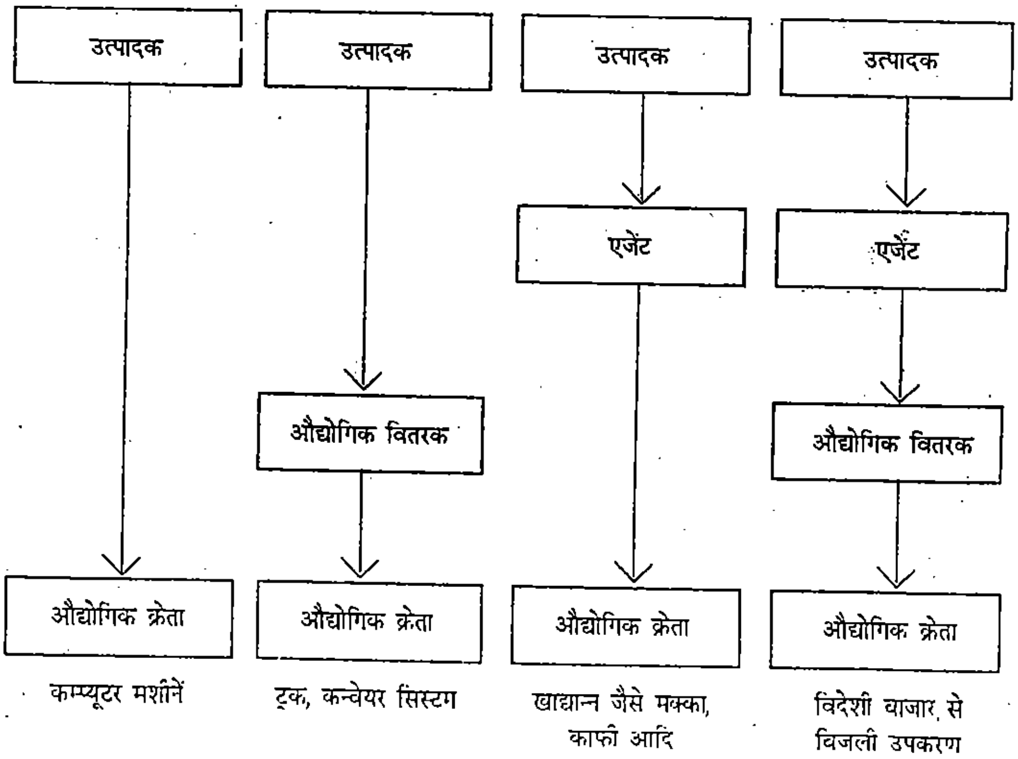

उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, चाय का पाउडर बनाने हेतु चाय की पत्तियों का प्रक्रमण (processing) किया जाता है। औद्योगिक क्रेताओं द्वारा कृषि उत्पादों (जैसे मकई, कहवा, सोयाबीन आदि) का क्रय एजेंट मध्यस्थों के माध्यम से किया जाता है। इसी प्रकार विदेशी बाजार से आयात किये गये बिजली के पुर्जे किसी एजेंट अथवा औद्योगिक वितरक से प्राप्त किये जा सकते हैं।

10.6 वितरण के माध्यमों के चेयन को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Influencing the Choice of Channels)

हम पढ़ चुके हैं कि माल के वितरण हेतु बहुत से माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। वितरण का माध्यम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष और छोटा अथवा लंबा हो सकता है। परन्तु प्राय: अप्रत्यक्ष वितरण में प्रत्यक्ष वितरण से व्यय कम होता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। अत: वितरण के माध्यम का चुनाव विनिर्माता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। व्यवसाय विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विनिर्माता को अनेक विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने हेतु निर्णय लेना पड़ता है। जिन घटकों के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है, उनका संक्षिप्त विवेचन हम आगे करने जा रहे हैं। स्मरण रहे कि किसी विशिष्ट माध्यम को प्रयोग में लाने का निश्चय करते समय निहित लागतों एवं ग्राहकों का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक होता है। व्यवहार में, निर्माता उस वितरण माध्यम को चुनेगा जो कम-से-कम लागत पर ज्यादा-से-ज्यादा माल के सहज विक्रय का आश्वासन दे।

वितरण के माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटक निम्नलिखित हैं :

1 **वितरण की नीति (Distribution policy) :** वितरण के माध्यम के चुनाव में वस्तुओं के विनिर्माता तीन प्रकार की नीतियाँ अपना सकते हैं — गहन वितरण (intensive distribution), चयनात्मक वितरण (selective distribution), तथा एकाकी वितरण (exclusive distribution)। कुछ विनिर्माता हर संभव वितरण मार्ग द्वारा अपनी वस्तुएँ ग्राहकों तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। वे अपने ग्राहकों को माल बेचने हेतु वितरण के एक से अधिक माध्यमों का प्रयोग करते हैं। इसे गहन वितरण कहते हैं। विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ताओं को अपने ब्रांड के प्रति निष्ठावान बनाना गहन वितरण का एक ठेठ उदाहरण है। इस नीति का उद्देश्य उन सभी स्थानों पर अपनी वस्तुएँ बेचना है जहाँ अंतिम उपभोक्ता संभवत: प्रतीक्षा करता है। निरंतर उपभोग की अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं का विक्रय गहन वितरण की नीति के अनुसार किया जाता है। इनमें खाद्य-सामग्री, पेन, पेंसिल, सिगरेट, साबुन, कागज, बालों का तेल इत्यादि सम्मिलित हैं। इन वस्तुओं का वितरण थोक एवं फुटकर विक्रेताओं के माध्यम से किया जाता है। गहन वितरण की नीति अपनाने वाला विनिर्माता बिक्री के परिणाम को अधिक महत्त्व देता है।

   दूसरी नीति "चयनात्मक वितरण" की है। इस नीति के अनुसार विनिर्माता विशेष उपयोग वाली तथा उच्च किस्म की वस्तुएँ ग्राहकों को उपलब्ध कराने हेतु किसी बाज़ार-क्षेत्र के लिए एक सीमित संख्या में थोक एवं फुटकर विक्रेताओं का चुनाव करता है। वह कुछ विश्वसनीय थोक एवं फुटकर विक्रेताओं को ही अपनी वस्तुएँ बेचने का अधिकार देता है। कम्प्यूटर, टेलीविजन, घड़ी, सिले-सिलाए वस्त्र आदि विशिष्ट वस्तुओं का विक्रय कुछ गिने-चुने प्रतिष्ठित थोक एवं फुटकर विक्रेताओं के माध्यम से किया जाता है। चयनात्मक वितरण से वस्तु अथवा ब्रांड की प्रतिष्ठा बढ़ती है और निर्माता की वितरण लागत कम हो जाती है। मध्यस्थ व्यापारियों को भी केवल सीमित प्रतियोगियों से ही मुकाबला करना पड़ता है।

   कभी-कभी वैज्ञानिक यंत्र, जटिल मशीनें, वातानुकूलन साजो-सामान तथा कार बनाने वाली कंपनियाँ बाजार-क्षेत्र में किसी विशिष्ट थोक या फुटकर विक्रेता को अपना माल बेचने का पूर्ण दायित्व सौंप देती हैं। अन्य शब्दों में, विनिर्माता केवल एक ही वितरक की नियुक्ति करता है। इस प्रकार नियुक्त थोक अथवा फुटकर विक्रेता अपने तकनीकी ज्ञान व विशेष अनुभव के कारण संबंधित वस्तु का अकेला वितरक बन जाता है और उसके द्वारा किया गया वितरण "एकाकी वितरण" कहलाता है। अत: विभिन्न परिस्थितियों में वितरण के माध्यम का चुनाव स्वयं विनिर्माता की वितरण नीति पर निर्भर करता है।

2 **वस्तु के प्रकार (Charactersitics of the product)** : वस्तु की प्रकृति एवं इसके प्रकार भी वितरण के माध्यम के चयन को प्रभावित करते हैं। दूध, पनीर, अंडों जैसी शीघ्र खराब हो जाने वाली वस्तुओं हेतु प्रत्यक्ष-विक्रय अथवा छोटे-से-छोटे वितरण के माध्यम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार बहुत भारी व बड़े आकार की वस्तु (जैसे सीमेंट, स्टील, ट्रक) के वितरण एवं उठाव-धराव संबंधी लागतें अधिक होने के कारण छोटा वितरण-माध्यम उपयुक्त रहता है। यही नहीं, सावधानी से इस्तेमाल होने वाले बिजली व इलेक्ट्रोनिक्स के परिष्कृत उपकरणों को भी प्रत्यक्ष-विक्रय अथवा छोटे-से-छोटे वितरण माध्यम द्वारा बेचा जाता है। इसके विपरीत, हल्के वजन और छोटे आकार की वस्तुओं (जैसे सिले-सिलाए वस्त्र, पाकेट कैल्कुलेटर, स्टेशनरी, दंत मंजन, टूथ ब्रुश, वेषभूषा सामग्री आदि) के लिए प्रायः लंबा वितरण माध्यम प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिक्स के खिलौने तथा साधारण घड़ियों के गहन वितरण हेतु लंबे माध्यम का चुनाव किया जाता है। संक्षेप में, वस्तु शीघ्र नाशवान है या देर तक रखी जा सकती है, वह हल्की है या भारी, वह साधारण है या अधिक परिष्कृत आदि लक्षणों के अनुसार वितरण का माध्यम बड़ा या छोटा हो सकता है।

3 **ग्राहकों के प्रकार (Characteristics of target customers)** : बड़ी संख्या में ग्राहकों तक पहुँचने तथा किसी विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र के बाजारों में गहन वितरण करने हेतु सामान्यतया लंबे एवं बहुसंख्यक वितरण माध्यम आवश्यक होते हैं। ये ही वितरण माध्यम उन ग्राहकों के लिए भी उपयुक्त होते हैं जो बार-बार कम मात्रा में वस्तुओं का क्रय करते रहते हैं। परन्तु किसी छोटे स्थान पर केंद्रित गिने-चुने उपभोक्ताओं द्वारा यदि बड़ी-बड़ी मात्रा में वस्तुओं का क्रय किया जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में प्रत्यक्ष विक्रय एवं छोटा वितरण माध्यम उपयुक्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त, ग्राहक किस स्थान पर वस्तु खरीदना चाहते हैं, उनकी क्रय संबंधी आदतें क्या हैं, उनकी रुचि, फैशन या पसंद कैसी है, उनके उपभोग का संकल्प क्या है, उनके द्वारा किस प्रकार की सेवा या सुविधा अपेक्षित है, आदि तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए वितरण के माध्यम का चुनाव किया जाना चाहिए।

4 **पूर्ति संबंधी लक्षण (Supply characteristics)** : किसी भौगोलिक क्षेत्र में केंद्रित कुछ गिने-चुने विनिर्माताओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिए सामान्यतया छोटे वितरण माध्यम का चयन किया जाता है। यही बात उस विनिर्माता के संबंध में विशेष रूप से लागू होती है जो स्वयं बाज़ार के एक बड़े हिस्से को नियंत्रित करता है। इसके विपरीत, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित दूर-दूर के विनिर्माता द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं के लिए वितरण का लंबा मार्ग ही उपयुक्त रहता है।

5 **मध्यस्थों की उपलब्धता (Availability of middlemen)** : उपयुक्त मध्यस्थों की उपलब्धता तथा उनके द्वारा दी जाने वाली सेवाएँ भी वितरण के माध्यम के चुनाव में निर्णायक तत्त्व हैं। यही कारण है कि मध्यस्थ थोक व फुटकर व्यापारियों से ग्राहकों द्वारा वित्तीय सुविधा, प्रमाणीकरण, मानकीकरण, संवेष्टन, ब्रांड नामकरण, भंडारण आदि सेवाओं की आशा की जाती है। मध्यस्थ व्यापारी बाजार में कहाँ स्थित हैं, उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है तथा उनका कारोबार कितना बड़ा है, इत्यादि बातें माल के कुशल वितरण को प्रभावित करती हैं। यदि किसी वितरण माध्यम में शामिल होने वाले मध्यस्थ व्यापारी विश्वसनीय एवं कार्य-कुशल हैं, तो उन्हीं को चुना जाएगा।

6 **वितरण प्रणाली में प्रतिस्पर्धा (Competition in the distribution system)** : प्रत्येक विनिर्माता अपनी वस्तुओं के विक्रय हेतु प्रतिष्ठित एवं साधन संपन्न थोक व फुटकर व्यापारियों का चुनाव करना चाहता है। इसके लिए उसे अन्य विनिर्माताओं के साथ होड़ भी करनी पड़ती है। इसी प्रकार थोक व फुटकर व्यापारी भी प्रतिष्ठित विनिर्माताओं के लोकप्रिय ब्रांडों की वस्तुओं का स्वागत करते हैं और इसके लिए अन्य व्यापारियों से होड़ करते हैं। कभी-कभी विनिर्माता वस्तु के अन्य विनिर्माताओं द्वारा प्रयोग में लाये गये वितरण के माध्यम का ही चयन कर लेता है। बहुधा देखा गया है कि किसी विनिर्माता द्वारा अमुक थोक व्यापारी के माध्यम से एकाकी वितरण की व्यवस्था होने पर अन्य सभी विनिर्माताओं द्वारा उसका अनुकरण कर लिया जाता है। अतः वितरण-प्रणाली में व्यापक प्रतिस्पर्धा के कारण विनिर्माता को वितरण माध्यम का चुनाव करने में सीमित स्वतंत्रता उपलब्ध होती है।

7 **संभावित विक्री का परिमाण (Potential volume of sales) :** विक्री के संबंध में निर्धारित लक्ष्य भी वितरण के माध्यम के चयन को प्रभावित करता है। यही कारण है कि विभिन्न वितरण-मार्गों के द्वारा अपने ग्राहकों तक पहुँचने की क्षमता एवं विक्री का परिमाण कम अथवा अधिक हो सकता है। कोई छोटा वितरण-मार्ग अपर्याप्त होने की दशा में लक्ष्य प्राप्त करने हेतु किसी लंबे वितरण-मार्ग का प्रयोग आवश्यक हो सकता है। वास्तव में, विभिन्न वितरण माध्यमों द्वारा संभाव्य-विक्री का अनुमान लगाते समय प्रतियोगी स्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

8 **वितरण की लागत (Cost of distribution) :** वितरण के माध्यम का चुनाव करते समय विभिन्न माध्यमों की लागत ज्ञात करके उपभोक्ता मूल्य पर उसका प्रभाव आँकना चाहिए। साधारणतया कम लागत वाले वितरण माध्यम ही प्रयोग में लाए जाते हैं। परन्तु ग्राहकों की सुविधा हेतु किसी महँगे वितरण माध्यम को भी पसंद किया जा सकता है। मध्यस्थों द्वारा निष्पादित कार्यों में वृद्धि के साथ-साथ वितरण की लागत भी बढ़ जाती है। अत: विनिर्माताओं को ऐसे वितरण माध्यम पर भी विचार कर लेना चाहिए, जिसकी लागत तुलनात्मक रूप से अधिक है। वह केवल इसलिए भी महँगी हो सकती है कि संबंधित मध्यस्थ व्यापारी बहुत-सी सेवाएँ देता हो।

9 **लाभ पर दीर्घकालिक प्रभाव (Long-run effect on profit) :** प्रत्यक्ष विक्री, छोटा वितरण माध्यम एवं बड़ा वितरण माध्यम का अल्पकाल एवं दीर्घकाल दोनों में विनिर्माता के लाभ पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। वस्तु की माँग अधिक होने की दशा में अधिक से अधिक ग्राहकों तक पहुँचने के लिए एक से अधिक वितरण के माध्यमों का प्रयोग लाभकारी सिद्ध हो सकता है। परंतु बाजार में प्रतियोगी वस्तुओं के आगमन से कुछ समय बाद यह माँग गिर भी सकती है। ऐसी परिस्थिति में बड़े माध्यम का प्रयोग किफ़ायती नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि वितरण के माध्यम का चुनाव करते समय भावी परिस्थितियों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इस तत्त्व का एक अन्य पहलू भी है। वितरण के माध्यम को स्थापित करने में कुछ आरंभिक व्यय करना पड़ता है। यह व्यय एक निवेश है और इसका लाभ दीर्घकाल में ही प्राप्त हो पाता है। अत: किसी वितरण माध्यम की लाभकारिता का मूल्यांकन करते समय अल्पकालिक लाभ के साथ-साथ उसके दीर्घकालिक लाभ को भी यथेष्ट महत्त्व देना चाहिए।

बोध प्रश्न ख

1 वितरण के माध्यम से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

गहन वितरण एवं एकाकी वितरण में अंतर बताइए।

....

....

....

3 वितरण का प्रत्यक्ष माध्यम किसे कहते हैं?

....

....

....

4 बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य?

i) वितरण के माध्यम में वस्तुओं का क्रय-विक्रय केवल एक या दो बार होता है।

ii) औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यम में औद्योगिक वितरक अथवा व्यापारी एक आवश्यक कड़ी है।

iii) दैनिक प्रयोग की उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण विनिर्माता केवल अपने द्वारा नियंत्रित फुटकर-बिक्री की दुकानों से करते हैं।

iv) माल के भंडारण एवं परिवहन की जिम्मेदारी के साथ-साथ व्यापारी हानि की जोखिम को भी वहन करते हैं।

v) बिचौलिये अथवा मध्यस्थों की संख्या जितनी बड़ी होगी वितरण का माध्यम भी उतना ही बड़ा होगा।

vi) गहन वितरण की नीति का उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनके निकटतम बाजारों में वस्तुओं को उपलब्ध कराना होता है।

vii) कम वज़न तथा छोटे आकार की वस्तुओं के वितरण हेतु बड़े माध्यम उपयुक्त होते हैं।

viii) वितरण की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि मध्यस्थ व्यापारियों का कारोबार कहाँ स्थित है तथा वह कितना बड़ा है।

10.7 मध्यस्थों के प्रकार (Types of Middlemen)

वितरण के माध्यम में उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं को आपस में मिलाने और उनके बीच व्यापारिक संबंध स्थापित कराने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को "मध्यस्थ" या "बिचौलिया" कहा जाता है। मध्यस्थों को उनके कार्य व सेवाओं के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1 कार्यकारी मध्यस्थ, तथा

2 व्यापारिक मध्यस्थ।

10.7.1 कार्यकारी मध्यस्थ (Functional Middlemen)

कार्यकारी मध्यस्थों से आशय व्यापारिक "एजेंटों" (mercantile agents) से होता है। इनका काम विक्रेताओं और क्रेताओं को एक-दूसरे से मिलाना, उनका सौदा पक्का करना या उनको कोई अन्य सेवा प्रदान करना होता है। ये न तो वस्तुओं का स्वामित्व ग्रहण करते हैं और न ही उनके मूल्यों में होने वाले परिवर्तन की जोखिम उठाते हैं। इनका उद्देश्य माल का क्रय-विक्रय उसके स्वामी की ओर से करना होता है। अपनी सेवा के बदले इनको उचित कमीशन दिया जाता है। कार्यकारी एजेंट निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :

1 **आढ़तिया (Factor) :** आढ़तिया एक ऐसा एजेंट है जो दूसरों का माल अपने पास बेचने हेतु रखता है। वह प्रधान के माल को अपने नाम से बेच सकता है, उसे गिरवी रख सकता है और वे सभी कार्य कर सकता है जो साधारणतया प्रधान (principal) कर सकता है। अपने नाम से सौदा करने के कारण उस सौदे के लिए वह स्वयं जिम्मेदार होता है। आढ़तिया सौदे में तय माल की सपुर्दगी स्वयं देता है और उसका भुगतान भी स्वयं वसूल करता है। अपनी सेवा के बदले वह प्रधान से खर्चों की भरपाई तथा कमीशन माँग सकता है। कमीशन न मिलने पर उसे प्रधान के माल पर ग्रहणाधिकार (right of lien) प्राप्त होता है। उसकी कमीशन या तो निर्धारित होती है या बिके हुए माल की राशि के निश्चित प्रतिशत के रूप में होती है। आढ़तिया अपने प्रधान के लिए नियमित रूप से कार्य करता है।

2 **दलाल (Broker) :** दलाल, क्रेता अथवा विक्रेता से किसी एक का प्रतिनिधित्व करता है। उसका काम केवल विक्रेता और क्रेता को एक दूसरे से मिलाना होता है। वह माल का अधिकार या स्वामित्व नहीं ग्रहण करता। अन्य शब्दों में, वह एक ऐसा एजेंट है जिसके पास सौदे में तय माल का भौतिक नियंत्रण नहीं होता। यदि वह विक्रेता द्वारा नियुक्त किया जाता है, तो उसे विक्रय एजेंट और यदि क्रेता द्वारा नियुक्ति किया जाता है, तो उसे क्रेता एजेंट कहते हैं। दलाल, विक्रय-मूल्य तथा विक्रय-शर्तों के संबंध में अपने प्रधान द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलता है। वह न तो सौदे में तय माल की सुपुर्दगी देता है और न ही इसका भुगतान वसूल करता है। चूँकि दलाल द्वारा सौदा प्रधान के नाम से किया जाता है, अतः इस सौदे के लिए प्रधान ही जिम्मेदार होता है। अपनी सेवा के बदले

दलाल को अपने प्रधान (क्रेता या विक्रेता) से कमीशन मिलता है। यह कमीशन सौदे के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत होता है।

3 **कमीशन एजेंट (Commission Agent) :** कमीशन एजेंट अपने प्रधान के नाम तथा उसकी जोखिम पर काम करता है। दलाल की तुलना में उसे विक्रय-मूल्य व विक्रय-शर्तों को तय करने में अधिक स्वतंत्रता व अधिकार प्राप्त होता है। वह माल का कब्जा ले सकता है, उसका ... सकता है, उसकी सुपुर्दगी (delivery) दे सकता है तथा बिक्री का भुगतान प्राप्त कर सकता है। आवश्यक होने पर वह माल की सुपुर्दगी देने हेतु कानूनी कार्रवाई भी कर सकता है। कई बार उसे प्रधान का माल अपने गोदाम में रखना पड़ता है तथा उस माल का श्रेणीकरण व पैकिंग भी करना पड़ता है। इन सेवाओं के बदले उसे बेचे गये माल के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत कमीशन के रूप में मिलता है।

4 **आश्वासी (Del Credere Agent) :** माल उधार बेचने, उधार की वसूली करने और डूबे उधार की जोखिम उठाने वाले कमीशन एजेंट को आश्वासी (डेलक्रेडियर) एजेंट की संज्ञा दी जाती है। अशोध्य ऋण (bad debts) की जोखिम वहन करने वाले एजेंट को सामान्य कमीशन के अतिरिक्त कमीशन भी मिलता है। यह कमीशन उधार-विक्री के मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत होता है। उस अतिरिक्त कमीशन को आश्वासी कमीशन कहा जाता है। इस प्रकार आश्वासी एजेंट उधार-बिक्री से उत्पन्न अशोध्य ऋण की हानि को स्वयं वहन कर अपने प्रधान को उस हानि से बचाता है। साधारण एजेंट तथा आश्वासी एजेंट में अंतर केवल इतना है कि साधारण एजेंट अपने प्रधान की पूर्व-अनुमति से ही माल उधार बेचता है और वह अशोध्य ऋण की जोखिम स्वयं नहीं उठाता।

5 **नीलामकर्ता (Auctioneer) :** यह एजेंट अपने प्रधान के माल को बेचने हेतु नीलाम की प्रणाली अपनाता है। कमीशन एजेंट की भांति वह माल को एक स्थान पर एकत्रित करके उसका प्रदर्शन करता है। तत्पश्चात् वह इच्छुक क्रेताओं से बोली लगाने के लिए कहता है। जिस व्यक्ति द्वारा वस्तु का सबसे अधिक मूल्य बोला जाता है उसी के नाम नीलाम की बोली समाप्त कर दी जाती है और इस प्रकार उसको यह वस्तु बेच दी जाती है। इस प्रणाली के अंतर्गत किसी विशिष्ट वस्तु के लिए प्रधान द्वारा एक "न्यूनतम मूल्य" (जिसे आरक्षित मूल्य कहते हैं) भी निश्चित किया जा सकता है। नीलामकर्ता इस न्यूनतम मूल्य से कम पर माल बेचने से इंकार कर सकता है। अपनी सेवा के लिए उसे विक्रय-मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत प्रधान से कमीशन के रूप में मिलता है।

10.7.2 व्यापारी मध्यस्थ (Merchant Middlemen)

व्यापारी मध्यस्थ उत्पादकों से माल खरीदकर इसे अन्य व्यापारियों या ग्राहकों को बेचते हैं। वे अपने नाम से क्रय-विक्रय करते हैं और कारोबार की जोखिम भी स्वयं उठाते हैं। यदि किसी सौदे में कोई लाभ होता है तो वह इनको ही मिलता है और यदि हानि होती है तो वह भी इनको ही उठानी पड़ती है। अपने व्यापार के वे स्वयं मालिक होते हैं। व्यापारिक एजेंटों की भाँति इनको प्रधान से आदेश नहीं लेना पड़ता। खरीदा गया माल इनके अधिकार व स्वामित्व में रहता है और वे उस माल का उपयोग किसी भी प्रकार कर सकते हैं। इन व्यापारियों को मध्यस्थ इसलिए कहा जाता है, कि वे न तो माल का स्वयं उत्पादन करते हैं और न ही उपभोग। मर्चेंट मध्यस्थ क्रय-विक्रय के अतिरिक्त कई अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे-श्रेणीकरण, प्रक्रमण, संग्रहण, पैकिंग आदि।

मर्चेंट मध्यस्थों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :

i) थोक व्यापारी (Wholesalers)
ii) फुटकर व्यापारी (Retailers)

उत्पादकों, विनिर्माताओं अथवा उनके एजेंटों से बड़ी मात्रा में माल खरीदकर उसे औद्योगिक उपभोक्ताओं या फुटकर विक्रेताओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचने वाले मध्यस्थों को थोक व्यापारी कहा जाता है। परंतु उत्पादकों अथवा थोक व्यापारियों से माल खरीदकर उसे अंतिम उपभोक्ताओं को बेचने वाले मध्यस्थों को फुटकर व्यापारियों की संज्ञा दी जाती है। वितरण के माध्यम में फुटकर व्यापारी अंतिम कड़ी के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इकाई 11 में आप थोक व फुटकर व्यापारियों के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न ग

1 व्यापारिक एजेंटों तथा व्यापारी मध्यस्थों में अंतर बताइए।

....

....

....

2 कमीशन एजेंट तथा आश्वासी एजेंट (डेलक्रेडियर एजेंट) में अंतर बताइए।

....

....

....

3 थोक व्यापारी तथा फुटकर व्यापारी में अंतर बताइयें।

....

....

....

4 रिक्त स्थान भरिए :

i) निर्माता अपनी पूंजी को .... में लगाकर उसका अधिक लाभकारी उपयोग कर सकते हैं।

ii) मध्यस्थ व्यापारी .... कार्यों के निष्पादन में विशेषज्ञ होते हैं।

iii) माल का स्वामित्व ग्रहण किये बिना विपणन कार्य की जिम्मेदारी लेने वाले मध्यस्थों एजेंटों को .... कहा जाता है।

iv) मर्चेंट मध्यस्थों के अंतर्गत .... तथा .... सम्मिलित होते हैं।

5 बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य ?

i) व्यापारिक एजेंटों की भाँति मर्चेंट मध्यस्थों को भी उनके द्वारा बेचे गये माल पर कमीशन मिलती है।

ii) दलाल, क्रेता अथवा विक्रेता की ओर से विक्रय अथवा क्रय का सौदा करता है।

iii) फुटकर व्यापारी अन्य व्यापारियों को माल बेचने हेतु उसका क्रय करते हैं।

iv) कमीशन एजेंट द्वारा बेचा जाने वाला माल सामान्यतया उसके कब्ज़े में होता है।

v) नीलामकर्त्ता विक्रेताओं के एजेंटों के रूप में कार्य करते हैं।

10.8 मध्यस्थों की भूमिका (Role of Middlemen)

यह तो आप पढ़ चुके हैं कि मध्यस्थों से आशय उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं से होता है जो उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच कड़ी का काम करते हैं। विपणन कार्य को पूरा करने वाले इन मध्यस्थों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। कुछ लोगों का विचार है कि मध्यस्थों के कारण न केवल वितरण की लागतों और वस्तुओं के विक्रय-मूल्यों में वृद्धि होती है बल्कि उपभोक्ताओं को वस्तुएँ उपलब्ध कराने में भी विलम्ब हो जाता है। परन्तु व्यवहार में यह बात सत्य नहीं है। वास्तविकता यह है कि मध्यस्थ व्यापारी वस्तुओं को यथोचित लागत पर उपलब्ध कराने के साथ-साथ बहुत-सी अन्य सेवाएँ भी प्रदान करते हैं और इस प्रकार वस्तुओं के वितरण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसके अतिरिक्त वे वितरण के माध्यम के विभिन्न कार्यों (जैसे माल का एकत्रीकरण, श्रेणीकरण, पैकिंग, संग्रहण, जोखिम उठाना, साख सुविधा देना आदि) को भी पूरा करते हैं। मध्यस्थों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

1 **उपभोक्ताओं को स्थानीय सुविधा प्रदान करना :** मध्यस्थ व्यापारी (जैसे फुटकर व्यापारी) उपभोक्ताओं के नज़दीक बाज़ारी स्थानों पर केंद्रित होते हैं। वे उपभोक्ताओं को माल की सहज सुपुर्दगी सुविधाजनक स्थानों पर दे देते हैं।

2 **माल का फील्ड स्टॉक उपलब्ध कराना :** मध्यस्थ एजेंट तथा थोक व्यापारी देश भर में फैले रहते हैं। वे बड़ी मात्रा में माल खरीदकर उसका स्टॉक कर लेते हैं। फुटकर व्यापारी इनके साथ सम्पर्क बनाकर किसी भी समय अपनी जरूरत की वस्तुएँ इनसे खरीद सकते हैं। फलस्वरूप, उत्पादकों को विभिन्न शहरों में अपनी वस्तुओं के स्टॉक उपलब्ध कराने की कठिनाई से छुटकारा मिल जाता है। मध्यस्थों के अभाव में उत्पादकों अथवा विनिर्माताओं द्वारा भारी निवेश आवश्यक हो सकता है और उन्हें विभिन्न प्रबन्धकीय समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

3 **वित्तीय सहायता प्रदान करना :** मध्यस्थ वितरण कार्यों हेतु कई प्रकार की वित्तीय सहायता उपलब्ध करते हैं। थोक व्यापारी वस्तुओं की माँग और पूर्ति में संतुलन बनाये रखते हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादकों या विनिर्माताओं को अपनी वस्तुओं का उचित मूल्य मिल जाता है। इसी प्रकार थोक व्यापारी उत्पादकों से न केवल नकद माल खरीदते हैं बल्कि उन्हें माल खरीदने हेतु पेशगी भुगतान भी दे देते हैं। फुटकर व्यापारी भी अपना माल किश्तों में या उधार बेचकर ग्राहकों को साख सुविधा प्रदान करते हैं।

4 **विविध सेवाएँ उपलब्ध करना :** उपभोक्ताओं को अपनी मन पसंद की वस्तुएँ छाँटने में मदद करना, माल उपभोक्ताओं के घर पहुँचाना तथा विक्रयोपरांत सेवा की व्यवस्था करना आदि सेवाएँ मध्यस्थों द्वारा ही प्रदान की जाती है। मध्यस्थ स्थानीय ग्राहकों की सभी शिकायतें दूर करते हैं। उनकी उपस्थिति में उत्पादकों अथवा विनिर्माताओं को जगह-जगह अपने सेवा केन्द्र नहीं खोलने पड़ते।

5 **वस्तुओं का बाज़ार विस्तृत करना :** देश-विदेश में बिखरे हुए उपभोक्ताओं से सम्पर्क स्थापित करना कठिन कार्य होता है। इस कार्य में मध्यस्थ व्यापारी व एजेंट उत्पादकों की मदद करते हैं। वे उत्पादकों से बड़े पैमाने पर माल खरीदते हैं और फिर उसे सुविधानुसार छोटे व्यापारियों या उपभोक्ताओं को बेचते हैं। मध्यस्थों के होने से उत्पादकों को बिक्री और उसके बाद की सेवाओं की चिंता नहीं रहती। इस प्रकार मध्यस्थों के विद्यमान होने से वस्तुओं का बाज़ार विस्तृत हो जाता है और साथ ही उत्पादकों की विक्रय क्षमता कई गुना बढ़ जाती है।

6 **संप्रेषण का माध्यम प्रदान करना :** मध्यस्थ व्यापारी दूर स्थित उत्पादकों तथा वस्तु के बाज़ारों से नियमित एवं निरंतर संपर्क बनाए रखते हैं। वे एक ओर, उत्पादकों के समक्ष बाज़ार के रुख की सच्ची व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, दूसरी ओर, उपभोक्ताओं को वस्तुओं के गुणों और उपयोगों के बारे में सही सूचना देते हैं। ग्राहकों को नई-नई वस्तुओं के आगमन की सूचना मध्यस्थ व्यापारियों के माध्यम से ही मिलती है। मध्यस्थों से प्राप्त जानकारी उत्पादकों को अधिक उत्पादन या कम उत्पादन की जोखिम से भी बचाती है।

7 **विक्रय संवर्धन (sales promotion) में सहयोग :** मध्यस्थ व्यापारी अपनी दुकानों पर माल के प्रदर्शन तथा विज्ञापन द्वारा और व्यक्तिगत सम्पर्कों के द्वारा वस्तुओं की माँग बढ़ाते रहते हैं। विक्रय-संवर्धन करने के लिए वे उधार बिक्री और किश्तों पर बिक्री जैसी प्रणालियों का खुलकर उपयोग करते हैं। स्थानीय ग्राहकों से भली-भाँति परिचित होने के कारण मध्यस्थ व्यापारी विक्रय-संवर्धन के कार्यों में अधिक प्रभावकारी सिद्ध होते हैं।

वितरण के माध्यम में मध्यस्थ अनेक उपयोगी सेवाएँ प्रदान करते हैं। कम लागत पर कुशल सेवाएँ प्रदान करने से उनकी भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण बन गयी है। वे अपने विशिष्ट ज्ञान, निपुणता, अनुभव तथा सम्पर्कों के कारण विपणन कार्यों का भली-भाँति निष्पादन करने में अधिक सक्षम होते हैं। स्पष्ट है कि इनके अभाव में उत्पादकों द्वारा वितरण-जाल बिछाना और इसके लिए आवश्यक धन जुटाना कठिन कार्य होगा। आपको मालूम है कि वस्तुओं का वितरण करना तथा वितरण के लिए आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराना कोई साधारण कार्य नहीं है। इस कार्य हेतु भारी निवेश आवश्यक होता है और साथ ही अनेक प्रबन्धकीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मध्यस्थों के उपयोग द्वारा उत्पादक वस्तुओं के वितरण की समस्या से छुटकारा पा जाते हैं। वे अपना धन और ध्यान अधिक लाभकारी उत्पादन कार्यों में लगा सकते हैं। यही नहीं, देश के कोने-कोने में उपभोग्य वस्तुओं (mass consumption goods) का

10.9 सारांश

वस्तुओं के उस क्रय-विक्रय अथवा विनिमय को, जो देश की सीमाओं के अन्दर किया जाता है, "देशीय व्यापार" कहते हैं। स्थान एवं समय का अंतर हो जाने से उत्पादक एवं उपभोक्ता एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। वितरण-प्रणाली उत्पादकों तथा फैले हुए उपभोक्ताओं के बीच की खाई को पाटती है और स्थान, समय व रूप की उपयोगिताओं का निर्माण करती है। "वितरण का माध्यम" उन बिचौलिया-संस्थाओं का एक जाल है जो उत्पादकों का माल उपभोक्ताओं को सौंपने हेतु विभिन्न प्रकार के परस्पर संबंधित एवं तालमेल बिठाने संबंधी कार्यों का निष्पादन करता है। साधारणतया वितरण के माध्यम तीन प्रकार के कार्य करते हैं — i) सौदा करने हेतु आवश्यक कार्य, ii) माल के भौतिक विनिमय के लिए आवश्यक रणनीति संबंधी कार्य, तथा iii) माल के भौतिक विनिमय हेतु आवश्यक व्यापार में सहायक कार्य।

वितरण के माध्यमों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है — i) विनिर्माताओं द्वारा प्रत्यक्ष विक्रय (प्रत्यक्ष वितरण माध्यम) तथा ii) एजेंटो, थोक व्यापारियों, फुटकर व्यापारियों आदि मध्यस्थों द्वारा विक्रय (अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम)। दैनिक उपयोग की उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण के माध्यम के अंतर्गत एजेंट अथवा दलाल, थोक व्यापारी तथा फुटकर व्यापारी सम्मिलित होते हैं। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ समान्यतया विनिर्माताओं के शोरूम से अथवा फुटकर विक्रेताओं द्वारा वितरित की जाती हैं। पूँजीगत वस्तुओं का वितरण प्राय: प्रत्यक्ष-विक्रय द्वारा किया जाता है। परन्तु कभी-कभी इन वस्तुओं की सप्लाई हेतु वितरकों, विक्रेताओं अथवा एजेंटों की नियुक्ति की जाती है।

किसी वस्तु विशेष के वितरण हेतु उपयुक्त वितरण के माध्यम का चुनाव बहुत-सी बातों पर निर्भर करता है, जैसे — i) वितरण की नीति, ii) वस्तु के प्रकार, iii) ग्राहकों के प्रकार, iv) पूर्ति संबंधी लक्षण, v) मध्यस्थों की उपलब्धता, vi) संभावित बिक्री का परिमाण, vii) वितरण की लागत, viii) दीर्घकाल में प्रत्याशित लाभ, तथा ix) वितरण प्रणाली में प्रतिस्पर्धा की स्थिति। मध्यस्थों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : i) कार्यकारी मध्यस्थ, तथा ii) मर्चेंट मध्यस्थ।

माल का स्वामित्व ग्रहण किये बिना विपणन कार्य की जिम्मेदारी लेने वाले मध्यस्थ एजेंटों को "कार्यकार मध्यस्थ" कहा जाता है। कार्यकारी मध्यस्थों की श्रेणी के अंतर्गत आढ़तिये, दलाल, कमीशन एजेंट, ...श्वासी एजेंट, नीलामकर्त्ता आदि सम्मिलित होते हैं। इनके विपरीत, "मर्चेंट मध्यस्थ" लाभ कमाने की दृष्टि से वस्तुओं का क्रय-विक्रय अपने नाम से करते हैं और कारोबार की समस्त जोखिम भी स्वयं ही उठाते हैं। इनको दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है : i) थोक व्यापारी, ii) फुटकर व्यापारी।

ये व्यक्ति जो न तो वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और न ही उपभोग, बल्कि उत्पादकों और उपभोक्ताओं को आपस में मिलाते हैं और उनके बीच सौदा करते हैं, मध्यस्थ कहलाते हैं। विपणन कार्य के कुशल निष्पादन द्वारा मध्यस्थ माल के वितरण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वे अपने कार्य के विशेषज्ञ होते हैं। अपने विशिष्ट ज्ञान, निपुणता, अनुभव तथा सम्पर्कों के कारण वे उत्पादकों की तुलना में कम लागत पर अधिक कुशल सेवाएँ प्रदान करते हैं।

10.10 शब्दावली

एकत्रीकरण (Assembling) : पूर्ति के विभिन्न स्रोतों से माल जुटाना तथा उनका संग्रह करना।

नीलामकर्ता (Auctioneer) : एक ऐसा मध्यस्थ एजेंट, जो अपने प्रधान के माल को बेचने हेतु नीलाम की प्रणाली अपनाता है।

ब्रांड नामकरण (Branding) : अपनी निर्मित वस्तु को प्रतियोगियों की वस्तु से अलग करने के लिए इसे विशिष्ट नाम या चिन्ह देना।

दलाल (Broker) : क्रेता और विक्रेता को एक दूसरे से मिलाने वाला मध्यस्थ-एजेंट जो इन दोनों में से किसी एक की ओर से विक्रय अथवा क्रय का सौदा करता है।

वितरण के माध्यम (Channels of Distribution) : वितरण के मार्ग जिनसे प्रवाहित होकर वस्तुएँ उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचती हैं। इनके अंतर्गत मुख्य रूप से बिचौलियों की संस्थाएँ शामिल होती हैं।

कमीशन एजेंट (Commission Agent) : निर्माता अथवा उत्पादक की ओर से कमीशन पर माल बेचने वाला एक मध्यस्थ जो माल का कब्जा ले सकता है, उसे बेच सकता है तथा उसकी सुपुर्दगी दे सकता है।

आश्वासी एजेंट (Del credere Agent) : माल उधार बेचने, उधार की वसूली करने और डूबे उधार की जोखिम उठाने वाला एक मध्यस्थ एजेंट।

आढ़तिया (Factor) : एक व्यापारिक एजेंट जो दूसरों का माल अपने पास बेचने हेतु रखता है। वह प्रधान के माल को अपने नाम से बेच सकता है, उसे गिरवी रख रखता है और वे सभी कार्य कर सकता है जो प्रधान कर सकता है।

श्रेणीकरण (Grading) : किस्म, आकार, गुण आदि की समानता के आधार पर वस्तुओं को अलग-अलग थोकों में छाँटना।

व्यापारी मध्यस्थ (Merchant Middlemen) : व्यापारिक एजेंट से भिन्न एक मध्यस्थ (जैसे थोक या फुटकर व्यापारी) जो अपने नाम से क्रय-विक्रय करता है और कारोबार की जोखिम भी उठाता है।

व्यापारिक एजेंट (Mercantile Agent) : माल का स्वामित्व ग्रहण किये बिना विशिष्ट विपणन कार्यों की ज़िम्मेदारी लेने वाला एक क्रियात्मक एजेंट।

मध्यस्थ (Middleman) : उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच एक बिचौलिया जो विपणन कार्यों के निष्पादन द्वारा माल के वितरण को सहज एवं सुगम बनाता है।

सवेष्टन (Packing) : उठाने-रखने, खरीदने-बेचने तथा क्षय व क्षति बचाने हेतु माल को भिन्न-भिन्न आकार वाले डिब्बों, बोतलों, टिनों, पीपों आदि में डालना अथवा पैक करना।

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल, *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत,* (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड सं., 1988) अध्याय 2, 3 खण्ड पाँच

बी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा, *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय,* (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 17 खण्ड चार

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा एवं एल.एस.सी. जोशी, *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 1

के. श्रीवास्तव : *विपणन प्रबंध,* (नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1982)

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) असत्य, (v) सत्य
3 (i) देशीय व्यापार, (ii) देशीय व्यापार, (iii) विदेशी व्यापार, (iv) विदेशी व्यापार

ख 4 (i) असत्य, (ii) असत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य, (v) सत्य, (vi) सत्य, (vii) सत्य, (viii) सत्य

ग 4 (i) उत्पादन, (ii) विपणन, (iii) कार्यकारी मध्यस्थ, (iv) थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी
5 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य, (v) सत्य

10.13 स्वपरख प्रश्न

1 वितरण माध्यम किसे कहते हैं? उपभोक्ता वस्तुओं तथा औद्योगिक वस्तुओं के वितरण के माध्यमों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

2 वितरण के माध्यम के चयन को प्रभावित करने वाले घटकों की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

3 मध्यस्थ (बिचौलिये) किसे कहते हैं? वितरण-प्रणाली में इनका महत्त्व बताइए तथा इनके द्वारा अदा की जाने वाली भूमिका स्पष्ट कीजिए।

4 विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

5 निम्नलिखित पर व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ कीजिए।

अ) प्रत्यक्ष माध्यम

ब) छोटा माध्यम एवं बड़ा माध्यम

स) वितरण माध्यम के कार्य

द) मर्चेंट मध्यस्थ

नोट : ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

इकाई 11 थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 थोक व्यापारी किसे कहते हैं?

11.3 थोक व्यापारियों का महत्त्व

11.4 थोक व्यापारियों के प्रकार

11.5 थोक व्यापारियों के कार्य

11.6 थोक व्यापारियों की सेवाएँ

11.6.1 विनिर्माताओं के प्रति सेवाएँ

11.6.2 फुटकर व्यापारियों के प्रति सेवाएँ

11.6.3 थोक व्यापारियों की समाप्ति

11.7 फुटकर व्यापार का अर्थ एवं महत्त्व

11.8 फुटकर व्यापारियों के कार्य

11.9 फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ

11.10 चलते-चलते (भ्रमणशील) फुटकर व्यापारी

11.10.1 चलते-फिरते फुटकर व्यापारियों के प्रकार

11.10.2 चलते-फिरते फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ

11.11 स्थायी दुकान वाले फुटकर व्यापारी

11.11.1 छोटे पैमाने के फुटकर व्यापारी

11.11.2 बड़े पैमाने के फुटकर व्यापारी

11.12 सारांश

11.13 शब्दावली

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.16 स्वपरख प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- थोक व्यापार की प्रकृति एवं महत्त्व की व्याख्या कर सकें
- विभिन्न प्रकार के थोक व्यापारियों में अंतर बता सकें
- थोक व्यापारियों की सेवाओं में अंतर बता सकें
- फुटकर व्यापार का अर्थ बता सकें
- फुटकर व्यापारियों के कार्यों की व्याख्या कर सकें
- विभिन्न प्रकार के फुटकर व्यापारियों में अंतर बता सकें और
- विभिन्न प्रकार के फुटकर भंडारों के लक्षणों का वर्णन कर सकें।

11.1 प्रस्तावना

प्रत्येक विनिर्माता अथवा उत्पादक का मुख्य ध्येय अपने माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाना होता है। वह यह सुनिश्चित करना चाहता है कि उसके द्वारा तैयार की गयी वस्तुएँ उपभोक्ताओं को सुविधाजनक स्थानों से उपलब्ध हो जाएँ। परंतु, जैसा कि आपको विदित है, कोई भी विनिर्माता चाहने पर भी प्रत्येक उपभोक्ता तक सीधा नहीं पहुँच सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि उत्पादन कार्य कुछ गिने-चुने कारखानों में ही सम्पन्न होता है, जबकि वास्तविक उपभोक्ता दूर-दराज़ के क्षेत्रों में बिखरे रहते हैं।

फलस्वरूप, बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली अधिकांश संस्थाएँ अपनी वस्तुएँ वास्तविक उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिये बिचौलियों अथवा "मध्यस्थ व्यापारियों" (मर्चेंटों) की सहायता लेती हैं। इन मध्यस्थ व्यापारियों का उल्लेख हम पिछली इकाई में कर चुके हैं और साथ ही यह बता चुके हैं कि वितरण के इस माध्यम के अंतर्गत थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी आते हैं। इस इकाई में हम थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी द्वारा निभायी जाने वाली भूमिकाओं की समीक्षा करेंगे।

11.2 थोक व्यापारी (Wholesaler) किसे कहते हैं?

सरल शब्दों में, वस्तुओं का थोक क्रय-विक्रय करने वाले अथवा थोक व्यापार में लगे व्यक्तियों को थोक व्यापारी कहते हैं। विस्तृत अर्थ में, प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अथवा व्यावसायिक फ़र्म जो अंतिम उपभोक्ताओं के अलावा अन्य खरीदारों को उनके द्वारा पुनर्विक्रय एवं लाभ कमाने हेतु बड़ी मात्रा में माल बेचती है, थोक व्यापारी कहलाती है। इस प्रकार उस विनिर्माता अथवा उत्पादक को जो अपनी वस्तुओं को सीधे फुटकर विक्रेताओं को बेच देता है, थोक व्यापारी कहा जा सकता है। कुछ परिस्थितियों में थोक व्यापारी अपने थोक काम के साथ-साथ फुटकर विक्रय का काम भी करता है। यही नहीं, थोक व्यापारी केवल एक ही विनिर्माता के माल का क्रय-विक्रय भी कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह, विनिर्माता का एकमात्र एजेण्ट (sole selling agent) बन जाता है। विशिष्ट अर्थ में, थोक व्यापारी से अभिप्राय उस "व्यापारिक मध्यस्थ" से है जो केवल कुछ निश्चित वस्तुओं का पुनर्विक्रय द्वारा लाभ कमाने के उद्देश्य से लेन-देन करता है और विनिर्माताओं या उत्पादकों से बहुत-बड़ी मात्रा में माल खरीद कर फुटकर व्यापारियों या औद्योगिक व वाणिज्यिक उपभोक्ताओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचता है। स्मरण रहे कि थोक व्यापारी अपने उत्पाद अंतिम उपभोक्ताओं को नहीं बेचता। अंतिम उपभोक्ताओं से तो वह सामान्यतया दूर ही रहता है। वस्तुत: वह "मध्यस्थ व्यापारियों" की श्रेणी में आता है। जिन वस्तुओं का लेन-देन वह करता है उनका अधिकार या स्वामित्व भी उसे प्राप्त रहता है। यद्यपि कई बार एजेण्ट अथवा दलाल भी थोक व्यापारी के रूप में काम करते हैं परंतु लेनदेन की जाने वाली वस्तुओं का स्वामित्व उनको कभी भी प्राप्त नहीं होता। वे केवल स्वामित्व के हस्तांतरण में मदद मात्र करते हैं और इस सेवा के बदले में उन्हें निश्चित कमीशन मिलता है। स्पष्ट है कि थोक व्यापारी एक ओर वस्तुओं के उत्पादकों या आयातकर्ताओं और दूसरी ओर फुटकर व्यापारियों या औद्योगिक उपभोक्ताओं के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रस्तुत होता है। वह जन-उपयोग की वस्तुओं जैसे कृषि-उत्पाद, वन-उत्पाद, खनिज पदार्थ, निर्मित माल आदि का क्रय व विक्रय करता है। साधारणतया, वह माल को बिक्री योग्य बनाने के लिए कई अन्य विपणन कार्य भी करता है, जैसे श्रेणीकरण, ब्रांड, नामकरण, चिह्नीकरण आदि।

11.3 थोक व्यापारियों का महत्त्व

प्राय: विनिर्माण कंपनियों के पास बहुत सारे फुटकर व्यापारियों के साथ संपर्क स्थापित करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में सेल्समैनों की नियुक्ति करने हेतु पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं होती। अधिकांश छोटे फुटकर व्यापारी अपना व्यापार दूर-दराज़ के क्षेत्रों में चलाते हैं। अत: उनके साथ संपर्क स्थापित करने में बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। यही नहीं, पूँजी के अभाव में तथा बाज़ार की दशाओं व पूर्ति के स्रोतों से अनभिज्ञ होने के कारण छोटे फुटकर व्यापारी सामान्यत: थोड़ी-थोड़ी मात्रा में माल का क्रय करना पसंद करते हैं। ऐसी परिस्थिति में थोक व्यापारी वस्तुओं के विनिर्माता व फुटकर व्यापारी दोनों की समस्याएँ सुलझाता है। वह अपने क्षेत्र के छोटे फुटकर व्यापारियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वस्तु विशेष के विनिर्माता को बड़ा क्रय-आदेश जारी करता है। इस प्रक्रिया के दौरान वह फुटकर व्यापारियों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में माल बेचकर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

सामाजिक दृष्टि से भी थोक व्यापारी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अपने विशिष्ट ज्ञान व निपुणता के कारण वह वस्तुओं का कुशल वितरण संभव बनाता है। दूसरी ओर, निर्माता भी अपना ध्यान वस्तुओं के कुशल उत्पादन पर केंद्रित कर सकता है। निस्संदेह कोई भी विनिर्माता अपनी वस्तुओं का वितरण उतनी निपुणता से नहीं कर सकता जितना कि उसका थोक व्यापारी कर पाता है। साथ ही,

वितरण का कार्य विनिर्माता द्वारा स्वयं किये जाने की स्थिति में उसका ध्यान बँट जाने से निर्माण क्षमता का ह्रास हो सकता है।

11.4 थोक व्यापारियों के प्रकार

थोक व्यापारी सीमित अथवा विस्तृत किस्म की वस्तुओं का व्यापार कर सकते हैं। वे अपना कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से थोक व्यापार तक सीमित कर सकते हैं अथवा व्यापार से संबद्ध विभिन्न क्रियाओं का निष्पादन कर सकते हैं तथा छोटे अथवा बड़े-बड़े भौगोलिक क्षेत्रों में अपना काम चला सकते हैं। तदनुसार थोक व्यापारियों को तीन अलग-अलग आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है — (1) बेची जाने वाली वस्तुएँ, (2) व्यावसायिक कार्यविधि तथा (3) भौगोलिक विस्तार।

बेची जाने वाली वस्तुओं के आधार पर (Based on Merchandise)

हम थोक व्यापारियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँट सकते हैं :

i) **सामान्य वस्तुओं के थोक व्यापारी (General merchandise wholesalers)** : इस वर्ग के थोक व्यापारी दो या इससे अधिक प्रकार की परस्पर असंबंधित वस्तुओं में लेन-देन करते हैं। उदाहरणार्थ, ऐसा थोक व्यापारी बहुत सी टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (Consumer goods), जैसे बिजली का सामान, होजरी, सौंदर्य प्रसाधन, खेल का सामान आदि में व्यवहार कर सकता है।

ii) **सामान्य उत्पादन शृंखला के थोक व्यापारी (General line wholesalers)** : ये थोक व्यापारी एक ही उत्पाद शृंखला (product line) के अंतर्गत आने वाली अनेक वस्तुओं को अपने स्टॉक में रखते हैं। उदाहरणार्थ, ऐसा थोक व्यापारी दैनिक उपयोग की सारी वस्तुओं जैसे — साबुन, डिटर्जेंट, दंत मंजन, रेज़र ब्लेड, शेविंग क्रीम, लोशन आदि को बेचने हेतु रख सकता है या फिर वह खाद्यान्नों व खाद्य-सामग्री, जैसे गेहूँ, चावल, दालें आदि का क्रय-विक्रय कर सकता है।

iii) **एकल उत्पादन-शृंखला अथवा विशिष्ट वस्तु के थोक व्यापारी (Single line or speciality wholesaler)** : इस वर्ग के अंतर्गत वे थोक व्यापारी आते हैं जिनका कार्यक्षेत्र एक निश्चित उत्पाद के अथवा विभिन्न किस्मों की एक विशिष्ट वस्तु के लेनदेनों तक सीमित होता है। कतिपय किस्म के कपड़े या छपाई के कागज़ के थोक व्यापारी विशिष्ट वस्तु के थोक व्यापारी कहलाते हैं। फुटकर व्यापारी किसी वस्तु विशेष संबंधी अपनी सारी ज़रूरतों को इस प्रकार के थोक व्यापारी से पूरा कर सकते हैं।

व्यावसायिक कार्यविधि के आधार पर (Based on Method of Operations)

थोक व्यापारियों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

i) **सेवा-प्रधान थोक व्यापारी (Service wholesalers)** : ये थोक व्यापारी विनिर्माताओं व फुटकर व्यापारियों के लिए विविध प्रकार की सेवाएँ प्रदान करते हैं, जैसे ये मानकीकरण, श्रेणीकरण, ब्रांड, नामकरण, चिह्नीकरण, संवेष्टन, विज्ञापन आदि।

ii) **सीमित-सेवा थोक व्यापारी (Limited function wholesalers)** : इस प्रकार के थोक व्यापारी कुछ निश्चित कार्य करते हैं, जैसे — श्रेणीकरण, संवेष्टन, डिब्बाबंदी आदि।

भौगोलिक विस्तार के आधार पर (Based on Geographic Coverage)

भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर हम थोक व्यापारियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँट सकते हैं :

i) **स्थानीय थोक व्यापारी (Local wholesalers)** : ये थोक व्यापारी अपना कार्यक्षेत्र किसी खास शहर अथवा नगर तक सीमित रखते हैं और उस क्षेत्र के सभी फुटकर व्यापारियों को अपना माल उपलब्ध कराते हैं।

ii) **जिला स्तर के थोक व्यापारी (District wholesalers)** : ये थोक व्यापारी एक निश्चित जिले के फुटकर व्यापारियों के साथ व्यवहार करते हैं।

iii) **प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्तर के थोक व्यापारी (Regional or National Wholesalers) :** ये थोक व्यापारी उन वस्तुओं का स्टॉक रखते हैं जिनका क्रय-विक्रय किसी राष्ट्रीय स्तर के बाज़ार में होता है और जो राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञापित की जाती हैं। साधारणत: इनका लेन-देन किसी प्रदेश अथवा देश में स्थित फुटकर व्यापारियों से होता है।

चित्र 11.1 देखें। इसमें थोक व्यापारियों के विभिन्न प्रकार दिए गए हैं।

चित्र 11.1
थोक व्यापारियों के प्रकार

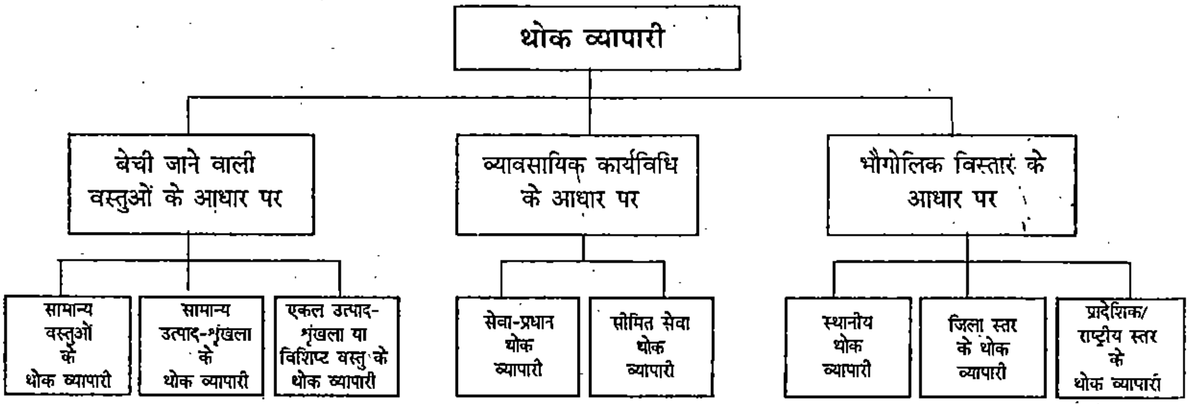

बोध प्रश्न क

1 थोक व्यापारी किसे कहते हैं?

....

....

....

....

....

2 बताइए कि नीचे दिये गये कथन सत्य हैं या असत्य?

i) बड़े पैमाने पर माल का क्रय-विक्रय करने वाले प्रत्येक व्यापारी को थोक व्यापारी कहते हैं।

ii) थोक व्यापारियों के होने पर माल का वितरण अधिक कुशलतापूर्वक होता है।

iii) स्थानीय थोक व्यापारी वह थोक व्यापारी है जो एक अथवा दो फुटकर व्यापारियों की ज़रूरतों को पूरा करता है।

iv) सेवा-प्रधान थोक व्यापारियों से आशय उन सभी मध्यस्थों से होता है जो परिवहन जैसी सेवाओं की पूर्ति की व्यवस्था करते हैं।

3 उपयुक्त शब्दों के प्रयोग द्वारा खाली स्थान भरिए।

i) थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियों के .... आर्डरों की पूर्ति करने में सक्षम होते हैं।

ii) थोक व्यापारी आमतौर पर उन क्रेताओं को माल उपलब्ध कराते हैं जो .... नहीं हैं।

iii) फुटकर व्यापारियों के अतिरिक्त .... को भी थोक व्यापारी अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।

iv) एकल उत्पाद-शृंखला के थोक व्यापारी किसी वस्तु विशेष की विभिन्न .... में लेन-देन करते हैं।

11.5 थोक व्यापारियों के कार्य (Functions of Wholesalers)

पिछले उपभाग में हमने पढ़ा कि कुछ थोक व्यापारी सीमित कार्य तथा कुछ अन्य थोक व्यापारी अनेक कार्य करते हैं। वस्तुत: थोक व्यापारी के कार्य बहुत कुछ उसके द्वारा खरीदी-बेची जाने वाली वस्तुओं की प्रकृति तथा व्यापारी विशेष की व्यावसायिक नीति पर निर्भर करते हैं। सैद्धांतिक रूप से प्रत्येक थोक

व्यापारी को विपणन संबंधी कुछ न्यूनतम कार्य अवश्य करने पड़ते हैं, जैसे माल का क्रय, संग्रहण एवं संभरण। व्यवहार में इन प्राथमिक कार्यों के अतिरिक्त थोक व्यापारी द्वारा बहुत से अन्य कार्य भी किये जाते हैं। मोटे तौर पर थोक व्यापारी निम्नलिखित कार्य करता है :

1 **एकत्रीकरण (Assembling) :** थोक व्यापारी विभिन्न विनिर्माताओं (देशी व विदेशी) से अधिक मात्रा में वस्तुएँ खरीदकर उनका एकत्रीकरण फुटकर व्यापारियों को बेचने हेतु करता है।

2 **संग्रहण (Storing) :** थोक व्यापारी संचित माल का संग्रहण करके एक महत्त्वपूर्ण विपणन-कार्य पूरा करता है। बाद में वह संग्रहीत माल को फुटकर व्यापारियों की माँग पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचता रहता है। इस प्रक्रिया के दौरान वह माल की समय उपयोगिता (time utility) में वृद्धि करता है और साथ ही विनिर्माताओं व फुटकर व्यापारियों को भंडार की व्यवस्था से छुटकारा दिलाता है।

3 **श्रेणीकरण, संवेष्टन एवं डिब्बाबंदी (Grading and Packaging) :** थोक व्यापारी भिन्न-भिन्न उत्पादकों से प्राप्त माल को उसके आकार अथवा किस्म के अनुसार अलग-अलग छाँटता है, उसे पृथक्-पृथक् श्रेणियों में बाँटता है, उसका नामकरण करता है और अंत में उसे विक्रयार्थ पैक करता है।

4 **परिवहन (Transportation) :** थोक व्यापारी विनिर्माता के स्थान से अपने गोदाम तक और इसी प्रकार अपने गोदाम से फुटकर व्यापारियों की दुकानों तक माल के परिवहन की व्यवस्था करता है।

5 **वितरण (Distribution) :** देश के कोने-कोने में बिखरे हुए फुटकर व्यापारियों को माल बेचकर, थोक व्यापारी वस्तुओं के विस्तृत वितरण में सहायता प्रदान करता है। इस काम के लिए प्रायः वह विज्ञापन अथवा विक्रेताओं की मदद लेता है।

6 **वित्त प्रबंध (Financing) :** थोक व्यापारी विनिर्माताओं से नकद माल खरीदकर उनकी वित्तीय सहायता करता है तथा दूसरी ओर फुटकर व्यापारियों को उधार माल बेचकर उन्हें साख प्रदान करता है। कभी-कभी वह विनिर्माताओं को माल की पेशगी (advance) भी दे देता है। वास्तव में माल के विपणन के दौरान वित्त की व्यवस्था थोक व्यापारी ही करता है।

7 **जोखिम उठाना (Risk-taking) :** थोक व्यापारी पूर्वानुमान लगाकर विनिर्माताओं से माल खरीद लेता है और उस माल के बिकने तक का सारा जोखिम-भार स्वयं वहन करता है। उसकी जोखिम कई प्रकार की हो सकती है, जैसे — बाज़ार भाव में गिरावट, प्रतियोगियों का आगमन, स्टॉक की धारण लागतों में वृद्धि, अशोध्य ऋण और संग्रहण के दौरान माल का अप्रचलन, क्षति व क्षय।

8 **मूल्य-निर्धारण (Pricing) :** थोक व्यापारी वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण में भी सहायक होता है। वह प्रतियोगी-उत्पादों तथा सारे बाज़ार की माँग व पूर्ति की पूरी जानकारी रखता है। अतः उसके द्वारा निर्धारित मूल्य वस्तुओं के बाज़ार भावों को प्रतिबिंबित करते हैं। यही कारण है कि वस्तुओं के अंतिम मूल्य प्रायः थोक व्यापारी द्वारा निर्धारित मूल्यों को आधार मानकर ही तय किये जाते हैं।

11.6 थोक व्यापारियों की सेवाएँ (Services of Wholesalers)

पीछे हम एक थोक व्यापारी के कार्यों का विश्लेषण कर चुके हैं और यह बता चुके हैं कि वह वितरण की शृंखला में उत्पादकों तथा फुटकर व्यापारियों के बीच एक बहुत बड़ी खाई को पाटता है। सामान्यतः थोक व्यापारी एक "वितरक" या "पूर्तिगृह" के नाम से जाना जाता है। इस रूप में वह वस्तुओं के विनिर्माताओं तथा फुटकर व्यापारियों को कई महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करता है।

11.6.1 विनिर्माताओं के प्रति सेवाएँ

एक थोक व्यापारी वस्तुओं के विनिर्माताओं के लिए निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य करता है :

1 थोक व्यापारी बड़े-बड़े ऑर्डर देकर विनिर्माताओं को माल के वितरण संबंधी चिंता से मुक्त करता है। फलस्वरूप, विनिर्माता अपना सारा ध्यान माल के उत्पादन पर केंद्रित कर सकते हैं। उनको अपने गोदामों में अधिक स्टॉक नहीं रखना पड़ता और साथ ही माल की संग्रहण लागतों में बचत होती है।

2 थोक व्यापारी नकद माल खरीदकर या अपने ऑर्डर के लिए पेशगी भुगतान देकर या फिर ज़मानत के रूप में एक बड़ी रकम विनिर्माता के पास जमा करवा कर उसको वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

3 थोक व्यापारी भावी माँग के आधार पर समय से पहले ही माल के लिए ऑर्डर भेज देता है। इससे विनिर्माताओं को सुविधा हो जाती है। उनके द्वारा उत्पादन नियोजन का कार्यक्रम आसानीपूर्वक एवं निश्चिंतता से लागू किया जा सकता है।

4 थोक व्यापारी उत्पादन के संबंध में समय-समय पर माल के विनिर्माताओं का पथ-प्रदर्शन करता रहता है। वह उपभोक्ताओं की माँग, रुचि तथा नये या प्रतियोगी उत्पादों के बारे में फुटकर व्यापारियों से निरंतर सूचनाएँ संकलित करता रहता है। इन सूचनाओं के आधार पर वह विनिर्माताओं से माल खरीदने की व्यवस्था करता है। अत: उसके द्वारा विनिर्माताओं को भेजे गये ऑर्डर बाज़ार की बदलती हुई परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं।

5 थोक व्यापारी वस्तुओं की माँग अथवा मूल्य में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाली जोखिम को स्वयं उठाकर विनिर्माताओं को संभावित हानि से बचाता है। उसके कारण उत्पादकों को अपने माल का उचित मूल्य मिल जाता है। कृषि उत्पादन की वस्तुओं के संबंध में यह सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

6 थोक व्यापारी स्वयं ही अथवा विनिर्माताओं के साथ मिलकर संयुक्त रूप से माल का विज्ञापन करता है। परिणामस्वरूप विनिर्माताओं के माल की माँग बढ़ जाती है और विज्ञापन पर उनका व्यय भी कम हो जाता है।

11.6.2 फुटकर व्यापारियों के प्रति सेवाएँ

विनिर्माताओं की तुलना में थोक व्यापारियों से फुटकर व्यापारियों को अधिक लाभ होता है। साधारणतया थोक व्यापारी अपने फुटकर व्यापारियों को निम्न सेवाएँ प्रदान करता है :

1 फुटकर व्यापारी दूर-दूर के स्थानों पर बिखरे रहते हैं। उनके पास अधिक पूँजी नहीं होती। वे अपनी ज़रूरत की वस्तुओं को बड़ी मात्रा में खरीद कर स्टॉक नहीं कर सकते। उनके लिए भिन्न-भिन्न विनिर्माताओं से कम मात्रा में वस्तुओं का क्रय किया जाना भी कठिन होता है। ऐसी परिस्थिति में थोक व्यापारी छोटे-छोटे फुटकर व्यापारियों को उनकी सुविधा के अनुसार विविध किस्म का माल थोड़ी-थोड़ी-मात्रा में बेचकर उनकी परेशानियाँ दूर करता है।

2 थोक व्यापारी निरंतर छोटे फुटकर व्यापारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहता है। इससे फुटकर व्यापारियों को अपने पास बड़ी मात्रा में स्टॉक नहीं रखना पड़ता और माल स्टोर करने हेतु आवश्यक स्थान की भी बचत होती है। अत: कोई फुटकर व्यापारी सापेक्ष रूप से कम पूँजी द्वारा अपना व्यापार चला सकता है।

3 थोक व्यापारी के पास उसके द्वारा लेनदेन की जाने वाली वस्तुओं की पूर्ण एवं विशिष्ट जानकारी रहती है। अपनी अधिक क्रय-शक्ति एवं अनुभव के कारण वह सर्वोत्तम स्रोत से सही किस्म का माल सही मूल्य पर क्रय करता है और इससे होने वाला लाभ आगे अपने फुटकर व्यापारियों के साथ बाँटता है। दूसरी ओर, फुटकर व्यापारी अपने थोक व्यापारी से निकट संबंध स्थापित कर उससे वस्तुओं के बारे में पूरी ज़ानकारी प्राप्त कर लेते हैं। इससे उन्हें अपनी विक्री बढ़ाने में मदद मिलती है।

4 थोक व्यापारी बाज़ार की बदलती हुई परिस्थितियों के बावजूद बड़ी मात्रा में माल का संग्रह कर लेता है और कालांतर में फुटकर व्यापारियों की माँग पर इसे बेच देता है। वह मूल्यों में उतार-चढ़ाव अथवा माँग में गिरावट से उत्पन्न होने वाली हानि की सारी जोखिम स्वयं वहन करता है। इस प्रकार वह फुटकर व्यापारियों को उक्त जोखिम से बचा लेता है।

5 थोक व्यापारी अपना माल उधार बेचकर फुटकर व्यापारियों को साख प्रदान करता है। फलत: फुटकर व्यापारियों को स्टॉक में बहुत पूंजी नहीं लगानी पड़ती और वे इस प्रकार बचायी गयी पूँजी का व्यापार में अधिक प्रभावी उपयोग कर सकते हैं।

6 थोक व्यापारी वस्तुओं के विनिर्माताओं से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर फुटकर व्यापारियों को प्रतियोगी उत्पादों तथा नयी-नयी वस्तुओं के आगमन की जानकारी समय-समय पर देता रहता है। जब कभी उत्पाद-शृंखला में नयी वस्तु जोड़ी जाती है तब थोक व्यापारी सेल्समैनों के माध्यम से अथवा शोरूम में प्रदर्शन के द्वारा फुटकर व्यापारियों का ध्यान उस वस्तु की ओर आकर्षित करता है।

11.6.3 थोक व्यापारियों की समाप्ति (Elimination of Wholesalers)

थोक व्यापारियों के कार्यों तथा उनके द्वारा विनिर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का अध्ययन हम पहले कर चुके हैं। वितरण के माध्यम की अंतिम कड़ी उपभोक्ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या थोक व्यापारी उपभोक्ताओं के प्रति कोई महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान करते हैं? वास्तव में, उपभोक्ताओं को आवश्यक माल उचित-मूल्य पर उपलब्ध कराने की दृष्टि से थोक व्यापारी कोई भी सेवा प्रत्यक्ष रूप में प्रदान नहीं करते। अत: कुछ लोगों का मत है कि वितरण के माध्यम में थोक व्यापारी अनावश्यक हैं और इसलिए उनका अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे लोग प्राय: निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं :

i) थोक व्यापारी की उपस्थिति विपणन की लागतों को बढ़ा देती है। उपभोक्ता द्वारा भुगतान किये गये मूल्य में उसके लाभ का अंश सम्मिलित होता है। फलस्वरूप, उपभोक्ताओं को उन्हीं वस्तुओं की कहीं ज्यादा कीमत देनी पड़ती है।

ii) थोक व्यापारी केवल "हस्तांतरण अभिकर्ता" (transfer agent) के रूप में कार्य करता है। वह अपने मुनाफे के तुल्य कोई महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान नहीं करता। विनिर्माताओं से उपभोक्ता तक माल पहुँचाने में वह सिर्फ रुकावट पैदा करता है।

iii) थोक व्यापारी बड़ी मात्रा में माल को स्टॉक कर लेता है और अर्थव्यवस्था में विपरीत दशाओं का अनुचित लाभ उठाने हेतु कमी के समय उस माल की सप्लाई रोक कर अनावश्यक रूप से कीमतों को बढ़ा देता है।

थोक व्यापारियों के समर्थक निम्नलिखित तर्कों के आधार पर उनकी समाप्ति का विरोध करते हैं :

i) थोक व्यापारी वस्तुओं के विनिर्माताओं को वितरण की समस्या से मुक्त करता है। उसकी उपस्थिति में विनिर्माता अपनी सारी शक्ति उत्पादन क्रियाओं में प्रवीणता प्राप्त करने हेतु लगा सकता है।

ii) थोक व्यापारी बाज़ार के समीप होने से विपणन क्रियाओं पर केंद्रित रहता है। वह विपणन कार्यों को कुशलतापूर्वक करता है और स्थानीय विपणन युक्तियों पर एकाग्रता से विचार कर लेता है। उसकी अनुपस्थिति में उक्त कार्य विनिर्माताओं एवं उपभोक्ताओं द्वारा नहीं किये जा सकते।

iii) थोक व्यापारी को माल के संग्रह एवं उठाव-धराव, जिसमें भारी निवेश निहित होता है, के विषय में अच्छी जानकारी होती है।

उपरोक्त विवेचन से यह पता चलता है कि व्यवसाय के प्रत्येक क्षेत्र से थोक व्यापारियों की समाप्ति संभव नहीं है। वस्तुत: कई क्षेत्रों में आज भी वे उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने की पहले थे। परंतु संचार व यातायात के साधनों का विकास होने के साथ-साथ वितरण के माध्यम में कार्यकारी थोक व्यापारियों को हटाया जा सकता है। इस आधार पर थोक व्यापारियों की बहुलता समाप्त करके वितरण की लागतों को भी कम किया जा सकता है। कुछ लोग थोक व्यापारियों के विकल्प के रूप में सहकारी समितियों के गठन का सुझाव देते हैं। परंतु भारत में सहकारी समितियों का अनुभव भी कोई अच्छा नहीं रहा है। सहकारी समितियों में निहित कमियों को देखते हुए उनकी सफलता के विषय में आशावादी होना उचित प्रतीत नहीं होता। अत: स्पष्ट है कि सहकारी समितियाँ थोक व्यापारियों का स्थान नहीं ले सकतीं। संभवत: बड़े-बड़े फुटकर व्यापारियों (जैसे — विभागीय भंडार, सुपर बाज़ार, बहु-संख्यक दुकानें, डाक-व्यापार-गृह आदि) के आगमन से इस समस्या का समाधान हो सकता है। अधिकांश विनिर्माता भी इन बड़े-बड़े फुटकर व्यापारियों के साथ व्यवहार करना पसंद करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि थोक व्यापारी सामूहिक उपभोग वस्तुओं के वितरण हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करते हैं। इनकी उपयोगिता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनका समूल उन्मूलन उपभोक्ताओं के लिए कई प्रकार की कठिनाइयाँ प्रस्तुत कर देगा।

बोध प्रश्न ख

1 कोष्ठकों के अंदर दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर खाली स्थान भरिए।

i) थोक व्यापारी माल के विनिर्माताओं को .... स्टॉक रखने की आवश्यकता से बचाते हैं।

(बहुत बड़ा/वर्ष के अंत तक)

ii) थोक व्यापारियों द्वारा फुटकर व्यापारियों की सुविधा हेतु माल को .... का काम किया जाता है। (स्टोर करने/पैक करने)

iii) थोक व्यापारियों के एकत्रीकरण कार्य का उनके .... कार्य से निकटतम संबंध होता है। (स्टोर करने के/मूल्य निर्धारण)

iv) अधिकांश थोक व्यापारी अपना माल फुटकर व्यापारियों को .... बेचते हैं। (उधार पर/पट्टे पर)

2 बताइए कि नीचे दिए गये कथन सत्य हैं या असत्य?

i) थोक व्यापारी ब्याज-रहित धन उधार देकर फुटकर व्यापारियों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं।

ii) थोक व्यापारियों द्वारा विपणन कार्यों की जिम्मेदारी स्वयं लेने के फलस्वरूप निर्माता अपना ध्यान वस्तुओं के उत्पादन पर लगा सकते हैं।

iii) वस्तु-बाज़ार की बदलती हुई परिस्थितियों में दिलचस्पी केवल थोक व्यापारियों की होती है, विनिर्माताओं की नहीं।

iv) वस्तुओं के अंतिम मूल्य प्रायः थोक व्यापारियों द्वारा निर्धारित मूल्यों के आधार पर तय किये जाते हैं।

v) वस्तुओं को विज्ञापित करने का दायित्व केवल विनिर्माताओं का होता है, थोक व्यापारियों का नहीं।

11.7 फुटकर व्यापार (Retailing) का अर्थ एवं महत्त्व

सरल शब्दों में, फुटकर व्यापार से तात्पर्य उन सभी लेन-देनों से होता है जिनके द्वारा सीधे अंतिम उपभोक्ताओं को उनके निजी प्रयोग अथवा उपयोग के लिए वस्तुओं का विक्रय संभव होता है। पुनर्विक्रय के उद्देश्य से माल क्रय करने वाले व्यक्तियों को "अंतिम उपभोक्ता" की संज्ञा नहीं दी जा सकती। फलस्वरूप, उनके साथ किये गये लेन-देनों को फुटकर व्यापार की परिधि में शामिल नहीं किया जाता। फुटकर व्यापार साधारणतया खुदरा व्यापारियों द्वारा किया जाता है। अतः थोक व्यापारियों या विनिर्माताओं से अधिक मात्रा में माल खरीद कर उसे सीधा अंतिम उपभोक्ताओं को उनके निजी उपभोग हेतु तथा उनकी पसंद व ज़रूरत के अनुसार बेचने वाले व्यक्ति या व्यापारिक संस्था को फुटकर व्यापारी कहते हैं। फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को न केवल माल ही बेचता है बल्कि कई अन्य उपयोगी सेवाएँ भी प्रदान करता है। साधारणतया अपनी वस्तुएँ सीधे अंतिम उपभोक्ताओं को बेचने वाले उत्पादक अथवा थोक व्यापारी को फुटकर व्यापारी नहीं कहा जाता। परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि फुटकर व्यापारी के द्वारा अन्य प्रकार के लेन-देन नहीं किये जा सकते। वास्तव में, यदि किसी व्यापारी के अधिकतर माल की बिक्री फुटकर व्यापार से है और वह पुनर्विक्रय के लिए नहीं है, तो उसे फुटकर व्यापारी ही समझना चाहिए।

फुटकर व्यापारी बड़ी संख्या में विभिन्न वर्गों के उपभोक्ताओं के साथ व्यवहार करता है। वस्तुओं के भौतिक वितरण में वह उपयोगी भूमिका अदा करता है। अतः वितरण में उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वह विभिन्न स्रोतों से माल खरीद कर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इसे उपभोक्ताओं को बेच देता है। उसका मूल ध्येय अंतिम उपभोक्ताओं की अधिकांश ज़रूरतों को एक ही स्थान पर पूरा करना होता है। इस प्रकार फुटकर व्यापारी एक ओर उत्पादकों अथवा थोक व्यापारियों तथा दूसरी ओर उपभोक्ताओं के बीच कड़ी के रूप में होता है। उसकी अनुपस्थिति में न तो दूर-दराज़ के स्थानों पर माल का वितरण संभव होगा और न ही उपभोक्ताओं को आसपास की दुकानों से उनकी पसंद की वस्तुएँ मिल पायेंगी। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। आजकल नाना प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं (consumer goods) का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा है। इन वस्तुओं को दूर के गाँवों, शहरों एवं नगरों में रहने वाले लोगों को उपलब्ध कराने की आवश्यकता ने फुटकर व्यापारियों को माल के वितरण के माध्यम में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मध्यस्थ बना दिया है।

11.8 फुटकर व्यापारियों के कार्य (Functions of Retailers)

फुटकर व्यापारी अपना माल — i) सीधे अंतिम उपभोक्ता को बेचता है, ii) मूलत: व्यक्तिगत उपयोग के लिए विक्रय करता है, और iii) छोटी-छोटी मात्राओं में बाँटकर माल का विक्रय करता है। उसका अस्तित्व दो कार्यों के कारण है। प्रथम, उपभोक्ताओं के लिए विभिन्न वस्तुएँ जुटाना और द्वितीय, उत्पादकों एवं थोक व्यापारियों की सहायता करना। संक्षेप में, फुटकर व्यापारियों के निम्नलिखित कार्य हैं :

1 **माँग का पूर्वानुमान (Estimating the demand) :** फुटकर व्यापारी ग्राहकों की पसंद व रुचि की वस्तुओं का निरंतर अध्ययन करता रहता है। इसके लिए वह ग्राहकों से निकट का संबंध बनाए रखता है। ग्राहकों की अपेक्षाओं व आवश्यकताओं का सही निर्धारण कर लेने के पश्चात् वह उनकी माँग का परिमाणात्मक (quantitative) पूर्वानुमान माल खरीदने हेतु करता है।

2 **माल का क्रय (Procurement of goods) :** फुटकर व्यापारी ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं का हाज़िर स्टॉक अपने पास रखता है। वह स्थानीय माँग के अनुसार विनिर्माताओं या थोक व्यापारियों से विविध प्रकार की वस्तुओं को एक समय खरीदता है। प्रत्येक बार वह केवल उन्हीं थोक व्यापारियों या विनिर्माताओं से माल खरीदता है जो सही किस्म का माल सही मूल्य पर उपलब्ध कराते हैं।

3 **माल का संग्रहण (Storing goods) :** छोटे या बड़े सभी प्रकार के फुटकर व्यापारियों द्वारा माल के संग्रह की पर्याप्त व्यवस्था की जाती है। संग्रह की एक उत्तम व्यवस्था के द्वारा ग्राहकों को उनकी रुचि व पसंद के अनुकूल वस्तुएँ चुनने का अवसर मिलता है। अत: फुटकर व्यापारी अपनी वस्तुओं को शेल्फ एवं शो-केसों में सजाकर रखते हैं।

4 **श्रेणीकरण, संवेष्ठन एवं डिब्बाबंदी (Grading and packaging) :** फुटकर व्यापारी, थोक व्यापारियों से खरीदे गये माल को आकार एवं किस्म के अनुसार अलग-अलग छाँटता है, उसे पृथक्-पृथक् श्रेणियों में बाँटता है तथा उपभोक्ताओं की सुविधा हेतु उस माल को डिब्बों अथवा थैलियों में पैक करता है। उदाहरणार्थ, एक फल विक्रेता सेब पैक करने हेतु डिब्बे या टोकरियाँ खरीदता है, भिन्न-भिन्न आकार के सेबों की छँटनी करता है और किस्म व आकार के अनुसार उनकी अलग-अलग कीमतें निर्धारित करता है। इसी प्रकार एक फुटकर पंसारी बोरियों में खरीदे गये मसालों को छोटे-छोटे पुलिंदों अथवा पैकेटों में भरकर बेचता है।

5 **ग्राहकों की सेवा (Consumer service) :** फुटकर व्यापारी समय और स्थान उपयोगिताओं का निर्माण करता है। वह सुविधाजनक स्थान पर वस्तुएँ बेचने के लिए तैयार रहता है, अक्सर ग्राहक के घर तक नि:शुल्क सामान पहुँचा देता है, उपयुक्त वस्तु के चयन में मदद करता है, वस्तु की उपयोगिता की गारण्टी देता है, विक्रयोपरांत सेवाएँ सुलभ करता है, तथा नयी-नयी वस्तुओं के प्रयोग के विषय में ग्राहकों को आवश्यक जानकारी देता है।

6 **जोखिम लेना (Risk bearing) :** फुटकर व्यापारी की दुकान पर कुछ वस्तुएँ सदैव तैयार मिलती हैं। माल के संग्रह की अवधि के दौरान उसे क्षय, अप्रचलन, मूल्य-ह्रास, चोरी आदि से उत्पन्न हानियों की जोखिम का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, उधार बिक्री भी कई बार अशोध्य ऋण बन जाती है।

7 **बाज़ार की जानकारी (Market intelligence) :** बहुधा विनिर्माता तथा थोक व्यापारी का बाज़ार के साथ श्रेष्ठ संपर्क फुटकर व्यापारियों के द्वारा होता है। फुटकर व्यापारी को बाज़ार की प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों की गहरी जानकारी रहती है। अत: वह थोक व्यापारियों के माध्यम से विनिर्माताओं को सही नीतियाँ बनाने हेतु समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव देता है। उदाहरणार्थ, बाज़ार में प्रस्तुत किसी भी फैशन की स्वीकृति फुटकर व्यापारी बहुत तीव्रता से निर्धारित कर सकता है और इस बात की सूचना विनिर्माता तक पहुँचा सकता है।

8 **बिक्री का संवर्द्धन (Sales promotion) :** फुटकर व्यापारी का प्रधान कार्य अंतिम उपभोक्ताओं को माल का विक्रय करना है। उसे अलग-अलग हैसियत, पसंद व रुचि के लोगों की आवश्यकताओं व प्राथमिकताओं की संतुष्टि करनी होती है। अपने नियमित ग्राहक बनाने हेतु वह उपभोक्ताओं के साथ घनिष्ठता व आत्मीयता का संबंध बनाता है। इसके लिए वह ग्राहकों को

व्यक्तिगत सेवा, सुविधा तथा संरक्षण प्रदान करता है। यही नहीं, अपनी विक्री बढ़ाने के लिए फुटकर व्यापारी "परिक्रमी उधार योजनाओं" (revolving credit plans) "मुक्त खाता उधार" तथा "किस्तों पर बिक्री" का खुलकर प्रयोग करता है।

11.9 फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ (Services of Retailers)

फुटकर व्यापारी माल के वितरण में मध्यस्थ का काम करता है। इस स्थिति में वह दोहरी भूमिका निभाता है। एक तरफ वह उत्पादकों व थोक व्यापारियों के लिए तथा दूसरी तरफ अंतिम उपभोक्ताओं के लिए कुछ उपयोगी सेवाएँ प्रदान करता है। अपनी वस्तुओं को अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए विनिर्माता एवं थोक व्यापारी बहुत बड़ी सीमा तक फुटकर व्यापारी पर निर्भर करते हैं। फुटकर व्यापारी वस्तुओं के विपणन की सुविधा प्रदान कर थोक व्यापारियों को प्रत्यक्ष तथा उत्पादकों को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता देता है। दूसरी तरफ, वह उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच की खाई को पाटता है। इस स्थिति में वह उपभोक्ताओं के क्रय-एजेण्ट के रूप में कार्य करता है और उनको निम्नलिखित सेवाएँ प्रदान करता है :

1 **माल का स्टॉक तैयार रखना :** फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं के दैनिक उपयोग की अनेक वस्तुओं का पर्याप्त स्टॉक हर समय अपने पास रखता है। वह उपभोक्ता की माँग पर तत्परता से माल उपलब्ध कराता है। इसके अतिरिक्त, वह विभिन्न विनिर्माताओं द्वारा बनी हुई वस्तुओं में से चयन करने की सुविधा भी देता है।

2 **माल का प्रदर्शन :** फुटकर व्यापारी नयी-नयी वस्तुओं के आगमन की सूचना अपने ग्राहकों को देता है। इसके लिए वह माल को शेल्फ अथवा शो-केस में सजाकर रखता है। साथ ही, वह नयी-नयी वस्तुओं के गुण-धर्म, मूल्य तथा प्रयोग की जानकारी ग्राहकों को देता है। कई बार वह अपनी दुकान पर वस्तुओं के विक्रय हेतु प्रदर्शनी भी लगाता है।

3 **ग्राहकों को परामर्श :** प्राय: फुटकर व्यापारी ग्राहकों को कुछ वस्तुएँ खरीदने संबंधी निर्णय लेने हेतु महत्त्वपूर्ण सलाह देता है। अपनी सलाह के दौरान वह विभिन्न किस्म की वस्तुओं के सापेक्ष गुण-दोष के संबंध में सलाह देता है।

4 **व्यक्तिगत सेवाएँ :** फुटकर व्यापारी अपने संतुष्ट एवं निष्ठावान ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ उन्हें व्यक्तिगत सेवा, सुविधा तथा संरक्षण भी प्रदान करता है। घर पर माल पहुँचाना, उधार अथवा किस्तों पर माल बेचना, माल की व्यक्तिगत देखभाल या मरम्मत करना, पसंद न आने पर माल वापिस लेना आदि फुटकर व्यापारी की उपभोक्ताओं के प्रति महत्त्वपूर्ण सेवाएँ हैं।

बोध प्रश्न ग

1 बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य।

i) फुटकर व्यापारी सदा विनिर्माताओं से माल खरीदते हैं।

ii) अपना माल सीधे उपभोक्ताओं को बेचने वाले विनिर्माताओं को फुटकर व्यापारी की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

iii) एक फुटकर व्यापारी द्वारा किसी दूसरी फुटकर व्यापारी को माल बेचना फुटकर व्यापार के अंतर्गत आता है।

iv) शो-केस में सजावट द्वारा माल का प्रदर्शन करना फुटकर व्यापारी के कार्यों में से एक है।

v) थोक व्यापारियों द्वारा अपने माल की सुपुर्दगी सदा फुटकर व्यापारियों को ही दी जाती है।

vi) अपने दायित्व से छुटकारा पाने के उद्देश्य से फुटकर व्यापारी अपने ग्राहकों को माल के गुण-धर्म के विषय में कभी भी सलाह नहीं देता।

2 रिक्त स्थान भरिए :

i) फुटकर व्यापार से आशय उपभोक्ताओं को उनके .... प्रयोग हेतु माल बेचना होता है।

ii) फुटकर व्यापारी सामान्यतया .... से माल जुटाते हैं।

iii) नयी-नयी वस्तुओं के आगमन की सूचना ग्राहकों को देने के उद्देश्य से फुटकर व्यापारियों द्वारा माल का .... किया जाता है।

11.10 चलते-फिरते (भ्रमणशील) फुटकर व्यापारी (Itinerant Retailers)

फुटकर व्यापार की स्थापना एकाकी भंडार, साझेदारी फर्म, कंपनी, अथवा सहकारी समिति के रूप में की जा सकती है। वैसे तो फुटकर व्यापार चलाने के अनेक प्रकार हैं परंतु मोटे तौर पर हम फुटकर व्यापारियों को दो प्रमुख वर्गों में बाँट सकते हैं :

1 चलते-फिरते अथवा भ्रमणशील फुटकर व्यापारी, तथा
2 स्थायी दुकान वाले फुटकर व्यापारी।

जगह-जगह घूम कर तथा स्थान बदल-बदल कर अपनी वस्तुओं को बेचने वाले फुटकर व्यापारियों को चलते-फिरते व्यापारी कहा जाता है। चलते-फिरते फुटकर व्यापारी किसी निश्चित स्थान पर व्यवसाय नहीं करते। इनकी बिक्री की दर भी ज़्यादा नहीं होती और ये बहुत कम पूँजी से अपना काम चलाते हैं। ये लोग घर-घर जाकर अपना माल बेचते हैं और सुविधानुसार तथा बिक्री की संभावना को देखते हुए अपने कारोबार का स्थान बदलते रहते हैं। अत: चलते-फिरते फुटकर व्यापारी घूम-घूम कर क्रेताओं के समीप पहुँचने का प्रयास करते हैं।

11.10.1 चलते-फिरते फुटकर व्यापारियों के प्रकार

चलते-फिरते फुटकर व्यापारी तीन प्रकार के हो सकते हैं :

i) **फेरी वाले (Hawkers) :** फेरी वाले रिहायशी इलाकों में घर-घर जाकर दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ बेचते हैं। इनके द्वारा सब्जियाँ, फल, बर्तन, खिलौने, आइसक्रीम, खाने की चीजें आदि का विक्रय किया जाता है। साधारणतया फेरी वाले अपनी वस्तुओं को या तो अपनी पीठ पर या साइकिल, ठेला, टट्टू, बंद मोटर-गाड़ी आदि पर लाद कर घर-घर और गली-गली में बेचते फिरते हैं। अल्प-पूँजी के कारण इनके पास वस्तुओं का संग्रह कम होता है। अब ज्यों-ज्यों पक्की सड़कों का विस्तार बढ़ रहा है और मोटर एवं बसें दूर-दूर तक जाने लगी हैं, त्यों-त्यों फेरी वालों का कार्यक्षेत्र संकुचित होता जा रहा है।

ii) **पटरी वाले व्यापारी (Pavement traders) :** सड़क की पटरी पर बैठने वाले व्यापारी प्राय: व्यस्त व्यापारिक क्षेत्रों, गलियों के नुक्कड़ों तथा रेलवे स्टेशनों व बस अड्डों के निकट देखने को मिलते हैं। वे हाथ में पकड़ने वाले थैले, कपड़े के कटपीस, सिले-सिलाए वस्त्र, जूते, घरेलू बर्तन, खिलौने, पैन व पेंसिल, पत्र-पत्रिकाएँ, फल, सब्जियाँ आदि का विक्रय करते हैं। कभी-कभी पटरी वाले व्यापारी माल के प्रदर्शन हेतु अस्थायी छप्पर (शेड) अथवा काम चलाऊ चबूतरों का निर्माण भी करते हैं। बिक्री की संभावना को देखते हुए वे अपना कार्य-स्थल अक्सर बदलते रहते हैं और वहां माल को पटरी पर फैला कर बेचते हैं।

iii) **हाट के व्यापारी (Market traders) :** हाट अथवा पैठों के व्यापारी अपनी वस्तुएँ सप्ताह के एक निश्चित दिन को लगने वाले अनियमित बाज़ार में बेचते हैं। प्राय: वे अपना कारोबार छोटे-छोटे शहरों या कस्बों में करते हैं। उनकी मुख्य विशेषता यह है कि वे अमुक दिन एक बाज़ार से आसपास के इलाके में लगे दूसरे बाज़ार को चले जाते हैं और वहाँ अपनी वस्तुएँ ज़मीन पर फैला कर स्थानीय ग्राहकों को उनकी पसंद की वस्तुएँ छाँटने हेतु सुविधा प्रदान करते हैं। इन बाज़ारों में वस्तुओं के मूल्य सौदेबाजी के द्वारा तय किये जाते हैं।

11.10.2 चलते-फिरते फुटकर व्यापारियों की सेवाएँ

फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं को अपना माल उनके निवास-स्थान के निकट तथा सुविधाजनक स्थानों पर बेचते हैं। वे या तो उपभोक्ताओं की दहलीज़ पर जाकर या फिर उनके मार्ग में स्थित केंद्रों पर विक्रय करते हैं। काम-काज में व्यस्त लोगों को फेरी वाले तथा पटरी वाले व्यापारियों से अपनी जरूरत का सामान खरीदने में बहुत सुविधा रहती है। इसी प्रकार हाटों के व्यापारी छोटे-छोटे शहरों तथा गाँवों में रहने वाले उपभोक्ताओं, जिनकी पहुँच स्थायी दुकानों तक नहीं होती, को मूल्यवान सहायता प्रदान करते

हैं। अत: चलते-फिरते फुटकर व्यापारी आम प्रयोग की वस्तुएँ उपलब्ध कराकर उपभोक्ताओं के समय एवं मेहनत की बचत करते हैं। यही नहीं, इनके द्वारा गृहिणियों को भी अपने दैनिक उपयोग की वस्तुएँ घर बैठे मिल जाती हैं।

11.11 स्थायी दुकान वाले फुटकर व्यापारी (Fixed Shop Retailers)

स्थायी दुकान वाले फुटकर व्यापारी अपनी दुकान किसी ऐसे स्थान पर स्थापित करते हैं जहाँ ग्राहक आसानी से पहुँच कर अपनी ज़रूरत का सामान खरीद सके। चलते-फिरते फुटकर व्यापारियों तथा स्थायी फुटकर व्यापारियों के बीच अंतर केवल इतना ही है कि चलते-फिरते फुटकर व्यापारी के पास व्यवसाय का कोई एक निश्चित स्थान नहीं होता जबकि स्थायी फुटकर व्यापारी अपनी बिक्री एक निश्चित दुकान से करते हैं। आजकल स्थायी फुटकर व्यापारियों की संख्या बहुत अधिक है।

व्यवसाय के आकार-प्रकार तथा कार्य-संचालन के आधार पर स्थायी दुकान वाले फुटकर व्यापारियों को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1 छोटे पैमाने वाले फुटकर व्यापारी, तथा
2 बड़े पैमाने वाले फुटकर व्यापारी

छोटे पैमाने वाले फुटकर व्यापारी सामान्यतया कम पूँजी से ग्राहकों के समीप दुकान लेकर व्यापार चलाते हैं। वे उपभोक्ताओं की स्टेशनरी, खाद्य सामग्री, मिष्ठान्न, सब्जियों, फल आदि से संबंधित ज़रूरतों को पूरा करते हैं। उनकी बिक्री की मात्रा तथा माल के स्टॉक सापेक्ष रूप से कम होते हैं। घरेलू उपयोग हेतु कुछ अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय वस्तुएँ बेचने वाले जनरल स्टोर भी छोटे पैमाने के फुटकर व्यापारियों के अंतर्गत आते हैं। बड़े पैमाने के फुटकर व्यापारियों के अंतर्गत वे फुटकर विक्रेता सम्मिलित होते हैं जो नाना प्रकार की वस्तुओं का बड़ी-बड़ी मात्रा में क्रय करते हैं, उनका स्टॉक रखते हैं और भारी संख्या में ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

11.11.1 छोटे पैमाने के फुटकर व्यापारी

छोटे पैमाने की फुटकर दुकानों के अंतर्गत निम्नलिखित दो प्रकार की दुकानें शामिल होती हैं — एक तो ऐसी दुकानें जो विभिन्न वस्तुओं में व्यापार करती हैं और दूसरी वह जो केवल कुछ वस्तुओं में ही व्यापार करती हैं। अधिकांश छोटे पैमाने की फुटकर दुकानें रिहायशी इलाकों या बाज़ारी स्थानों पर स्थापित की जाती हैं। इनकी सबसे बड़ी उपयोगिता अपने क्षेत्र के उपभोक्ताओं की प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत सेवा है। बड़े पैमाने की फुटकर दुकानों की तुलना में इनकी बिक्री तथा स्टॉक की मात्रा कम होती है। विक्रयार्थ माल की प्रकृति के आधार पर छोटे पैमाने के फुटकर व्यापारी चार प्रकार के होते हैं :

1 **स्टॉल वाली दुकानें (Stall-holders) :** छोटे आकार की तथा लकड़ी स्टॉल वाली दुकानें ग्राहकों के निवास स्थानों के नज़दीक अथवा उनके आसपास की सड़कों, गलियों नुक्कड़ों तथा बस अड्डों पर स्थित होती हैं। इनके द्वारा दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं, जिनके लिए उपभोक्ता केंद्रीय बाज़ार में नहीं जाना चाहते, का विक्रय किया जाता है। स्टेशनरी, खाद्य-सामग्री, हौजरी के सामान, प्रसाधन की वस्तुएँ आदि इन दुकानों के मुख्य आकर्षण हैं। इनका उद्देश्य उपभोक्ताओं की ज़रूरत का सामान उनके नज़दीकी स्थान पर उपलब्ध कर लाभ कमाना होता है। प्राय: यह देखा गया है कि स्टॉल वाली दुकानें किसी बड़े स्टोर के सामने खोली जाती हैं और वे सस्ती दर का माल बेचती हैं। इनकी स्थापना एकल स्वामित्व के रूप में होती है, अत: दुकान का काम भी व्यापारी स्वयं देखता है।

2 **सामान्य वस्तुओं की दुकानें (General merchandise shops) :** स्थानीय ग्राहकों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छोटे-छोटे सामान्य भंडारों की स्थापना की जाती है। ये भंडार अथवा दुकानें दिन-प्रतिदिन काम में आने वाली उपभोक्ता वस्तुओं (जिनमें डबलरोटी, बिस्कुट, मक्खन, स्टेशनरी, प्रसाधन, कागज व पैंसिल, सिगरेट, सुई-धागा, बटन आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ शामिल हैं) का विक्रय करती हैं। इनकी स्थापना घनी आबादी वाले रिहायशी इलाकों तथा

व्यस्त बाज़ारों में की जाती हैं। इनके अभाव में स्थानीय उपभोक्ताओं को अपनी ज़रूरत की छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए दूर-स्थित केंद्रीय बाज़ारों में भटकना पड़ता है। इस प्रकार ग्राहकों की ज़रूरत की सारी वस्तुएँ उनके नज़दीक स्थान पर उपलब्ध कराने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये दुकानें अपने नियमित ग्राहकों को घर पर माल पहुँचाने तथा उधार खरीदने की सुविधा भी उपलब्ध कराती हैं। इससे ग्राहकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क बनता है और फलस्वरूप दुकान की बिक्री भी बढ़ जाती है। अब तो विकासशील ग्रामीण क्षेत्रों में भी विविध-वस्तु-भंडार देखने में आते हैं।

3 **विशिष्ट वस्तुओं की दुकानें (Speciality shops) :** इन दुकानों पर किसी एक वर्ग (type) की वस्तुओं में से एक सीमित उपवर्ग (अथवा किस्म) की वस्तुएँ ही बेची जाती हैं। परन्तु इस चुने हुए उपवर्ग की वस्तुओं में अधिक-से-अधिक विविधिता (variety) उपलब्ध की जाती है। वास्तव में, ये दुकानें एक ही वर्ग की वस्तुओं को बेचने वाली दुकानों के परिवर्तित रूप हैं। इनके द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं से संबंधित मरम्मत इत्यादि की सेवा भी उपलब्ध कराई जाती है। उदाहरणार्थ, कुछ दुकानें कॉलेज स्तर की पुस्तकें, कुछ स्कूल स्तर की पुस्तकें, कुछ अन्य कानून, चिकित्सा अथवा इंजीनियरी में से एक या दो प्रकार को विक्रय के लिए चुन लेती हैं। इसी प्रकार बच्चों के लिए वस्त्र, विवाह के लिए वस्त्र, औरतों के लिए कीमती साड़ियाँ, जड़ाऊ आभूषण, विशेष प्रकार की मिठाई आदि के लिए विशिष्ट दुकानें ही उपयुक्त समझी जाती हैं।

4 **पुराने माल की दुकानें (Second-hand goods sellers) :** इन दुकानों पर सामान्य उपभोग की पुरानी अथवा नापसंद कर लौटायी गयी वस्तुओं को कुछ कम दाम पर बेचा जाता है। अधिकांश वस्तुएँ पुराने फैशन की वस्तुएँ, निम्न श्रेणी (second quality) की वस्तुएँ अथवा कम मूल्य की वस्तुएँ होती हैं। इनमें दोषपूर्ण माल, कटपीस, अनियमित माप वाला माल, मैले वस्त्र, अपरिष्कृत (unfinished) माल आदि सम्मिलित होते हैं। स्पष्ट है कि इन दुकानों पर केवल वे ही लोग जाते हैं जो कीमतों के प्रति अधिक संवेदनशील अथवा सचेत होते हैं। वास्तव में, ये दुकानें रियायती सामान बेचने वाले "निचली मंजिल के भंडारों" (basement stores) का ही एक परिवर्तन रूप हैं।

11.11.2 बड़े पैमाने के फुटकर व्यापारी

विविध प्रकार की वस्तुओं का भारी मात्रा में लेन-देन करने वाले फुटकर व्यापारियों को बड़े पैमाने के फुटकर व्यापारी कहा जाता है। वस्तुओं के बड़े भंडार, सापेक्ष रूप से कम खर्चे में अधिक बिक्री, श्रेष्ठ प्रबंध, निपुण विक्रेताओं द्वारा विक्रय आदि बड़े पैमाने पर संचालित फुटकर व्यापार के प्रमुख लाभ हैं। बड़े पैमाने की स्थायी दुकानों से व्यापार करने वाले फुटकर व्यापारियों के प्रकार और उनकी विशेषताओं की चर्चा नीचे की गई है।

विभागीय भंडार (Departmental Stores) : "विभागीय भंडार" से आशय बड़े-पैमाने पर फुटकर व्यापार करने वाली संस्था से है। इसमें अनेक प्रकार की वस्तुएँ एक ही स्थान पर बेची जाती हैं। भिन्न-भिन्न वस्तुओं को बेचने के लिए कई छोटे-छोटे एवं पृथक्-पृथक् विभाग होते हैं और प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार की वस्तु का ही विक्रय करता है। विभागीय भंडार मुख्यत: स्त्री-ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसका मुख्य आकर्षण उच्च-किस्म की व्यक्तिगत सेवा उपलब्ध करना है। प्राय: इसके अंतर्गत ग्राहकों के लिए कुछ नि:शुल्क सेवाओं व सुविधाओं, जैसे वाचनालय, शौचालय, जलपान-गृह, विश्राम-गृह, डाकघर, टेलीफोन आदि की व्यवस्था होती है। स्वामित्व तथा नियंत्रण की दृष्टि से विभागीय भंडार केंद्रीय प्रशासनिक-मंडल के अधीन काम करता है, यद्यपि इसका प्रत्येक विभाग एक-दूसरे से पृथक् एवं स्वतंत्र होता है। धनी ग्राहकों की अधिकाधिक संख्या को आकर्षित करने के लिए तथा उन्हें अलग-अलग तरह की वस्तुएँ बेचने के लिए अधिकांश विभागीय भंडारों की स्थापना बड़े-बड़े नगरों के व्यावसायिक केंद्रों में की जाती है।

विभागीय भंडार सिले-सिलाए वस्त्र, वेशभूषा-सामग्री, आभूषण, स्टेशनरी, खिलौने, खेल के सामान, जूते, चमड़े के सामान, बर्तन, फोटो कैमरे, घड़ियाँ, साइकिलें, किताबें आदि सभी प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का विक्रय करते हैं। परंतु इनके द्वारा सब्जियों, फल, डबलरोटी, मक्खन, दूध जैसी नाशवान वस्तुओं का विक्रय नहीं किया जाता। कहावत है कि विभागीय भंडार में "सुई से लेकर हवाई-जहाज तक" सभी

खरीदा जा सकता है, बशर्ते ग्राहक इनकी कीमतें चुका सके। परन्तु वास्तव में, ये स्टोर विक्रय हेतु मोटर गाड़ियाँ व हवाई जहाज़ उपलब्ध नहीं कराते। आजकल विभागीय भंडार अमरीका और यूरोप में अधिक लोकप्रिय बन गये हैं। भारत में इनकी स्थापना केवल बंबई, कलकत्ता, मद्रास, तथा दिल्ली जैसे बड़े-बड़े नगरों में की गयी है। स्पेन्सर्स, (मद्रास), व्हाइट वे एंड लेडला स्टोर्स (बंबई) तथा जानकीदास ऐंड संस (दिल्ली) भारत के कुछ लोकप्रिय नाम हैं।

सुपर बाज़ार (Super Markets) : सुपर बाजार एक दूसरी बड़े पैमाने की फुटकर व्यापारिक-संस्था है। इसमें स्वयं सेवा (self-service) के सिद्धांत पर अनेक प्रकार की सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं का कम मूल्य पर नकद विक्रय एक ही स्थान से किया जाता है और उपभोक्ताओं को अपनी मन पसंद की वस्तुएँ चुनने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाता है। सुपर बाज़ार विभागीय आधार पर संगठित होता है। इसमें ग्राहकों की सहायता के लिए सेल्समैन बहुत ही थोड़ी संख्या में होते हैं। प्रारंभ में इस बाज़ार में केवल खाद्य पदार्थ, मांस तथा परचूनिये के सामान का विक्रय होता था। परंतु आजकल इसके द्वारा खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य घरेलू वस्तुओं, जैसे — स्टेशनरी, सिले-सिलाए वस्त्र, खिलौने, क्रॉकरी, बर्तन, साबुन, दवाइयाँ, सौंदर्य प्रसाधन, आदि का विक्रय भी किया जाता है। सुपर बाज़ार का मुख्य उद्देश्य अधिक-से-अधिक वस्तुओं का विक्रय करना होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु प्राय: निम्नलिखित उपाय किये जाते हैं : i) वस्तुओं का उत्तम प्रदर्शन, ii) आकर्षक कम कीमतें, iii) स्वयं-सेवा पर बल, iv) ग्राहकों को मनपसंद की वस्तुएँ छाँटने का अवसर, v) बड़े पैमाने पर विज्ञापन एवं विक्रय संवर्धन, तथा vi) विक्रय वस्तुओं का नियमित संग्रह। सुपर बाज़ार की स्थापना नगर के केंद्रीय स्थानों पर की जाती है। इसमें विक्रयार्थ वस्तुएँ या तो सुनिश्चित विभागों में सजायी जाती हैं या फिर किसी विशाल कमरे में खुले खानों में रख दी जाती हैं। ग्राहक अपनी पसंद की वस्तुएँ चुनकर काउण्टर के पास ले आता है। वहाँ पर बिल का भुगतान कर देने के बाद वह वस्तुओं को ले जा सकता है।

विभागीय भंडार की भाँति सुपर बाज़ार में भी विभिन्न वस्तुओं का विक्रय एक ही छत के नीचे होता है। ये दोनों ही बड़े पैमाने की फुटकर व्यापारिक संस्थाएँ हैं। परंतु इन दोनों प्रकार की संस्थाओं में निम्नलिखित अंतर हैं :

i) सुपर बाज़ार का उद्देश्य ऐसी वस्तुएँ बेचना है जिनकी कीमत कम परंतु जिनके उपभोग की गति तेज़ होती है। सामान्यत: रेफ्रीजिरेटर, पंखा, रेडियो तथा टेलीविज़न जैसी कीमती व अधिक टिकाऊ वस्तुएँ सुपर बाज़ार में नहीं बेची जातीं। दूसरी ओर, विभागीय भंडार का उद्देश्य साधारण या कीमती तथा कम टिकाऊ व अधिक देर तक चलने वाली सभी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध कराना है। ऐसे भंडार में "सुई से हवाई जहाज तक" सब कुछ बेचा जाता है।

ii) सुपर बाज़ार में वस्तुओं का विक्रय "स्वयं सेवा" के सिद्धांत पर किया जाता है। ग्राहकों को विश्वास दिलाने तथा उनकी सहायता के लिए कोई सेल्समैन या दुकान-कर्मचारी नियुक्त नहीं किये जाते। वे अपनी इच्छानुसार स्वयं ही माल का चुनाव करते हैं। परंतु विभागीय भंडार में ग्राहकों को व्यक्तिगत सेवा प्रदान की जाती है। प्रत्येक काउण्टर पर नियुक्त अलग-अलग विक्रेता ग्राहकों की व्यक्तिगत रुचि और पसंद का ध्यान रखते हैं और उनकी आवभगत के लिए तत्पर रहते हैं।

iii) सुपर बाज़ार उन सेवाओं या सुविधाओं को उपलब्ध नहीं कराता जिनको एक विभागीय भंडार सामान्यत: मुफ्त प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, सुपर बाज़ार सुविधा एवं सामान भिजवाने की मुफ्त सेवा प्रदान नहीं करता।

iv) कीमतों के प्रति अधिक संवेदनशील एवं सचेतन व्यक्ति अपनी जरूरत की वस्तुएँ सुपर बाज़ार से खरीदते हैं, परंतु विलासिता की वस्तुएँ खरीदने वाले तथा सुख-सुविधा के इच्छुक धनी व्यक्ति विभागीय भंडार से ही वस्तुएँ खरीदते हैं।

सुपर बाज़ार की स्थापना एक सहकारी समिति के रूप में भी की जा सकती है। दिल्ली का "अपना बाज़ार" इसका एक सजीव उदाहरण है। इसकी स्थापना सरकारी प्रोत्साहन से सहकारी क्षेत्र में की गयी है। इस बाज़ार में विनिर्माताओं और थोक व्यापारियों से थोक दरों पर वस्तुओं का क्रय किया जाता है। विक्रय वस्तुओं का निर्धारण ग्राहकों की आवश्यकताओं को देखते हुए किया जाता है। बिक्री में सुविधा के लिए अपना बाज़ार कई विभागों में बाँटा गया है — खिलौने व खेल का सामान, किताबें व स्टेशनरी,

सिले-सिलाए वस्त्र, हैण्डलूम, मिल का कपड़ा, काँच का सामान, सौंदर्य प्रसाधन तथा खाद्य सामग्री। स्मरण रहे कि संगठन की दृष्टि से अपना बाज़ार तथा सुपर बाज़ार एक दूसरे से भिन्न हैं। अपना बाज़ार की स्थापना सहकारिता के आधार पर "दी कोआपरेटिव लिमिटेड" के नाम से हुई है। इसके विपरीत, सुपर बाज़ार की स्थापना सामान्यतया निजी क्षेत्र के एक व्यावसायिक संगठन के रूप में की जाती है। इसी प्रकार सुपर बाज़ार तथा "सहकारी उपभोक्ता स्टोर" में भी अग्रलिखित अन्तर किया जा सकता है। सहकारी उपभोक्ता भंडार प्रायः लघु-स्तर पर चलाया जाता है, जबकि सुपर बाज़ार दीर्घस्तरीय फुटकर व्यापारिक-संस्था होता है।

बहुसंख्यक दुकानें (Multiple Shops) : एक ही स्वामित्व एवं प्रबंध के अंतर्गत चलने वाली बहुत-सी फुटकर दुकानों को बहुसंख्यक दुकानें कहते हैं। ये दुकानें देश के नगरों के विभिन्न स्थानों पर फैली हुई होती हैं और एक ही प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करती हैं। बड़े पैमाने पर फुटकर व्यापार चलाने की इस प्रणाली के अंतर्गत रिहायशी इलाकों के नज़दीक फुटकर भंडार या दुकानें खोली जाती हैं। इन दुकानों का स्वामित्व एवं प्रबंध एक ही संस्था के हाथ में होने के कारण इनको शृंखलाबद्ध दुकानों की संज्ञा भी दी जाती है। इस प्रकार की दुकानें या स्टोर प्रायः विनिर्माताओं अथवा व्यापारिक कंपनियें द्वारा खोली जाती हैं। इनका उद्देश्य सभी मध्यस्थों को हटाकर उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना होता है।

बहुसंख्यक दुकानों के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं :

i) **विशिष्टीकरण :** बहुसंख्यक दुकानें प्रायः एक या दो प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करती हैं।
ii) **मानकीकरण :** इन दुकानों पर बेची जाने वाली वस्तुएँ मानकित (standardized) होती हैं अर्थात् आकार, गुण व मूल्य में एक समान ही होती हैं।
iii) **केंद्रीय प्रबंध :** यद्यपि प्रत्येक दुकान को चलाने हेतु एक प्रबंधक होता है, परंतु वस्तुओं के क्रय या निर्माण व पूर्ति का प्रबंध प्रायः मुख्य कार्यालय में केंद्रित होता है।
iv) **समरूपता :** प्रत्येक दुकान की बाह्य सजावट (appearance) का एक ही रूप होता है तथा उसकी व्यापार की पद्धति भी समान होती है।
v) **समान मूल्य :** प्रत्येक दुकान पर बेची जाने वाली वस्तुओं के मूल्य एक समान होते हैं। इन मूल्यों का निर्धारण मुख्य कार्यालय द्वारा किया जाता है।
vi) **नकद विक्रय :** वस्तुओं का विक्रय नकद के आधार पर होता है।
vii) **भौगोलिक विकेंद्रीकरण :** ग्राहकों को अधिकाधिक सुविधा पहुँचाने तथा अपने कारोबार को बढ़ाने के उद्देश्य से इस प्रकार के फुटकर विक्रेता भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी दुकानें खोल देते हैं।
viii) **जनोपयोगी वस्तुएँ :** बहुसंख्यक दुकानें प्रायः जनसाधारण के दैनिक प्रयोग हेतु टिकाऊ तथा मानकित वस्तुओं का विक्रय करती हैं।

भारत में विभिन्न विनिर्माणी कंपनियों द्वारा बहुसंख्यक अथवा शृंखलाबद्ध दुकानों की स्थापना की गयी है। इन कंपनियों में बाटा शू कंपनी, दिल्ली क्लॉथ मिल्स, जय इंजीनियरिंग वर्क्स (ऊषा ब्रांड की वस्तुएँ), बूट्स केमिकल प्रोडक्ट्स, करोना शू कंपनी, नेशनल टेक्सटाइल कार्पोरेशन, मफत लाल ग्रुप की दुकानें आदि उल्लेखनीय हैं।

डाक आदेश-गृह (Mail Order House) : विज्ञापन के माध्यम से दूर-दूर के ग्राहकों को आकर्षित करने, डाक द्वारा आर्डर लेने और डाक द्वारा ही उन ग्राहकों को माल बेचने को "डाक द्वारा फुटकर व्यापार" की प्रणाली कहते हैं। अतः डाक आदेश-गृह से आशय फुटकर व्यापार की एक ऐसी संस्था से है जो डाक घर को अपनी वस्तुओं के वितरण का माध्यम बना लेती है। उदाहरणार्थ, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, स्वास्थ्यवर्धक औषधियाँ व उपकरण, अनूठी वस्तुएँ, ग्रामोफोन रिकार्ड आदि आर्डर मिलने पर डाक से बेचे जाते हैं। डाक द्वारा व्यापार की प्रणाली के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

i) **विज्ञापन द्वारा विक्रय :** इस प्रणाली में माल का विक्रय विज्ञापन द्वारा किया जाता है। अतः विज्ञापन का आकर्षक एवं प्रभावकारी होना अत्यंत आवश्यक है।
ii) **डाक द्वारा व्यापार :** संस्था द्वारा ग्राहक को देखे बिना ही माल की बिक्री अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है। सारा कारोबार डाकखाने की सहायता से चलाया जाता है। इसके लिए वी.पी.पी. (Value Payable Post) पद्धति को अपनाया जाता है।

iii) **बिना दुकान के व्यापार :** इस प्रणाली में विक्रेता की दुकान व उसकी स्थिति का विशेष महत्त्व नहीं होता। अधिकांश विनिर्माता अपनी फैक्टरियों से और व्यापारी अपने घरों से ही व्यापार चलाते हैं।

iv) **विशिष्ट वस्तुओं का व्यापार :** डाक द्वारा व्यापार हेतु विक्रय-वस्तु में निम्नलिखित गुण होने आवश्यक हैं — i) वस्तु शीघ्र नाशवान नहीं होनी चाहिए, ii) वस्तु श्रेणीकृत एवं मानकित होनी चाहिए, iii) वस्तु पर कोई व्यापारिक-चिह्न या व्यापारिक नाम अंकित होना चाहिए, iv) वस्तु का वज़न व फैलाव भी कम होना चाहिए, तथा v) वस्तु को डाक द्वारा भेजने का खर्च उसकी अपनी लागत से कम होना चाहिए।

v) **विस्तृत बाज़ार :** विज्ञापन एवं विक्रय-प्रचार से दूर-दूर के ग्राहक आकर्षित हो जाते हैं। फलस्वरूप, डाक द्वारा व्यापार का बाजार विस्तृत हो जाता है।

डाक द्वारा व्यापार की व्यवस्था के अंतर्गत सर्वप्रथम एक डाक-सूची (mailing list) तैयार की जाती है। इस सूची को तैयार करते समय टेलीफोन डायरेक्टरी तथा भिन्न-भिन्न व्यापारिक संस्थाओं के सदस्यों की सूचियों से सहायता ली जाती है। इस संबंध में कुछ विशेष प्रकार के ग्राहकों से पत्र-व्यवहार भी किया जा सकता है। तत्पश्चात् समाचार पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन के द्वारा ग्राहकों को माल खरीदने हेतु आमंत्रित किया जाता है। ग्राहकों से आर्डर आने पर उनको पूरा करने हेतु समुचित कार्यवाही की जाती है। सामान्यत: ग्राहकों को माल वी.पी.पी. द्वारा भेजा जाता है। वी.पी.पी. के अंतर्गत ग्राहक से माल का मूल्य प्राप्त होने पर ही डाकिया उसे माल की सुपुर्दगी देता है। इस प्रकार ग्राहकों को उनकी इच्छित वस्तुएँ घर बैठे-बिठाए ही मिल जाती हैं और उनके द्वारा चुकायी गयी राशि डाकखाने द्वारा माल के विक्रेता को भिजवा दी जाती है।

डाक द्वारा व्यापार के अंतर्गत ग्राहक के समय एवं धन की बचत होती है। उसे बाज़ार से माल का क्रय नहीं करना पड़ता। वह डाक द्वारा उन वस्तुओं को भी खरीद सकता है जो स्थानीय बाज़ार में उपलब्ध नहीं हैं। यही नहीं, डाक द्वारा माल मँगाने से ग्राहक को स्थानीय कर भी नहीं देना पड़ता। दूसरी ओर विक्रेता को भी कई प्रकार से लाभ होता है। उसे न तो किसी व्यावसायिक केंद्र में दुकान लेनी पड़ती है और न ही उसकी स्थापना में धन लगाना पड़ता है। ग्राहकों के आदेशानुसार माल जुटाने के कारण इस व्यापार को प्रारंभ करने हेतु बहुत कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर व्यापार वी.पी.पी. के द्वारा होने से न ही उधार का कोई प्रश्न उठता है और न ही रकम डूबने का भय रहता है। डाक द्वारा व्यापार का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है। अत: जहाँ तक डाक की पहुँच है वहाँ तक व्यापार भी हो सकता है। अंत में, इस प्रणाली के अंतर्गत मध्यस्थों का सर्वथा बहिष्करण हो जाता है। डाक द्वारा व्यापार के इतने लाभ होते हुए भी भारत में इस प्रणाली का विकास नहीं हो सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि अशिक्षित लोगों तक डाक द्वारा नहीं पहुंचा जा सकता तथा जगह-जगह छोटे-छोटे फुटकर व्यापारी उपलब्ध होते हैं।

उपभोक्ता सहकारी भंडार (**Consumer's Co-operative Stores**) **:** उपभोक्ता सहकारी भंडार से हमारा आशय उपभोक्ताओं की उस सहकारी समिति से है जिसका निर्माण स्वेच्छा से तथा सहकारिता के आधार पर किया गया है। इसका प्रधान उद्देश्य आवश्यक मध्यस्थों के बिना ही अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदना होता है। इसके लिए भंडार ज़रूरत की वस्तुओं को बड़े-बड़े थोक व्यापारियों या विनिर्माताओं से कम मूल्य पर खरीद लेता है और अपने सदस्यों को प्रचलित बाज़ार भाव पर बेच देता है। इस प्रकार वह अपने सदस्यों को और अन्य लोगों को सस्ते मूल्य पर अच्छी वस्तुएँ बेचता है। भंडार के खर्च घटा लेने के बाद शेष लाभ को सदस्यों के बीच लाभांश के रूप में बाँट दिया जाता है।

उपभोक्ता सहकारी भंडार के लक्षण निम्नलिखित हैं :

i) इसका निर्माण व संचालन उपभोक्ताओं के द्वारा होता है।

ii) इसकी सदस्यता स्वेच्छा से सहयोग करने वाले उपभोक्ताओं तक सीमित होती है। ये सदस्य एक ही फर्म के कर्मचारी या एक ही क्षेत्र के निवासी हो सकते हैं।

iii) इसका सदस्य बनने के लिए कम-से-कम एक शेयर लेना आवश्यक होता है।

iv) इसमें एक सदस्य को केवल एक ही मत (vote) देने का अधिकार होता है, चाहे उसके पास एक से अधिक शेयर हों।

v) इसमें सभी प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का विक्रय होता है। उदाहरणार्थ, स्टेशनरी, परचूंनिये का सामान, वेशभूषा की सामग्री, बर्तन, दवाइयाँ, कागज़ आदि।

vi) इसमें सभी विक्रय नकद होते हैं।

vii) इसमें शुद्ध लाभ का कम-से-कम 1/4 भाग प्रतिवर्ष संचित कोष में जमा करना आवश्यक होता है।

चूँकि भंडार पर सदस्यों का पूर्ण नियंत्रण होता है, अत: अधिकांश सदस्यों की ज़रूरत की सभी वस्तुएँ प्रत्येक समय उपलब्ध रहती हैं। उपभोक्ता सहकारी भंडार किसी दफ्तर, घर अथवा मुहल्ले में खोला जा सकता है। इसका कारोबार अधिकतर सदस्यों के द्वारा बिना किसी वेतन के चलाया जाता है। इसके साथ व्यवहार करने पर सदस्यों में बचत की आदत विकसित होती है। भारत में सरकारी प्रोत्साहन के कारण पिछले कुछ वर्षों में उपभोक्ता सहकारी भंडारों की संख्या में वृद्धि हुई है।

अवक्रय व्यापार-गृह (Hire-Purchase Trading Houses) : प्राय: वस्तुओं की बिक्री या तो नकद या उधार की जाती है। पर कुछ व्यापारिक संस्थाएँ इन दोनों के बीच की पद्धति को अपनाती हैं। इसे अवक्रय पद्धति कहते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत क्रेता और विक्रेता के बीच वस्तु की बिक्री के संबंध में एक अनुबंध होता है। इस अनुबंध के आधार पर क्रेता वस्तु का क्रय कर लेता है और रकम का भुगतान वह धीरे-धीरे किश्तों में करता रहता है। जैसे ही पहली किश्त का भुगतान हो जाता है, वस्तु क्रेता को सौंप दी जाती है, लेकिन वस्तु का स्वामित्व विक्रेता के पास ही रहता है। क्रेता अपनी ज़रूरत के अनुसार वस्तु का प्रयोग कर सकता है। जैसे ही अंतिम किश्त का भुगतान हो जाता है, क्रेता वस्तु का स्वामी बन जाता है। यदि क्रेता कुछ किश्तें देने के बाद और अगली किश्तें चुकाने में असमर्थ रहता है, तो विक्रेता अपनी वस्तु को वापस ले सकता है और क्रेता द्वारा दी गई किश्तों की रकम को ज़ब्त कर सकता है। इस प्रकार ज़ब्त की गयी रकम वस्तु का किराया समझी जाती है। क्रेता इसे वापस नहीं ले सकता।

अवक्रय व्यापार-गृह द्वारा केवल टिकाऊ, मानक तथा अधिक मूल्य की वस्तुएँ ही बेची जाती हैं। वस्तुओं की सरल पहचान के साथ-साथ उनका हस्तांतरण-योग्य होना भी आवश्यक है। इस पद्धति के अंतर्गत एक छोटा निर्माता अपने कारखाने के लिए मशीनरी जैसी कोई उपयोगी सम्पत्ति खरीद कर तुरंत उसका उपयोग कर सकता है। दूसरी ओर विक्रेता को मूल्य के साथ-साथ व्याज भी मिल जाता है। एक निर्धन अथवा निम्न वर्ग का व्यक्ति इस आधार पर वस्तु खरीद कर अपनी जीविका कमा सकता है। उद रणार्थ अवक्रय के अंतर्गत ऑटोरिक्शा खरीदकर उसे चलाकर अपनी जीविका कमाना। इससे बचत करने की आदत विकसित होती है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि क्रेता को उसी वस्तु के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है। यही नहीं, इस पद्धति के अंतर्गत कई प्रकार की औपचारिकताएँ भी पूरी करनी पड़ती हैं।

रियायती भंडार (Discount Houses) : रियायती भंडार से आशय उस दाघ-स्तरीय फुटकर व्यापार से है जिसमें बिकने वाली वस्तुओं पर छूट सामान्यत: दी जाती है। प्राय: विशिष्ट वस्तुओं का लेन-देन भारी मात्रा में करता है और सुविधाजनक (convenience goods) माल से दूर रहता है। इसकी विक्रय-वस्तुओं के अंतर्गत टिकाऊ एवं मानक माल जैसे बिजली से चलने वाले घरेलू उपकरण, फ़ोटो कैमरे, दूरबीन, घड़ियाँ आदि सम्मिलित होते हैं। रियायती भंडार अपनी नई वस्तुएँ भी प्रचलित बाज़ार-भाव से कुछ कम कीमत पर बेचता है। इसकी वस्तुएँ किसी प्रकार से हीन नहीं होतीं तथा उसी स्तर की होती हैं जैसी वस्तुएँ पूर्ण कीमत वाले अन्य फुटकर भंडार बेचते हैं। इसमें भेद केवल इतना है कि यह भंडार उतनी सेवाएँ अथवा सुविधाएँ प्रदान नहीं करता जितनी अन्य भंडार, विशेष रूप से विभागीय भंडार, में उपलब्ध की जाती हैं। इसकी वस्तुओं में विविधता तथा मिश्रण भी कम पाया जाता है। प्राय: अनमेल मॉडल, आकार अथवा रंग वाली वस्तुएँ, जो प्रतिष्ठित भंडारों के लिए अनुपयुक्त मानी जाती हैं, रियायती भंडार के माध्यम से बिक जाती हैं। माल को भारी मात्रा में सीधा विनिर्माताओं से रियायती दरों पर खरीद लेने से यह भंडार कम मूल्य पर माल बेचकर भी लाभ अर्जित करता है। वस्तुत: इसके द्वारा अपने सूची मूल्य से कम पर माल बेचने हेतु एक नियमित व सुसंगत नीति अपनाई जाती है। इस प्रकार की व्यापारिक संस्था कम आय वाले लोगों में अधिक लोकप्रिय होती है।

स्वचालित विक्रय मशीन (Automatic Vending Machines) : सिक्कों द्वारा क्रियाशील होने वाली स्वचालित मशीन के द्वारा वस्तुओं का फुटकर विक्रय करने को "स्वत: विक्रय" कहते हैं।

पाश्चात्य देशों में मानवीय श्रम बहुत महँगा तथा दुर्लभ है। वहाँ पर वस्तुओं के फुटकर विक्रय का कार्य मशीनों द्वारा सम्पादित होता है। ऐसी विक्रय मशीन की मुख्य विशेषता यह है कि इसे किसी भी सुविधाजनक स्थान (जैसे — बस अड्डा, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा अथवा व्यावसायिक केंद्र) पर रखा जा सकता है। पश्चिमी देशों के शहरों में सिगरेट, रेज़र ब्लेड, डाक टिकट, शीतल पेय पदार्थ, दूध, आइसक्रीम, किताबें, पत्र-पत्रिकाएँ, आदि की बिक्री, विक्रय मशीनों द्वारा ही की जाती है। विक्रय मशीन के छेद में आवश्यक सिक्का डाल देने पर सामान बाहर आ जाता है। मशीन के अंदर पहले से ही प्रमाणित वस्तुओं को सजाकर रख दिया जाता है। स्टॉक खत्म हो जाने पर वस्तुओं को पुन: मशीन में भरकर रख दिया जाता है। मशीन द्वारा वस्तुओं का विक्रय प्रत्येक समय संभव होता है। अत: ग्राहक अपनी सुविधानुसार वस्तुओं का क्रय कर सकता है। विक्रेताओं की आवश्यकता न होने से वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर मिल जाती हैं। मशीन द्वारा उपभोक्ता को मानक वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं। अंत में, इसके अंतर्गत बिक्री का हिसाब-किताब रखने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। उक्त उपयोगिताओं के बावजूद यह प्रणाली दोषमुक्त नहीं है। इस मशीन के द्वारा केवल सीमित वस्तुओं का विक्रय ही संभव होता है। प्राय: मशीन खराब हो जाने पर ग्राहकों को खिन्नता होती है। आवश्यक सिक्के उपलब्ध न होने की दशा में यह युक्ति निरर्थक बन जाती है। भारत में स्वचालित विक्रय मशीनें अभी लोकप्रिय नहीं हुई हैं। इनका प्रयोग कुछ सीमित कार्यों के लिए ही किया जाता है। इन कार्यों में डाक टिकट बेचना, हवाई जहाज से यात्रा का बीमा करना, दूध का वितरण करना आदि सम्मिलित हैं।

चित्र 11.2 में विभिन्न प्रकार के फुटकर व्यापारियों का चित्रण किया गया है।

चित्र 11.2
फुटकर व्यापारियों के प्रकार

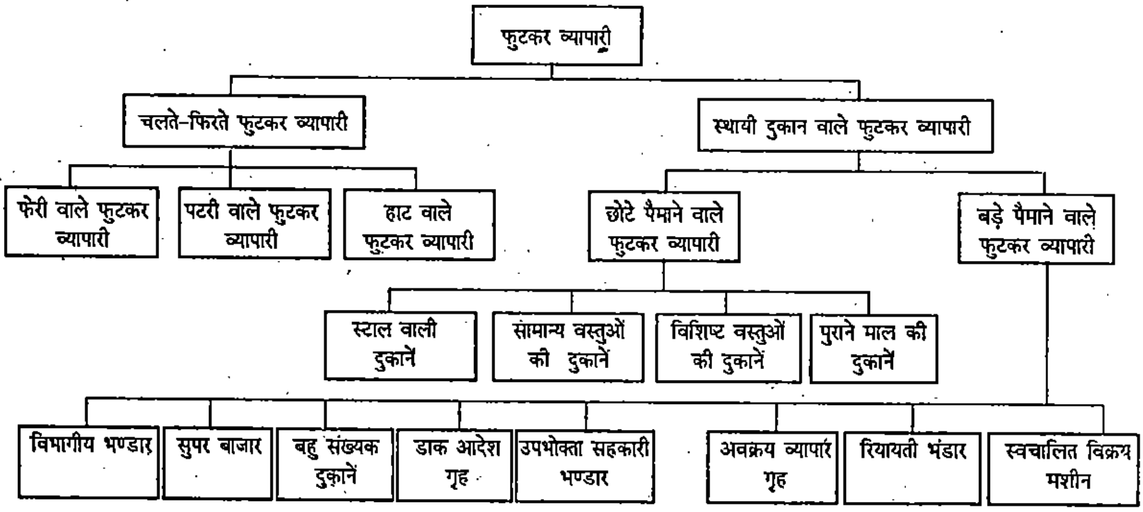

बोध प्रश्न घ

1 रिक्त स्थान भरिए :

i) विभागीय भंडार ऐसे फुटकर बाजार के समान है जिसमें सम्मिलित दुकानों का स्वामित्व किसी एक .... के पास होता है।

ii) लघु-स्तरीय फुटकर व्यापारी सामान्यतया .... प्रकार की वस्तुओं में लेन-देन करते हैं।

iii) स्थान-स्थान पर घूम कर अपना माल बेचने वाले फुटकर व्यापारियों को .... फुटकर व्यापारी कहा जाता है।

iv) एक या दो विशेष प्रकार की वस्तुएँ बेचने वाली फुटकर दुकानों को .... की दुकानें कहा जाता है।

v) सुपर बाज़ार में ग्राहकों की व्यक्तिगत सेवा के लिए .... नहीं होते।

vi) शृंखलाबद्ध भंडार की सभी शाखाओं में उपलब्ध विक्रय वस्तुएँ .... होती हैं।

vii) डाक आदेशगृह सामान्यता .... वस्तुओं का विक्रय करते हैं।

viii) उपभोक्ता सहकारी भंडार द्वारा अर्जित लाभ को .... में वितरित कर दिया जाता है।

ix) अवक्रय (hire purchase) पद्धति के अंतर्गत मूल्य का भुगतान .... में किया जाता है।
x) सुपर बाजार अपनी वस्तुओं को .... दरों पर जुटाता है।

2 बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं या असत्य?
i) लघुस्तरीय स्थायी दुकानें अनेकानेक प्रकार की वस्तुएँ बेचती हैं।
ii) विभागीय भंडार शहरों के केंद्रीय स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं।
iii) सुपर बाज़ार, विभागीय भंडार के बिल्कुल समान है।
iv) डाक आदेश-गृह केवल डाक द्वारा ग्राहकों से आर्डर प्राप्त करते हैं।
v) उपभोक्ता सहकारी भंडार "न लाभ और न हानि" के आधार पर चलाए जाते हैं।
vi) अवक्रय पद्धति के अंतर्गत सभी किश्तों का भुगतान हो जाने पर ग्राहक वस्तु का स्वामी बन जाता है।
vii) सुपर बाज़ार और अपना बाज़ार में कोई अंतर नहीं है।

11.12 सारांश

विस्तृत अर्थ में, बड़ी मात्रा में माल बेचने वाली व्यावसायिक फर्मों को थोक व्यापारी कहते हैं। विशिष्ट अर्थ में, थोक व्यापारी से अभिप्राय उस मध्यस्थ व्यापारी से होता है जो बड़ी-बड़ी मात्रा में माल खरीद कर उसे पुनर्विक्रय एवं लाभ कमाने हेतु फुटकर विक्रेताओं तथा औद्योगिक व व्यावसायिक उपभोक्ताओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचता है। अत: थोक व्यापारी विनिर्माताओं के माल का वितरण संभव करता है और छोटे-छोटे फुटकर व्यापारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

व्यवहार की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर थोक व्यापारी तीन प्रकार के हो सकते हैं — सामान्य माल के थोक व्यापारी, सामान्य उत्पाद श्रृंखला के थोक व्यापारी तथा किसी विशिष्ट वस्तु के थोक व्यापारी। कार्य-संचालन की पद्धति के आधार पर इनको सेवा प्रधान थोक व्यापारी तथा सीमित सेवा थोक व्यापारी के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से थोक व्यापारी स्थानीय, ज़िला स्तर के तथा राष्ट्रीय स्तर के हो सकते हैं।

वस्तुओं का एकत्रीकरण, संग्रहण, श्रेणीकरण व संवेष्टन, वितरण, मूल्य-निर्धारण आदि थोक व्यापारी के प्रमुख कार्य हैं। इनके अतिरिक्त, वह माल के बिकने तक की सारी जोखिम स्वयं उठाता है और विनिर्माताओं व फुटकर विक्रेताओं को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार थोक व्यापारी वस्तु के विनिर्माताओं तथा फुटकर व्यापारियों को मूल्यवान सेवाएँ प्रदान करता है।

फुटकर व्यापार के अंतर्गत अधिकतर माल सीधे उपभोक्ताओं को उनके उपभोग अथवा प्रयोग हेतु बेचा जाता है। अत: थोक व्यापारियों या विनिर्माताओं से अधिक मात्रा में माल खरीद कर उसे सीधा अंतिम उपभोक्ताओं को उनकी पसंद व ज़रूरत के अनुसार बेचने वाला व्यक्ति या संस्था फुटकर व्यापारी कहलाती है। चूँकि फुटकर व्यापार करना विनिर्माता का प्रधान कार्य नहीं है, अत: सीधे उपभोक्ताओं को अपना माल बेचने वाले विनिर्माता को फुटकर व्यापारी नहीं कहा जाता है। फुटकर व्यापारी वस्तुओं के वितरण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसका मूल ध्येय अंतिम उपभोक्ताओं की अधिकांश ज़रूरतों को एक ही स्थान पर पूरा करना होता है। वह एक ओर उत्पादकों अथवा थोक व्यापारियों तथा दूसरी ओर उपभोक्ताओं के बीच कड़ी के रूप में प्रस्तुत होता है। फुटकर व्यापारी निम्नलिखित कार्य करता है : माँग का पूर्वानुमान करना, माल का क्रय करना, माल का संग्रहण करना, माल को पैक करना, ग्राहकों को सेवाएँ व सुविधाएँ प्रदान करना, थोक व्यापारियों के माध्यम से विनिर्माताओं को बाज़ार संबंधी जानकारी देना तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। वह विपणन कार्य के द्वारा उपभोक्ताओं व थोक व्यापारियों को प्रत्यक्ष तथा उत्पादकों को अप्रत्यक्ष सहायता प्रदान करता है।

फुटकर व्यापारियों को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है : चलते-फिरते या भ्रमणशील फुटकर व्यापारी तथा स्थायी दुकानों के फुटकर व्यापारी। चलते-फिरते फुटकर व्यापारी घर-घर जाकर अथवा अपनी सुविधानुसार स्थान बदल कर माल बेचते हैं। इनके अंतर्गत फेरी वाले, पटरी वाले तथा हाटों के व्यापारी सम्मिलित होते हैं। स्थायी दुकानों वाले फुटकर व्यापारी अपना व्यापार किसी ऐसे स्थान पर चलाते हैं

जहाँ ग्राहक आसानी से पहुँच कर अपनी जरूरत का सामान खरीद सकें। स्थायी फुटकर दुकानें भी दो प्रकार की होती हैं : लघु स्तरीय तथा दीर्घ स्तरीय। लघु स्तरीय फुटकर दुकानों पर बिक्री की मात्रा तथा माल के स्टॉक सापेक्ष रूप से कम होते हैं। स्टॉल वाली दुकान, सामान्य वस्तुओं की दुकान, विशिष्ट वस्तुओं की दुकान, पुरानी वस्तुओं की दुकान आदि लघु स्तरीय स्थायी दुकानों के उदाहरण हैं। दीर्घ स्तरीय स्थायी दुकानों के अंतर्गत वे फुटकर विक्रेता सम्मिलित होते हैं जो नाना प्रकार की वस्तुओं का बड़ी-बड़ी मात्रा में क्रय करते हैं, उनका स्टॉक रखते हैं और भारी संख्या में ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। दीर्घ स्तरीय स्थायी फुटकर दुकानें निम्नलिखित आठ प्रकार की हो सकती हैं : विभागीय भंडार, सुपर बाज़ार, बहुसंख्यक दुकानें, डाक आदेश गृह, उपभोक्ता सहकारी भंडार, अवक्रय व्यापार गृह, रियायती भंडार तथा स्वचालित विक्रय मशीनें।

11.13 शब्दावली

स्वतः विक्रय (Automatic Vending) : सिक्के से क्रियाशील होने वाली स्वचालित मशीनों द्वारा सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं का भिन्न-भिन्न स्थानों पर विक्रय।

उपभोक्ता सहकारी भंडार (Consumer's Co-operative Stores) : उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने हेतु संगठित सहकारी समितियों के सदस्यों द्वारा संचालित फुटकर भंडार।

विभागीय भंडार (Departmental Stores) : बड़े पैमाने की फुटकर व्यापारिक संस्था जिसमें एक ही भवन के अंतर्गत बहुत से विभाग होते हैं और प्रत्येक विभाग एक विशेष प्रकार की वस्तु बेचता है तथा वह स्वयं में एक पूर्ण इकाई होता है।

रियायती भंडार (Discount Houses) : टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं को रियायती दर पर नियमित रूप से बेचने वाले दीर्घ स्तरीय फुटकर भंडार।

अवक्रय व्यापार (Hire-purchase Trading) : टिकाऊ वस्तुओं के किराया-क्रय की पद्धति जिसमें वस्तु के मूल्य का भुगतान सामयिक किस्तों द्वारा होता है तथा अंतिम किस्त के भुगतान के समय तक प्रत्येक भुगतान किराया माना जाता है और माल का स्वामित्व क्रेता को तभी मिलता है जबकि उसके द्वारा सब किस्तों का भुगतान कर दिया जाता है।

चलते-चलते फुटकर व्यापारी (Itinerant Retailers) : घर-घर जाकर अथवा कार्य-स्थल बदल-बदल कर अपनी वस्तुएँ बेचने वाले फुटकर व्यापारी।

डाक आदेश-गृह (Mail Order House) : बड़े पैमाने पर फुटकर व्यापार की एक संस्था जो डाकघर को अपनी वस्तुओं के वितरण का माध्यम बना लेती है और वी.पी.पी. के द्वारा माल बेचती है।

बहुसंख्यक दुकानें/शृंखलाबद्ध स्टोर (Multiple Shops/Chain Stores) : एक ही स्वामित्व तथा प्रबंध के अंतर्गत चलने वाली बहुत-सी फुटकर दुकानें जो देश के नगरों के विभिन्न स्थानों पर विकेंद्रित होती हैं और एक ही प्रकार की वस्तुओं का एक-समान मूल्यों पर विक्रय करती हैं।

फुटकर व्यापारी (Retailers) : फुटकर व्यापार में व्यस्त वह व्यक्ति अथवा संस्था जो अपना अधिकतर माल सीधे उपभोग अथवा प्रयोग के लिए विक्रय करती है।

फुटकर व्यापार (Retailing) : वे लेन-देन जिनके माध्यम से सीधे अंतिम उपभोक्ताओं को उनके निजी प्रयोग अथवा उपभोग के लिए वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।

विशिष्ट वस्तु की दुकानें (Speciality Shops) : छोटी-छोटी फुटकर दुकानें जो एक अथवा दो विशेष प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करती हैं।

सुपर बाज़ार (Super Markets) : स्वयं सेवा के सिद्धांत पर अनेक प्रकार की सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं का कम मूल्य पर नकद-विक्रय एक ही स्थान से करने वाली फुटकर व्यापारिक-संस्था।

थोक व्यापारी (Wholesalers) : पुनर्विक्रय एवं लाभ कमाने के उद्देश्य से थोक व्यापार में लगे व्यक्ति अथवा संस्था।

थोक व्यापार (Wholesaling) : विनिर्माताओं से माल खरीदने तथा फुटकर व्यापारियों को बेचने में निहित लेन-देन।

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत,* (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 2, 3 खंड पाँच

बी.पी. सिंह एवं टी.एन. छावड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय,* (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 17 खंड चार

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एवं एस.सी. जोशी : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध,* (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 11

जे.के. अग्रवाल एवं पी.के. श्रीवास्तव : *विपणन प्रबंध,* (नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1982)

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) असत्य,
3 (i) छोटे-छोटे, (ii) अंतिम उपभोक्ता, (iii) विनिर्माताओं, (iv) किस्मों

ख 1 (i) बहुत बड़ा, (ii) पैक करने, (iii) स्टोर करने के, (iv) उधार पर,
2 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य, (v) असत्य

ग 1 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य, (v) असत्य, (vi) असत्य
2 (i) व्यक्तिगत, (ii) थोक व्यापारियों, (iii) प्रदर्शन

घ 1 (i) फर्म, (ii) सीमित, (iii) भ्रमणशील, (iv) विशिष्ट वस्तुओं, (v) सेल्समैन (vi) एक समान, (vii) मानक, (viii) सदस्यों, (ix) किश्तों, (x) थोक
2 (i) असत्य, (ii) सत्य, (iii) असत्य, (iv) सत्य, (v) सत्य, (vi) सत्य, (vii) असत्य

11.16 स्वपरख प्रश्न

1 थोक व्यापार से आप क्या समझते हैं? फुटकर व्यापार से यह किस प्रकार भिन्न होता है?
2 निर्मित माल के विपणन में थोक व्यापारियों का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
3 थोक व्यापारियों के कार्यों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
4 विनिर्माताओं एवं फुटकर व्यापारियों के प्रति थोक व्यापारियों की सेवाओं की गणना कीजिए।
5 फुटकर व्यापारियों द्वारा उपभोक्ताओं को प्रदान की जाने वाली सेवाएँ क्या हैं? स्पष्ट कीजिए।
6 विभिन्न प्रकार के लघु स्तरीय फुटकर व्यापारियों में अंतर कीजिए।
7 निम्नलिखित की विशेषताएँ बताइए :
   i) विभागीय भंडार
   ii) डाक आदेश-गृह
   iii) सुपर बाज़ार
8 उपभोक्ता सहकारी भंडार तथा सुपर बाज़ार की विशेषताएं बताइए तथा इन दोनों में अंतर कीजिए।
9 निम्नलिखित पर व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ लिखिए :
   i) अवक्रय व्यापार
   ii) रियायती भंडार
   iii) स्वत: विक्रय (automatic vending)

> नोट : ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

इकाई 12 आयात और निर्यात व्यापार की कार्य विधि

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 विदेशी व्यापार क्या है?
12.2.1 विदेशी व्यापार के प्रकार
12.2.2 विदेशी व्यापार का महत्व
12.2.3 विदेशी व्यापार की समस्याएँ
12.3 भारत के विदेशी व्यापार की प्रगति
12.4 विदेशी व्यापार के नियंत्रण संबंधी विनियम
12.5 निर्यात व्यापार की क्रियाविधि
12.6 आयात व्यापार की क्रियाविधि
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.11 स्वपरख प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- यह बता सकें कि विदेशी व्यापार क्या है,
- विदेशी व्यापार के प्रकारों को पहचान सकें,
- विदेशी व्यापार के महत्व और उसकी समस्याओं की व्याख्या कर सकें,
- भारत के विदेशी व्यापार का वर्णन कर सकें,
- विदेशी व्यापार के नियंत्रण संबंधी विनियमों की व्याख्या कर सकें,
- विदेशी व्यापार में उपयोग किये जाने वाले प्रलेखों की व्याख्या कर सकें,
- निर्यात व्यापार की क्रियाविधि का वर्णन कर सकें,
- आयात व्यापार की क्रियाविधि का वर्णन कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में आपने पढ़ा है कि देशीय व्यापार क्या है तथा किस प्रकार माल विभिन्न बिचौलियों अथवा वितरण के माध्यमों द्वारा उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचता है। इस इकाई में हम विदेशी व्यापार की प्रकृति तथा इसकी देशीय व्यापार से भिन्नता, विदेशी व्यापार का महत्व, विदेशी व्यापार में उपयोग किये जाने वाले प्रलेखों, एवं आयातकर्ताओं तथा निर्यातकर्ताओं द्वारा माल का आयात या निर्यात करते समय अपनाई गई क्रियाविधि का वर्णन करेंगे।

12.2 विदेशी व्यापार क्या है?

व्यक्तियों के समान राष्ट्रों के पास भी वह सब कुछ नहीं होता जो उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहिये। संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस तथा चीन जैसे देशों को भी, जो स्वयं प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों में धनी हैं, अपनी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे देशों की ओर देखना पड़ता है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका के उपभोक्ता अपनी आवश्यकता की चीनी और कॉफी दूसरे देशों से प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न देशों

में भिन्न-भिन्न प्रकार के संसाधन होते हैं। वे देश जिनके पास कुछ विशेष संसाधनों का आधिक्य होता है किंतु अन्य कुछ संसाधनों की कमी होती है, अपने अधिशेष संसाधनों को कुछ अन्य देशों को बेचना तथा अन्य मदों, जिनकी उन्हें आवश्यकता है, खरीदना लाभकारी पाते हैं। राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार व्यक्तियों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के इस प्रकार के विनिमय को "विदेशी व्यापार" (foreign trade) या "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार" (international trade) कहते हैं। विदेशी व्यापार द्विपक्षीय (bilateral) अथवा बहुपक्षीय (multilateral) हो सकता है। जब व्यापार दो देशों के नागरिकों के बीच होता है, तो उसे द्विपक्षीय व्यापार कहते हैं, किंतु जब किसी देश के लोग माल का क्रय अथवा विक्रय एक से अधिक देशों के लोगों के साथ करते हैं, तो व्यापार बहुपक्षीय कहलाता है।

आप देखेंगे कि देशीय व्यापार तथा विदेशी व्यापार के बीच मुख्य अंतर यह है कि यद्यपि देशीय व्यापार एक देश के अंदर उन व्यक्तियों के बीच होता है, जो उसी देश के नागरिक हैं किन्तु विदेशी व्यापार दो या दो से अधिक देशों की राष्ट्रीय सीमाओं से परे उन लोगों के बीच होता है जो एक ही देश के नागरिक नहीं है। इसके अतिरिक्त देशीय और विदेशी व्यापार के बीच कुछ और अंतर हैं, जो निम्नलिखित हैं।

1 एक देश के अंदर लोगों के बीच व्यापार पर बहुत कम प्रतिबंध होता है, किंतु विदेशी व्यापार में बहुत से प्रतिबंध होते हैं, माल का आयात अथवा निर्यात करने से पूर्व एक फ़र्म को सरकारी प्राधिकरणों से अनुमति लेनी पड़ती है।

2 विदेशी व्यापार में माल के क्रेताओं द्वारा दिया गया तथा विक्रेताओं द्वारा प्राप्त किया गया भुगतान मुद्रा की एक सी इकाइयों में होता हैं। विदेशी व्यापार में आयातकर्ता जो कुछ भुगतान अपनी राष्ट्रीय मुद्रा में करता है, उसे निर्यातकर्ता को स्वीकार्य विदेशी मुद्रा में परिवर्तित करना पड़ता है।

3 देशीय व्यापार में भुगतान नकद अथवा किसी राष्ट्रीय बैंक पर चैक द्वारा किया जा सकता है। विदेशी व्यापार में भुगतान केवल बैंक के माध्यम से किया जा सकता है।

12.2.1 विदेशी व्यापार के प्रकार

विदेशी व्यापार को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1 आयात व्यापार (Import Trade)
2 निर्यात व्यापार तथा (Export Trade)
3 पुनर्निर्यात व्यापार (Entrepot Trade)

जब माल किसी दूसरे देश में एक व्यापारी को बेचा जाता है तब कहा जाता है कि माल उस देश को निर्यात किया गया है तथा इसे **निर्यात व्यापार** कहते हैं। जब माल किसी दूसरे देश से खरीदा जाता है तो कहा जाता है कि माल का आयात किया गया है, तथा इसे **आयात व्यापार** कहते हैं। कई बार एक देश से माल का आयात उसे किसी अन्य देश या देशों को निर्यात करने के उद्देश्य से किया जाता है। इसे **पुनर्निर्यात** व्यापार कहते हैं। सिंगापुर तथा हांगकांग जैसे नगर राज्य महत्वपूर्ण पुनर्निर्यात व्यापार केंद्र हैं।

12.2.2 विदेशी व्यापार का महत्व

वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार के संसाधनों, जैसे मनुष्यों, सामग्री, मुद्रा, मशीनों तथा प्रबंध की आवश्यकता होती है। यदि हम विभिन्न राष्ट्रों के संसाधनों की तुलना करें, तो पता चलेगा कि कोई भी देश पूरी तरह आत्म-निर्भर नहीं है, तथा विभिन्न देशों में उपलब्ध घरेलू संसाधनों के गुण और मात्रा में भिन्नता है। वास्तव में, विभिन्न देशों में संसाधनों के सापेक्ष आधिक्य तथा कमी का यह अंतर ही विदेशी व्यापार का जिसके अंतर्गत देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता है, मुख्य कारण है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा एक देश के लिए उन वस्तुओं का उपयोग सम्भव हो जाता है जिनका उत्पादन वह स्वयं नहीं कर सकता अथवा जिनका उत्पादन वह इतने अल्प व्यय में नहीं कर सकता जितने में अन्य देश कर सकते हैं। अतः किसी देश की समृद्धि, काफ़ी सीमा तक उसके विदेशी व्यापार की प्रकृति और विस्तार द्वारा निर्धारित होती है। आइये विभिन्न देशों के लोगों के लिए विदेशी व्यापार के महत्व का विवेचन करें।

1 **विशिष्टीकरण तथा उत्पादन-कुशलता (Specialisation and efficiency of production) :** विदेशी व्यापार विभिन्न देशों की उत्पादन क्रियाओं में विशिष्टता लाता है। उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों, तथा विज्ञान और टेक्नोलोजी की उन्नति के अनुसार प्रत्येक देश केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर सकता है, जिनके उत्पादन में उसे सर्वाधिक सापेक्ष लाभ तथा कार्यकुशलता प्राप्त है। किसी भी देश के पास अपनी सीमाओं के अंदर वे समस्त सुविधाएँ तथा संसाधन उपलब्ध नहीं होते जिनके द्वारा वह अपनी समस्त आवश्यकताओं का उत्पादन अल्प व्यय में कर सके। कुछ देश, कुछ विशेष वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा अल्प व्यय में तथा पर्याप्त मात्रा में कर सकते हैं। अत: वे इन वस्तुओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं तथा इनके बदले में अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ, भारत को कृषि पर आधारित उत्पादों, जैसे कॉफी, चाय, शक्कर, वस्त्र आदि के उत्पादन में अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त हैं। इसी प्रकार, कुछ विकसित देशों जैसे स. राज्य अमरीका, जापान, ब्रिटेन आदि को औद्योगिक मशीनरी, मोटर गाड़ियों आदि के उत्पादन में अधिक लाभ प्राप्त हैं। कुछ खाड़ी देश, जैसे ईरान, लीबिया, इराक, सऊदी अरब आदि, कच्चा तेल, पेट्रोल आदि का बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन करते हैं।

2 **संसाधनों का उपयोग (Utilisation of resources) :** प्रत्येक देश के पास कुछ प्राकृतिक संसाधन होते हैं। एक देश का आर्थिक विकास इन संसाधनों के उपयोग पर बहुत अधिक निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, भारत में पर्याप्त तट दूर तेल संसाधन हैं। किंतु इनके दोहन के लिए कुशल मशीनों तथा टेक्नोलोजी आदि की आवश्यकता है जो भारत में उपलब्ध नहीं है। मशीनें तथा टेक्नोलोजी सोवियत रूस, स. राज्य अमरीका, जापान, आदि विकसित देशों से आयात की जा सकती है। इससे प्राकृतिक संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ सम्भव उपयोग हो सकता है।

3 **आर्थिक विकास में सहायता (Facilitates economic development) :** निर्यात तथा आयात द्वारा तेज़ आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि में सहायता मिलती है। वास्तव में, ब्रिटेन, जापान आदि देशों ने कच्चे माल के आयात तथा निर्मित वस्तुओं के निर्यात द्वारा ही आर्थिक उन्नति की ऊँची दर प्राप्त की है।

4 **मूल्यों का समकरण (Equalisation of prices) :** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व भर में मूल्यों का समकरण करता है। जब किसी देश में वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगते हैं, तब वह अपने आयात का स्तर बढ़ा कर मूल्य वृद्धि को रोक सकता है। इसी प्रकार जब वस्तुओं के मूल्य गिरते हैं, तो इस गिरावट की प्रवृत्ति को इन वस्तुओं का निर्यात करके रोका जा सकता है।

5 **रोज़गार के अवसर (Employment opportunities) :** विदेशी व्यापार कृषि तथा औद्योगिक क्रियाओं की वृद्धि को सुगम बनाता है जिससे देश में अधिक रोज़गार के अवसर उपलब्ध होते हैं।

6 **देशों के बीच मधुर संबंध (Harmonious relationship between countries) :** विदेशी व्यापार द्वारा प्रत्येक देश की पहुँच उन वस्तुओं तक हो जाती है जिनका उत्पादन वह स्वयं नहीं कर सकता। इसी प्रकार, एक देश, जिसमें कुछ वस्तुओं का आधिक्य है, उन्हें उन देशों को उपलब्ध करा सकता है जिनमें उन वस्तुओं की कमी है। इससे विभिन्न देशों के बीच मधुर तथा मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने में सहायता मिलती है।

12.2.3 विदेशी व्यापार की समस्याएँ

विभिन्न देशों के बीच सांस्कृतिक एवं अन्य पर्यावरण संबंधी विभिन्नताओं तथा दूरी के कारण, विदेशी व्यापार की कुछ समस्याएँ होती हैं, जो देशीय व्यापार में नहीं होती। आइये अब इन समस्याओं की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।

1 **माल की बाज़ार के लिए उपयुक्तता (Suitability of the product for the market) :** प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय व्यापारी के लिए विदेशी बाज़ार में उत्पादों की उपयुक्तता के विषय में सूचना प्राप्त करना एक चुनौती भरा कार्य है। इसमें भारी खर्च आता है, तथा इसके लिए विशेष कुशलता और ज्ञान की आवश्यकता होती है। साथ ही, वस्तुओं का गुण तथा मूल्य भी विदेशों में निर्मित उत्पादों की अपेक्षा अधिक आकर्षक होना चाहिये। इसके लिए निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संभाव्य बिक्री के विषय में गंभीर बाज़ार-अनुसंधान आवश्यक है।

2 **पूर्ति तथा माँग संबंधी परिस्थितियों में परिवर्तन (Changes in supply and demand conditions) :** नए प्रतियोगियों के प्रवेश, अथवा स्थानीय उत्पादकों द्वारा अधिक प्रतियोगिता, अथवा क्रेताओं की अभिरुचि में परिवर्तन के कारण अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में प्रायः विशेष उत्पादों की पूर्ति और माँग में परिवर्तन होते रहते हैं। निर्यातकर्ताओं द्वारा इन परिवर्तनों का आसानी से पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता।

3 **मूल्यों में बार-बार परिवर्तन (Frequent changes in prices) :** अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में उत्पादों के मूल्य विभिन्न कारणों से प्रभावित हो सकते हैं। ये परिवर्तन आयातकर्ता और निर्यातकर्ता देशों की मुद्राओं की विनिमय दरों में परिवर्तन के कारण, अथवा ऊँचे आयात शुल्कों के कारण, अथवा जहाज़-भाड़ा दरों में परिवर्तन के कारण हो सकते हैं। इनसे विदेशी व्यापार का जोखिम बहुत बढ़ जाता है।

4 **साख संबंधी जोखिम (Credit risk) :** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में, जो कि बड़े पैमाने पर किया जाता है, आयातकर्ताओं द्वारा बड़ी राशियों का भुगतान किया जाना होता है। निर्यातकर्ता प्रायः अपने उत्पाद उधार बेचते हैं, अतः उन्हें आयातकर्ता की बाकीदारी, दिवालियापन आदि के कारण होने वाले साख संबंधी जोखिमों को सहना पड़ता है।

5 **विनिमय दर में परिवर्तन (Changes in exchange rates) :** विदेशी व्यापार का एक अतिरिक्त जोखिम है विनिमय दर में परिवर्तन का जोखिम। जिस दर पर आयातकर्ता देशों की मुद्रा का निर्यातकर्ता देशों की मुद्रा में परिवर्तन होता है, उससे निर्यातकर्ता अथवा आयातकर्ता को हानि हो सकती है।

6 **नियम, विनिमय तथा क्रियाविधि (Rules, regulations and procedures) :** प्रत्येक देश अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए माल के निर्यात और आयात पर कुछ प्रतिबंध लगाता है। साथ ही प्रत्येक देश के नियमों तथा विनियमों में भिन्नता होती है तथा ये समय-समय पर बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ, आयात और निर्यात नियंत्रण अधिनियम 1947 के प्रावधानों, निर्यात-आयात नीति में परिवर्तन, अथवा व्यापार पर प्रतिबंधों से आयातकर्ताओं और निर्यातकर्ताओं के लिए प्रायः जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

7 **आयातकर्ता की उधार पात्रता तथा निर्यातकर्ताओं की विश्वसनीयता (Credit worthiness of importer and reliability of exporters) :** विदेशी व्यापार में बेची गई वस्तुओं का मूल्य प्रायः काफी अधिक होता है, तथा निर्यातकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह आयातकर्ता को उधार संबंधी सुविधाएँ प्रदान करें। चूँकि निर्यातकर्ता और आयातकर्ता के बीच सीधा संबंध नहीं होता, अतः यह आवश्यक है कि निर्यातकर्ता आयातकर्ता की उधार पात्रता जानने के लिए आवश्यक कदम उठाये तथा आयातकर्ता निर्यातकर्ता के माल की पूर्ति के संबंध में विश्वसनीयता की जाँच कर ले। इसमें काफी समय लग सकता है जिससे वस्तुओं की उपलब्धता में देरी हो सकती है।।

8 **परिवहन तथा माल संबंधी जोखिम (Transportation and cargo risks) :** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भूमि, वायु अथवा जल परिवहन द्वारा होता है, तथा माल को लम्बी दूरियों तक परिवाहित करना पड़ता है। राष्ट्रीय सीमाओं के पार माल को परिवाहित करने में जल परिवहन का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि जहाज़ों द्वारा कम लागत पर बड़ी मात्रा में माल ले जाया जा सकता है। परिवहन के क्षेत्र में हुई समस्त प्रगति के बावजूद अग्नि, तूफ़ान, टक्कर, क्षरण, विस्फोट, रद्दी होने, आदि के कारण माल को होने वाली हानि या क्षति का जोखिम अभी भी है।

9 **समय का अंतर (Time gap) :** एक देश से दूसरे देश को माल परिवाहित करने की दूरी सामान्यतः अधिक होती है अतः परिवहन समय अधिक लम्बा होता है। समय के इस अंतर के कारण निर्यातकर्ता की पूँजी अधिक लम्बे समय के लिए अवरुद्ध हो जाती है।

10 **राजनीतिक तथा कानूनी समस्याएँ (Political and legal problems) :** सरकारों में परिवर्तन, शत्रुओं द्वारा माल पकड़ लिए जाने आदि जैसे राजनीतिक जोखिम हो सकते हैं। व्यापारिक देशों के बीच वाणिज्यिक नियमों में अंतर हो सकता है। इसके अतिरिक्त विदेश में कानूनी कार्यवाही करना जटिल तथा खर्चीला होता है।

12.3 भारत के विदेशी व्यापार की प्रगति

स्वतंत्रता से पूर्व भारत का विदेशी व्यापार परंपरागत वस्तुओं के निर्यात पर बहुत अधिक निर्भर था। निर्यात का लगभग 85 प्रतिशत कच्चे माल तथा अर्धनिर्मित उत्पादों जैसे भोज्य सामग्री, कच्ची कपास, चाय, मसाले, तम्बाकू, चर्म और खालें तथा पटसन उत्पादों के रूप में होता था। उपभोक्ता वस्तुएँ तथा निर्मित उत्पादों का आयात किया जाता था। भारत के विदेशी व्यापार का बड़ा भाग ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशों के साथ होता था। स्वतंत्रता के पश्चात की अवधि में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना और बाजार में एक मौलिक परिवर्तन आयी है। भारत परंपरागत वस्तुओं के स्थान पर अब नये वस्तुओं का निर्यात करने लगा है। निर्यात किए जाने वाली प्रमुख वस्तुएँ जेम तथा आभूषण, तैयार किए गए वस्त्र तथा काटन फैब्रिक, कृषि संबंधित वस्तुएँ, मसिनरी, निर्मित धातु, केमिकल्स आदि हैं। आयात किए जाने वाली वस्तुओं में प्रमुख हैं पेट्रोलियम आयल, पूँजीगत वस्तुएँ, केमिकल तत्व आदि। ये वस्तुएँ देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। भारत का निर्यात यू. एस. ए., जापान, जर्मनी, यू. के., बेल्जियम और अन्य विकसित, विकासशील तथा अल्प विकसित राष्ट्रों में होता है। टेबुल 12.1 को देखिए जो भारत के विदेशी व्यापार की वृद्धि को दर्शाता है।

टेबुल 12.1 भारत के विदेशी व्यापार में वृद्धि

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष करोड़ रुपये में
1950-51	606	608	–2
1960-61	642	1122	– 480
1970-71	1535	1634	–99
1980-81	6711	12549	–5838
1990-91	32553	43198	–10645
1991-92	44041	47851	–3810
1992-93	53688	63375	–9687
1993-94	69751	73101	–3350
1994-95	82674	89971	–7297
1995-96	74493	86064	–11571

Source : Economic Survey (1995-96) Government of India, New Delhi.

नोट : निर्यात की गई वस्तुओं तथा आयात की गई वस्तुओं के कुल मूल्य के बीच के अंतर को व्यापार शेष (Balance of trade) कहते हैं।

बोध प्रश्न क

1 बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य।

i) राष्ट्रीय सीमाओं के अंदर माल बेचने को देशीय व्यापार कहते हैं। ....

ii) दो देशों के बीच माल के विनिमय को आंतरिक व्यापार कहते है। ....

iii) राष्ट्रीय सीमाओं के पार माल और सेवाओं के विनिमय को विदेशी व्यापार कहते हैं। ....

iv) विदेशी व्यापार संसाधना और रोज़गार का जनन करता है। ....

v) किसी देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए विदेशी व्यापार एक इंजन का कार्य करता है। ....

vi) विदेशी व्यापार में देशीय व्यापार की अपेक्षा जोखिम बहुत कम है। ....

vii) भारत सोवियत रूस से माल आयात करता है तथा व्यापार शेष का भुगतान अपनी मुद्रा में करता है। ....

viii) निर्यातकर्ता, आयातकर्ता की उधारपात्रता जाने बिना माल का निर्यात कर देते हैं। ....

ix) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बड़े लम्बे समय तक माल में पूँजी की बड़ी राशि को अवरुद्ध कर देता है। ....

x) स्वतंत्रता से पूर्व भारत के विदेशी व्यापार का बड़ा भाग ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों के साथ था।

2 क) भारत ने सोवियत रूस से 100 करोड़ रुपये मूल्य की मशीनरी और उपस्कर खरीदे। 20 करोड़ रुपये मूल्य के उपस्कर बंगलादेश को निर्यात किये गए।

अ) उपरोक्त कथन को ध्यान से पढ़ने के बाद निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प पर निशान (√) लगाइये।

i) कौन सा देश निर्यातकर्ता देश है?
   1 भारत
   2 बंगलादेश
   3 सोवियत रूस

ii) कौन सा देश आयातकर्ता देश है?
   1 सोवियत रूस
   2 बंगलादेश
   3 भारत

iii) कौन सा देश पुनर्निर्यातक देश है?
   1 बंगलादेश
   2 सोवियत रूस
   3 भारत

ख) व्यापार का रूप पहचानते हुए रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

i) रूस से भारत को व्यापार भारत के लिए.........व्यापार कहलाता है।
ii) भारत से रूस को व्यापार भारत के लिए.........कहलाता है।
iii) भारत से बंगलादेश को व्यापार भारत के लिए.........व्यापार कहलाता है।
iv) उपरोक्त राष्ट्रों के बीच व्यापार.........व्यापार कहलाता है।

12.4 विदेशी व्यापार के नियंत्रण संबंधी विनिमय (Regulations Governing Foreign Trade)

भारत में विदेशी व्यापार मुख्यत: विदेशी व्यापार (विकास तथा नियमन) कानून 1992, (Foreign Trade Development and Regulation Act, 1992), विदेशी मुद्रा अधिनयम 1973 (Foreign Exchange Regulation Act, 1973) और पोत-लदान पूर्व, निरीक्षण अधिनियम 1963 (Quality Control and Pre-shipment Inspection Act 1963) के अंतर्गत शासित होता है। निर्यातकर्त्ताओं को भारत से सामान नियात करने तथा निर्यात प्रोत्साहन हेतु उपलब्ध लाभों को प्राप्त करने के लिए कुछ औपचारिकताओं को पूरा करना पड़ता है। सर्वप्रथम, हम व्यवसायियों द्वारा निर्यात-आयात व्यवसाय को करने के लिए उठाए जाने वाले आवश्यक महत्त्वपूर्ण कदमों का विवेचन करेंगे। निर्यातकर्त्ता को (1) रिजर्व बैंक से कोड नम्बर प्राप्त करना, (2) निर्यात संवर्धन परिषद के साथ पंजीकरण, तथा (3) आयात-निर्यात कोड नंबर प्राप्त करना अनिवार्य होता है।

1 **रिजर्व बैंक कोड नम्बर :** भारत में कोई फ़र्म व्यावसायिक निर्यात तभी कर सकती है जबकि उसने रिजर्व बैंक कोड संख्या प्राप्त कर लिया हो। यह विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (फैरा) के अन्तर्गत आवश्यक है। कोड संख्या प्राप्त करने के लिए फर्म को रिजर्व बैंक के उस मंडल-कार्यालय में जिसका उस क्षेत्र पर जिसमें फर्म अवस्थित है, क्षेत्राधिकार हो, आवेदन करना पड़ता है। इस कार्य के लिए एक निर्धारित आवेदन फ़ार्म भरना पड़ता है जिसकी दो प्रतियाँ उस बैंक के प्रतिवेदन के साथ जिसमें फ़र्म ने अपना चालू खाता खोला है, रिजर्व बैंक को देनी होती है। फ़र्म को आवेदन में संगठन की प्रकृति तथा निर्यात के लिए तैयार उत्पादों का ब्यौरा देना होता है। साथ में स्थायी आय-कर लेखा संख्या भी देना आवश्यक होता है। यदि फ़र्म की कोई आय-कर लेखा संख्या नहीं है तो इसके लिए आवेदन करना पड़ता है। आय-कर लेखा संख्या के नियतन के पंद्रह दिन के भीतर रिज़र्व बैंक को इसकी सूचना देनी होती है। इन औपचारिकताओं के पूरा होने पर यदि आवेदन ठीक है तो रिज़र्व बैंक कोड संख्या का नियतन करेगा। कोड संख्या स्थायी होती है तथा इसके नवीकरण

की आवश्यकता नहीं होती। निर्यातों की घोषणा के लिए प्रयोग किये जाने वाले निर्यात फार्मों में यह नम्बर आवश्यक रूप से दिया जाना होता है।

2 **निर्यात संवर्धन परिषद (Export Promotion Council) आदि के साथ पंजीकरण :** निर्यात-आयात पालिसी, 1992-97, के अनुसार निर्यातकर्त्ता को निर्यात संवर्धन परिषद (Export Promotion Council), कमोडिटी बोर्ड (Commodity Board), APEDA, MPEDA, FIEO आदि से पंजीकृत कराना अनिवार्य होता है। यह पंजीकरण किसी भी व्यक्ति के लिए जो निर्यात हेतु लाइसेंस के लिए आवेदन करता है या पालिसी के अन्तर्गत उपलब्ध कोई अन्य लाभ या रियायत प्राप्त करने हेतु अनिवार्य होता है। सदस्यता प्राप्त करने हेतु निर्धारित फार्म पर संबंधित प्राधिकरण को आवेदन देना पड़ता है। जब कोई निर्यातक एक बार पंजीकृत हो जाता है तब उसका पंजीकरण पाँच वर्ष तक वैध रहता है। निर्यात-आयात पालिसी के अन्तर्गत दिए जाने वाले लाभों को केवल वही निर्यातकर्त्ता प्राप्त कर सकेगा जिसके पास वैध RCMC सदस्यता हो। पंजीकृत निर्यातकर्त्ताओं को उनके द्वारा किये गए निर्यातों का प्रत्येक माह विवरण पेश करना पड़ता है।

3 **आयात-निर्यात कोड संख्या :** वाणिज्यिक उद्देश्य से माल का आयात करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रादेशिक आयात-निर्यात लाइसेंस प्राधिकरण (Regional Export-Import Authority) से आयात-निर्यात कोड संख्या प्राप्त करनी होती है। जब तक निर्यातकर्त्ता के पास वैध आयात-निर्यात कोड संख्या नहीं होती तब तक सीमाशुल्क अधिकारी (Custom authority) आयातकर्त्ता को माल के निकासी की अनुमति नहीं देते। कोड संख्या लेने के लिए आवेदन की दो प्रतियां निर्धारित फार्म पर संबंधित प्रादेशिक आयात-निर्यात लाइसेंस प्राधिकरण को देनी होती है। किसी व्यक्ति को दी गई कोड संख्या समय-समय पर घोषित प्रतिबंधों के अधीन उसके द्वारा किसी भी वस्तु का आयात करने के लिए वैध होता है।

12.5 निर्यात व्यापार की क्रिया विधि (Procedure of Export Trade)

जब किसी दूसरे देश को माल निर्यात किया जाता है तब निर्यातकर्त्ता को निम्न क्रियाविधि अपनानी होती है। वस्तुओं के निर्यात के लिए अपनाई जाने वाली क्रियाविधि प्रत्येक देश में भिन्न होती है तथा उस देश की वर्तमान नीति पर निर्भर करती है। भारत से निर्यात के लिए अपनाई गई सामान्य क्रियाविधि के निम्नलिखित चरण हैं :

1 पूछताछ की प्राप्ति
2 आयातकर्ता से आर्डर की प्राप्ति तथा उसकी जाँच
3 निर्यात लाइसेंस प्राप्त करना
4 माल का उत्पादन/माल खरीदना
5 विदेशी मुद्रा विनिमय नियमों का पालन
6 जहाज में जगह के लिये बुकिंग
7 उत्पाद-शुल्क संबंधी निपटान तथा लदानपूर्व जाँच
8 माल को पैक करना तथा चिह्नांकन
9 निकासी एजेंट तथा अग्रप्रेषण एजेंट नियुक्त करना
10 सीमाशुल्क की औपचारिकताएँ
11 माल का बीमा तथा ई.सी.जी.सी. रक्षावरण
12 जहाज पर माल का लदान
13 जहाजी बिल्टी
14 आवश्यक प्रलेखों को एकत्र करना तथा आयातकर्ताओं को पोत-लदान की सूचना भेजना
15 भुगतान प्राप्त करना
16 प्रेरक साधन प्राप्त करने के लिए दावा करना

पूछताछ की प्राप्ति (Receipt of Enquiry)

निर्यात व्यापार का पहला चरण निर्यातकर्ता द्वारा एक आयातकर्ता अथवा उसके एजेंट से पूछताछ की प्राप्ति है। पूछताछ एक विदेशी क्रेता द्वारा उन वस्तुओं के विशिष्ट विवरण तथा मूल्य के

विषय में सूचना भेजने के लिए की गई प्रार्थना है जो वह खरीदना चाहता है। पूछताछ का उत्तर एक कथित मूल्य (quotation) या कच्चे बीजक के रूप में, जिसमें क्रेता का नाम, पता, प्रस्तावित वस्तुओं का पूर्ण ब्यौरा, मूल्य, बिक्री की शर्तें, तथा अन्य ब्यौरे जैसे ऑफर का वैध समय, सुपुर्दगी सारणी, भुगतान की शर्तें, आदि विवरण दिए गए होते हैं, दिया जाता है।

आयातकर्त्ता से आर्डर की प्राप्ति तथा उसकी जाँच (Receipt and Scrutiny of the Order)

जब एक आयातकर्ता कोटेशन (quotation) स्वीकार करता है तब वह निर्यातकर्त्ता को एक आर्डर (जिसे इंडेंट भी कहते है) भेजता है। निर्यातकर्त्ता को बिक्री की शर्तों तथा प्रतिबंधों की भली-भाँति जाँच करनी चाहिए क्योंकि वे निर्यात-सौदे से संबंधित समस्त अनुवर्ती कार्यों का निर्धारण करते हैं।

इस बात को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि करार (contract) भारत की वर्तमान निर्यात नीति तथा विदेशी मुद्रा विनियमों के अनुसार किया गया है। भुगतान की शर्तों पर विशेष ध्यान देना होता है। यदि आर्डर की शर्तें तथा प्रतिबन्ध स्वीकृत हों, तो आर्डर का ब्यौरा, शर्तें और प्रतिबन्ध आदि देते हुए एक पुष्टि पत्र लिखकर शीघ्रताशीघ्र क्रेता को भेज दिया जाना चाहिए।

निर्यात लाइसेंस प्राप्त करना (Obtaining the Export Licence)

भारत में विदेशी व्यापार का विकास तथा नियमन विदेशी व्यापार (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1992 के द्वारा शासित होता है। यह कानून आयात और निर्यात को बढ़ाने में मदद करता है। बिना वैध लाइसेंस के नियंत्रण के अधीन वस्तुओं का निर्यात नहीं किया जा सकता। निर्यात लाइसेंस प्राप्त करने के लिए निर्यातक को विदेशी व्यापार के डायरेक्टर जनरल या प्रादेशिक लाइसेंस प्राधिकरण को निर्धारित फार्म पर आवेदन करना होता है। जब लाइसेंस देने वाला अधिकारी संतुष्ट हो जाता है तो निर्यातक को लाइसेंस जारी कर दिया जाता है।

माल का उत्पादन/माल खरीदना (Manufacturing or Procurement of Goods)

ज्यों ही आर्डर की पुष्टि हो जाती है, त्यों ही वस्तुओं के उत्पादन/प्रबंध की तैयारी आरंभ हो जाती है। यदि निर्यातकर्ता स्वयं उत्पादक है तो निर्माण प्रबंधक अथवा कारखाना प्रबंधक को एक सुपुर्दगी नोट, जिसकी दो प्रतियाँ होती है, भेजा जाता है। नोट में वस्तुओं का विवरण जैसा कि निर्यात ऑर्डर में दिया गया है तथा आयातकर्ता द्वारा दिये गए अनुदेशों की एक प्रति होनी चाहिए। उत्पादन प्रबंधक को उन तिथियों की, जिन तक माल निर्मित हो जाना चाहिये, उस तिथि की जिस तक आवश्यक औपचारिकताएँ पूरी करनी हैं, तथा पोत-लदान की तिथि की सूचना स्पष्ट रूप से दे दी जानी चाहिये। एक व्यापारी निर्यातकर्ता को आवश्यक माल या तो बाज़ार से प्राप्त करना होता है अथवा अन्य विनिर्माताओं से प्राप्त करना होता है। माल के सप्लायर को सूचित किये जाने वाले विनिर्देश तथा अनुदेश निर्यात आदेश में दिए गए विनिर्देशों तथा अनुदेशों के अनुसार ही होने चाहिए।

विदेशी मुद्रा विनिमय नियमों का पालन (Fulfilling Foreign Exchange Regulations)

प्रत्येक निर्यातक को चाहे वह सीधा या किसी अन्य प्रकार से माल को नेपाल और भूटान को छोड़कर भारत से बाहर भेजने के पहले उसे निर्धारित फार्म पर रिजर्व बैंक आफ इंडिया को घोषणा करनी पड़ती है। यह घोषणा या तो माल के पूरी कीमत का या माल के प्रचलित बाजार मूल्य के बारे में की जाती है। माल का पूरी कीमत का या तो देय तिथि या पोत-लदान के 180 दिनों के भीतर जो भी पहले हो भुगतान प्राप्त कर लेनी चाहिए। विदेशी मुद्रा के कार्यविधि हेतु प्रलेख इस प्रकार है। पोस्ट को छोड़कर सभी पोत-लदानों में GR फार्म का उपयोग किया जाता है। पोस्ट

के द्वारा माल भेजने पर VP/COD फार्म का तथा कम्प्यूटर सोफ्टवेयर के लिए SOFTEX फार्म का उपयोग किया जाता है।

जहाज में जगह की बुकिंग (Booking of Shipping Space)

किसी जहाजी कम्पनी के साथ वस्तुओं को आयातकर्ता तक परिवाहित करने के लिए एक करार करके वस्तुओं के परिवहन का प्रबंध करना निर्यातकर्ता का उत्तरदायित्व है। सामान्यत: यह उत्तरदायित्व एक भाड़ा दलाल या एजेंट को, जिसे इस कार्य में विशिष्टता प्राप्त होती है, सौंप दिया जाता है। वह उन विभिन्न जहाजी कम्पनियों के विषय में, जो उस विशिष्ट मार्ग पर जहाज चलाती है, पूर्ण जानकारी रखता है, तथा न्यूनतम सम्भव जहाज भाड़ा दरें प्राप्त करने की स्थिति में होता है। पोत एजेंट निर्यातकर्ता की ओर से जहाजी कम्पनी से पोत-परिवहन आदेश प्राप्त करता है। पोत-परिवहन आदेश में जहाज के कप्तान को आदेश में बताई गई माल की विशिष्ट मात्रा निर्यातकर्ता से प्राप्त करने के लिए अनुदेश दिये गए होते हैं। यदि प्रेषित माल बहुत बड़ा है, तो निर्यातकर्ता पूरा जहाज अथवा जहाज का एक बड़ा भाग किराये पर ले सकता है। तब जहाजी कम्पनी के साथ किया गया करार **चार्टर पार्टी** कहलाता है। यदि माल का परिवहन क्रेता का उत्तरदायित्व है, तो उसे उन तिथियों की सूचना दी जानी चाहिए जब सामान संचलन के लिए तैयार होगा।

उत्पाद शुल्क संबंधी निपटान तथा लदानपूर्व जाँच (Excise Clearance and Preshipment Inspection)

ज्यों ही वस्तुएँ निर्मित हो जाएँ अथवा प्राप्त कर ली जाएँ, त्यों ही निर्यातकर्ता को उत्पाद-शुल्क अधिकारियों से निकासी के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है। 1. वह निर्यात के लिए प्रेषित माल फैक्टरी से हटाते समय उत्पाद-शुल्क का भुगतान कर सकता है, तथा वस्तुओं के निर्यात के पश्चात् शुल्क की वापसी के लिए दावा दायर कर सकता है। 2. वह उत्पाद-शुल्क कलक्टर द्वारा निश्चित शर्तों के अनुसार एक बंधपत्र निष्पादित करके माल की निकासी करा सकता है।

माल को पैक करना तथा चिह्नांकन (Packing and Marking)

निर्यात के लिए माल को पैक करना एक विशेषित कार्य है। यह माल को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है। पैक किया हुआ माल क्रेता, शिपिंग कम्पनी तथा सीमाशुल्क अधिकारियों की आवश्यकता के अनुसार होना चाहिये। पैक किया हुआ माल आयातकर्ता के अनुदेशों के अनुसार चिह्नित किया जाना चाहिएं। प्रेषित माल को आसानी से पहचानने के लिए प्रत्येक पैकेज पर जहाजी चिह्न अभिव्यक्त होने चाहिए। साथ ही, कुल भार, धड़ा (स्वयं पैकेज पर भार) तथा निबल भार व माप भी पैकेज पर चिह्नित किये जाने चाहिए। चिह्नांकन एक आयत, वर्ग, त्रिभुज अथवा वृत्त के रूप में किया जा सकता है जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

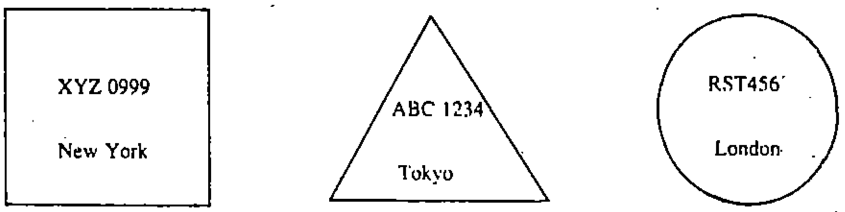

विभिन्न श्रेणियों के माल के लिए पैकेज पर उपयुक्त लेबिल लगा होना चाहिये ताकि माल के उठाने-धरने में आसानी रहे। भंगुर माल के लिए, उठाने धरने संबंधी अनुदेश जैसे, ध्यान से उठाइये अथवा यह पक्ष ऊपर रखिये भी पैकेज पर चिह्नित किये जा सकते हैं।

निकासी एजेंट तथा अग्रप्रेषण एजेंट की नियुक्ति (Appointment of Clearing and Forwarding Agents)

कभी-कभी निर्यातकर्त्ता समस्त नौपरिवहन तथा सीमाशुल्क संबंधी औपचारिकताओं और माल के

जहाज पर वास्तविक लदान के लिए निकासी तथा अग्रप्रेषण एजेंटों की नियुक्ति करते हैं। अग्रप्रेषण एजेंट अपने व्यवसाय में विशेषज्ञ होते हैं तथा उचित खर्च का भुगतान करने पर निर्यातकर्त्ता को बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान करते हैं। विशेष रूप से, वे निम्नलिखित कार्य करते हैं : 1) पोत-परिवहन करार के लिए बातचीत करना, 2) सीमाशुल्क संबंधी औपचारिकताएँ पूरी करना, 3) माल को जहाज में लदवाना तथा लदान-पत्र प्राप्त करना। वे माल की पैकिंग तथा चिह्नांकन का कार्य भी कर सकते हैं तथा माल का बीमा करवाने में भी सहायक हो सकते हैं।

सीमाशुल्क की औपचारिकताएँ (Custom Formalities)

निकासी तथा अग्रप्रेषण एजेंट रेलवे से माल छुड़ाता है तथा उसके मालगोदाम में भंडारण का प्रबंध करता है। तत्पश्चात्, वह सीमाशुल्क संबंधी औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक कार्य करता है। उसे पोत-परिवहन बिल (shipping bill) तैयार करना होता है जो कि सीमाशुल्क अधिकारियों द्वारा निर्यात की अनुमति प्रदान करने के लिए आवश्यक मुख्य प्रलेख होता है। पोत-परिवहन बिल एक ऐसा प्रलेख है जिसमें निर्यातकर्ता का नाम व पता, माल का विवरण, जैसे चिह्न, संख्या, मात्रा और मूल्य आदि, देश, जहाँ से माल का निर्यात हो रहा है, जहाज का नाम तथा बंदरगाह का नाम, जहाँ माल छुड़ाया जाना है दिखाए गए होते हैं। पोत-परिवहन बिल तीन प्रकार के होते हैं : 1 शुल्क मुक्त वस्तुओं के लिए सफेद पोत-परिवहन बिल, 2 शुल्क योग्य माल के लिए पीला पोत-परिवहन बिल, तथा 3 जब शुल्क की वापसी की अनुमति हो तो हरा पोत-परिवहन बिल।

पोत-परिवहन बिल के अतिरिक्त सीमाशुल्क निकासी के लिए अन्य निम्नलिखित प्रलेख भी आवश्यक है : ए. आर . फार्म (उत्पादन शुल्क के भुगतान से संबंधित), बी. आर. फार्म (माल के मूल्य की घोषणा करते हुए), मूल आदेश अथवा साख-पत्र, वाणिज्यिक बीजक, पैकिंग सूची (माल के निरीक्षण के लिए आवश्यक) तथा एक घोषणा प्रपत्र निर्यातकर्ता द्वारा एक औपचारिक एलान कि पोत-परिवहन बिल में दिए गए विवरण निर्यात आदेश के अनुरूप हैं। निर्यातकर्ताओं को अथवा उसकी ओर से निकासी तथा अग्रप्रेषण एजेंट को आवश्यक प्रलेख प्रस्तुत करने होते हैं। निर्यातकर्ताओं को यदि कुछ निर्यात शुल्क हैं, तो वह देने को कहा जाएगा। इसके बाद ज़कात कार्यालय निरीक्षण अधिकारी अथवा मूल्य आँकने वाले अधिकारी को गोदी पर माल की वस्तुगत पड़ताल करने का निर्देश देता है। निर्यातकर्ता द्वारा सीमाशुल्क अधिकारियों के संतोष के अनुरूप समस्त औपचारिकताएँ पूरी कर ली जाने के पश्चात् उसे एक सीमाशुल्क निर्यात पास दिया जाता है अथवा पोत-परिवहन बिल की दूसरी प्रति पर वेचान कर दिया जाता है। तब जहाज पर माल का लदान होता है।

माल का बीमा तथा ई.सी.जी.सी. रक्षावरण (Insurance of Goods and E.C.G.C. Cover)

सामान्यतया जहाजी कम्पनियाँ तब तक माल ले जाने को राज़ी नहीं होतीं जब तक कि परिवहन के दौरान होने वाली हानि अथवा क्षति के लिए माल का बीमा न करा दिया गया हो। इसी प्रकार वाणिज्यिक बैंक वित्तीय सहायता देने अथवा विनिमय-पत्र को बट्टे पर चुकाने से इंकार कर देते हैं। निर्यातकर्त्ता द्वारा प्रेषण से पूर्व परिवहन के दौरान होने वाले विभिन्न जोखिमों के लिए माल का बीमा कराया जाना अनिवार्य है। सामान्यतः माल का बीमा एक ऐसी राशि के लिए कराया जाता है जिसमें माल के मूल्य के अतिरिक्त एक उचित लाभ भी सम्मिलित होता है। निर्यात साख गारंटी नियम (ई. सी.जी.सी.) के साथ माल का बीमा कराके वाणिज्यिक तथा राजनीतिक जोखिमों, जैसे क्रेता का दिवालियापन, आयातक के देश में विद्रोह अथवा गृह युद्ध से भी सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। इससे निर्यातकर्ता को बैंकों से निर्यात वित्त प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

जहाज पर माल का लदान (Placing the Goods on Board the Ship)

सीमाशुल्क निर्यात पास प्राप्त करने के पश्चात्, निर्यातकर्ता अपना माल सीधे गोदी (dock) पर या जहाज पर सौंप सकता है। जब नियातकर्ता गोदी पर सौंपता है, तब उसे माल के लिए एक गोदी रसीद दी जाती है। जब सीधा जहाज पर लादा जाता है, तब उसे जहाज का मालिम (कप्तान का सहायक), पैकेजों की पैकिंग का निरीक्षण तथा उनकी गिनती करने के बाद एक रसीद देता है। जिसे मालिम रसीद (mate's receipt) कहा जाता है। यदि मालिम माल की पैकिंग से संतुष्ट होता है, तब वह एक दोषरहित रसीद देता है। यदि वह संतुष्ट नहीं होता, तो वह इस विषय में मालिम रसीद पर एक टिप्पणी लिख देता है ऐसी टिप्पणी के साथ वाली मालिम रसीद को दूषित रसीद या खंडित रसीद समझा जाता है। जब निर्यातकर्ता मालिम रसीद के बदले

लदान-पत्र प्राप्त करता है तो यह टिप्पणी उस लदान-पत्र में अंतरित कर दी जाती है। अत: निर्यातकर्ता को मालिम रसीद पर किसी प्रकार की टिप्पणी से बचने के लिए माल की पैकिंग पूरे ध्यान से करनी चाहिए।

जहाजी बिल्टी (Obtaining Bill of Lading)

जहाजी बिल्टी एक ऐसा प्रलेख है जिसके द्वारा जहाजी कम्पनी जहाज पर माल की प्राप्ति की रसीद देती है। इसमें वे शर्तें तथा अवस्थाएँ दी गई होती हैं जिनके अनुसार गंतव्य स्थान पर माल की सुपुर्दगी की जानी है। यह रसीद जहाजी कम्पनी तथा निर्यातकर्ता के बीच माल संविदा की शर्तों के प्रमाण के रूप में काम करती है। लदान-रसीद माल का स्वत्व प्रलेख होती है जिसके बिना माल का दावा नहीं किया जा सकता। अत: जब माल विदेशी बंदरगाह पर पहुँचता है, तब माल का दावा करने से पूर्व जहाजी बिल्टी प्रस्तुत करना अनिवार्य है। रसीद केवल एक व्यक्ति के नाम में, अथवा उसके द्वारा आदेश किए गए व्यक्ति के नाम में बनाई जा सकती है। दूसरी अवस्था में, इसका बेचान करके माल का स्वामित्व दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया जा सकता है। किंतु, यह हस्तांतरणीय (negotiable) नहीं है, क्योंकि धारक का माल के प्रति दावा कभी भी उस व्यक्ति के दावे से जिसने बिल्टी उसे हस्तांतरित की है, अच्छा नहीं हो सकता। यदि हस्तांतरण से पूर्व रसीद चुरा ली जाती है, तो यह माल के प्रति किसी प्रकार का कानूनी अधिकार प्रदान नहीं करेगी। जहाजी बिल्टी में यह बताया गया होता है कि भाड़ा दे दिया गया है अथवा दिया जाना है। जब भाड़ा निर्यातकर्ता द्वारा दिया जाता है, तब **भाड़ा दे दिया गया है**, यह टिप्पणी लदान-पत्र में कर दी जाती है। जब भाड़ा माल के आयातकर्ता द्वारा दिया जाना होता है तब लदान-पत्र में **भाड़ा आगे**, यह टिप्पणी कर दी जाती है।

आवश्यक प्रलेखों को एकत्र करना तथा आयातकर्ता को पोत-लदान की सूचना भेजना (Collection of Necessary Documents and Despatch of Shipment Advice)

जहाज पर माल का लदान करने के बाद, अग्रप्रेषण एजेंट निम्नलिखित प्रलेख निर्यातकर्ता को लौटा देता है: 1 दोषरहित लदान-पत्र का एक सेट, 2 सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा सत्यापित मूल बीजक की एक प्रति, 3 जहाजी बिल्टी की प्रतियाँ, 4 निर्यात आदेश, 5 मूल साख-पत्र, 6 ए.आर. फार्म की अनुलिपि त॰ 7 जी.आर. फार्म की अनुलिपि। ज्यों ही निर्यातकर्ता उपरोक्त प्रलेख प्राप्त करता है, वह आयातकर्ता को निम्नलिखित प्रलेखों के साथ पोत-लदान की सूचना भेजता है :

1 वाणिज्यिक बीजक
2 बीमा पालिसी
3 लदान-पत्र की वे प्रतियाँ जो परक्राम्य नहीं है
4 पैकिंग सूची

इन प्रलेखों को प्राप्त करने के बाद आयातकर्ता अथवा उसका निकासी एजेंट चुंगी दफ़्तर से, जिसके अधिकार में जहाज से उतारे जाने के बाद माल होता है, माल की निकासी का प्रबंध करता है। आयातकर्ता अथवा उसका निकासी एजेंट जहाजी कम्पनी में जाकर तथा यदि कुछ देय है तो वह चुका कर, तथा लदान-पत्र व अन्य प्रलेख, जिनकी जहाजी कम्पनी को आवश्यकता होती है, देकर माल का क़ब्ज़ा ले लेता है। वाणिज्यिक बीजक एक ऐसा बिल है जिसमें यह बताया गया होता है कि जो माल भेजा गया है, उसका भार, चिह्न कीमत तथा मूल्य क्या है । आयातकर्ता को यह जानने के लिए कि वह कितने का देनदार है तथा इंडेंट की प्रति से, जो उसके पास है, माल की जाँच करने के लिए बीजक की आवश्यकता होती है। उसके पास वस्तुओं का दावा करने के लिए लदान-पत्र तथा बीमा कम्पनी से समुद्र यात्रा के दौरान माल को हुई किसी क्षति की पूर्ति के लिए दावा करने के लिए बीमा पालिसी का होना अनिवार्य है।

भुगतान प्राप्त करना (Securing Payment)

आयातकर्ता से निर्यातित माल संबंधी देय प्राप्त करने की कई वैकल्पिक विधियाँ हैं। किंतु, भुगतान की विधि का निर्धारण निर्यातकर्ता तथा आयातकर्ता के बीच हुए क़रार के अनुसार होता है। भुगतान की दो बहु प्रचलित विधियाँ नीचे दी गई हैं।

1 **प्रलेखी हुंडी (Documentary Bills of Exchange)** : निर्यातकर्ता आयातकर्ता पर एक विनिमय पत्र (हुंडी) लिखकर उससे भुगतान का वचन लेता है। निर्यातकर्ता आयातकर्ता को आवश्यक प्रलेख एक विनिमय पत्र के साथ, जो आयातकर्ता को लिखा होता है, इस अनुदेश के साथ भेज देता है कि प्रलेख आयातकर्ता को तभी दिए जाएँ जबकि वह इस विनिमय पत्र

को स्वीकार कर ले अथवा इसका भुगतान दे। यदि प्रलेख भुगतान करने पर दिए जाने हों तब इस प्रकार के प्रबंध को **अदायगी पर प्रलेख सुपुर्दगी** (डी/पी.) (Documents against payment) कहा जाता है। यदि प्रलेख विनिमय-पत्र की स्वीकृति पर दिये जाने हो, तो इस प्रकार के प्रबंध को सकारने पर प्रलेख सुपुर्दगी (Documents against acceptance) या (डी/ए) कहा जाता है। सामान्यतया सकारने पर प्रलेख सुपुर्दगी की अवस्था में निर्यातकर्ता तब तक भुगतान की प्रतीक्षा करता है जब तक की विनिमय पत्र का अंतिम रूप से भुगतान नहीं हो जाता। इसमें समय लग सकता है। किंतु बातचीत कराने वाले बैंक प्रायः विनिमय पत्रों का बट्टा चुका कर भुगतान करने को सहमत हो जाते हैं। इससे निर्यातकर्ता माल का जहाज में लदान करने के तुरंत बाद भुगतान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

यदि निर्यातकर्ता तत्काल भुगतान प्राप्त करना चाहता है, तो वह अपने बैंक की स्थानीय शाखा से प्रलेखी हुंडी का बट्टा चुका कर भुगतान प्राप्त कर सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उसे बैंक को एक बंधक-पत्र (Letter of Hypothecation) देना पड़ता है। बंधक पत्र एक ऐसा पत्र है जो निर्यातकर्ता द्वारा भेजे गए माल के लिए आयातकर्ता पर लिखे विनिमय पत्र के साथ, एक निर्यातकर्ता द्वारा बैंक के नाम लिखा जाता है। इसके द्वारा निर्यातकर्ता बैंक को इस बात का अधिकार देता है कि वह आयातकर्ता द्वारा हुंडी नकारे जाने पर माल को बेच सकता है तथा इस प्रकार आयातकर्ता द्वारा व्यतिक्रम की आवश्यकता में निर्यातकर्ता को दी गई अग्रिम राशि को वसूल कर सकता है।

2 **साख-पत्र के अधीन प्रलेखी साख (Documentary credit under letter of credit) :** भुगतान प्राप्त करने की एक सुरक्षित तथा अधिक द्रुत विधि प्रलेखी साख है जिसके अनुसार आयातकर्ता-निर्यातकर्ता के पक्ष में एक बैंक द्वारा साख-पत्र खोलने का प्रबंध करता है। साख-पत्र में आयातकर्ता के बैंक की शाखा निर्यातकर्ता को यह लिखित वचन देती है कि यदि निर्यातकर्ता माल के जहाज में लदान से संबंधित कुछ विशेष प्रलेख एक निश्चित अवधि के अंदर प्रस्तुत करेगा, तो बैंक साख पत्र में बताई गई राशि तक उधार के बदले लिखे गए विनिमय पत्र को सकार देगा। दोनों अवस्थाओं में , आयातकर्ता पर लिखे गए विनिमय पत्र के साथ आवश्यक प्रलेख निर्यातकर्ता के बैंक के माध्यम से आयातकर्ता को भेजे जाते हैं। बातचीत कराने वाला बैंक प्रलेखों की जाँच करने के बाद विनिमय पत्र, लदान-पत्र, बीमा-पालिसी तथा अन्य प्रलेख भुगतान प्राप्त करने के लिए आयातकर्ता के बैंक को भेज देता है। यदि विनिमय पत्र तत्काल प्रदान किये जाने वाला है, तो निर्यातकर्ता को तत्काल भुगतान मिल जाता है। यदि यह कुछ दिनों के पश्चात् देय है, तो बैंक इसे स्वीकार करता है तथा निर्यातकर्ता इसे बट्टे पर चुका लेता है।

प्रोत्साहन प्राप्ति के लिए दावा करना (Claiming the Incentives)

निर्यातक को विभिन्न लाभों जैसे शुल्क वापसी (duty drawback), उत्पाद शुल्क रियायत (excise rebate),विशिष्ट आयात लाइसेंस (special import licence),कर रियायत आदि प्राप्त होती है । इन प्रोत्साहनों को सरकार के द्वारा निर्यात को बढावा देने के लिए प्रदान किया जाता है । निर्यात विधि का अंतिम चरण इन प्रोत्साहनों की प्राप्ति के लिए सरकार से दावा करना है ।

बोध प्रश्न ख

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1 भारत से वस्तुओं का निर्यात .... द्वारा नियंत्रित होता है।
2 जहाजी कम्पनी से माल का निर्यात करने के लिए पूरा जहाज या जहाज का बड़ा भाग किराये पर लेना ..... कहलाता है।
3 जब मालिक निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की पैकिंग, आदि से संतुष्ट हो जाता है, तब वह .... देता है।
4 जब निर्यातकर्ता सीधे गोदी पर माल सौंपता है, तो उसे ..... दी जाती है।
5 माल का लदान पूर्व निरीक्षण तथा गुण नियंत्रण द्वारा किया जाता है।
6 जब जहाज भाड़ा निर्यातकर्ता द्वारा चुकाया जाता है, तब जहाजी बिल्टी पर .... चिह्न लगाया जाता है।

12.6 आयात व्यापार की क्रियाविधि (Procedure of Import Trade

आयात व्यापार की क्रियाविधि विभिन्न देशों में वहाँ की वैधानिक आवश्यकताओं तथा व्यापारिक व्यवहारों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। भारत में आयात व्यापार की सामान्य क्रियाविधि के निम्न चरण हैं।

1 व्यापारिक पूछताछ
2 आयात लाइसेंस प्राप्त करना
3 विदेशी मुद्रा प्राप्त करना
4 आर्डर या इंडेंट भेजना
5 साख-पत्र का प्रबंध करना
6 पोत-परिवहन प्रलेख प्राप्त करना
7 माल की निकासी कराना
8 भुगतान करना

व्यापारिक पूछताछ (Trade Enquiry)

इच्छुक आयातकर्ता सम्भावित आयातकर्ताओं से व्यापारिक पूछताछ करता है। उसकी पूछताछ उसके द्वारा अपेक्षित माल के ब्यौरे, गुण, डिज़ाइन, माप, आदि पर आधारित होती है। वह माल की उपलब्धता, मूल्य जिस पर माल उपलब्ध होगा, माल की सुपुर्दगी, तथा भुगतान की शर्तों के विषय में सचना प्राप्त करना चाहता है। पूछताछ के जवाब में, आयातकर्ता कई कथित मूल्य (quotations) प्राप्त कर सकता है, जिनमें तत्काल उपलब्ध वस्तुओं, उसके गुण, माप, डिजाइन आदि का ब्यौरा दिया गया होता है। विभिन्न कथित मूल्यों में वह मूल्य जिस पर वस्तुएँ उपलब्ध होंगी, तथा बिक्री की शर्तें भी उल्लेखित होंगी। एक बार विभिन्न संभारकों से कथित मूल्य प्राप्त हो जाने के बाद, आयात का निर्णय लेने से पूर्व विभिन्न कथित मूल्यों की सम्यक तुलना की जानी चाहिए।

आयात लाइसेंस प्राप्त करना (Obtaining an Import Licence)

आयात लाइसेंस प्राप्त करने के लिए इच्छुक आयातक निर्धारित फार्म पर लाइसेंस प्राधिकरण को आवेदन करता है। जब लाईसेंस प्राधिकरण दावे से संतुष्ट हो जाता है तो लाईसेंस जारी कर देता है। आयात लाईसेंस की दो प्रति जारी की जाती है। आयातकर्त्ता को पहली प्रति सीमाशुल्क अधिकारी के सम्मुख माल की निकासी कराते समय प्रस्तुत करनी पड़ती है तथा दूसरी प्रति की आवश्यकता रिजर्व बैंक से विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए होती है। कच्चा माल, पूंजीगत माल तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रसारित अन्य वस्तुओं को खुली सामान्य लाइसेंस (Open General Licence or OGL) पद्धति के अन्तर्गत आयात किया जा सकता है।

विदेशी मुद्रा प्राप्त करना (Obtaining Foreign Exchange)

आयात लाइसेंस प्राप्त करने के बाद आयातकर्ता विदेशी मुद्रा की आवश्यक राशि प्राप्त करने की व्यवस्था करता है। भारत में, भारतीय रिज़र्व बैंक को विदेशी मुद्रा के उपयोग का नियमन करने का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक आयातकर्ता को विदेशी मुद्रा नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित फार्म पर प्रार्थना-पत्र के साथ आयात लाइसेंस प्रस्तुत करना पड़ता है। आयातकर्ता का विनिमय बैंक प्रार्थना-पत्र पर पृष्ठांकन करके उसे भारतीय रिज़र्व बैंक के विदेशी मुद्रा नियंत्रण विभाग को भेज देता है। वर्तमान सरकारी नीति के आधार पर प्रार्थना-पत्र का संवीक्षण करने के पश्चात् रिज़र्व बैंक विदेशी मुद्रा की राशि मुक्त करने की मंजूरी दे देता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि जबकि आयात लाइसेंस इसकी वैधता की अवधि में किए गए समस्त आयातों के लिए दिया जाता है, विदेशी मुद्रा केवल उसी सौदे के लिए मुक्त तथा उपलब्ध की जाती है जिसके लिए आयात आदेश दे दिया गया है।

आर्डर या इंडेंट भेजना (Placing the Order/Indent)*

आयात लाइसेंस तथा आवश्यक विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के पश्चात् अगला चरण माल के आयात के लिए आदेश अथवा इंडेंट भेजना है। इंडेंट एक प्रकार का आदेश है जो वस्तुओं के आयात के लिए विदेश भेजा जाता है। इंडेंट में आयात किए जाने वाले माल तथा मूल्य, पोत-लदान, माल की सुपुर्दगी, भुगतान की विधि, आदि संबंधी शर्तों का पूर्ण विवरण होता है। इंडेंट "अपूर्ण", "पूर्ण" अथवा "पुष्टि कारी" हो सकता है। जब माल का चुनाव तथा अन्य ब्योरे विदेश में एजेंट के स्वनिर्णय पर छोड़ दिए जाते हैं, तो इंडेंट "अपूर्ण इंडेंट" (open indent) कहलाता है। "पूर्ण इंडेंट" (closed indent) में वांछित यथार्थ माल का पूर्ण विवरण होता है। जब आदेश की आयातकर्ता के एजेंट द्वारा पुष्टि आवश्यक होती है, तो उसे "पुष्टिकारी इंडेंट" (confirmatory indent) कहा जाता है। प्रत्येक आयातकर्ता सीधे अथवा बिचौलियों के माध्यम से, जिन्हें इस कार्य में विशिष्टता प्राप्त होती है, आदेश भेजने को स्वतंत्र है। ऐसी विशिष्ट एजेंसियाँ, "इंडेंट हाउस" कहलाती है। इंडेंट हाउस एक ऐसा आयात-एजेंट या आयात फ़र्म होती है, जो आयातकर्ताओं से प्राप्त आदेश पर माल आयात करती है। इंडेंट हाउस आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता के बीच बिचौलिये का काम करता है। वे आयातकर्ता से अपनी सेवाओं के बदले कुछ प्रतिशत कमीशन चार्ज करते हैं। यदि आयातकर्ता इंडेंट हाउस की सेवाओं का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे निर्दिष्ट वस्तुओं की पूर्ति के लिए इंडेंट हाउस से करार करना पड़ता है। इस कार्य के लिए कुछ विशेष फार्म होते हैं जिन्हें इंडेंट हाउस भरता है, तथा जिन पर आयातकर्ता हस्ताक्षर करता है। भारत में बहुत से बड़े इंडेंट हाउसों के दफ्तर बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में स्थित हैं।

साख-पत्र का प्रबंध करना (Arranging Letter of Credit)

भुगतान की शर्तों के अनुसार आयातकर्ता को निर्यातकर्ता के पक्ष में अपने बैंक द्वारा जारी किए गए साख-पत्र का प्रबंध करना पड़ सकता है। सामान्यतया आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता के बीच तय हुई समस्त शर्तें साख-पत्र में स्पष्ट रूप से लिखी होती हैं। आयातकर्ता का बैंक निर्यातकर्ता के देश में स्थानीय बैंक को यह अधिकार देते हुए कि वह निर्यातकर्त्ता द्वारा आयातकर्त्ता पर लिखे विनिमय पत्र का खरीद ले अथवा स्वयं बैंक पर लिखे विनिमय पत्र को स्वीकार कर ले, साख-पत्र जारी करता है। आयातकर्ता का बैंक इस बात की माँग कर सकता है कि आयातकर्ता जारी किए गए साख-पत्र की राशि को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक पर्याप्त राशि उसके पास जमा करा दे। किंतु यदि आयातकर्ता एक स्थापित व्यक्ति या फ़र्म है जिसके विषय में बैंक भली-भाँति जानता है, अथवा उसका एक संतोषजनक जमाखाता बैंक के पास रहता है तब हो सकता है कि बैंक इस प्रकार के निक्षेप के लिए आग्रह न करे। बैंक निम्नलिखित में से किसी भी एक प्रकार का साख-पत्र जारी कर सकता है।

1 **प्रत्याहरणीय साख-पत्र (Revocable Letter of Credit)** : यह देने वाले बैंक द्वारा अपनी मर्ज़ी से निर्यातकर्ता की पूर्व सहमति के बिना वापिस लिया जा सकता है, परिवर्तित किया जा सकता है या रद्द किया जा सकता है।

2 **अपुष्ट अटल साख-पत्र (Unconfirmed Irrevocable Letters of Credit)** : यह जारी करने वाले बैंक द्वारा समाप्ति की तिथि (date of expiry) से पूर्व निर्यातकर्ता की सहमति के बिना न तो रद्द किया जा सकता है, न ही परिवर्तित किया जा सकता है, न ही वापिस लिया जा सकता है। अतः यह अधिक सरक्षित है।

3 **पुष्टिकृत अटल साख पत्र (Confirmed Irrevocable Letter of Credit) : अपुष्ट अटल साख-पत्र को और अधिक सुरक्षित बनाने के लिए इसे बैंक द्वारा पुष्टिकृत अथवा गारंटीकृत कराया जा सकता है। एक पुष्टिकृत अटल साख-पत्र प्राप्त होने पर बैंक के लिए निर्यातकर्त्ता को भुगतान करना अनिवार्य होता है, चाहे आयातकर्त्ता अथवा विदेशी बैंक के साथ कुछ भी क्यों न घटे।**

पोत-परिवहन प्रलेख प्राप्त करना (Getting Shipping Documents)

आर्डर तथा साख-पत्र प्राप्त करने के पश्चात्, निर्यातकर्ता माल को जहाज पर लादता है तथा आयातकर्ता को इस बात की सूचना देता है कि माल भेज दिया गया है। निर्यातकर्ता भेजे गए माल

के पूरे मूल्य के बराबर स्वयं को देय एक विनिमय पत्र आयातकर्ता के बैंक को लिखता है। विनिमय पत्र समस्त पोत-परिवहन प्रलेखों, जैसे—वाणिज्यिक बीजक, जहाजी बिल्टी, बीमा पॉलिसी, तथा मूल स्थान का प्रमाण-पत्र, (Certificate of origin) यदि वह आवश्यक हो, के साथ निर्यातकर्ता के बैंक द्वारा आयातकर्ता के बैंक को भेज दिए जाते हैं। साख-पत्र में की गई व्यवस्था के अनुसार आयातकर्ता का बैंक आयातकर्ता को ये प्रलेख दे देगा जो माल को चुंगी अधिकारियों से छुड़ाने के लिए कार्यवाही करेगा। साख-पत्र के अभाव में, बैंक आयातकर्ता को प्रलेख सौंपने के संबंध में निर्यातकर्ता के अनुदेशों का पालन करेगा। यदि विनिमय पत्र पर डी/पी (अदायगी पर प्रलेख सुपुर्दगी) चिह्नित है, तो आयातकर्ता को प्रलेख केवल विनिमय पत्र की राशि का भुगतान करने पर ही दिए जाएँगे।

माल की निकासी करना (Clearing the Goods)

माल प्रलेख अधिकार प्राप्त करने के बाद आयातकर्ता जहाज के आगमन की प्रतीक्षा करता है। जब जहाज गंतव्य बंदरगाह पर पहुँच जाता है, तब आयातकर्ता चुंगी दफ्तर से जिसकी अभिरक्षा में जहाज से उतारे जाने के बाद माल रखा हुआ है, माल की निकासी का प्रबंध करता है। माल की निकासी के लिए निम्नलिखित कार्यवाही करनी पड़ती है। 1 जहाजी कम्पनी द्वारा वस्तुओं की सुपुर्दगी के लिए पृष्ठांकित जहाजी बिल्टी अथवा जहाजी कम्पनी द्वारा जारी सुपुर्दगी आदेश प्राप्त करना, 2 माल के लदान से संबंधित गोदी अधिकारियों द्वारा दी गई सेवाओं के मूल्य के रूप में पत्तन प्रबंध समिति के देय की आवश्यक राशि का भुगतान करना, 3 एक आयात-पत्र (bill of entry) भरना जिसमें आयातित माल तथा दिए जाने वाले आयात शुल्क का पूर्ण विवरण दिया होता है। आयात-शुल्क देने के बाद आयातकर्ता को माल की निकासी के लिए जहाजी कम्पनी को लदान-पत्र, पत्तन प्रबंध समिति देय की रसीद, तथा आयात-पत्र देने पड़ते हैं। यदि आयातकर्ता तत्काल पूरा आयात-शुल्क देने की स्थिति में नहीं है तो वह सीमा शुल्क अधिकारियों से माल को "बंधक माल गोदाम" (bonded ware house) में रखे जाने के लिए आवेदन कर सकता है। आयातकर्ता जब-जब माल की सुपुर्दगी लेना चाहता है, तब-तब वह माल के उस भाग के लिए शुल्क चुका सकता है।

भुगतान करना (Making Payments)

आयात के लिए भुगतान की विधि आयातकर्ता तथा निर्यातकर्ता के बीच हुए करार पर निर्भर करती है। यदि सकारने पर प्रलेख सुपुर्दगी (D/A bills) है, तो आयातकर्ता को देय तिथि पर विनिमय पत्र सकारना पड़ता है। विनिमय पत्र का भुगतान हो जाने के बाद आयात सौदा समाप्त हो जाता है। यदि अदायगी पर प्रलेख सुपुर्दगी है (D/P bills) तो आयातकर्ता तत्काल अथवा प्रस्तुति के थोड़े समय के भीतर ही भुगतान कर देता है, क्योंकि माल-प्रलेख-अधिकार उसे बिल का भुगतान करने पर ही प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न ग

बताइए निम्न कथन सत्य है अथवा असत्य

1 आयात क्रियाविधि विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होती है ....

2 हमारे देश में भारतीय रिज़र्व बैंक विदेशी मुद्रा देता है। ....

3 एक इंडेंट माल को आयात करने का आदेश है। ....

4 एक इंडेंट हाउस आयातकर्ता और निर्यातकर्ता के बीच बिचौलिये का काम करता है। ....

5 साख-पत्र बैंक द्वारा तभी जारी किया जाता है जबकि विनिमय पत्र प्रस्तुत किया जाता है। ....

6 साख-पत्र के अभाव में बैंक प्रलेखों की सुपुर्दगी के लिए निर्यातकर्ता के अनुदेशों का पालन करता है। ....

7 शुल्क योग्य माल पर, शुल्क तत्काल चुकाया जाता है, तथा बंधक माल पर शुल्क किश्तों में नहीं चुकाया जाता। ....

8 मूल स्थान का प्रमाण-पत्र आयातकर्ता को माल का कब्जा लेने के लिए भेजा जाता है। ....

9 निर्यातकर्ता की सहमति के बिना प्रत्याहरणीय साख-पत्र न तो परिवर्तित किया जा सकता है और न ही रद्द किया जा सकता है। ....

10 निकासी एजेंट तथा इंडेंट हाउस एक से कार्य सम्पन्न करते हैं। ....

12.7 सारांश

राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय "विदेशी व्यापार" अथवा "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार" कहलाता है। देशीय व्यापार तथा विदेशी व्यापार में मुख्य अंतर यह है कि देशीय व्यापार में एक ही देश के नागरिकों के बीच व्यापार होता है, जबकि विदेशी व्यापार विभिन्न राष्ट्रीयता वाले लोगों के बीच होता है। इसके अतिरिक्त एक देश के भीतर व्यक्तियों के बीच व्यापार पर बहुत कम प्रतिबन्ध होता है। किंतु विदेशी व्यापार में बहुत से प्रतिबन्ध होते हैं। घरेलू व्यापार में भुगतान मुद्रा की एक ही इकाइयों में लिया-दिया जाता है। विदेशी व्यापार में आयातकर्ता अपनी राष्ट्रीय मुद्रा में भुगतान करता है जिसे निर्यातकर्ता को स्वीकार्य मुद्रा में परिवर्तित करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त देशीय व्यापार में भुगतान नकद अथवा किसी राष्ट्रीय बैंक पर चैक द्वारा किया जा सकता है, जबकि विदेशी व्यापार में भुगतान केवल बैंक के द्वारा किया जा सकता है। विदेशी व्यापार को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। आयात व्यापार (विदेश से माल खरीदना), निर्यात व्यापार (किसी दूसरे देश को माल बेचना), तथा पुनर्निर्यात व्यापार (एक देश से माल अन्य देश या देशों को निर्यात करने के लिए आयात करना।)

विभिन्न देशों में लोगों के लिए विदेशी व्यापार इन कारणों से महत्वपूर्ण है : 1) विभिन्न देशों में विशेषज्ञता तथा उत्पादन क्रियाओं में निपुणता, 2) विभिन्न देशों में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, 3) आयात और निर्यात के आधार पर आर्थिक विकास, 4) विश्वभर में मूल्य समानीकरण, तथा, 5) रोज़गार के अवसरों का सृजन तथा विभिन्न देशों के बीच सम्बन्धों में समरसता लाना।

विदेशी व्यापार की मुख्य समस्याएँ हैं : 1) विदेशी बाज़ार में उत्पादों की उपयुक्तता के विषय में सूचनाएँ प्राप्त करने में कठिनाई, 2) विदेश में माँग और पूर्ति की स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाने में कठिनाई, 3) अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में मूल्यों में बार-बार होने वाले परिवर्तनों का जोखिम, 4) निर्यातकर्ता द्वारा वहन किया जाने वाला साख संबंधी जोखिम, 5) विनिमय दरों में होने वाले उतार-चढ़ाव का जोखिम, 6) विभिन्न देशों में नियमों विनियमों तथा क्रियाविधियों में अंतर, 7) आयातकर्ता की उधार पात्रता तथा निर्यातकर्ता की विश्वसनीयता सुनिश्चित करना, 8) परिवहन के समय माल को होने वाली हानि तथा क्षति का जोखिम, 9) निर्यात तथा भुगतान प्राप्ति के बीच समय का अंतर, 10) राजनैतिक तथा कानूनी समस्याएँ।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत मुख्यतः निर्मित वस्तुओं का आयातकर्ता तथा कच्चे माल का निर्यातकर्ता था। स्वतंत्रता के बाद हुए औद्योगिक विकास के साथ भारत के विदेशी व्यापार की बनावट में आमूल परिवर्तन आया है तथा अब यह केवल ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशों तक हीं सीमित नहीं हैं। भारत से वस्तुओं का निर्यात करने तथा निर्यात संबंधी लाभों को प्राप्त करने के लिए निर्यातकर्त्ताओं को कुछ औपचारिकताएँ पूरी करनी होती हैं जैसे रिजर्व बैंक कोड नंबर प्राप्त करना, निर्यात संवर्धन परिषद के साथ पंजीकरण कराना, तथा निर्यात-आयात कोड नंबर प्राप्त करना।

भारत से निर्यात संबंधी क्रियाविधि है : पूछताछ प्राप्त करना, आदेशकर्त्ता से आदेश प्राप्त करना तथा उसका संपरीक्षण, निर्यात लाइसेंस प्राप्त करना, माल का निर्माण करना अथवा माल का प्रबंध करना, विनिमय संबंधी विनियमों का पालन करना, जहाज में स्थान की बुकिंग कराना, उत्पादन-शुल्क संबंधी निपटान तथा लदान-पूर्व जाँच कराना, माल को पैक करना तथा उसका चिह्नांकन करना, निकासी एजेंट तथा अग्र-प्रेषक एजेंट नियुक्त करना, सीमा शुल्क की औपचारिकताएँ पूरी करना, माल का बीमा तथा ई.सी.जी.सी. रक्षावरण, जहाज़ पर माल का लदान करना, जहाजी बिल्टी प्राप्त करना, आवश्यक प्रलेखों को एकत्र करना तथा आयातकर्ता को पोत-लदान की सूचना भेजना, प्रलेखी विनिमय पत्र अथवा साख-पत्र के अधीन प्रलेखी साख द्वारा भुगतान प्राप्त करना, तथा सरकारी प्राधिकरणों से निर्यात के लिए प्रोत्साहन प्राप्त करने के लिए दावा करना।

भारत में आयात व्यापार के संबंध में अपनाई जाने वाली क्रियाविधि है :
निर्यातकर्ताओं से व्यापारिक पूछताछ करना, आयात लाइसेंस प्राप्त करना, विदेशी मुद्रा के लिए मंजूरी प्राप्त करना तथा विदेशी विनिमय मुक्त कराना, आदेश या इंडेंट भेजना, साख-पत्र का प्रबंध करना, पोत-परिवहन प्रलेख प्राप्त करना, जहाजी कम्पनी द्वारा पृष्ठांकित लदान-पत्र का प्रबंध करने तथा सुपुर्दगी-आदेश जारी कराने के बाद माल की निकासी कराना, पत्तन प्रबंध

समिति (port trust) के देय आदि की राशि का भुगतान करना, आयात पत्र भरना, माल प्रलेख-अधिकार प्राप्त करने के लिए निर्यातकर्त्ता की हुंडी का भुगतान करना अथवा हुंडी को स्वीकार करना

12.8 शब्दावली

आयात पत्र (Bill of Entry): एक ऐसा प्रलेख जिसमें आयात किए गए माल का ब्योरा दिया जाता है इसके आधार पर आयात सीमा शुल्क अधिकारी आयात शुल्क का निर्धारण करते हैं।

जहाजी बिल्टी (Bill of Lading): एक ऐसा प्रलेख जिसे जहाजी कम्पनी जहाज़ पर माल प्राप्ति की रसीद के रूप में जारी करती है इसमें वे शर्तें तथा स्थितियाँ दी गई होती है जिनके अनुसार गंतव्य पत्तन को माल ले जाया जाना है।

बंधक माल गोदाम (Bonded Warehouse): एक ऐसा माल गोदाम जिसमें उस समय तक माल रखा जाता है जब तक कि आयात शुल्क का भुगतान न कर दिया गया हो।

मूल स्थान का प्रमाण-पत्र (Certificate of Origin): आयातकर्ता को भेजा गया एक ऐसा प्रलेख जिसमें मूल स्थान बताया गया हो, ताकि आयातकर्ता सीमा शुल्क से संबंधित अभिमान्य व्यवहार (preferential treatment) प्राप्त कर सके।

व्यापारिक बीजक (Commercial Invoice): एक ऐसा बीजक जो निर्यातकर्ता द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें भेजे गए माल का पूर्ण विवरण, जैसे उनका भार, चिह्न, कीमत तथा मूल्य, तथा निर्यातकर्त्ता को देय अन्य समस्त व्यय जैसे निर्यातकर्त्ता द्वारा चुकाया गया जहाज भाड़ा, बीमा प्रीमियम आदि दिखाया गया होता है ।

चार्टर पार्टी (Charter Party): पूरा जहाज या उसका एक मुख्य भाग किराये पर लेने के लिए किया गया माल-संविदा।

निकासी तथा अग्र प्रेषण एजेंट (Clearing and Forwarding Agents): एक ऐसी फ़र्म जो निर्यातकर्ता की ओर से माल के नौवहन तथा सीमा शुल्क संबंधी औपचारिकताओं की परिरक्षा करती है। यह आयात की दशा में माल की निकासी तथा सीमा शुल्क के भुगतान का प्रबंध भी करती है।

भाड़ा संविदा (Contract of Affreightment): जहाजी कम्पनी तथा निर्यातकर्त्ता के बीच माल को दूसरे बंदरगाह तक परिवहन करने का करार।

गोदी रसीद (Dock Receipt): एक ऐसा प्रलेख जो गोदी अधिकारियों द्वारा उस समय जारी किया जाता है जबकि निर्यातकर्ता माल की सुपुर्दगी सीधे गोदी पर करता है।

डी/ए (D/A): निर्यातकर्ताओं द्वारा भुगतान प्राप्त करने की एक ऐसी विधि जिसके अनुसार आयातकर्ता के प्रलेख तभी मुक्त किए जाएँगे जबकि वह विनिमय-पत्र को स्वीकार कर लेगा।

डी/पी (D/P): आयातकर्ता से भुगतान प्राप्त करने की एक ऐसी विधि जिसके अनुसार बैंक आयातकर्ता के प्रलेख तभी मुक्त करता है जबकि वह देय राशि का भुगतान कर दे।

प्रलेखी साख (Documentary Credit): आयातकर्ता से भुगतान प्राप्त करने की एक ऐसी विधि जिसके अनुसार आयातकर्ता निर्यातकर्ता के पक्ष में बैंक द्वारा साख-पत्र जारी कराने का प्रबंध करता है।

चुंगी वापसी (Draw Back): आयात शुल्क वापिस लेना।

पुनर्निर्यात व्यापार (Entrepot Trade): एक देश द्वारा दूसरे देश को निर्यात करने के लिए माल का आयात।

जी.आर. फार्म (G.R. Form): यह सुनिश्चित करने के लिए कि निर्यात के संदर्भ में प्राप्य विदेशी मुद्रा पोत-लदान के 180 दिन के भीतर भारत में प्राप्त कर ली जाएगी, रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित एक फार्म।

इंडेंट (Indent): माल का आयात करने के लिए विदेश को भेजा गया आदेश।

इंडेंट हाउस (Indent House): एक ऐसी फ़र्म जो विभिन्न आयातकर्ताओं की ओर से माल के आयात का प्रबंध करती है।

साख पत्र (Letter of Credit) : बैंक द्वारा जारी किया गया एक ऐसा प्रलेख या आदेश जिसके द्वारा किसी अन्य बैंक को यह अधिकार दिया जाता है कि वह साख-पत्र में लिखी राशि के बराबर धन का साख-पत्र में उल्लेखित व्यक्ति को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान कर दे।

बंधक पत्र (Letter of Hypothecation): निर्यातकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित एक ऐसा पत्र जिसके द्वारा बैंक को यह अधिकार दिया जाता है कि यदि आयातकर्ता विनिमय पत्र स्वीकार करने अथवा सकारने से चूक जाए, तो वह माल का अपनी इच्छानुसार निपटान कर सकता है।

मालिम रसीद (Mate's Receipt): जब निर्यातकर्ता सीधे जहाज पर माल का लदान करता है, तो उसे जहाज के कप्तान अथवा मालिम द्वारा दिया गया एक प्रलेख।

पोत-परिवहन बिल (Shipping Bill) : एक ऐसा प्रलेख जिसमें माल का ब्यौरा, उस देश का नाम जहाँ से माल निर्यात हो रहा है, जहाज का नाम, तथा उस बंदरगाह का नाम जहाँ माल भेजा जा रहा है, दिखाया गया होता है।

पोत परिवहन आदेश (Shipping Order): जहाजी कम्पनी द्वारा जारी एक ऐसा प्रलेख जिसमें जहाज के कप्तान को उसमें बताए गए माल को निर्यातकर्ता से नौपरिवहन के लिए स्वीकार करने का अनुदेश दिया गया होता है।

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : *व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत*, (नई दिल्ली सुल्तान चंद एंड संस, 1988 (अध्याय 1, 2, 3 खंड आठ)

वी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय*, (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 18 खंड चार

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एल.एस.सी. जोशी : *व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंधक*, (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 14

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 1 i) सत्य, ii) असत्य, iii) सत्य, iv) असत्य, v) सत्य, vi) असत्य, vii) असत्य, viii) असत्य, ix) सत्य, x) सत्य

2 क) i) 3, ii) 3, iii) 3

ख) i) निर्यात व्यापार, ii) आयात व्यापार, iii) पुनर्निर्यात व्यापार, iv) विदेशी व्यापार

ख) 1) आयात-निर्यात नियंत्रण अधिनियम, 2) चार्टर पार्टी, 3) दोषरहित रसीद, 4) गोदी रसीद, 5) निरीक्षण एजेंसी द्वारा निरीक्षण, 6) भाड़ा दे दिया गया है

ग) 1) असत्य, 2) सत्य, 3) सत्य, 4) सत्य, 5) सत्य, 6) सत्य, 7) सत्य, 8) असत्य, 9) असत्य, 10) असत्य

12.11 स्वपरख प्रश्न

1 विदेशी व्यापार की परिभाषा दीजिए। यह देशीय व्यापार से किस प्रकार भिन्न है?

2 "विदेशी व्यापार एक देश में आर्थिक विकास का इंजन है।" भारतीय संदर्भ में इस कथन का विवेचन कीजिए तथा विदेशी व्यापार के अन्य लाभों के विषय में बताइये।

3 स्वतंत्रता के बाद भारत के विदेशी व्यापार में आमूल परिवर्तन हुआ है। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? तथ्यों द्वारा अपने विचार की पुष्टि कीजिए।

4 साख-पत्र क्या होता है? इससे विदेशी व्यापार के लिए वित्तदान में किस प्रकार सहायता मिलती है? प्रलेखी साख-पत्र के साथ पेश किए जाने वाले आवश्यक जहाजी प्रलेखों के नाम बताइये।

5 निर्यात-पोत-लदान के साथ कौन से प्रलेख भेजे जाने चाहिए? उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

6 निम्नलिखित के बीच अंतर बताइये :
 क) जहाजी बिल्टी तथा पोत-परिवहन बिल
 ख) जहाजी बिल्टी तथा चार्टर पार्टी
 ग) मालिम-रसीद तथा पोत-परिवहन आदेश

7 उन अवस्थाओं की व्याख्या कीजिए जिनसे होकर एक नि सौदे को गुज़रना पड़ता है तथा इसमें उपयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रलेखों का वर्णन व

8 विदेश से माल आयात करने की क्रियाविधि का वर्णन कीजिए?

9 माल के आयात और निर्यात के संबंध में निकासी तथा अग्रप्रेषण एजेंटों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के विषय में बताइये।

10 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये :
 क) आयात-पत्र
 ख) अदायगी पर प्रलेख सुपुर्दगी
 ग) सकारने पर प्रलेख सुपुर्दगी
 घ) मूलस्थान का प्रमाण-पत्र

नोट : ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01
व्यावसायिक संगठन

खंड

4

व्यावसायिक संयोजन

इकाई 13

व्यावसायिक संयोजन-I 5

इकाई 14

व्यावसायिक संयोजन-II 17

इकाई 15

व्यवसाय की व्यवहार्यता 38

खंड 4 व्यावसायिक संयोजन

व्यावसायिक इकाइयों की संख्या में बढ़ोत्तरी होने के कारण उत्पादकों में भारी प्रतियोगिता पैदा हुई, जिससे उनके लाभों में कमी आई। इस बात ने उन्हें यह सोचने को विवश कर दिया कि वे अवांछित प्रतियोगिता से बचें और आपसी हितों की रक्षा करें। उनमें से कई उत्पादकों ने दूसरों के साथ अनेक प्रकार से सहयोग करना आरम्भ कर दिया और कई प्रकार के व्यावसायिक संयोजनों का निर्माण किया, जिससे उन्हें एकाधिकार स्थापित करने तथा बाज़ार पर नियंत्रण रखने में सहायता मिली। इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं, जिसमें ऐसे अनेक कारणों की चर्चा की गई है, जिनके फलस्वरूप व्यावसायिक संयोजनों की स्थापना हुई। इसके साथ ही इसमें व्यावसायिक संयोजनों की लाभ-हानियों तथा ऐसे अनेक रूपों की चर्चा भी की गई है, जिनमें व्यावसायिक इकाइयाँ आमतौर पर अपने कार्यों को सम्मिलित रूप से करती हैं। इसमें व्यावसायिक प्रस्तावों की व्यवहार्यता तथा इसके अध्ययन के मूल ढाँचे पर भी विचार किया गया है।

इकाई 13 में व्यावसायिक संयोजनों के अर्थ, उन्हें स्थापित करने के कारणों तथा उनके लाभ और हानियों पर विचार किया गया है। इसमें व्यावसायिक संयोजनों द्वारा एकाधिकार पर नियंत्रण रखने के तरीकों की भी चर्चा की गयी है।

इकाई 14 में व्यावसायिक संयोजनों के विभिन्न प्रकारों व रूपों तथा उनके आपेक्षिक गुणों व सीमाओं का वर्णन किया गया है।

इकाई 15 में व्यवसाय की व्यवहार्यता के अध्ययन के महत्त्व तथा व्यवहार्यता के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की गई है।

इकाई 13 व्यवसायिक संयोजन-I

इकाई की रूप रेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 व्यावसायिक संयोजन किसे कहते हैं ?
13.3 व्यावसायिक संयोजनों के कारण
13.4 व्यावसायिक संयोजनों के परिणाम
13.4.1 व्यावसायिक संयोजनों के लाभ
13.4.2 व्यावसायिक संयोजनों के दोष
13.5 एकाधिकार का नियंत्रण
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.10 स्वपरख प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:-

- व्यावसायिक संयोजन का अर्थ बता सकेंगे
- व्यावसायिक संयोजनों के गठन का कारण बता सकेंगे
- व्यावसायिक संयोजनों के लाभ तथा दोष बता सकेंगे
- एकाधिकार के नियंत्रण के उपाय बता सकेंगे

13.1 प्रस्तावना

औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन के लिए फैक्टरी पद्धति तथा बड़े पैमाने के व्यवसायों के विकास को बढ़ावा दिया। निर्बाध प्रतियोगिता के सिद्धांत तथा बाज़ारों के विकास के मेल ने असंख्य व्यावसायिक फर्मों को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित किया। इस प्रकार प्रतियोगिता दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई। इससे उत्पादकों के लाभ में कमी आई जिससे उन्हें उन उपायों के संबंध में सोचना पड़ा जिनसे अनुचित प्रतियोगिता से बचा जा सके। यह कार्य उत्पादकों के आपसी सहयोग से ही संभव था। इसके फलस्वरूप, औद्योगिक इकाइयाँ, जिनमें से अधिकतर संयुक्त पूँजी कंपनियों (joint stock companies) के रूप में कार्य कर रही थीं, अनेक उद्देश्यों के लिए अपने प्रतियोगियों के साथ मिलकर कार्य करने लगीं। यह सहयोग कहीं तो वे अपने साधनों के सम्मिलित उपयोग के रूप में तथा कहीं कुछ बाज़ारों में कीमतों और पूर्ति को विनियमित करने के लिए करते। इस प्रकार समस्त विश्व में व्यावसायिक संयोजनों (combinations) का विकास हुआ है जिससे व्यावसायिक फर्में पारस्परिक लाभ के लिए एक साथ मिलकर कार्य करने लगी हैं। इस इकाई में हम व्यावसायिक संयोजनों के कारणों तथा लाभ के संबंध में विचार करेंगें। यहाँ इनसे होने वाली बुराइयों तथा एकाधिकार शक्ति पर नियंत्रण के उपायों के संबंध में भी चर्चा की जाएगी।

13.2 व्यावसायिक संयोजन किसे कहते हैं?

एक ही प्रकार के या विभिन्न प्रकार के व्यवसाय कार्य में लगी दो या इससे अधिक व्यावसायिक फर्में पारस्परिक लाभ के लिए एक साथ मिलकर कार्य करती हैं, तब कहा जाता है कि उन्होंने

व्यावसायिक संयोजन बना लिया है। एक साथ जुड़ने का अर्थ है संयुक्त हो जाना। अतः व्यावसायिक संयोजन की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है: **व्यावसायिक इकाइयों का ऐसा संयोजन जो सम्मिलित लक्ष्य की प्राप्ति के संबंध में मिलकर कार्य करने का निर्णय लेते हैं।** व्यावसायिक फ़र्में जिन कारणों से परस्पर सहयोग का निर्णय लेते हैं उनमें सर्वप्रमुख है प्रतियोगिता को हटाना। सामान्यतः फ़र्में एक साथ इसलिए मिल जाती है कि वे प्रतियोगिता या अन्य खतरों से अपने को बचा सकें या सम्मिलित रूप से संवृद्धि और विस्तार का मार्ग ढूंढ सकें। कुछ स्थितियों में तो वे ऐसा प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए करते हैं जो बड़े पैमाने के व्यवसायो के पास होती है।

13.3 व्यावसायिक संयोजनों के कारण (Causes of Business Combinations)

अब तक व्यावसायिक संयोजन की व्याख्या की गई है। अब हम उन कारणों के संबंध में विचार करेंगे जिनके फलस्वरूप इस प्रकार के संयोजनों का निर्माण होता है। व्यावसायिक संयोजनों के विकास को किसी एक कारण के साथ जोड़ देना सदा ही संभव नहीं होता। प्रायः इनके अनेक कारण होते हैं जिन्हें एक दूसरे से आसानीं से अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी निम्नलिखित कारकों को प्रायः प्रमुख कारण माना जाता है जिनके फलस्वरूप व्यावसायिक संयोजनों का निर्माण होता है।

1. **तीव्र प्रतिस्पर्धा:** व्यवसाय के क्षेत्र में व्याप्त प्रतियोगिता की तीव्रता और उग्रता उन प्रमुख कारणों में एक है जिनके फलस्वरूप व्यावसायिक संयोजनों का विकास हुआ है। प्रतियोगिता के अन्तर्गत खर्चीला विज्ञापन, नकली वस्तुएँ बनाना, अधिक उत्पादन, बचने योग्य परिवहन लागतें, जान-बूझकर की गई कीमत कटौतियाँ, अनुचित व्यापार प्रथाएँ (unfair trade practices) आदि आते हैं। इसका अर्थ है प्रतियोगिता करने वाली सभी व्यावसायिक इकाइयों को कम लाभ की गुंजाइश। इन स्थितियों में प्रायः वे संयोजन के लिए तैयार हो जाती हैं जिससे वे प्रतियोगिता से होने वाली क्षति से बच सकें।

2 **बड़े पैमाने की किफ़ायतें:** बड़े पैमाने की प्रतिष्ठानों को मिलने वाले लाभ फर्मों को संयोजन के लिए प्रेरित करने का दूसरा कारण है। व्यवसायों को बड़े पैमाने पर चलाने के फलस्वरूप क्रय, उत्पादन, विपणन, वित्तीय व्यवस्था आदि में किफ़ायतें होती हैं। वस्तुओं का क्रय बड़ी मात्रा में किया जा सकता है, जिससे बड़ी मात्रा में परिवहन की किफ़ायत, क्रय में अतिरिक्त छूट, बिचौलियों के कमीशन की बचत आदि जैसे लाभ होते हैं। उसी प्रकार धन जुटाने के संबंध में भी बड़े पैमाने के प्रतिष्ठानों की स्थिति अच्छी होती हैं। बड़े पैमाने पर उत्पादन करके उत्पादन लागतों को कम किया जा सकता है। वैज्ञानिक विधियों और प्रक्रियाओं का उपयोग करके उपरिव्यय (overhead expenses) बड़ी मात्रा में आवंटित हो जाता है जिससे प्रति इकाई लागत कम हो जाती है। विपणन कार्य बड़े पैमाने पर करके परिवहन, विज्ञापन, गोदाम आदि पर होने वाले खर्चों में किफ़ायतें की जा सकती हैं। प्रबंधन के क्षेत्र में भी कार्यों को बड़े पैमाने पर गठित करके बहुत किफ़ायत की जा सकती है।

3 **संयुक्त पूँजी संगठन:** कंपनी रूपी संगठन के विकास ने अनेक इकाइयों के संयोजन को आसान बना दिया है। आप जानते ही हैं कि कंपनी रूपी संगठन में स्वामित्व के अधिकार का हस्तांतरण आसानी से हो जाता है। किसी कंपनी का मालिक किसी अन्य कंपनी के शेयरों को खरीदकर उन्हें अपने नियंत्रण में और प्रबंध के अंतर्गत ला सकता है।

4 **बाज़ार पर नियंत्रण:** संयोजन इस उद्देश्य से भी किया जा सकता है कि एकाधिकार स्थापित किया जाए और अधिक लाभ कमाने के लिए बाज़ार को अपने नियंत्रण में लाया जाए। ऐसे संयोजन उन उद्योगों में किए जाते हैं जिनमें बड़े पैमाने की किफ़ायतें उपलब्ध होती हैं। बाज़ारों को अपने नियंत्रण में लाकर वे अपने उत्पादों को अधिक मुनाफ़े पर बेचकर काफी लाभ कमा सकते हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है कि बड़े पैमाने के उत्पादन की किफ़ायतों के कारण प्रति इकाई उत्पादन लागत बहुत कम हो जाती है।

5 **व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा:** व्यावसायिक संयोजन ऐसे व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा के फलस्वरूप भी बनते हैं जिनमें संगठन की योग्यता होती है। अनेक बार तो व्यावसायिक

संयोजनों के बनने के मुख्य कारण एक या अनेक व्यक्तियों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ ही होती हैं।

6 **शक्ति की लालसा:** कुछ व्यवसायियों को आर्थिक शक्ति की लालसा होती है जिसकी तुष्टि औद्योगिक गुटों (industrial combines) के निर्माण द्वारा की जा सकती है। अनेक संयोजनों की पृष्ठभूमि में औद्योगिक साम्राज्य के निर्माण की आकांक्षा ही होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी व्यक्ति की यह महत्वाकांक्षा कि वह किसी बहुत बड़े गुट का नेता हो, किसी संयोजन के निर्माण के कारकों में से एक हो सकती हैं।

6 **व्यवसाय चक्र (Business Cycles) के साथ मुकाबला:** जैसा कि आप जानते हैं व्यावसायिक फ़र्में समय-समय पर मंदी (depression) की चपेट में आ जाती हैं जिसके पश्चात् तेज़ी (boom) की स्थिति आती है। तेजी और मंदी के इस प्रकार एक के बाद दूसरे के आने की यह स्थिति प्रत्येक 6-7 वर्षों के बाद आती रहती है अत: इसे व्यवसाय चक्र कहा जाता है। व्यवसाय चक्र के फलस्वरूप संयोजनों का निर्माण कई बार होता है। उदाहरणार्थ मंदी के समय कीमतों के गिरने के कारण छोटी-छोटी फ़र्मों को नुकसान उठाना पड़ता है अत: जिन बड़ी फ़र्मों की वित्तीय स्थिति अच्छी होती है वे उन्हें अपने में मिला लेती हैं।

8 **संरक्षक टैरिफ (Protective Teriff):** अनेक देश अपने देशीय उद्योगों को संरक्षण देने की नीति अपना रहे हैं जिसके फलस्वरूप व्यावसायिक फ़र्मों का संयोजन हुआ है। उदाहरणार्थ, यदि आयात शुल्क (टैरिफ) बढ़ाया जाता है तब देशीय उत्पाद की अपेक्षा विदेशी वस्तुएँ अधिक महँगी हो जाएँगी। विदेशी प्रतियोगिता समाप्त हो जाएगी तथा घरेलू अर्थव्यवस्था (domestic economy) में नई औद्योगिक इकाइयाँ पनपेंगी और अधिक उद्योगों की स्थापना से देश के अंतर्गत प्रतियोगिता बढ़ेगी और उत्पादक संयोजन करना आवश्यक समझेंगे। इस प्रकार देशीय उद्योगों को संरक्षण देने की सरकार की नीति के परिणामस्वरूप व्यवसायों के संयोजन हो सकते हैं।

9 **सरकारी दबाव:** कुछ स्थितियों में सरकार कमज़ोर इकाइयों को इस बात के लिए मज़बूर कर सकती है कि वे साधन-सम्पन्न इकाइयों में मिल जाएँ जिससे उद्योग को कुशल और सक्षम बनाया जा सके। 1953 ई० में सरकार ने इंडियन आइरन एंड स्टील कम्पनी लिमिटेड के साथ स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल के विलय का निर्णय इसलिए लिया कि संयुक्त इकाई का संचालन कुशलतापूर्वक किया जा सके। सरकार कमज़ोर इकाइयों को अपने हाथ में लेकर कुशल-प्रबंधन के लिए उनका संयोजन कर सकती है। नेशनल टेक्सटाइल कार्पोरेशन ऑफ इंडिया की स्थापना इसलिए की गई कि कमज़ोर वस्त्र इकाइयों का कुशलतापूर्वक संचालन करने के लिए सरकार उन्हें अपने हाथ में ले सके।

10 **विविध कारण:** ऊपर जिन कारणों की चर्चा की गई है उनके अतिरिक्त भी बहुत से अन्य कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर व्यवसायी वर्ग पारस्परिक लाभ के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग करता है। वे इस प्रकार हैं:

i) **प्रबंधकीय प्रतिभा का उपयोग:** संयुक्त नियंत्रणवाली कंपनियों के बोर्डों के निदेशक प्राय: संयुक्त रूप से कार्य करने वाले होते हैं। इसे इंटरलॉकिंग ऑफ डाइरेक्टरशिप (interlocking of directoriships) कहा जाता है। इससे कम्पनियों को ऐसे व्यक्तियों से मार्गदर्शन का लाभ प्राप्त होता है जिनके पास उच्च कोटि की प्रबंधकीय प्रतिभा तथा योग्यता होती है। इसके फलस्वरूप कंपनियों की नीतियाँ एक जैसी होती हैं तथा उनके कार्यों पर नियंत्रण एक समान होता है।

ii) **वितरण का महत्व:** आधुनिक युग में वस्तुओं का वितरण उनके उत्पादन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। अत: उत्पादकों को इस बात की अधिक चिंता रहती है कि बाज़ार के कितने अंश पर उनका अधिकार हो पाया है। यदि दो या उससे अधिक उत्पादकों का बाज़ार के बहुत बड़े अंश पर संयुक्त रूप से अधिकार है तो वे एक-दूसरे के सहयोग से ऐसी नीतियाँ अपना सकते हैं जिससे बाज़ार में उनके अंश की रक्षा हो सके तथा अन्य उत्पादक बाज़ार में न आ सकें।

iii) **पेटेन्ट नियम:** कभी-कभी व्यावसायिक इकाइयाँ किन्ही फ़र्मों के साथ इसलिए मिल जाती है कि वे उनके पेटेन्ट अधिकार का लाभ उठा सकें। इस प्रकार सभी इकाइयों को

अधिकार होता है कि उस संयोजन की किसी अन्य इकाई द्वारा विकसित उत्पादन प्रक्रिया या उत्पादन डिज़ाइन का उपयोग कर सकें।

iv) **स्वायलंबन की इच्छा:** बड़ी विनिर्माण कंपनियों को कच्चे माल तथा पुर्जों के लिए प्रायः अन्य कंपनियों पर निर्भर होना पड़ता है। इन वस्तुओं की पूर्ति करने वाली कंपनी यदि विनिर्माण कंपनी के अधीन हो तब इनकी नियमित तथा सतत् रूप से पूर्ति के संबंध में उसे चिंता नहीं रहती। इस प्रकार विनिर्माण कंपनियों के स्वावलंबी होने में संयोजन सहायक होता है।

v) **युक्तीकरण (Rationlisation):** उद्योग के युक्तीकरण से अभिप्राय उन योजनाओं से होता है जिनके अंतर्गत अधिक उत्पादन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए फ़र्मों को संयुक्त रूपसे कार्य करना होता है। इसके लिए यह आवश्यक हो सकता है कि प्लांटों के आधुनिकीकरण, दुर्लभ साधनों के कुशलतापूर्वक उपयोग, उत्पादन के विनियमन (regulation) और उत्पादन के मानकीकरण आदि के संबंध में कदम उठाने पड़ें। इस प्रकार के कदम तभी उठाए जा सकते हैं जबकि एक ही वस्तु का उत्पादन करने वाली अनेक फर्में किसी संयोजन के अंतर्गत हों। वास्तव में तो संयोजन को युक्तीकरण की पूर्वशर्त (precondition) माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्योग के युक्तीकरण की संकल्पना से फ़र्मों के संयोजन को बहुत बल मिला है। उदाहरणार्थ भारत में जूट मिल्स एसोसिएशन की स्थापना इस उद्देश्य से की गई कि पटसन उद्योग को और अधिक कुशल बनाने संबंधी उपायों का प्रयोग किया जा सके।

vi) **परिवहन और संचार के क्षेत्र में विकास:** परिवहन तथा संचार के क्षेत्रों में विकास के साथ ही साथ राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में होने वाली प्रतियोगिता और भी तीव्र हो गई। इसके फलस्वरूप विभिन्न देशों में व्यावसायिक संयोजनों का निर्माण हुआ। ऐसा बहुराष्ट्रीय कंपनियों (multinational companies) द्वारा सहायक कंपनियों (subsidiary companies) की स्थापना के ज़रिये हुआ।

vii) **सरकारी नियंत्रण:** नियोजित आर्थिक विकास के लिए सरकार कभी-कभी कीमतों, वस्तुओं के वितरण, विदेश विनिमय सौदों आदि पर नियंत्रण लगा देती है। इस प्रकार के सरकारी नियंत्रण के फलस्वरूप छोटी व्यापारिक फर्में आपस में मिल जाती हैं जिससे वे प्रतिबंधों का मुकाबला कर सकें तथा आवश्यक परमिट प्राप्त कर सकें।

बोध प्रश्न क

1 व्यावसायिक संयोजन से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

....

2. व्यावसायिक संयोजनों के कारण बताइये?

....

....

....

....

3 निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है कौन सा गलत।

i) व्यावसायिक फ़र्में अपव्यय को रोकने के लिए आपस में मिल जाती हैं।

ii) विदेश प्रतियोगिता यदि न हो तो देशीय कंपनियों को आपस में मिलने की आवश्यकता नहीं होगी।

iii) व्यावसायिक संयोजन केवल संयुक्त पूँजी कंपनियों के बीच ही संभव होता है।

iv) आर्थिक मंदी के समय छोटी फ़र्मों के जिन मालिकों को नुकसान होता है वे परस्पर संरक्षण के लिए आपस में मिल जाती हैं।

v) सरकार कमज़ोर व्यावसायिक इकाइयों को अपने हाथ में लेकर कुशल-प्रबंधन के लिए उन्हें आपस में मिला सकती हैं।

vi) व्यावसायिक फर्में आपस में इसलिए मिल सकती हैं कि वे किसी एक फर्म के पेटेन्ट अधिकार का लाभ उठा सकें।

vii) महात्वाकांक्षी उद्‌यमी व्यावसायिक संयोजनों को इस उद्देश्य से बढ़ावा देते हैं कि औद्योगिक एकाधिकार स्थापित कर सकें।

viii) आर्थिक मंदी के समय जिन बड़ी फ़र्मों की वित्तीय स्थिति अच्छी होती है वे छोटी फ़र्मों को आत्मसात् कर लेती हैं।

13.4 व्यावसायिक संयोजनों के परिणाम (Consequences of Business Combinations)

अब तक हमने व्यावसायिक संयोजनों के बनने के कारणों के संबंध में विचार किया है। अब हम इन संयोजनों के परिणामों पर विचार करेंगे। यह स्पष्ट है कि इनसे अनेक प्रकार के लाभ होते हैं परंतु साथ ही साथ कुछ अवांछनीय प्रभाव भी पड़ते हैं। अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही प्रकार के प्रभावों के संबंध में हम चर्चा करेंगे।

13.4.1 व्यावसायिक संयोजनों के लाभ

संयोजन का निर्माण करने वाली इकाइयों को निश्चित रूप से लाभ होते हैं। इन लाभों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है:

1) बड़े पैमाने के कारण लाभ
2) एकाधिकार के लाभ

बड़े पैमाने के कारण लाभ

आप जानते हैं कि व्यावसायिक इकाइयाँ जब आपस में मिल जाती हैं तब संयुक्त संगठन का आकार बड़ा हो जाता है। अतः इनमें से प्रत्येक इकाई को बड़े पैमाने के संगठन को होने वाले लाभों में से कुछ की प्राप्ति होने लगती है। जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

1 **बड़ी मात्रा में उत्पादन के कारण किफ़ायतें:** व्यावसायिक संयोजनों को बड़ी मात्रा में उत्पादन के लाभ प्राप्त होते हैं। ऐसा मुख्यतः वस्तुओं की थोक खरीद, श्रम विभाजन तथा विशेषज्ञता (specialisation) के कारण होता है। प्रचालन लागतों (operating costs) में कमी की गुंजाइश होती है क्योंकि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही साथ प्रत्येक इकाई की उपरिलागतें (overhead costs) घटती जाती हैं। इससे प्लांट की पूर्ण क्षमता के उपयोग, उपोत्पादों की प्रक्रमण (processing of byproducts) के कार्य में भी सहायता मिलती है।

2 **अधिक पूँजी प्राप्ति की गुजांइश:** बड़े उद्यमों के पास अधिक पूँजी इकट्ठा करने की गुंजाइश इसलिए अधिक होती है कि इनकी परिसम्पत्तियों (assets) का मूल्य अधिक होता है तथा ऋण को चुकाने की इनकी क्षमता भी अधिक होती है।

3 **विपणन की किफ़ायतें:** संयोजनों की सभी इकाइयाँ अपनी वस्तुओं का विक्रय संयुक्त रूप से और बहुत बड़ी मात्रा में करती हैं जिससे उनका विक्रय व्यय घट जाता है। इस प्रकार विपणन कार्य में किफ़ायतें होती हैं।

4 **प्रबंध की कुशलता:** प्रशिक्षित तथा अनुभवी प्रबंधकों को नियुक्त करके प्रबंध कार्य में किफायतें की जा सकती हैं परंतु ऐसा बड़े आकार के व्यावसायिक उद्यमों में ही किया जा सकता है।

एकाधिकार के लाभ

अनेक इकाइयों को आपस में मिला देने से एकाधिकार के कुछ लाभ प्राप्त होते हैं। उत्पादन, कीमतों आदि पर नियंत्रण के लिए भद्र करार (gentlemen's agreement) के आधार पर अनौपचरिक प्रकार के संयोजन के द्वारा अल्पकालिक एकाधिकार की स्थिति लाई जा सकती है। फ़र्मों के पूर्णतः विलयन या समामेलन से दीर्घकालिक एकाधिकार की स्थिति आती है। एकाधिकार से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1 **घातक प्रतियोगिता से बचाव:** एक ही प्रकार की वस्तु से संबंधित फ़र्मों के बीच संयोजन होने से बाज़ार से प्रतियोगिता को हटाने में सहायता मिलती है। इसके फलस्वरूप विपणन लागतें बहुत घट जाती हैं।

2 **स्थिरता:** माँग में परिवर्तन के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन के लिए प्रतिस्पर्धी फ़र्मों की अपेक्षा एकाधिकारी संगठन की स्थिति अच्छी होती है। उदाहरणार्थ, यदि माँग बढ़ जाती है और उसके अनुरूप तुरंत ही पूर्ति नहीं बढ़ाई जा सकती, तब कीमतें बहुत बढ़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में यदि व्यावसायिक संयोजन नहीं है तब माँग में वृद्धि से लाभ उठाने के लिए प्रत्येक उत्पादक अपना उत्पादन बढ़ाने लगेगा। इसके फलस्वरूप अधिक उत्पादन और अत्यधिक पूर्ति की स्थिति आएगी जिससे कीमतें बहुत घट जाएँगी। कीमतों के गिरने के फलस्वरूप यदि सभी उत्पादक उत्पादन घटा देते हैं तब कीमतों में उतार-चढ़ाव होने लगता है। इसका परिणाम होगा अपर्याप्त पूर्ति और क़ीमतों में वृद्धि। परंतु यदि सभी उत्पादक व्यावसायिक संयोजन बना लेते हैं तो माँग के अनुरूप पूर्ति की जा सकेगी और बाज़ार में कीमतों को स्थिर रखा जा सकेगा।

3 **व्यवसाय चक्र की तीव्रता में कमी:** उत्पादन और पूर्ति पर एकाधिकार रखने वाले व्यावसायिक संयोजन बाज़ार की स्थितियों पर नियंत्रण रखने की स्थिति में होते हैं जिससे वे उस व्यवसाय चक्र की तीव्रता को घटा देते हैं जो अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार-चढ़ाव (cyclical fluctuation) की स्थिति लाता है।

4 **युक्तिकरण:** जैसा कि पहले की स्पष्ट किया जा चुका है कि युक्तीकरण का मुख्य उद्देश्य है प्लांटों के आधुनिकीकरण, दुर्लभ साधनों के सुनियोजित उपयोग आदि विधियों द्वारा उत्पादन क्षमता को बढ़ाना व्यावसायिक संयोजनों का आकार बड़ा होता है अतः वे युक्तिकरण के उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से कर सकती हैं।

5 **इष्टतम फ़र्म (Optimum firm):** इष्टतम फ़र्म उसे कहते हैं जो अपने आदर्श आकार तथा कारोबार के पैमाने के चलते प्रति इकाई निम्नतम लागत पर वस्तुओं का उत्पादन करती है। छोटे व्यवसाय वाली फ़र्में संयोजन के अंतर्गत आकर इष्टतम फ़र्म के सभी लाभों को पाने की स्थिति में आ जाती हैं।

6 **निपुणता का सामूहिक लाभ:** अलग-अलग फ़र्में अनुभव, प्रौद्योगिकी, कुशलता, प्रबंधकों के ज्ञान आदि की दृष्टि से विशेष प्रकार की लाभप्रद स्थिति में होती हैं। जब छोटी फ़र्में मिलकर संयोजन बना लेती हैं तब प्रत्येक फ़र्म की निपुणता का लाभ अन्य सदस्य फ़र्मों को भी मिलता है। व्यवसाय संयोजन प्रत्येक फ़र्म की निपुणता को अन्य सदस्य फर्मों को उपलब्ध कराते हैं।

7 **प्रबन्धकीय सुविधा:** व्यावसायिक संयोजनों को प्रबंध संबंधी एक और भी लाभ होता है। उदाहरणार्थ, फ़र्में यदि एक दूसरे के साथ मिलती नहीं तो किसी एक फ़र्म के लिए पहले से यह जानना कठिन होता है कि बाज़ार में उसकी प्रतियोगी फ़र्म का कितना अंश होगा। परंतु संयोजन की स्थिति में कुल माँग तथा इसमें प्रत्येक फ़र्म के अंश का अंदाज़ लगाना आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त मिले हुए आर्डर को सदस्य फ़र्मों के बीच बाँटा जा सकता है। इस प्रकार प्रत्येक फ़र्म अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुए लगातार कार्यरत रह सकती है।

13.4.2 व्यावसायिक संयोजनों के दोष

समस्त विश्व में जनता के बीच व्यावसायिक संयोजनों की आलोचना उनकी बुराइयों के कारण की जाती है। आमतौर पर जनता इन्हें एकाधिकार मानती है। सभी संयोजनों के लिए एकाधिकारी होना आवश्यक नहीं फिर भी अनेक तो इस प्रकार के हैं ही। व्यावसायिक

संयोजनों की कुछ बुराइयाँ उनके बड़े आकार के कारण होती हैं और कुछ का संबंध वस्तुओं की पूर्ति और कीमतों पर नियंत्रण रखने की उनकी शक्ति के साथ होती है। नीचे व्यावसायिक संयोजनों की बुराइयों के संबंध में विचार किया जाएगा।

1 **प्रतिबंधित प्रवेश:** जब कुछ व्यावसायिक फर्में संयोजन बना कर बाज़ार पर नियंत्रण करती हैं। तब नई फर्मों के लिए इस बाज़ार में आकर व्यवसाय करना कठिन हो जाता है। नये उद्यमी इन शक्तिशाली संयोजनों के साथ प्रतिस्पर्धा करने से डरते हैं जिसके फलस्वरूप व्यावसायिक संयोजन और भी शक्तिशाली होते जाते हैं।

2 **छोटी फ़र्मों का लोप:** कई शक्तिशाली व्यावसायिक फ़र्म ऐसे अनेक उपाय कर सकती हैं जिससे बाज़ार से छोटी फ़र्मों का लोप हो जाए और उसके हाथ में एकाधिकार शक्ति आ जाए। छोटी फ़र्मों के पास बड़े संयोजनों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की शक्ति नहीं होती। उदाहरणार्थ, वित्तीय रूप से सशक्त व्यावसायिक संयोजनें ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपनी वस्तुओं को कम कीमत पर बेच सकती हैं। इससे छोटी फ़र्मों को क्षति होगी और उन्हें अपना व्यवसाय बंद करना पड़ेगा।

3 **अक्षमता:** कीमतों को ऊँचा रखने तथा अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से व्यावसायिक संयोजन कभी-कभी जानबूझकर वस्तुओं का उत्पादन कम मात्रा में करते हैं। इससे इनका संयुक्त उत्पादन पूरी क्षमता के साथ नहीं हो पाता और बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ प्राप्त नहीं हो पाते। संयोजन की अन्य लाभकर फ़र्मों का संरक्षण पाकर कुछ अक्षम और अलाभकर फ़र्में चलती रहती हैं। प्रतिस्पर्धी बाजार में ऐसा संभव नहीं होता तथा इन फ़र्मों को बंद करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में इन अक्षम फ़र्मों को बनाए रखने के लिए उपभोक्ताओं को अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।

4 **उपभोक्ताओं का शोषण:** एकाधिकारी संयोजनों के पास बाज़ार में वस्तुओं की पूर्ति पर नियंत्रण की शक्ति होती है अतः वे इस स्थिति में होते हैं कि वस्तुओं का संग्रह करके तथा उत्पादन पर प्रतिबंध लगाकर इनकी कृत्रिम दुर्लभता की स्थिति ला सकें। जहाँ स्थानापन्न (substitutes) वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं वहाँ पर तो अनिश्चित समय के लिए ऐसा नहीं चल सकता लेकिन बाज़ार में यदि ऐसी वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध नहीं होती तब उपभोक्ताओं को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

5 **अति पूँजीकरण (over capitalisation) :** जिस एकाधिकार में व्यावसायिक इकाइयों का पूर्णतः विलयन हो जाता है उसमें अति पूँजीकरण की स्थिति हो सकती है। इसका अर्थ होता है कि संयोजन के पास अपनी अर्जन क्षमता की तुलना में पूँजी अधिक है और वह अपनी अतिरिक्त पूँजी का उपयोग लाभप्रद रूप से करने में समर्थ नहीं है। अति पूँजीकरण के कारण आय कम हो जाती है। इससे इस संयोजन को तो क्षति होती ही है परन्त शेयरहोल्डरों तथा समाज को और भी अधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

6 **व्यावसायिक जोखिम का अधिक होना:** संयोजन का आकार जितना ही बड़ा होता है उसमें पूँजी लगाने वाले व्यक्तियों को इस संयोजन के अधिकारियों की अक्षमता या बेइमानी, रिज़र्व की कमी या अन्य किसी अनपेक्षित स्थिति के कारण उठ खड़ी होने वाली समस्याओं के कारण उतनी ही अधिक क्षति सहनी पड़ती है। जोखिम का एक अन्य स्रोत होता है अल्पकालिक संयोजनों की अस्थिरता क्योंकि कुछ इकाइयों द्वारा संयोजन को छोड़ देने की स्थिति में इन्हें जबर्दस्त नुकसान उठाना पड़ता है। फिर भी संयोजनों की गतिविधियों को विनियमित करने के लिए कानून बने होते हैं जिससे उनके विस्तार तथा जनहित के खिलाफ़ उनकी एकाधिकारी शक्ति से संबंधित कार्यों पर नियंत्रण रखा जा सके। भारत में व्यावसायिक संयोजनों के विस्तार तथा प्रतिस्पर्धा पर रोक लगाने वाले उनके कार्यों का विनियमन एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार अधिनियम (Monopolies & Restrictive Trade Practices Act) के द्वारा होता है।

7 **व्यावसायिक संयोजनों के अनुचित कार्य:** एकाधिकारी शक्ति वाले बड़े व्यावसायिक संयोजन उत्पादित वस्तुओं के विक्रय और वितरण पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से प्रायः अनुचित कार्य करते हैं। व्यापारियों को बाध्य किया जा सकता है कि वे प्रतिस्पर्धी फ़र्मों की उत्पादित वस्तुओं का क्रय-विक्रय न करें। इस प्रकार प्रतिस्पर्धियों के लिए बाज़ार सीमित हो

जाता है। व्यापारियों को इस बात के लिए भी मजबूर किया जा सकता है कि आसानी से बिकने वाली वस्तुओं के साथ-साथ वे उन वस्तुओं को बेचें जिसे टाइ-अप सेल कहते हैं जो लोकप्रिय नहीं हो पाई है। बड़े व्यावसाय गृह सरकारी कर्मचारियों पर लाइसेंस, परमिट आदि के संबंध में ऐसे निर्णय लेने के बारे में प्रभाव डालते हैं जिससे उनके प्रतिस्पर्धियों को क्षति हो। व्यावसायिक संयोजनों के इस प्रकार के कार्यों से उन्हें तो अनुचित लाभ होता है परन्तु समाज को बहुत क्षति पहुँचती है।

8 **अर्थव्यवस्था में अस्थिरता पैदा होना:** व्यवसाय द्वारा अपनाई गई नीतियों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में अस्थिरता आ सकती है। उदाहरणार्थ, जिस समय कारोबार की हालत अच्छी होती है उस समय व्यावसायिक संयोजन उत्पादन की मात्रा बढ़ाकर प्रति इकाई लागत तो घटा लेते हैं परन्तु कीमतों को गिरने नहीं देते। और कारोबार में जितनी वृद्धि होती है उसके अनुसार मजदूरों की मजदूरी नहीं बढ़ने देते। इस प्रकार की नीति के फलस्वरूप कुछ समय में मंदी आ जाती है क्योंकि उत्पादन की मात्रा के अनुसार श्रमिकों की क्रय शक्ति नहीं बढ़ पाती। इसके विपरीत मंदी के समय कीमत तो नहीं घटाई जाती परन्तु कम से कम वस्तुओं को बेचकर क्षति को घटाने का प्रयास किया जाता है। इस नीति के कारण श्रमिकों की छँटनी होती है जिससे कम वस्तुओं की बिक्री हो पाती है। उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति के घटने से वस्तुओं की माँग भी कम हो जाती है। अंत में इसका अनेक प्रकार के उद्योगों पर प्रभाव पड़ता है और चारों ओर मंदी फैल जाती है।

9 **आर्थिक प्रगति पर रोक:** व्यावसायिक संयोजन अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कभी-कभी आर्थिक प्रगति में बाधा डाल देते हैं। चूंकि उनके पास एकाधिकारी शक्ति होती है अत: उनमें नई विधियों और प्रक्रियाओं को विकसित करने या नए प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए वे प्राय: सीमित पूर्ति और अधिक कीमतों का सहारा लेते हैं। कभी-कभी तो वे दूसरी फर्मों की नई प्रक्रियाओं पर केवल इस उद्देश्य से नियंत्रण प्राप्त कर लेते है कि ये फर्में बहुत समय तक कार्य न कर सकें और उद्योग की वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन न आ पाए। इस प्रकार उत्पादन की नई विधियों या नई प्रकार की उत्पादित वस्तुओं के फलस्वरूप होने वाली आर्थिक प्रगति की गति धीमी हो जाती है।

10 **आर्थिक शक्ति का संक्रेद्रण (Concentration of economic power):** व्यावसायिक इकाइयों के संयोजन के फलस्वरूप संपत्ति और आर्थिक शक्ति का संक्रेद्रण कुछ लोगों के हाथ में हो जाता है। संपत्ति और आय के वितरण में इस प्रकार की असमानता के कारण अधिकांश जनता, जो गरीब बनी रहती है, को अपना जीवन स्तर सुधारने का अवसर नहीं मिल पाता। आर्थिक शक्ति के संक्रेद्रण के फलस्वरूप बड़े-बड़े व्यवसायों के मालिक राजनितिक शक्ति पर भी नियंत्रण कर लेते हैं। सरकारी नीतियों को बनाते समय आम जनता की अपेक्षा धनवान लोगों के हित को अधिक ध्यान में रखा जाता है।

11 **एकाधिकार से होने वाली हानि (Diseconomies of monopoly):** बड़े पैमाने पर संचालन के आर्थिक लाभ तथा पूर्ति और कीमतों पर नियंत्रण के लाभ के फलस्वरूप एकाधिकारी संगठन का आकार तो बढ़ सकता है परन्तु इस बढ़े हुए आकार का कुशलतापूर्वक संचालन का काम कभी-कभी प्रबंधकों की क्षमता के बाहर हो जाता हैं। बहुत बड़ा आकार हो जाने के कारण संगठन के अपरिवर्तनशील हो जाने का भी खतरा बना रहता है। अत: एकाधिकार के लिए संभव नहीं हो पाता कि वह बदलती हुई स्थितियों के अनुसार अपने संचालन कार्यों में भी परिवर्तन लाए। विभिन्न फ़र्मों के संयोग से बने एकाधिकार के साथ लाल फीताशाही (red-tapism) की भी समस्या बनी रहती है, अर्थात् कागज़ी कार्रवाई की अधिकता होने के कारण नीति निर्धारण का कार्य धीमा पड़ जाता है।

13.5 एकाधिकार का नियंत्रण (Control of Monopoly)

ऊपर हमने देखा है कि एकाधिकारी संयोजनों के कारण संपत्ति और आय के वितरण में असमानता आती है तथा आर्थिक और राजनितिक शक्तियों का संकेंद्रण होता है। ऐसा होना सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अवांछनीय होता है, विशेषत: विकासोन्मुख देशों में इस प्रकार राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग जनसंख्या के एक छोटे से भाग की आवश्यकताओं की पूर्ति के

लिए होता है जबकि देश की अधिकांश जनता आय की कमी और गरीबी का शिकार बनी रहती है। अतः आवश्यक हो जाता है कि एकाधिकार और व्यावसायिक संयोजनों की वृद्धि को रोकने से संबंधित कदम उठाए जाएँ। यहाँ व्यावसायिक संयोजनों की वृद्धि पर नियंत्रण संबंधी किए गए कुछ उपायों के बारे में चर्चा की गई है।

1 **एकाधिकार-विरोधी कानूनः** व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में एकाधिकार पर निषेध और प्रतिबंध के लिए अनेक देशों में कानून बनाए गए हैं। इसी उद्देश्य से भारत में सन् 1969 में एकाधिकार और प्रतिबधित व्यापार अधिनियम बनाया गया। इसकी व्यवस्थाओं के अंतर्गत बड़े औद्योगिक उद्यमों के लिए आवश्यक है कि अपने कारोबार के विस्तार के लिए वर्तमान प्लांटों में या नए प्लांटों की स्थापना में अतिरिक्त पूँजी लगाने से पहले वे सरकार से अनुमति लें। प्रतिस्पर्धा को रोकने वाली व्यापार प्रथाएँ तथा गुमराह करने वाले विज्ञापनों जैसी अनुचित व्यापार प्रथाएँ इस अधिनियम के अधीन सरकार द्वारा विनियमित होती हैं।

2 **उचित प्रतिस्पर्धा को बनाए रखनाः** व्यावसायिक संयोजनों या एकाधिकारों पर नियंत्रण के लिए एकाधिकार विरोधी कानून ही काफी नहीं होते। अतः ऐसे भी उपाय करने होते हैं जिससे उचित प्रतिस्पर्धा बनी रहे तथा व्यापार की अनुचित विधियों पर रोक लगे। लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकारी सहायता तथा सरकार द्वारा उचित दर की दुकानों की स्थापना ऐसे उपायों के कुछ उदाहरण हैं।

3 **क्रेताओं के संघः** प्रायः सुझाव दिया जाता है कि क्रेताओं के संघ बनाए जाएँ जिससे एकाधिकारी शक्तियों की बुराइयों और उनके शोषण से क्रेताओं के हितों की रक्षा की जा सके। परन्तु इस सुझाव को व्यावहारिक रूप देना कठिन कार्य है क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए उपभोक्ताओं के बीच एकता स्थापित करना और शक्तिशाली व्यवसाय गृहों के विरोध में उनका संघ बनाना दुष्कर कार्य है।

4 **एकाधिकारियों के अवांछनीय कार्यों का प्रचारः** बहुत से लोग यह भी सुझाव देते हैं कि एकाधिकारियों के अनुचित कार्यों का प्रचार किया जाए, जिससे जनता जागरूक बनी रहे। यह उपाय अपने आप में तो पर्याप्त नहीं है फिर भी हानिकर प्रथाओं पर नियंत्रण रखने में इससे बहुत कुछ मदद मिल सकती है।

5 **कर और आर्थिक सहायताः** एकाधिकारी संगठनों द्वारा ली जाने वाली कीमतों पर नियंत्रण के लिए कर और आर्थिक सहायता प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। सरकार को चाहिए कि वह प्रतिस्पर्धी कीमत के बराबर ही बाज़ार की अधिकतम कीमत निश्चित कर दे तथा एकाधिकारी संगठनों को आर्थिक सहायता दे, जिससे वे एकाधिकारी और अधिकतम कीमतों के बीच के अंतर से होने वाली अपनी क्षति की पूर्ति कर सकें। फिर इन सभी संगठनों पर सामान्य कर लगाकर आर्थिक सहायता की राशि को वापस लिया जा सकता है। इन संगठनों के साथ यह शर्त जोड़ दी जाए कि यदि उन्हें उत्पादन करते रहना है तो इस प्रकार का कर देना होगा।

6 **एकाधिकार की जड़ पर प्रहारः** ऊपर सुझाए गए उपायों का उपयोग सभी समयों में और सभी स्थानों पर एक समान नहीं किया जा सकता। यदि उपयोग किया भी जाता है तो वे व्यावसायिक संयोजनों की बुराइयों पर नियंत्रण रखने में सफल हो भी सकते हैं या नहीं भी। अतः ऐसी स्थितियों को लाना आवश्यक है जो प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन दें। जहां भी आवश्यक हो वहाँ वस्तुओं के गुणवत्ता मानक (quality standards) निर्धारित होने चाहिए। उपभोक्ताओं को शिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने अधिकारों के प्रति सजग रहें और भ्रष्टाचार के खिलाफ कानूनी कार्यवाही कर सकें।

बोध प्रश्न ख

1 व्यावसायिक संयोजनों के लाभ बताइये।

....

....

....

....

2 व्यावसायिक संयोजनों की बुराइयाँ बताइये।

....

....

....

3 निम्नलिखित में कौन से कथन सही हैं और कोन से गलत?

i) किसी निश्चित सीमा के बाद एकाधिकारी संगठन का आकार इतना बड़ा हो जाता है कि उसके प्रबंधक उसे कुशलतापूर्वक नहीं चला सकते।

ii) व्यावसायिक संयोजनों को बहुत बड़ी मात्रा में लाभ होने का एक मात्र कारण यह होता है कि उनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं होता।

iii) अनेक फ़र्मों के संयुक्त व्यवसाय को आसानी से बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी उधार में मिल सकती है।

iv) व्यावसायिक संयोजन एकाधिकार शक्ति को जन्म देते हैं।

v) बाज़ार में कोई प्रतिस्पर्धी न होने से एकाधिकार संगठनों को विज्ञापन पर बड़ी राशि नहीं लगानी पड़ती।

vi) अपनी वित्तीय कमज़ोरी के कारण छोटी फ़र्में व्यावसायिक संयोजनों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकतीं।

vii) आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण के कारण आय-वितरण में असमानता आती है।

viii) व्यावसायिक संयोजन माँग में परिवर्तन के अनुसार पूर्ति में भी आसानी से परिवर्तन कर सकता है।

4 खाली स्थानों को भरिये।

i) अति पूँजीकरण का परिणाम होता है ....

ii) भारत में एकाधिकारी संगठनों के विस्तार पर नियंत्रण .... अधिनियम की व्यवस्थाओं के अंतर्गत होता है।

iii) कीमत कटौती उन उपायों में से एक है जिसका उपयोग व्यावसायिक .... को बाज़ार से निकालने के लिए करते हैं।

13.6 सारांश

बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण के फलस्वरूप तीव्र प्रतियोगिता तथा संयुक्त स्टॉक कंपनी के रूप में संगठन आदि का विकास हुआ। इनके कारण एक ओर तो भाँति-भाँति के अवसर मिले और दूसरी ओर इनसे व्यावसायिक संगठनों के अस्तित्व और उनकी संवृद्धि को खतरा हो गया। इन समस्याओं के समाधान के उपाय के रूप में व्यावसायिक संयोजनों का जन्म हुआ।

एक ही प्रकार के या विभिन्न प्रकार के व्यवसाय कार्य में लगी दो या उससे अधिक फ़र्में पारस्परिक लाभ के लिए जब कभी एक साथ मिल जाती हैं तब कहा जाता है कि उन्होंने व्यावसायिक संयोजन बना लिया है। जिन विशेष कारणों से व्यावसायिक संयोजन बनते हैं वे हैं तीव्र प्रतियोगिता, बड़े पैमाने पर संचालन के सुलाभ, संयुक्त स्टाक कंपनी के रूप में संगठन, बाजार पर नियंत्रण, व्यक्तिगत योग्यता, शक्ति की लालसा, व्यवसाय चक्र, संरक्षण टैरिफ, प्रबंधकीय प्रतिभा की कमी, पेटेन्ट नियम, स्वावलंबन की इच्छा, युक्तीकरण, परिवहन तथा संचार में विकास, आदि।

व्यावसायिक संयोजनों के परिणाम अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही प्रकार के होते हैं। अनुकूल परिणाम एक ओर तो इनके बड़े आकार से होने वाले लाभ के कारण और दूसरी ओर इनकी एकाधिकारी शक्ति के फलस्वरूप होते हैं। बड़े आकार के विशिष्ट लाभ हैं – उत्पादन में किफ़ायतें, अधिक पूँजी की प्राप्ति, थोक खरीद, विपणन और प्रबंध में किफ़ायतें। एकाधिकारी शक्ति से होने वाले लाभ हैं – घातक प्रतियोगिता से बचाव, स्थायित्व, व्यवसाय चक्र की

तीव्रता में कमी, युक्तीकरण, निपुणता का सामूहिक लाभ तथा आशावादिता/व्यावसायिक संयोजन की बुराइयाँ हैं – अदक्षता, छोटी व्यावसायिक इकाइयों पर रोक, प्रतिबंधित प्रवेश, उपभोक्ताओं के खिलाफ़ षडयन्त्र, अति पूँजीकरण, अनुचित कार्य, आर्थिक प्रगति पर रोक तथा आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण।

व्यावसायिक संयोजनों की उपर्युक्त बुराइयों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि इन संयोजनों के एकाधिकारी स्वरूप का निम्नलिखित उपायों द्वारा नियंत्रण और विनियमन किया जाए। ये उपाय हैं: एकाधिकार विरोधी कानून बनाना, उचित प्रतिस्पर्धा को बनाए रखना क्रेताओं और उपभोक्ताओं के संघ बनाना, अवांछनीय कार्यों का प्रचार करना, एकाधिकारों के खिलाफ राजकोषीय उपाय करना तथा उपभोक्ताओं और जनता को शिक्षित करना।

13.7 शब्दावली

व्यावसायिक संयोजन (Business Combination): व्यावसायिक इकाइयों का पारस्परिक लाभ के लिए इस उद्देश्य से आपस में मिल जाना कि उन्हें बड़े पैमाने के सुलाभ या एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो सके।

व्यवसाय चक्र (Business Cycle): उत्पादन, रोज़गार, आय, कीमतों आदि में उतार-चढ़ाव। इसकी विशेषता नियमित रूप से उपर्युक्त का नीचे-ऊपर होते रहना है, जिसे आमतौर पर तेजी और मंदी की संज्ञा दी जाती है।

औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution): स्टीम पावर के प्रयोग के फलस्वरूप बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों का प्रादुर्भाव। इस प्रक्रिया का प्रारंभ ग्रेट ब्रिटेन में 19वीं सदी के मध्य में हुआ।।

एकाधिकार (Monopoly): पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण की स्थिति, जिसके फलस्वरूप कीमत पर भी नियंत्रण रहता है।

इंटरलॉकिंग ऑफ डाइरेक्टरशिप (Interlocking of Directorship): व्यवसायियों का एक वर्ग जो कई कम्पनियों के डाइरेक्टर होते हैं।

इष्टतम फ़र्म (Optimum firm): किसी फ़र्म के संतुलन में होने की स्थिति, जब उसे न्यूनतम लागत और अधिकतम आय होती है।

अति पूँजीकरण (over capitalisation): किसी उद्यम द्वारा पूँजी निवेश की वह स्थिति जब निवेश की मात्रा के अनुपात में आय कम होती है।

पेटेन्ट नियम (Patent Laws): वह कानून जिसके अधीन किसी तकनीक या विधि के आविष्कर्ता का उस पर पूर्ण कानूनी अधिकार होता है। ऐसा इसलिए कि आविष्कर्ता इसका व्यापारिक उपयोग कर सके।

संरक्षण टैरिफ (Protective Tariffs): देशीय उद्योगों को संरक्षण या प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात पर लगाए गए शुल्क।

औचित्य स्थापन (Rationalisation): आगत-निर्गत (input-output) क्रिया को इष्टतम करने के उद्देश्य से व्यवसाय के प्रत्येक कार्य में विवेक और तर्क का उपयोग।

आर्थिक सहायता (Subsidies): उत्पादकों को सरकार द्वारा दी गई वित्तीय सहायता जिससे वे अपनी क्षति की आंशिक या पूर्णतः पूर्ति कर सकें।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत,** (नई दिल्ली सुल्तान चंद एंड संस, 1988), अध्याय 2 खंड तीन

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एवं एस.सी. जोशी, **व्यावसायिक संगठन,** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1985) अध्याय 14

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3	i) सही	ii) गलत	iii) गलत	v) गलत
	v) सही	vi) सही	vii) सही	viii) सही
ख 3	i) सही	ii) गलत	iii) सही	iv) सही
	v) गलत	vi) सही	vii) सही	viii) सही
4	i) कम आय	ii) एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार	iii) छोटी फर्में	

13.10 स्वपरख प्रश्न

1 किन स्थितियों में व्यावसायिक संयोजनों का निर्माण होता है? स्पष्ट कीजिए।

2 व्यावसायिक संयोजनों की अच्छाइयों और बुराइयों के संबंध में चर्चा कीजिए।

3 व्यावसायिक संयोजनों की क्या बुराइयाँ हैं? उनके निवारण के संबंध में सुझाव दीजिए।

4 "एकाधिकार को लाकर व्यावसायिक संयोजन, उपभोक्ताओं के हितों को क्षति पहुँचाते हैं।" "वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन लागतों को कम करके व्यावसायिक संयोजन उपभोक्ताओं को उनका विक्रय कम कीमत पर करते हैं।" इन दो वक्तव्यों के बीच सामंजस्य स्थापित कीजिए।

5 बड़े पैमाने के उत्पादन के सुलाभ और एकाधिकारी नियंत्रण के सुलाभ के बीच अंतर बताइये।

नोटः ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इनका उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

इकाई 14 व्यावसायिक संयोजन-II

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 व्यावसायिक संयोजनों के प्रकार
  14.2.1 समस्तर संयोजन
  14.2.2 ऊर्ध्वस्तर संयोजन
  14.2.3 पार्श्विक संयोजन
  14.2.4 विकर्णी संयोजन
  14.2.5 वर्तुल संयोजन
14.3 संयोजनों के स्वरूप
  14.3.1 संघ
  14.3.2 परिसंघ
  14.3.3 समेकन
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.8 स्वपरख प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप :

- विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संयोजनों का अर्थ बता पाएंगे
- विभिन्न प्रकार के संयोजनों के प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे
- विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संयोजनों के बीच अंतर बता सकेंगे
- प्रत्येक प्रकार के संयोजन के सापेक्ष लाभों और दोषों का वर्णन कर सकेंगे

14.1 प्रस्तावना

इकाई 13 हमें व्यावसायिक संयोजन के अर्थ, संयोजनों के बनने के कारणों, इनके अनुकूल तथा प्रतिकूल परिणामों और संयोजनों की एकाधिकारी शक्तियों पर नियंत्रण के उपायों के संबंध में चर्चा कर चुके हैं। इस इकाई में व्यावसायिक संयोजनों के विभिन्न प्रकारों, स्वरूपों और उनके सापेक्ष गुणों और दोषों के संबंध में चर्चा की जाएगी।

14.2 व्यावसायिक संयोजनों के प्रकार (Types of Business Combinations)

व्यावसायिक संयोजनों का वर्गीकरण पाँच श्रेणियों में किया जा सकता है: (1) समस्तर संयोजन, (2) ऊर्ध्वस्तर संयोजन, (3) पार्श्विक संयोजन, (4) विकर्णी संयोजन और (5) वर्तुल संयोजन। परंतु इनमें से दो या तीन प्रकारों की विशेषताएं कभी-कभी कुछ अर्थों मे मिली-जुली होती हैं। अब हम इन पाँच प्रकार के संयोजनों के संबंध में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

14.2.1 समस्तर संयोजन (Horizontal Combinations)

इस प्रकार के संयोजन उन इकाइयों के एकीकरण के फलस्वरूप होता है जिनमें एक ही प्रकार के प्रबंध और नियंत्रण के अंतर्गत एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन होता है या जो एक जैसे

व्यावसायिक कार्य में लगी होती हैं। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि एक ही स्तर पर प्रतिस्पर्धा, एक ही प्रकार का व्यापार या एक ही क्षेत्र में व्यवसाय करने वाली व्यावसायिक इकाइयाँ किसी सम्मिलित उद्देश्य से परस्पर मिलती हैं। इस प्रकार का संयोजन बनाने वाली इकाइयाँ इस बात पर सहमत हो जाती हैं कि वे उत्पादन, विक्रय, कीमतों आदि के संबंध में संयुक्त नीति अपनाएँगी तथा कुछ विशेष क्षेत्रों या मामलों में वे आपस में प्रतिस्पर्धा नहीं करेंगी। उदाहरणार्थ सीमेंट बनाने वाली दो या उससे अधिक फैक्टरियाँ प्रतिस्पर्धा को हटाने के या पूर्ति पर नियन्त्रण करने के सम्मिलित उद्देश्य से आपस में मिल सकती हैं। समस्तर संयोजन के उदाहरण के लिए चित्र 14.1 देखें।

चित्र 14.1

समस्तर संयोजन

सीमेंट फैक्टरी क	सीमेंट फैक्टरी ख	सीमेंट फैक्टरी ग	सीमेंट फैक्टरी घ	→ बाजार

भारत में समस्तर संयोजन के कुछ उदाहरण हैं: इंडियन पेपर मेकर्स एसोसिएशन, इंडियन जूट मिल्स एसोशिएसन, सीमेंट कम्पनीज (ए.सी.सी.)

लाभ

समस्तर संयोजन के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

1 **अनुचित प्रतिस्पर्धा को दूर करता है**: यह उद्योग में फ़र्मों के बीच की व्यर्थ प्रतिस्पर्धा को दूर करता है।

2 **बड़े पैमाने की किफायतें**: बड़े पैमाने के उत्पादन और वितरण से होने वाली किफायतों में यह सहायक होता है।

3 **पूर्ति पर नियंत्रण**: उत्पादित वस्तुओं की पूर्ति और उनकी कीमत को नियंत्रित करने में यह सयोजित व्यवसाय की सहायता करता है।

दोष

समस्तर संयोजन में निम्नलिखित दोष हो सकते हैं:

1 **एकाधिकार लाना है**: इसके फलस्वरूप एकाधिकार की स्थिति आती है जो ग्राहकों के लिए हानिकारक है।

2 **ग्राहकों का शोषण**: उत्पादन पर प्रतिबंध लग सकता है तथा अधिक कीमतों के द्वारा ग्राहक का शोषण हो सकता है।

3 **आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण**: इससे आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण होता है जो समाज के लिए हानिकारक है।

14.2.2 ऊर्ध्वस्तर संयोजन (Vertical Combinations)

किसी उद्योग में उत्पादन या वितरण संबंधी आनुक्रमिक कार्यों में लगी अनेक इकाइयाँ जब आपस में मिल जाती हैं तब उसे "ऊर्ध्वस्तर संयोजन" कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी अंतिम उत्पाद से संबंधित अनेक स्वतंत्र प्रक्रिया वाली इकाइयों का एक ही प्रतिष्ठान के अंतर्गत संयोजन हो जाता है। यह ऊर्ध्वस्तर एकीकरण किसी एक ही उद्योग के क्रमिक कार्यों में लगी फ़र्मों का संयोजन होता है। अतः इस प्रकार का संयोजन केवल उसी उद्योग मे किया जा सकता है जहाँ पर वस्तुएँ अनेक स्पष्ट प्रक्रियाओं से होकर गुजरती हैं। इस प्रकार गन्ना उपजाने, उसे पेरने और चीनी बनाने के कार्य में लगी फ़र्में एक साथ मिलकर ऊर्ध्वस्तर संयोजन का निर्माण कर सकती हैं। सूती वस्त्र उद्योग में सूत कातने, कपड़ा बुनने, विरंजन (ब्लीचिंग) तथा फिनिश करने संबंधी क्रमिक कार्य में लगी इकाइयों का संयोजन करके एकीकृत वस्त्र मिल (integrated textile mill) की स्थापना की जा सकती है। ऊर्ध्वस्तर एकीकरण के उदाहरण के लिए चित्र 14.2 देखें।

चित्र 14.2
ऊर्ध्वस्तर एकीकरण

क गन्ने की खेती का फार्म
ख गन्ना पेरने वाले प्लांट
ग चीनी बनाने वाले प्लांट
घ मिठाइयाँ बनाने वाले प्लांट

बाजार

ऊर्ध्वस्तर संयोजन के फलस्वरूप, जिसे ऊर्ध्वस्तर एकीकरण (vertical integration) भी कहा जाता है। व्यावसायिक कार्यों का पश्चगामी (backward) या अग्रगामी (forward) एकीकरण हो सकता है। जब कोई उत्पादन इकाई कच्चे माल या पुर्जों का उत्पादन करने वाली अन्य इकाइयों के साथ मिल जाती है तब इसे पश्चगामी एकीकरण कहा जाता है। पश्चगामी एकीकरण के कुछ उदाहरण हैं, बुनाई मिल के साथ कताई मिल का संयोजन या कोयला खनन कम्पनी के साथ इस्पात प्लांट का संयोजन। इस प्रकार पश्चगामी ऊर्ध्वस्तर संयोजन का मूल उद्देश्य होता है कच्चे माल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का सतत् और नियमित रूप से प्राप्त करना। इसके विपरीत यदि कोई उत्पादन इकाई किसी फुटकर वितरण इकाई को अपने अधीन ले लेती है या कोई कताई मिल किसी बुनाई मिल को अपने अधीन कर लेती है तब इसे अग्रगामी ऊर्ध्वस्तर एकीकरण कहा जाता है। अग्रगामी ऊर्ध्वस्तर एकीकरण का मूल उद्देश्य होता है उत्पादित माल के लिए स्थिर बाज़ार का निर्माण करना। **निम्नलिखित विशेषताओं वाले उद्योगों के लिए ऊर्ध्वस्तर एकीकरण उपयुक्त होता है:**

1 जहाँ एक फ़र्म का तैयार माल दूसरी फ़र्म के लिए कच्चा माल होता है।

2 जहाँ एक फ़र्म की प्रक्रिया दूसरी फ़र्म के लिए पूरक होती है।

3 जहाँ संतुलित उत्पादन महत्वपूर्ण होता है, जैसे कपड़े की कताई और बुनाई।

4 जहाँ पर तैयार माल के गुणवत्ता मानक (quality standard) को बनाए रखने के लिए कच्चे माल पर नियंत्रण रखना आवश्यक होता है जैसा कि चीनी उद्योग में होता है।

लाभ

ऊर्ध्वस्तर एकीकरण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

1 **दूसरों पर निर्भरता को घटाना:** इससे दूसरों पर निर्भरता कम होती है और स्वावलंबी होने में सहायता मिलती है।

2 **बिचौलियों के लाभ को खत्म करना:** यह बिचौलियों के लाभ को खत्म करता है जिससे उत्पादन लागत घटती है।

3 **सुस्थिर उत्पादन:** कच्चे माल की नियमित रूप से पूर्ति और व्यवस्थित रूप से विक्रय के फलस्वरूप उत्पादन कार्य सुस्थिर ढंग से चलता रहता है।

4 **लागतों की किफ़ायतें:** वस्तुओं के भंडारण, परिवहन तथा उतारने-चढ़ाने के संबंध में किफ़ायतें होती हैं।

दोष

ऊर्ध्वस्तर एकीकरण के निम्नलिखित दोष हैं:

1 **प्रतिस्पर्धा को दूर न कर पाना:** यह प्रतिस्पर्धा को दूर नहीं कर पाता, जिसे समस्तर एकीकरण कर पाता है।

2 **अनियंत्रणीय आकार:** व्यवसाय का आकार इतना अधिक बढ़ सकता है कि उसे कुशलता पूर्वक चलाया न जा सके।

3 **परस्पर निर्भरता की जटिलताएं:** चूंकि विभिन्न उत्पादन या इकाइयाँ एक दूसरे पर निर्भर होती हैं अतः किसी एक इकाई में थोड़ी सी भी गडबड़ी होने से समस्त उत्पादन प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है।

4 **आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण:** इससे आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण होता है।

14.2.3 पार्श्विक संयोजन (Lateral Combinations)

पार्श्विक संयोजन से अभिप्राय ऐसी फ़र्मों के संयोजन से होता है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन या व्यापार कार्य तो करती हैं लेकिन किसी न किसी रूप में वे एक दूसरे से सम्बद्ध होती हैं। दूसरे शब्दों में ऐसी इकाइयों के एकीकरण को पार्श्विक संयोजन कहा जाता है जो विभिन्न प्रकार की उन वस्तुओं का उत्पादन या व्यापार कार्य करती हैं जो किसी न किसी रूप में किसी विशेष प्रकार की वस्तु के उत्पादन या किसी विशेष प्रकार की वस्तु या सेवा की पूर्ति से संबंधित होती है। पार्श्विक संयोजन को पार्श्विक एकीकरण भी कहा जाता है। यह संयोजन इन दो में से किसी एक प्रकार का हो सकता है: (1) अभिसारी पार्श्विक संयोजन (Convergent lateral combination) और (2) अपसारी पार्श्विक संयोजन (divergent (Divergent lateral combination) ।

अभिसारी पार्श्विक संयोजन: जब विभिन्न फर्में, जो ऐसे वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, जो किसी अंतिम उत्पाद का सहबद्ध घटक (allied component) या कच्चा माल होती है, आपस में मिल कर संयोजन बना लेती है तब उस संयोजन को अभिसारी पार्श्विक संयोजन कहा जाता है। इस प्रकार के एकीकरण की स्थिति में आपस में मिलने वाली इकाइयों द्वारा उत्पादित अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्रमुख इकाई का कच्चा माल बन जाती हैं। उदाहरणार्थ ईंट निर्माता, पत्थर व्यापारी, सीमेंट निर्माता और इमारती लकड़ी के व्यापारी जब किसी निर्माण कंपनी के साथ जुड़ जाते हैं तब उसे अभिसारी पार्श्विक संयोजन कहा जाता है। इसका दूसरा उदाहरण है स्याही, कागज़, टाइप, कार्ड बोर्ड, मुद्रण मशीनें आदि को बनाने वाली इकाइयों के साथ किसी मुद्रणालय का एकीकरण। अभिसारी पार्श्विक संयोजन के उदाहरण के लिए चित्र 14.3 देखिए।

चित्र 14.3
अभिसारी पार्श्विक संयोजन

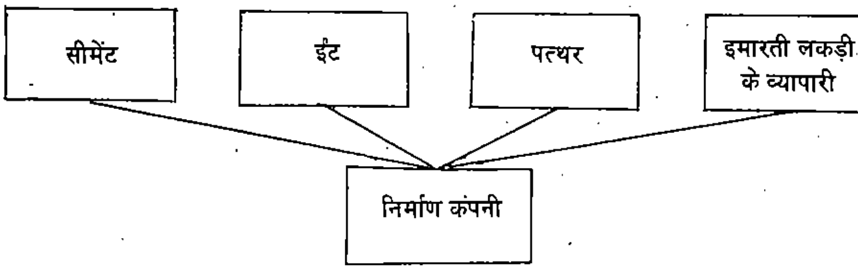

अभिसारी पार्श्विक संयोजन का मुख्य उद्देश्य होता है कि सतत् रूप से कच्चे माल को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना। इससे विभिन्न इकाइयों के केंद्रीय नियंत्रण से होने वाले लाभ भी हो सकते हैं।

अपसारी पार्श्विक संयोजन: अपसारी पर्श्विक संयोजन का अर्थ है किसी कच्चे माल के पूर्तिकर्ता का उस माल के विभिन्न उपभोक्ताओं के साथ संयोजित हो जाना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन, लेकिन एक ही प्रकार के कच्चे माल का उपयोग करने वाली अनेक इकाइयाँ जब इस कच्चे माल का उत्पादन करने वाली इकाई के साथ मिल जाती हैं तब उसे अपसारी पार्श्विक संयोजन कहा जाता है। इस प्रकार के संयोजन के फलस्वरूप एक इकाई द्वारा उत्पादित कच्चा माल संयोजित होन वाली अनेक इकाइयों के लिए कच्चा माल बन जाता है इस प्रकार के संयोजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने की किफ़ायतें प्राप्त होती हैं क्योंकि एक ही इकाई अनेक इकाइयों के लिए कच्चा माल बनाती है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी आटा मिल का संयोजन बेकरी, मिठाई की दुकान तथा होटल के साथ हो जाता है तब इसे अपसारी पार्श्विक संयोजन कहा जाता है। जूते, सूट केस, हैंड बैग, फैन्सी

वस्तुएँ आदि बनाने वाली इकाइयों के साथ चर्म प्रक्रमण (leather processing) इकाई का संयोजन इसका दूसरा उदाहरण है। अपसारी पार्श्विक संयोजन के उदाहरण के लिए चित्र 14.4 देखें।

चित्र 14.4
अपसारी पार्श्विक संयोजन

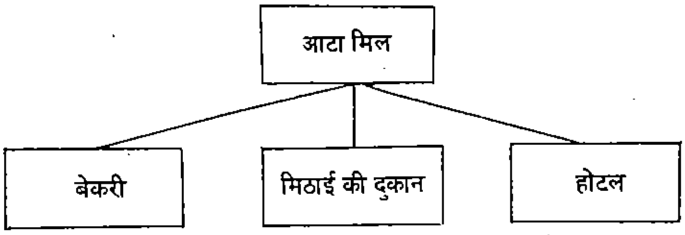

14.2.4 विकर्णी संयोजन (Diagonal Combinations)

किसी क्रिया या प्रक्रिया के मुख्य क्षेत्र में कार्यरत किसी फ़र्म का उन इकाइयों के साथ एकीकरण जो आवश्यक अनुषंगी (auxiliary) क्रियाएँ या सेवाएँ करती हैं। इस पकार विकर्णी संयोजन की स्थिति में मुख्य इकाई का संयोजन उन इकाइयों के साथ होता है जो कुछ ऐसी अनुषंगी वस्तुओं या सेवाओं की पूर्ति करती हैं जो मुख्य इकाई की सुचारू और निर्विघ्न रूप से चलाने के लिए आवश्यक होती हैं। इस प्रकार मुख्य इकाई के लिए आवश्यक वस्तुएँ तथा सेवाएँ उस संगठन के अंतर्गत ही उपलब्ध हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, मोटर गाड़ी बनाने वाली किसी कंपनी का कार की सीटें, स्टीयरिंग, टायर, पावर जेनरेशन आदि बनाने वाली अन्य इकाइयों के साथ एकीकरण। विकर्णी एकीकरण का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि मुख्य इकाई के अविराम प्रचालन के लिए आवश्यक अनुषंगी सेवाओं को सुचारू रूप से और समय पर उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार मुख्य इकाई स्वावलंबी भी हो सकती है और उसे अनुषंगी सेवाओं के लिए बाहरी स्रोतों पर निर्भर नहीं होना पड़ता।

14.2.5 वर्तुल संयोजन (Circular Combinations)

जब ऐसी इकाइयों का एकीकरण होता है जिनके बीच उनके उत्पादन और विक्रय के बारे में दूर का संबंध होता है, तब उसे वर्तुल एकीकरण कहा जाता है। दूर का संबंध उन उत्पादों के बीच हो सकता है जिनकी उत्पादन प्रक्रिया एक जैसी होती है या जो एक समान विपणन या व्यापार माध्यमों का प्रयोग करते हैं। वर्तुल संयोजनों का निर्माण महत्वाकांक्षी तथा उद्यमी व्यवसायी इस उद्देश्य से करते हैं कि वे बड़े-बड़े औद्योगिक साम्राज्यों का निर्माण कर सकें। टाटा, बिरला और डी.सी.एम. जैसे व्यवसाय गृह इसके कुछ उदाहरण हैं। उदाहरणार्थ, डी.सी.एम. समूह वस्त्र, रसायन, उर्वरक, चीनी, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं आदि का उत्पादन करने वाली अनेक इकाइयों का नियंत्रण करता है।

नीचे प्रस्तुत चित्र 14.5 में व्यावसायिक संयाजनों के विभिन्न प्रकार संक्षेप में दिए गए हैं।

चित्र 14.5
व्यावसायिक संयोजनों के प्रकार

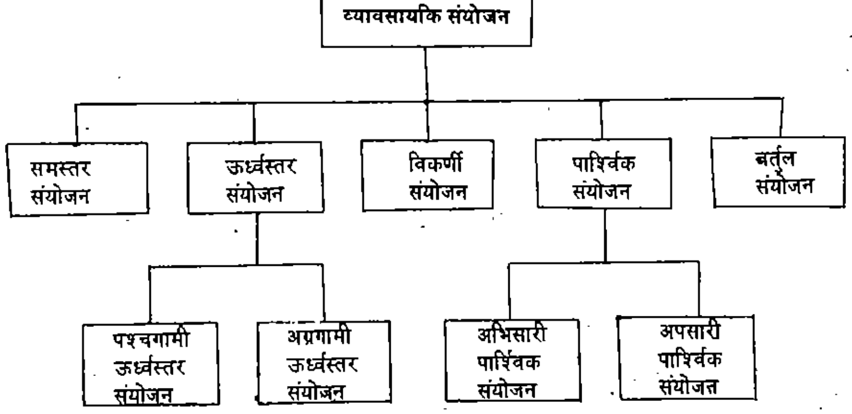

बोध प्रश्न क

1 व्यावसायिक संयोजन क्या है?

....

....

....

2 व्यावसायिक संयोजनों के कौन-कौन से विभिन्न प्रकार होते हैं?

....

....

....

....

....

3 कॉलम "क" में दिए गए विषयों को कॉलम "ख" से मिलाइए

कॉलम "क"	कॉलम "ख"
i) ऊर्ध्वस्तर संयोजन	क) इस्पात का उत्पादन करने वाली फ़र्मों का संयोजन।
ii) अभिसारी पार्श्विक संयोजन	ख) कताई और बुनाई मिलों का संयोजन।
iii) विकर्णी संयोजन	ग) बेकरी और डेरी का संयोजन।
iv) समस्तर संयोजन	घ) स्ट्रैप, कैस, डायल, स्क्रू आदि बनाने वाली इकाइयों के साथ घड़ी बनाने वाली कंपनी का एकीकरण।
v) वर्तुल संयोजन	ङ) बेकरी और होटल के साथ आटा मिल का संयोजन।
vi) अपसारी पार्श्विक संयोजन	च) सेन्सिंग मशीनें, रसायन पदार्थ वस्त्र, और रेफ्रिजरेटर बनाने वाली कंपनियाँ।

14.3 संयोजनों के स्वरूप (Forms of Business Combinations)

विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संयोजनों के संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब हम इन संयोजनों के विभिन्न स्वरूपों के संबंध में विचार करेंगे। इनके दो मुख्य स्वरूप होते हैं: (क) सरल संयोजन (simple combination), जो एक दूसरे से मिलती - जुलती व्यवस्था वाली फ़र्मों के संयोजन के फलस्वरूप होता है, जैसे साझेदारी फ़र्में (partnership firm) या कंपनियाँ और (ख) मिश्रित संयोजन (compound combination), जो अन्य उद्यमों के संयोजन से होता है जिनकी व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार ही होती है। मिश्रित संयोजनों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है: (1) संघ (associations), (2) परिसंघ (federations) और (3) समेकन (consolidations)। संयोजनों के वर्गीकरण के लिए चित्र 14.6 देखें।

14.3.1 संघ (Association)

संघ वे स्वैच्छिक संगठन हैं , जिन्हें व्यावसायिक फर्में अपने सम्मिलित हितों की रक्षा के लिए औपचारिक या अनौपचारिक समझौते से बनाती हैं। ये संगठन अलाभकारी (Non-profit) होते

दिचित्र 14.6
व्यवसाय संयोजनों के स्वरूप

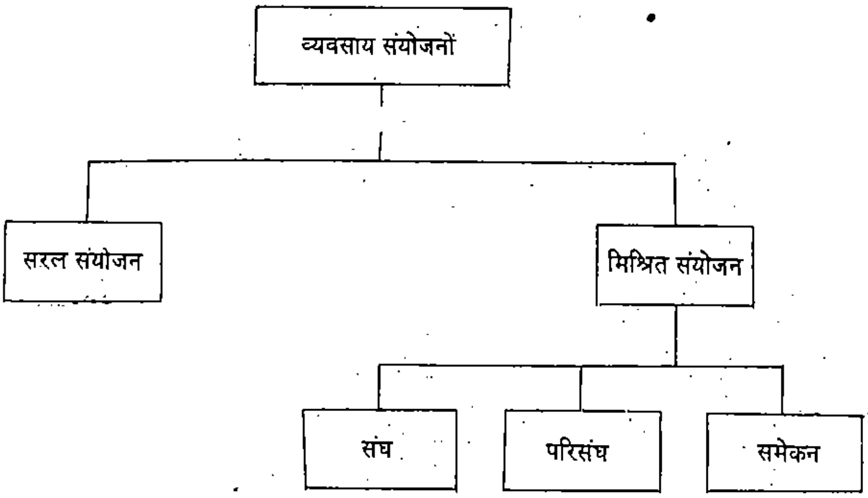

हैं और उनके सदस्य पृथक व्यक्तित्व बनाए रखते हैं। कानूनी रूप में सदस्यों को इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वे किसी विशेष प्रकार का कार्य करें या न करें। सदस्य इस बात के लिए भी स्वतंत्र होते हैं कि जब तक उनके हितों की रक्षा होती है तब तक वे इसके अंतर्गत रहें और जब चाहें तब इसे छोड़ दें।

जैसा कि चित्र 14.7 में दिखाया गया है, संघों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

i) व्यापार संघ
ii) व्यापार मंडल, और
iii) अनौपचारिक समझौता

चित्र 14.7
संघों का वर्गीकरण

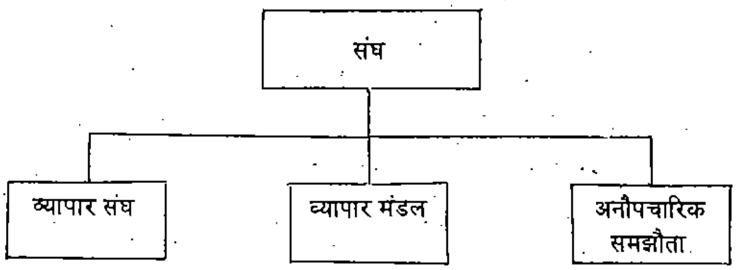

व्यापार संघ (Trade Associations)

किसी विशेष प्रकार के व्यापार या उद्योग में कार्यरत व्यावसायिक इकाइयों के संघ या व्यापारियों के किसी वर्ग के संघ को व्यापार संघ कहा जाता है। इस अलाभकारी स्वेच्छा संगठन को प्रतिस्पर्धी व्यावसायिक इकाइयाँ अपने सम्मिलित आर्थिक हितों के लिए बनाती हैं। व्यापार संघ के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं, सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा, सदस्यों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध बढ़ाना, उनके व्यावसायिक क्रियाओं के संबंध में विचारों का आदान-प्रदान आदि। इनके सदस्य वे व्यवसायी होते हैं जो किसी विशेष प्रदेश में एक ही प्रकार के व्यवसाय कार्य कर रहे हों। संघ का नाम प्रायः व्यवसाय के स्वरूप के अनुसार होता है। इस देश के राष्ट्रीय स्तर पर संगठित कुछ व्यापार संघों के नाम हैं: आल इंडिया मैनुफैक्चरर्स आर्गेनाइजेशन्स, आल इंडिया मार्कीटिंग एसोसिएशन और आल इंडिया पेपर मिल्स एसोसिएशन। क्षेत्रीय स्तर के व्यापार संघों के उदाहरण हैं, बाम्बे मिल ओनर्स एसोसिएशन, बॉम्बे प्रिंटिंग प्रेस ओनर्स एसोसिएशन, अहमदाबाद काटन मिल्स ओनर्स एसोसिएशन आदि।

व्यापार संघों के कार्य: व्यापार संघ निम्नलिखित कार्य करते हैं:

1 सदस्यों की उपयोगी सूचनाओं को इकट्ठा करते तथा उन तक पहुँचाते हैं।

2 सदस्यों को सामूहिक विचार के सरकार या अन्य प्राधिकारियों तक पहुँचाने के लिए मंच प्रस्तुत करते हैं।

3 लोकमत को अपने पक्ष में करके अपने अनुकूल कानून बनवाने का प्रयास करते हैं।

4 अपने सदस्यों को कानूनी तथा अन्य प्रकार की राय देते हैं।

5 मध्यस्थता के द्वारा वे सदस्यों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाते हैं।

6 तकनीक तथा विपणन संबंधी अनुसंधान करके सदस्यों के हित में उन्हें पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित करते हैं।

7 सदस्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा को हटाने का प्रयास करते हैं।

व्यापार मंडल (Chambers of Commerce)

व्यापार मंडल व्यापारियों, उद्योगपतियों, दलालों, बैंकरों तथा कुछ अन्य व्यवसायियों का वह स्वैच्छिक संघ है जो इनके सम्मिलित हितों को उस क्षेत्र में बढ़ाता है जिसमें वे कार्यरत होते हैं। व्यापार मंडल अपने कार्यकलापों को किसी विशेष व्यापार या उद्योग तक ही सीमित नहीं रखते। उनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि किसी विशेष प्रदेश या देश में समस्त व्यवसायी समुदाय के हितों को बढ़ावा दिया जाए और उनकी रक्षा की जाए व्यवसायी संघों के ही व्यापार मंडलों की सदस्यता भी स्वैच्छिक होती है ये अलाभकारी संगठन होते हैं सदस्यों के आंतरिक प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं करते। इन मंडलों की वित्त-व्यवस्था मुख्यत: प्रवेश शुल्क तथा सदस्यों से प्राप्त चंदे से होती है। व्यापार मंडल समस्त विश्व में हैं हालांकि स्थान-स्थान पर उनके संघटन और स्वरूप में कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ, भारत और ब्रिट्रेन के व्यापार मंडल व्यवसायियों के स्वैच्छिक संघ होते हैं जिनका उद्देश्य अपने सदस्यों के व्यवसाय संबंधी हितों को बढ़ाना होता है। लेकिन फ्रांस में व्यापार मंडल अर्धसरकारी परिषद होता है जिसमें सरकार और व्यवसायी समुदाय के प्रतिनिधि एक निश्चित संख्या में होते हैं।

व्यापार मंडलों के कार्य: व्यापार मंडल निम्नलिखित कार्य करते हैं:

1 ये व्यापार की स्थिति तथा संभाव्य बाज़ारों के संबंध में सूचनाएँ एकत्रित करके उनका प्रसार करते हैं।

2 सदस्यों को वर्गीकृत आंकड़े देने के लिए ये सांख्यिकीय सूचनाएँ रखते हैं।

3 व्यावसायकि हितों को प्रभावित करने वाली सरकारी नीतियों के संबंध में अपना मत प्रकट करके ये व्यवसायी समुदाय के प्रवक्ता का कार्य करते हैं।

4 व्यवसाय में बाधा डालने वाले किसी वर्तमान या प्रस्तावित विधान के संबंध में ये सरकार को अभिवेदन करते हैं।

5 व्यापार या उद्योग में होने वाले विवादों को ये मध्यस्थता के द्वारा निपटाते हैं।

6 अपने सदस्यों द्वारा पालन के लिए ये मानक व्यापार प्रथाएँ प्रस्तुत करते हैं।

7 व्यवसायी समुदाय के हितों को बढ़ाने के लिये ये औद्योगिक मेलों और प्रदर्शनियों का आयोजन करते हैं।

8 सम्मेलनों और गोष्ठियों का आयोजन करके ये सदस्यों के बीच विचार-विनिमय के लिए मंच प्रस्तुत करते हैं।

भारत में व्यापार मंडल: भारत में प्रथम व्यापार मंडल की स्थापना यूरोप के व्यापारियों ने 1834 ई. में बंगाल में की परन्तु भारत के व्यापारियों द्वारा पहले व्यापार मंडल की स्थापना 1885 ई. में कोकोनाडा में हुई। दो वर्ष बाद बंगाल चैम्बर ऑफ कामर्स की स्थापना कलकत्ता में हुई। आज भारत के प्रत्येक राज्य में व्यापार मंडल है। केवल कलकत्ता में ही पाँच व्यापार मंडल हैं। उनके नाम हैं: बंगाल चैम्बर्स ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्री, बंगाल नेशनल चैम्बर्स ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्रीज, इंडियन चैम्बर कामर्स, भारत चैम्बर्स कामर्स और ओरिएंटल चैम्बर्स ऑफ कामर्स। देश में राष्ट्रीय स्तर के कुल 15 व्यापार मंडल हैं।

इस देश में संघीय प्रकार के दो व्यापार मंडल हैं। दि एसोसिएटेड चैम्बर्स आफ कामर्स की स्थापना 1920 ई. में यूरोपीय व्यवसायियों द्वारा हुई। भारतीय व्यवसायियों ने 1927 में 24 चैम्बरों को संबद्ध करके फेडेरेशन ऑफ इंडिया चैम्बर्स ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्री (FICCI) की

स्थापना की। इस समय इसके 435 सदस्य और 2,000 उप सदस्य हैं। इस फेडरेशन की स्थापना का मुख्य प्रयोजन विदेशी व्यापारियों से राष्ट्रीय व्यावसायिक हितों की रक्षा करना ही नहीं बल्कि आजादी की लड़ाई में व्यवसायी वर्ग की ओर से देश के नेताओं को सहयोग प्रदान करना भी था। इसका मुख्यालय दिल्ली में है और भारत सरकार ने इसे भारत के व्यवसायी समुदाय के प्रमुख प्रतिनिधि संगठन के रूप में मान्यता प्रदान की है। फिक्की ने व्यवसायी समुदाय और जनता की अनेक प्रकार की सेवाएँ की हैं। यह व्यवसायी समुदाय और सरकार के बीच कड़ी का काम करता है।

व्यापार संघों और व्यापार मंडलों के बीच समानता व भेद: आपने व्यापार संघों और व्यापार मंडलों की विशेषताओं के संबंध में पढ़ा। चूँकि ये दोनों ही कुछ अर्थों में एक समान लगते हैं अतः यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि ये एक समान ही हैं। पर ऐसा नहीं। अब हम व्यापार संघों और व्यापार मंडलों के बीच समानताओं और असमानताओं के संबंध में विस्तार से चर्चा करेंगे।

समान विशेषताएँ: इन दोनों के बीच निम्नलिखित समान विशेषताएँ हैं:

1 इनकी सदस्यता स्वैच्छिक होती है।

2 ये अलाभकारी संगठन होते हैं।

3 ये अपना कोई व्यवसाय नहीं करते।

4 उनके कार्यों की वित्त व्यवस्था मुख्यतः प्रवेश शुल्क और सदस्यों से प्राप्त चंदे से होती है।

5 वे सदस्य फर्मों के आंतरिक प्रशासन और उनकी कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नहीं करते।

अंतर: इनके बीच निम्नलिखित अंतर हैं:

1 व्यापार संघ एक ही प्रकार के व्यवसाय करने वालों का होता है जब कि व्यापार मंडल किसी विशेष प्रदेश में सभी प्रकार के व्यावसायिक कार्यकलापों को करने वाले व्यवसायियों या व्यावसायिक इकाइयों का संगठन होता है।

2 व्यापार संघ का संबंध किसी एक व्यवसाय के हितों तक सीमित होता है, जबकि व्यापार मंडल अपने क्षेत्र के सभी प्रकार के व्यवसायी फ़र्मों के हितों की रक्षा करता है।

3 व्यापार संघों के सदस्य परस्पर प्रतिस्पर्धी होते हैं जबकि व्यापार मंडलों में प्रतिस्पर्धी और अप्रतिस्पर्धी दोनों ही प्रकार के सदस्य होते हैं।

अनौपचारिक समझौता (Informal Agreement)

जैसा कि आपको मालूम है व्यापार संघ तथा व्यापार मंडल व्यावसायिक फ़र्मों के बीच की प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण नहीं कर सकते और न ही वे समान उद्देश्य से कार्य न करने वाली व्यावसायिक इकाइयों के खिलाफ कोई कार्यवाही कर सकते हैं। यह कार्य अनौपचारिक समझौते के द्वारा किया जा सकता है।

अनौपचारिक समझौते से अभिप्राय प्रतिस्पर्धी व्यावसायिक फ़र्मों का इस बात से सहमत होना कि वे आपसी व्यापार प्रथाओं का पालन करेंगी। अनौपचारिक समझौते के अंतर्गत प्रायः कीमत विनियमन, उत्पादन विनियमन, बाज़ारों का बंटवारा तथा अन्य वे व्यापार प्रथाएँ आ जाती हैं जो सब पर लागू होती हैं। समझौते में भाग लेने वाले अनौपचारिक समझौते की शर्तों का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। इसीलिए इस समझौते को भद्र करार, काम-चलाऊ करार या कीमत करार कहा जाता है। समझौते की शर्तों का उल्लंघन करने वालों को कानूनी दंड की व्यवस्था नहीं होती।

14.3.2 परिसंघ (Federation)

परिसंघ एक ही व्यवसाय में कार्यरत व्यावसायिक इकाइयों का संघ (union) या सहबंध (alliance) है जिसके सदस्य इस बात से सहमत होते हैं कि वे पारस्परिक लाभ के लिए कुछ निश्चित नीतियों का पालन करेंगे तथा हानिकर प्रतिस्पर्धा को कम करेंगे। इस प्रकार परिसंघ अपेक्षाकृत बंधनमुक्त प्रकार का संयोजन होता है। इसका आधार पारस्परिक सहमति है तथा प्रतिस्पर्धी फर्म इसका निर्माण प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए करती हैं परिसंघों की दो मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1 यह स्वतंत्र व्यावसायिक इकाइयों के संघ के रूप में सहबंध है।

2 प्रतिस्पर्धी इकाइयाँ केवल कुछ उन्हीं बाह्य कारकों के संबंध में संयोजित होती हैं जो उनके व्यवसाय को प्रभावित करते हैं।

आंतरिक संगठन के संबंध में प्रत्येक इकाई को पूर्ण स्वायत्तता होती है। वे अपने निर्णय और कार्यों के संबंध में पूर्ण स्वतंत्र होते हैं। परिसंघों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है: पूल (Pool) और उत्पादक संघ (Cartel)।

पूल (Pool)

व्यवसाय संगठन के उस प्रकार को पूल कहा जाता है जिसकी स्थापना उन व्यावसायिक इकाइयों के परिसंघ के द्वारा होती है जो कीमतों और संबंधित कारकों पर एक सीमा तक संयुक्त नियंत्रण रखते हैं तथा कुल लाभ में से अपना अंश लेते हैं। इस प्रकार पूल एक प्रकार का समस्तर संयोजन है। यह प्रतिस्पर्धी फर्मों का परिसंघ है जो कुछ प्रयोजनों से एक साथ मिल जाते हैं लेकिन अपनी आंतरिक स्वायत्तता बहुत कुछ बनाए रखते हैं। अनौपचारिक समझौते की तुलना में पूल का स्वरूप अधिक औपचारिक होता है। कीमतों के संबंध में केवल सहमति ही नहीं लेती बल्कि कीमतों के नियंत्रण की प्रणाली का भी निर्धारण कर दिया जाता है। पूलों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में किया जा सकता है।

i) **उत्पादन पूल (Output Pool):** इसका निर्माण प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण के उद्देश्य से वस्तुओं की पूर्ति को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। यह अति उत्पादन तथा उसके फलस्वरूप होने वाली कीमतों में बार-बार की कमी को रोकने का प्रयास करता है। यह कुल माँग का अन्दाजा लगाता है और तदनुसार सदस्यों के लिए उत्पादन के कोटे का निर्धारण कर देता है। प्रत्येक सदस्य फ़र्म से अपेक्षा की जाती है कि वह पूल द्वारा निर्धारित कोटे के अनुसार ही उत्पादन करे। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर दिया जाता है और सभी सदस्यों की उत्पादित वस्तुओं के लिए माँग की गारंटी हो जाती है। इंडियन जूट मिल्स एसोसिएशन उत्पादन पूल का उदाहरण है।

ii) **यातायात पूल (Traffic Pool):** परिवहन व्यवसाय में यातायात पूल का आम प्रचलन है। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रतिस्पर्धी परिवहन कंपनियाँ माँगों और व्यवसाय क्षेत्रों के विनियमन के लिए एक साथ मिल जाती है। विभिन्न सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने निर्दिष्ट क्षेत्र के अंतर्गत ही अपना वाहन चलाएँ और एक समान माल भाड़ा और यात्री किराया लें। दूसरे शब्दों में कुल यातायात का विभाजन इस प्रकार कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अपने क्षेत्र में एक मात्र प्रचालक (operator) हो जाता है। जहाजरानी के क्षेत्र में इस प्रकार के समझौते को नौवहन करार कहा जाता है।

iii) **बाज़ार पूल (Market Pool):** इसका अभिप्राय होता है कि सदस्य फ़र्मों के बीच बाज़ार को बाँटने की स्वीकृति जिससे प्रत्येक फ़र्म किसी विशेष बाज़ार में एकमात्र पूर्ति कर्ता हो। बाज़ार का बँटवारा निम्नलिखित तीन में से किसी भी एक उपाय से हो सकता है: (1) ग्राहकों के आधार पर (2) उत्पादों के आधार पर तथा (3) क्षेत्र के आधार पर। एक फर्म को दूसरे के क्षेत्र में व्यवसाय नहीं करने दिया जाता। उदाहरणार्थ, एसोशियेट सीमेंट कंपनी और डालमिया सीमेंट कंपनी ने एक दूसरे के क्षेत्र में सीमेंट जाने और अनावश्यक प्रतिस्पर्धा पर रोक लगाने के उद्देश्य से बाज़ार पूल बनाया है। निर्यातकर्ता भी विदेशी बाजार में परस्पर पूल बनाने वाली इकाइयों के उद्देश्य से पूल बना सकते हैं।

लाभ: पूल बनाने वाली इकाइयों को निम्नलिखित लाभ होते हैं।

1 इन्हें बनाना आसान है।

2 यह लचकदार संगठन है जिसमें क्षेत्र, सदस्यता और व्यवसाय की स्थितियों के अनुसार हेरफेर किया जा सकता है।

3 सदस्य अपनी आंतरिक स्वायत्तता बनाए रखते हैं।

4 दुतरफा संचलन (Cross movement) से बचा जा सकता है, ऐसी विशेषता क्षेत्रीय पूलों में होती हैं।

5 सदस्यों के बीच हानिकार प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

दोष: पूलों में निम्नलिखित दोष होते हैं:

1 उत्पादन पूल के कारण उत्पादन के संबंध में कृत्रिम प्रतिबंध हो सकता। जो कि उपभोक्ताओं के हित के प्रतिकूल होगा।
2 व्यवसाय या यातायात की अधिकता का निर्धारण करना कठिन होता है।
3 सदस्य पूल को कभी भी छोड़ सकते हैं अतः स्थिरता नहीं रह पाती।
4 चूँकि न्यूनतम कीमत का निर्धारण पूल करता है अतः बाजार में अकुशल फ़र्म भी टिकी रह सकती हैं।
5 माँग की गारंटी होने का कारण आविष्कार और नवीन प्रक्रिया (innovation) को प्रोत्साहन नही मिल पाता है।।
6 उत्पादन पर प्रतिबंध और बाजार पर नियंत्रण होने के कारण एकाधिकारी प्रथाओं की शुरूआत हो सकती है।

कार्टेल (Cartel)

कार्टेलों का गठन प्रायः मंदी के काल में होता है जब कि व्यवसाय बहुत कम हो जाता है और माँग के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। इनका उद्देश्य होता है कीमतों में और गिरावट को रोकना। व्यवसाय के एक ही क्षेत्र के उद्यम बाजार पर नियंत्रण रखने के प्रयोजन से जब स्वेच्छा से समझौता करते हैं तब उसे कार्टेल कहा जाता है। यह ऐसा संयोजन है जिसमें सम्मिलित विक्रय एजेन्सी या सिंडीकेट कार्य करता है।

कार्टेल के अंतर्गत मार्का (ट्रेड मार्क) या एकस्व के उपयोग या क़ीमतों के निर्धारण या उत्पादन कोटा निश्चित करने या बाजार क्षेत्रों को बाँटने की व्यवस्था होती है। सदस्यों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए एक केन्द्रीय एजेन्सी बनाई जाती है जिसे सिंडीकेट कहा जाता है। कार्टेल के सदस्य अपनी उत्पादित वस्तुओं को एक निश्चित कीमत पर सिंडीकेट को देने को सहमत हो जाते हैं। सिंडीकेट इन वस्तुओं को बाजार में बेचते हैं और सदस्यों द्वारा संयुक्त पूल को दी गई वस्तुओं के अनुपात में उनके बीच लाभ का वितरण करता है। मार्केटिंग कार्पोरेशन भारत में कार्टेल का एक उदाहरण है।

लाभ: कार्टेल के निम्नलिखित लाभ हैं:

1 प्रत्येक सदस्य समुचित लाभ की प्राप्ति के संबंध में आशवस्त रहता है।
2 चूँकि विपणन का दायित्व सिंडीकेट पर होता है अतः सदस्य अपना सारा ध्यान उत्पादन पर लगाते हैं जिससे उत्पादन लागत घटती है।
3 वस्तुओं का विपणन पर काफी किफायतें होती हैं और प्रतिस्पर्धी विज्ञापन का स्थान संयुक्त विज्ञापन ले लेते हैं।

दोष: कार्टेलों के निम्नलिखित दोष हैं:

1 इस प्रणाली के अंतर्गत कुशल फ़र्मों को क्षति पहुँचाकर अकुशल फर्मों को चलने दिया जाता है।
2 माँग को स्थिर रखने और व्यापार में उतार-चढ़ाव को रोकने में कार्टेल असफल रहे हैं।
3 ये संयोजन अत्यंत दुर्बल और अप्रभावी होते हैं और उनमें स्थिरता की कमी होती है।

बोध प्रश्न ख

1 व्यापार संघ किसे कहते हैं?

....

....

2 व्यापार मंडल क्या होता है?

....

....

3 पूल से क्या तात्पर्य है?

....

....

4 कार्टेल क्या होता है?

....

....

5 खाली जगहों को भरें।

i) व्यापार मंडलों की सदस्यता..................... है।

ii) व्यापार मंडल किसी विशेष .... के व्यवसायियों का संगठन है।

iii) ....के व्यवसाय के उद्‌यम व्यापार संघ का निर्माण करते हैं।

iv) परिसंघ का निर्माण.....................व्यवसायी फ़र्में कीमतों के विनियमन के लिए करती हैं।

v) .... में प्रत्येक सदस्य इकाई विशेष बाजार में एक मात्र पूर्तिकर्ता होता है।

vi) ....व्यवसाय में यातायात पूल का आम प्रचलन है।

vii) कार्टेल में सदस्यों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए एक .... होती है।

viii) फिक्की (FICCI) का पूरा नाम .... है।

14.3.3 समेकन (Consolidation)

समेकन संयोजन का वह रूप है जिस में व्यावसायिक फ़र्मों का नियंत्रण एक संयुक्त प्राधिकारी द्वारा होता है। वास्तव में सदस्य फ़र्मों के बीच सबसे अधिक एकीकरण समेकन की स्थिति में ही तो पाता है। समेकन का उपविभाजन दो श्रेणियों में किया जा सकता है (i) आंशिक समेकन और (2) पूर्ण समेकन। आंशिक समेकन की स्थिति में इकाइयों का अलग से अस्तित्व बना रहता है। परन्तु पूर्ण समेकन की स्थिति में उनका अलग से कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। अब इन दोनों के संबंध में हम विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

आंशिक समेकन (Partial Consolidation)

आंशिक समेकन की स्थिति में विभिन्न फ़र्में अलग से अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए संयुक्त नियंत्रण और प्रबंध के अंतर्गत आ जाती हैं। आंशिक समेकन का प्रयोजन होता है प्रतिस्पर्धा को रोकना तथा केन्द्रीय प्रबंध के लाभ उठाना। आंशिक समेकन तीन प्रकार के होते हैं: (1) ट्रस्ट (2) नियंत्रक कंपनी (Holding Company) (3) हित समुदाय (Community of Interst)

ट्रस्ट

व्यवसाय के संदर्भ में ट्रस्ट से अभिप्राय उस व्यवस्था से होता है जिसके अंतर्गत व्यवसायी फ़र्में अपने व्यवसायों को ट्रस्टियों (न्यासियों) की देखरेख में छोड़ देती हैं। ये ट्रस्टी औपचारिक मालिक के रूप में वास्तविक मालिकों के हित में व्यवसाय को चलाते हैं। इन वास्तविक मालिकों को तकनीकी शब्दों में हिताधिकारी कहा जाता है। पश्चिमी देशों में दो प्रकार के ट्रस्ट बनाए गए हैं: संयुक्त ट्रस्ट (contribution trust) और मताधिकारी ट्रस्ट (voting trust)।

i) **संयुक्त ट्रस्ट:** संयुक्त ट्रस्ट अस्थायी समेकन द्वारा स्थापित संगठन का वह रूप है। जिसमें अनेक कंपनियों के शेयरधारी ट्रस्ट समझौते के अधीन अपने शेयरों की एक नियंत्रक मात्रा को ट्रस्ट प्रमाणपत्रों के बदले में ट्रस्टियों के बोर्ड को सौंप देते हैं। इन प्रमाण पत्रों में लिखा होता है कि ट्रस्ट की आय में उनका क्या भाग है। इन कंपनियों के प्रबंध पर नियंत्रण के लिए ट्रस्टियों का बोर्ड अपने अधीन की विभिन्न कंपनियों के निदेशक मंडल में अपने प्रतिनिधियों को

नियुक्त करता है। विभिन्न कंपनियों द्वारा घोषित लाभांशों को ट्रस्ट एकत्रित करता है। समस्त एकत्रित लाभ में से ट्रस्ट के खर्चे को घटाने के बाद जो शेष राशि बचती है उसे सदस्यों के प्रमाणपत्रों के मूल्य के अनुसार उनके बीच बाँट दिया जाता है।

ii) **मताधिकारी ट्रस्ट:** इस प्रकार के ट्रस्ट में अधिकांश शेयरों के धारक अपने शेयर ट्रस्टियों को इसलिए सौंप देते हैं कि वे उनके बदले में मत दे सकें। परंतु लाभांशों को पाने और अपनी इच्छानुसार शेयरों को बेचने का अधिकार शेयरधारियों के पास रहता है। इस प्रकार के ट्रस्ट को बनाने का प्रयोजन यह होता है कि शेयरधारियों के संगठन में परिवर्तन के कारण संगठन की संयुक्त नीति पर प्रभाव न पड़े।

ट्रस्टों के लाभ: ट्रस्टों को बनाने वाली कंपनियों को निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1 अन्य संघीय संयोजनों की तुलना में ट्रस्ट अधिक स्थायी और स्थिर सिद्ध होते हैं।

2 ट्रस्ट के द्वारा निदेशन और प्रबंधन का केंद्रीकरण होता है जिससे बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त होते हैं।

3 चूँकि उत्पादन और विपणन पर ट्रस्टों का पूर्ण नियंत्रण होता है अतः वे कीमतों का विनियमन भी सुचारू रूप से कर सकते हैं।

4 चूँकि ट्रस्टों के निर्माण से अभिप्राय है बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी एकत्र होना अतः बड़ी-बड़ी परियोजनाओं को प्रारंभ करने की गुंजाइश रहती है।

ट्रस्टों के दोष: ट्रस्टों के निम्नलिखित दोष हैं:

1 पूलों की तुलना में ट्रस्टों को बनाना अधिक कठिन होता है।

2 एक बार बन जाने पर ट्रस्टों में आसानी से परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

3 ट्रस्टों में अति पूँजीकरण की संभावना होती है अर्थात् पूँजी की अधिकता हो जाती है जिसका लाभकारी ढंग से उपयोग नहीं किया जा सकता।

4 . ट्रस्टों के पास एकाधिकारी शक्ति होती है जिसका उपयोग उपभोक्ताओं के शोषण के लिए किया जा सकता है। अतः कुछ ट्रस्टों को समाज विरोधी माना जाता है।

नियंत्रक कंपनी

नियंत्रक कंपनी (holding company) वह कंपनी होती है जिसका किसी अन्य कंपनी के अधिकांश शेयरों पर नियंत्रण होता है। अतः उसे उस कंपनी के अधिकांश निदेशकों को नियुक्त करने का अधिकार होता है। जिस कंपनी को नियंत्रण में लिया जाता है उसे नियंत्रित कंपनी कहा जाता है। इस प्रकार नियंत्रित कंपनी (subsidiary company) अपना अलग से अस्तित्व बनाए रखकर कार्य तो करती है परंतु उसके प्रबंधन पर नियंत्रक कंपनी का नियंत्रण होता है। इस प्रकार के संगठन का उद्देश्य बड़े पैमाने के संचालन और केन्द्रीय प्रबंधन से होने वाले लाभों को प्राप्त करना होता है। भारत में निजी तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में नियंत्रक कंपनियाँ हैं। उदाहरणार्थ, निजी क्षेत्र में सीमेंट मार्केटिंग कंपनी ऑफ इंडिया और पटियाला सीमेंट कंपनी की नियंत्रक कंपनी एसोशिएटेड कंपनी है। उसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में देश के सार्वजनिक क्षेत्र की इस्पात कंपनियों की नियंत्रक कंपनी स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया है।

नियंत्रक कंपनियों के प्रकार: नियंत्रक कंपनियों को छः वर्गों में बाँटा जा सकता है:

i) **मूल या शिखर नियंत्रक कंपनी:** यह वह नियंत्रक कंपनी है जिसका नियंत्रण अन्य कोई कंपनी नहीं करती। इसके विपरीत उसके नियंत्रण में अन्य कंपनियां होती हैं और उन कंपनियों की भी अन्य नियंत्रित कंपनियाँ हो सकती हैं।

ii) **मध्यवर्ती नियंत्रक कंपनी:** यह नियंत्रक कंपनी होने के बावजूद किसी अन्य नियंत्रक कंपनी की नियंत्रित कंपनी होती है।

iii) **ऑफस्प्रिंग नियंत्रक कंपनी:** जब कुछ वर्तमान कंपनियाँ अपने शेयरों की नियंत्रक संख्या को किसी नई कंपनी को सौंप देती हैं तब यह कंपनी बनती है। नई कंपनी को समेकित कंपनी भी कहा जाता है और वर्तमान कंपनियाँ इसकी नियंत्रित कंपनियाँ बन जाती हैं।

iv) **शुद्ध नियंत्रक कंपनी:** यह नियंत्रित कंपनियों के शेयरों को केवल अपने अधीन रखती है और उनके कार्यों का प्रबंध करती है। उत्पादन कार्यों में यह भाग नहीं लेती।

v) **मिश्रित नियंत्रक कंपनी:** नियंत्रित कंपनियों का प्रबंध करने के अतिरिक्त यह कंपनी अपना व्यवसाय भी करती है।

vi) **वित्तीय नियंत्रक कंपनी:** यह अपनी नियंत्रित कंपनियों की वित्तव्यवस्था करती है। इसका उद्देश्य अन्य कंपनियों का नियंत्रण करना नहीं बल्कि नई कंपनियों के संचालन में रुपया लगाना है। यह नई कंपनियों के शेयरों को यथाशीघ्र और उचित समय पर बेच देती है।

नियंत्रक कंपनियों के लाभ: नियंत्रक कंपनी के निम्नलिखित लाभ हैं:

1 नियंत्रक कंपनी को बनाना आसान होता है। कोई नियंत्रक कंपनी किसी अन्य कंपनी के शेयर को खुले बाजार में खरीद कर उसे अपनी नियंत्रित कंपनी बना सकती है। इस कार्य के लिए नियंत्रित कंपनी के शेयरधारियों की सहमति लेने की आवश्यकता नहीं होती।

2 नियंत्रक कंपनी तथा उनकी नियंत्रित कंपनियाँ सीमित दायित्व वाली कंपनियाँ होती हैं अतः उनके लिए पूँजी एकत्रित करने की अधिक गुंजाइश होती है।

3 नियंत्रक कंपनी के पास केंद्रीय नियंत्रण तथा समन्वित। प्रबंध नीति होने के कारण सदस्यों के बीच की प्रतिस्पर्धा को वह रोक सकती है।

4 केंद्रीय नियंत्रण तथा निदेशन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन और संगठन के लाभ होते हैं।

5 नियंत्रित कंपनियों का पृथक् अस्तित्व बना रहता है और उनकी प्रचालन की विधियाँ भी अपनी ही बनी रहती हैं।

6 आम जनता के बीच नियंत्रक कंपनी की आलोचना एकाधिकारी शक्तियों वाली कंपनी के रूप में नहीं की जाती क्योंकि ऐसा स्पष्ट रूप में देखने में नहीं आता।

नियंत्रक कंपनियों के दोष: नियंत्रक कंपनियों के निम्नलिखित दोष हैं:

1 नियंत्रक कंपनी के पास नियंत्रण का अधिकार तो होता है पर उस पर कोई जिम्मेदारी नहीं होती। नियंत्रक कंपनियों के शेयरधारियों की वित्तीय शक्तियों की तुलना में उनकी वित्तीय देयताएँ सीमित होती हैं।

2 नियंत्रक कंपनियाँ कभी-कभी कंपनियों के परस्पर लेन-देन के संबंध में इस प्रकार का हेर-फेर करती हैं कि नियंत्रित कंपनियों को हानि होती है। उदाहरणार्थ, नियंत्रित कंपनियों के लाभ का उपयोग नियंत्रक कंपनी के हित में किया जा सकता है या नियंत्रक कंपनी की हानि को नियंत्रित कंपनियों के खाते में डाला जा सकता है।

3 नियंत्रक कंपनी के कुछ निदेशकों के हाथ में पूँजी की बहुत बड़ी रकम पर नियंत्रण का अधिकार हो जाता है।

4 इससे अप्रत्यक्ष रूप में एकाधिकार शक्ति का जन्म होता है जिसका उपयोग उपभोक्ताओं के शोषण और व्यापार पर रोक लगाने वाली नीतियों को अपनाने में किया जा सकता है।

ट्रस्ट और नियंत्रक कंपनी में अंतर: ट्रस्ट तथा नियंत्रक कंपनियाँ देखने में एक जैसी लगती हैं क्योंकि इनकी स्थापना शामिल होने वाली इकाइयों के आंशिक समेकन के द्वारा होती है। इन दोनों ही स्थितियों में शामिल होने वाली इकाइयाँ अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखती हैं। परंतु इन दोनों के बीच कुछ अंतर भी है जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया गया है:

1 **निर्माण विधि:** जब कोई ट्रस्ट बनता है तब विभिन्न कंपनियों के शेयरधारी अपने शेयरों को ट्रस्ट के ज़िम्मे कर देते हैं और उनकी ओर से ये शेयर ट्रस्टियों के अधिकार में रहते हैं। इस प्रकार शेयरधारी ट्रस्ट समझौते के हिताधिकारी बन जाते हैं। नियंत्रक कंपनी की स्थिति में नियंत्रक कंपनी नियंत्रित कंपनियों के अधिकांश शेयरों को अपने अधिकार में ले लेती है।

2 **प्रबंध:** ट्रस्टियों का बोर्ड ट्रस्ट के कार्यों का प्रबंध करता है। यह बोर्ड संघटक इकाइयों के निदेशकों को मनोनीत करता है। नियंत्रक कंपनी का प्रबंधन निदेशक मंडल (board of directors) के हाथ में होता है जिसे इसी कंपनी के शेयरधारी चुनते हैं।

3 **संबंध:** नियंत्रक कंपनी की नियंत्रित कंपनियाँ एक दूसरे से स्वतंत्र होती हैं, परंतु ट्रस्टों की संघटक इकाइयाँ (constituent units) परस्पर निर्भर होती हैं।

4 **स्थिरता:** नियंत्रक कंपनी देखने में अधिक स्थिर लगती है हालांकि इसका विघटन आसानी से किया जा सकता है। ऐसा नियंत्रित कंपनी के शेयरों को खुले बाजार में बेचने से होता है। परंतु ट्रस्ट का समझौता प्रायः लंबे काल के लिए होता है और इसे आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता।

5 **लाभ का वितरण:** ट्रस्ट के लाभ का वितरण सभी संघटक इकाइयों के बीच होता है। इसके विपरीत नियंत्रक कंपनी के लाभ में नियंत्रित कंपनियों का अंश नहीं होता। परंतु नियंत्रक कंपनी के शेयरधारियों को सभी नियंत्रित कंपनियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों से लाभ होता है।

हित समुदाय

जैसा कि आप जानते हैं आंशिक समेकन तीन प्रकार का होता है (1) ट्रस्ट, (2) नियंत्रक कंपनियाँ और (3) हित समुदाय। ट्रस्टों और नियंत्रक कंपनियों के संबंध में विचार किया जा चुका है। अब हम हित समुदाय (community of interest) के संबंध में विचार करेंगे। हित समुदाय व्यवसाय संगठन का वह रूप है जिसमें केंद्रीय नियंत्रण के संबंध में किसी प्रकार की औपचारिक व्यवस्था के बिना ही अनेक कंपनियों की व्यावसायिक नीति का नियंत्रण शेयरहोल्डरों या निदेशकों के एक वर्ग द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में, दो या उससे अधिक कंपनियों के शेयरों पर समान व्यक्तियों का स्वामित्व होने के कारण इन कंपनियों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध हो जाता है जिसे "हित समुदाय" कहा जाता है। इस प्रकार के संयोजन में व्यावसायिक इकाइयाँ प्रकट रूप से तो पृथक नियंत्रण में होती हैं लेकिन महत्वपूर्ण मामलों में उनकी व्यवसाय नीतियाँ साझे निदेशकों से प्रभावित होती हैं, जो एक-सा निर्णय लेते हैं।

हित समुदाय के प्रकार: हित समुदाय तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें नीचे स्पष्ट किया गया है:

i) **प्रशासनिक एकीकरण (Administrative Integration):** इस प्रकार का "हित समुदाय" इंटरलॉकिंग ऑफ डाइरेक्टरशिप (interlocking of directroship) और बहु निदेशकता (Interlocking of directorship) के कारण होता है। जब अनेक व्यक्ति दो या उससे अधिक कंपनियों के निदेशक का कार्य करते हैं तब कहा जाता है कि ये कंपनियाँ अंतर्ग्रंथित हो गई हैं या परस्पर गुंथित हो गई हैं। बहु निदेशकता से अभिप्राय होता है कि एक ही व्यक्ति का एक से अधिक कंपनियों का निदेशक होना। कंपनी अधिनियम 1956 के अनुसार एक व्यक्ति एक समय में 20 कंपनियों का निदेशक हो सकता है। 1960-61 वर्ष में किए गए एक अध्ययन में मालूम हुआ है कि कुछ भारतीय परिवारों के अधीन 408 निदेशकताएँ थीं।

ii) **प्रबंधकीय एकीकरण (Managerial Integretion):** "मैनेजिंग एजेन्ट्स" के नाम से जानी जाने वाली एजेन्सी कंपनियों ने भारत में "हित समुदाय" का प्रचलन किया ताकि वे अनेक कंपनियों पर नियंत्रण कर सकें। टाटा, बिरला, और डालमिया जैसे बड़े व्यवसाय परिवारों द्वारा नियंत्रित कुछ मैनेजिंग एजेन्सियों ने विभिन्न उद्योगों में अनेक कंपनियों का संवर्धन किया, उनमें रुपया लगाया तथा उनका प्रबंध किया। इसमें से प्रत्येक परिवार का नियंत्रण अनेक मैनेजिंग एजेन्सियों पर है और इनमें से प्रत्येक एजेन्सी अनेक कंपनियों को नियंत्रित करती है। 1960 ई० में किए गए एक अध्ययन के अनुसार पाँच मैनेजिंग एजेन्सियों पर टाटा का नियंत्रण था। परंतु 1970 ई० में मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली समाप्त कर दी गई।

iii) **वित्तीय एकीकरण (Financial Integration):** वित्तीय एकीकरण उस स्थिति में होता है जब कोई वित्तीय संस्था अनेक कंपनियों या कंपनियों के समूह को वित्तीय सहायता देती है। उस स्थिति में उस संस्था को अधिकार होता है कि उन कंपनियों में अपने निदेशकों को नियुक्त कर सके जिससे उसके हितों की रक्षा हो सके।

हित समुदाय के लाभ: हित समुदाय के रूप में संयोजन से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1 शामिल होने वाली फ़र्में अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रखती हैं तथा उनका अपना सुनाम (good will) भी होता है।

2 हित समुदाय को बनाना आसान है क्योंकि इसके लिए किसी औपचारिक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती।

3 व्यवसाय के क्षेत्र में नेताओं के अनुभवों से अनेक कंपनियों को लाभ होता है।

4 विभिन्न कंपनियों द्वारा उत्पादन और कीमतों संबंधी समान नीतियों को अपनाने में इससे सहायता मिलती है।

5 शामिल होने वाली कंपनियों के बीच सहयोग बढ़ता है।

हित समुदाय के दोष: हित समुदाय की आलोचना निम्नलिखित आधार पर की जाती है:

1 इसमें किसी केंद्रीय नियंत्रण संगठन के न होने के कारण यह स्थिर नहीं होता।

2 इसमें प्रबंध की कुशलता कम हो सकती है क्योंकि साझे निदेशक सभी कंपनियों पर पर्याप्त समय और ध्यान नहीं लगा सकते।

3 इससे कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में आर्थिक शक्ति केंद्रित हो जाती है।

4 इससे वित्तीय मामलों में हेर-फेर की बहुत गुंजाइश हो जाती है, विशेषतः उस स्थिति में जब इस प्रकार के संयोजन का संबंध उत्पादन कंपनियों और वित्तीय संस्थाओं के साथ होता है।

5 इससे अल्पतंत्रीय प्रबंध (obigarely management) आ सकता है, अर्थात् मताधिकार पर एक ही गुट के लोगों का नियंत्रण होने के कारण निदेशक मंडल में उन्हीं का बने रहना।

पूर्ण समेकन (Complete Consolidation)

आपने पढ़ा है कि समेकन दो प्रकार के होते हैं: (1) आंशिक समेकन और (2) पूर्ण समेकन। आंशिक समेकन और उनके वर्गीकरण से संबंध में हम विचार कर चुके हैं। अब पूर्ण समेकन के संबंध में चर्चा की जाएगी। पूर्ण समेकन से अभिप्राय होता है संयोजित होने वाली इकाइयों का पूर्ण रूपेण संलयन जिससे इन इकाइयों का अस्तित्व समेकित इकाई के अधीन चला जाता है। इस प्रकार पूर्ण समेकन तब होता है जब अनेक कंपनियों की संपत्तियों को व्यवसाय की किसी एक ही इकाई के अंतर्गत खरीद लिया जाता है। अतः पूर्ण समेकन उस सम्मिलन का परिणाम है जिसमें व्यवसाय की इकाइयों का संलयन हो जाता है और वे अपनी पहचान खो देती हैं। पूर्ण समेकन निम्नलिखित दो में से किसी एक प्रकार का हो सकता है: विलयन (merger) और समामेलन (amalgamation)। विलयन और समामेलन के निर्माण की विधियाँ तो अलग-अलग हैं लेकिन उनके उद्देश्यों के बीच कोई अंतर नहीं होता। विलयन की

चित्र 14.8 देखें, जिसमें समेकन के वर्गीकरण को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 14.8
व्यावसायिक समेकन का वर्गीकरण

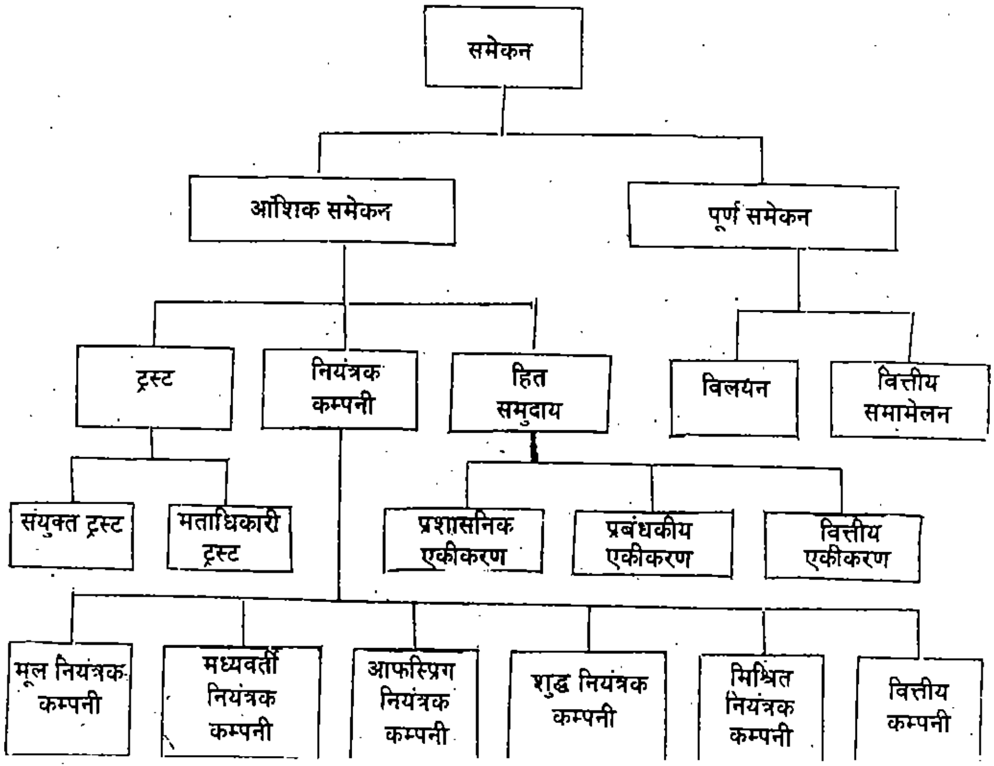

स्थिति में कोई वर्तमान कंपनी एक या उससे अधिक अन्य उद्यमों को अपने में घुला-मिला लेती है। यह कंपनी उनकी परिसंपत्तियों को खरीद लेती है और समस्त राशि के भुगतान के आधार पर उनकी देयताओं की ज़िम्मेदारी ले लेती है। समामेलन की स्थिति में वर्तमान कंपनियाँ स्वैच्छिक समापन (voluntary liquidation) करा लेती हैं और उनकी परिसंपत्तियों का उत्तरदायित्व एक नव-निर्मित कंपनी ले लेती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समामेलन की स्थिति में, वर्तमान कंपनियों के व्यवसाय का उत्तरदायित्व लेने के लिए नई कंपनी बनाई जाती है जबकि विलयन की स्थिति में एक व्यावसायिक इकाई का विलयन किसी अन्य वर्तमान इकाई में हो जाता है।

पूर्ण समेकन के लाभः पूर्ण समेकन से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1 पूर्ण समेकन संयोजन का स्पष्ट रूप है जो संयोजित होने वाली इकाइयों के बीच की प्रतिस्पर्धा को पूर्णतः दूर कर देता है।

2 इस स्थिति में संयोजित होने वाली इकाइयों के साधनों और उनकी परिसंपत्तियों का भलीभाँति उपयोग किया जा सकता है।

3 पूर्ण समेकन के चलते प्रबंध की योग्यता बढ़ जाती है और अधिक मात्रा में वित्तीय साधन उपलब्ध होते हैं। इन दोनों के फलस्वरूप अधिक किफायतें होती हैं।

4 समन्वित योजनाओं, उत्पादों के मानकीकरण और थोक खरीद के चलते बड़े पैमाने की किफायतें भी होती हैं।

5 यह संयोजन का सर्वाधिक स्थिरता और टिकाऊ रूप है। इसके कारण संयोजित होने वाली इकाइयों में आधारभूत परिवर्तन हो जाते हैं, जिन्हें फिर पहले की स्थिति में नहीं लाया जा सकता।

पूर्ण समेकन का दोषः पूर्ण समेकन के निम्नलिखित दोष हैं:

1 पूर्ण समेकन का कार्य अत्यंत कठिन होता है क्योंकि इसके लिए संयोजित होने वाली कंपनियों को अधिकांश शेयरधारियों की सहमति लेनी पड़ती है।

2 पूर्ण समेकन के साथ ही साथ संयोजित इकाइयों के संलयन (merger) के फलस्वरूप इनके प्रबंधकों के पास पहले जैसी शक्ति नहीं रह जाती।

3 पूर्ण समेकन के फलस्वरूप उद्यमों को अपना-अपना सुनाम (goodwill) त्यागना पड़ सकता है।

4 विभिन्न इकाइयों के प्रबंधकों के बीच प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप प्रबंध संबंधी समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं।

5 बड़े संयोजनों को कभी-कभी अपने को स्थानीय स्थितियों के अनुरूप ढालना कठिन हो जाता है।

6 अति पूँजीकरण का खतरा बना रहता है क्योंकि विलयन की स्थिति में अंतर्लयी कंपनी (absorbing company) या समामेलन की स्थिति में नई कंपनी वर्तमान कंपनियों की परिसंपत्तियों के वास्तविक मूल्य से अधिक मूल्य देकर उन्हें अपने अधीन कर सकती हैं।

बोध प्रश्न ग

1 नियंत्रक कंपनी किसे कहते हैं?

....

....

....

2 मताधिकारी ट्रस्ट और नियंत्रक ट्रस्ट के बीच के भेद बताइये।

....

....

....

3 विलयन और समामेलन के बीच के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

4 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत?

i) संयोजन ट्रस्ट में शामिल होने वाली कंपनियों के शेयरधारी दूसरों को अपने शेयर बेच सकते हैं।

ii) नियंत्रक कंपनी की नियंत्रित कंपनी अपना पृथक् अस्तित्व रखते हुए कार्य करती है।

iii) शुद्ध नियंत्रक कंपनी नियंत्रित कंपनियों के व्यवसाय पर नियंत्रण करने के साथ ही साथ अपना व्यवसाय भी चलाती है।

iv) नियंत्रक कंपनियों के लाभ में से नियंत्रित कंपनियों को भी हिस्सा मिलता है।

v) हित समुदाय के अंतर्गत ऐसा लगता है कि सदस्य व्यावसायिक इकाइयाँ अलग-अलग नियंत्रण के अधीन हैं, परंतु यह सही नहीं है।

vi) विलयन की स्थिति में एक को छोड़कर अन्य सभी कंपनियों का स्वैच्छिक समापन हो जाता है।

14.4 सारांश

व्यावसायिक संयोजनों का वर्गीकरण मोटे तौर पर पाँच श्रेणियों में किया जाता है: (1) समस्तर संयोजन (horizontal combinations), (2) ऊर्ध्वस्तर संयोजन (vertical combinations),(3) पार्श्विक संयोजन (lateral combinations),(4) विकर्णी संयोजन (diagonal combinations) और वर्तुल संयोजन (circualr combinations)।

समस्तर संयोजन से अभिप्राय उन व्यावसायिक इकाइयों के संयोजन से होता है जिनमें एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन होता है। इसका उद्देश्य हो सकता है क्षतिकारी प्रतिस्पर्धा को दूर करना, बड़े पैमाने की किफायतों या पूर्ति को आवश्यकतानुकूल प्राप्त करना। ऊर्ध्वस्तर संयोजन से अभिप्राय उन अनेक इकाइयों के एकीकरण से होता है जो किसी उद्योग के अंतर्गत उत्पादन या वितरण संबंधी आनुक्रमिक कार्यों में लगी होती हैं। इससे इकाइयों को अधिक स्वावलंबी बनाने, बिचौलियों के लाभ को समाप्त करने और नियमित रूप से उत्पादन और विक्रय को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। ऊर्ध्वस्तर संयोजन दो प्रकार का होता है, पश्चगामी ऊर्ध्वस्तर संयोजन तथा अग्रगामी ऊर्ध्वस्तर संयोजन। पार्श्विक संयोजन से अभिप्राय ऐसी फ़र्मों के एकीकरण से होता है जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन या व्यापार तो करती हैं लेकिन किसी न किसी रूप में वे एक दूसरे से संबद्ध होती हैं। अभिसारी (convergent) पार्श्विक एकीकरण की स्थिति में उन विभिन्न उत्पादकों का संयोजन होता है जिनके ग्राहक संयुक्त होते हैं। अपसारी (divergent) पार्श्विक एकीकरण का अर्थ होता है, किसी संयुक्त कच्चे माल के एक पूर्तिकार का विभिन्न उपभोक्ताओं के साथ संयोजन।

किसी उत्पादन इकाई का उसकी अनुषंगी इकाइयों के साथ एकीकरण को विकर्णी संयोजन कहा जाता है। इसका प्रयोजन होता है अनुषंगी सेवाओं का सुचारू रूप से और उचित समय पर उपलब्ध कराना। वर्तुल एकीकरण से अभिप्राय होता है उन व्यावसायिक कार्यों का संयोजन जिनके बीच दूर का संबंध हो।

संयोजन सरल या मिश्रित दो प्रकार का हो सकता है। सरल संयोजन के अंतर्गत एक प्रकार की व्यवस्था वाली फ़र्में आती हैं। मिश्रित संयोजन उन उद्यमों के संयोजन के फलस्वरूप होता है जिनकी व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। मिश्रित संयोजन निम्नलिखित तीन में किसी एक प्रकार का हो सकता है : (1) संघ (association),(2) परिसंघ (federation),और समेकन(consolidation)।

संघ अनेक व्यावसायिक इकाइयों का स्वैच्छिक संगठन होता है जिसे वे अपने सम्मिलित हितों

की रक्षा के लिए बनाती हैं। संघों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है: (1) व्यापार संघ (trade association) (2) व्यापार मंडल (chamber of commerce) और (3) अनौपचारिक समझौता (informal agreement)।

किसी एक ही प्रकार के व्यवसाय में कार्यरत व्यवसायी व्यापार संघ का निर्माण करते हैं। व्यापार मंडल किसी विशेष प्रदेश के सब प्रकार के व्यवसायियों का संघ होता है। ये दोनों ही स्वैच्छिक और अलाभकारी संगठन होते हैं। उनके उद्देश्य होते हैं सदस्यों के व्यावसायिक हितों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ाना। ये सदस्य फ़र्मों के आंतरिक प्रबंध में दखल नहीं देते। अनौपचारिक समझौता से अभिप्राय प्रतिस्पर्धी व्यवसायी फ़र्मों का इस बात से सहमत होना होता है कि वे कुछ आपसी प्रथाओं का पालन करेंगी।

स्वतंत्र व्यावसायिक इकाइयाँ जब पारस्परिक लाभ के लिए अपने बाह्य संबंधों के संबंध में सहबंध (alliance) या संघ (union) बना लेती हैं तब उसे परिसंघ कहा जाता है। परिसंघों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है: (1) पूल (pool) और (2) कार्टेल (cartel)। व्यावसायिक इकाइयों के परिसंघ की स्थापना जब कीमतों तथा संबंधित कारकों पर एक सीमा तक नियंत्रण रखने और कुल लाभ में से अपना अंश लेने के लिए की जाती है तब उसे पूल कहा जाता है। इन इकाइयों के बीच सहमति के आधार पर ये पूल तीन प्रकार के होते हैं: (1) सहमति पूल (2) यातायात पूल और (2) बाजार पूल। व्यवसाय इकाइयों के उस परिसंघ को कार्टेल कहा जाता है जो व्यवसाय के किसी विशेष क्षेत्र में बाजार पर नियंत्रण के लिए संयुक्त विक्रय संगठन की स्थापना करता है।

समेकन (consolidation) संयोजन का वह रूप है जिसमें व्यावसायिक फ़र्में का नियंत्रण एक संयुक्त प्राधिकारी द्वारा होता है। वास्तव में सदस्य फ़र्मों के बीच सबसे अधिक एकीकरणी समेकन की स्थिति में ही हो पाता है। समेकन का उपविभाजन दो श्रेणियों में किया जा सकता है : (1) आंशिक समेकन और (2) पूर्ण समेकन। आंशिक समेकन की स्थिति में विभिन्न फ़र्में अलग से अपना अस्तित्व बनाए रखते हुए संयुक्त नियंत्रण और प्रबंध के अंतर्गत आ जाती हैं। आंशिक समेकन के विभिन्न प्रकार हैं: ट्रस्ट, नियंत्रक कंपनी, और हित समुदाय। पूर्ण समेकन की स्थिति में कंपनियों का विलयन (merger) हो जाता है, अर्थात् कोई कंपनी एक या अधिक कंपनियों को अपने में मिला लेती है या किसी नव निर्मित कंपनी में दो या उससे अधिक कंपनियों का समामेलन (amalgamation) हो जाता है।

14.5 शब्दावली

समामेलन (Amalgmation): संयोजन का एक प्रकार जिसमें वर्तमान कंपनियाँ सवैच्छिक समापन करा लेती हैं और उनकी परिसंपत्तियों को एक नव निर्मित कंपनी ले लेती हैं।

संघ (Association): अनेक व्यावसायिक इकाइयों का स्वैच्छिक संगठन जिसे वे अपने सम्मिलित हित की रक्षा के लिए बनाती हैं।

कार्टेल (Cartel): व्यवसाय के एक ही क्षेत्र की व्यावसायिक इकाइयों के बीच सम्मिलित विक्रय संगठन के संबंध में स्वैच्छिक समझौते को कार्टेल कहा जाता है।

व्यापार मंडल (Chamber of Commerce): किसी विशेष प्रदेश के सभी प्रकार के व्यवसायियों का व्यावसायिक इकाइयों का स्वैच्छिक संगठन जिसका उद्देश्य उनके व्यावसायिक हितों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ावा देना होता है।

संयुक्त ट्रस्ट (Combination Trust): एक प्रकार का संगठन जिसमें अनेक कंपनियों के शेयरधारी ट्रस्ट समझौते के अधीन अपने शेयरों की एक नियंत्रक मात्रा को ट्रस्ट प्रमाण-पत्रों के बदले में ट्रस्टियों के बोर्ड को सौंप देते हैं। इन प्रमाण-पत्रों में लिखा होता है कि ट्रस्ट की आय में उनका क्या अंश है।

हित समुदाय (Community of Interest): व्यावसायिक संयोजन का एक रूप जिसमें केन्द्रीय नीति के संबंध में किसी प्रकार की औपचारिक व्यवस्था के बिना ही अनेक कंपनियों की व्यवसाय नीति का नियंत्रण साझे शेयरहोल्डरों या निदेशकों के एक वर्ग द्वारा होता है।

पूर्ण समेकन (Complete Consolidation): संयोजित होने वाली इकाइयों का पूर्ण रूपेण संलयन जिससे इन इकाइयों का अस्तित्व समेकित इकाई के अधीन चला जाता है।

समेकन (Consolidation): संयोजन का वह रूप जिसमें संयोजित होने वाली इकाइयों का नियंत्रण एक संयुक्त प्राधिकारी द्वारा होता है।

अभिसारी पार्श्विक संयोजन (Lateral Integration): उन विभिन्न फर्मों का संयोजन जो ऐसी अनेक वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो किसी अंतिम उत्पाद का सहबद्ध उपादान (allied components) या कच्चा माल होती है।

विकर्णी संयोजन (Diagonal Combination): किसी मुख्य इकाई का उन इकाइयों के साथ संयोजन जो ऐसी अनुषंगी वस्तुओं या सेवाओं की पूर्ति करती है जो मुख्य इकाई को सुचारू और निर्विध्न रूप से चलाने के लिए आवश्यक होती है।

अपसारी पार्श्विक संयोजन (Divergent Lateral Integration): विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन, लेकिन एक ही प्रकार के कच्चे माल का उपयोग करने वाली इकाइयों का उस इकाई के साथ एकीकरण जो उस कच्चे माल का उत्पादन करती है।

परिसंघ (Federation): एक ही व्यवसाय में लगी हुई प्रतिस्पर्धी व्यावसायिक इकाइयों का सहबंध, जिसके सदस्य इस बात से सहमत होते हैं कि वे पारस्परिक लाभ के लिए कुछ निश्चित नीतियों का पालन करेंगे और क्षतिकारी प्रतिस्पर्धा को कम करेंगे।

नियंत्रक कंपनी (Holding Company): वह कंपनी जिसका एक या उससे अधिक कंपनियों के अधिकांश ईक्विटी शेयरों पर नियंत्रण होता है, इस आधार पर ये कंपनियाँ भी उसके नियंत्रण में होती हैं।

समस्तर संयोजन (Horizontal Combination): उन विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों का संयोजन जो एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

अनौपचारिक समझौता (Informal Agreement): प्रतिस्पर्धी व्यवसायी फ़र्मों के बीच इस बात का समझौता कि वे कुछ निश्चित व्यापार प्रथाओं का पालन करेंगी।

पार्श्विक संयोजन (Lateral Combination): ऐसी फ़र्मों का संयोजन जो विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन या व्यापार तो करती हैं लेकिन किसी न किसी रूप में वे एक दूसरे से सम्बद्ध होती हैं।

विलयन (Merger): वह स्थिति जब कोई वर्तमान कंपनी एक या उससे अधिक उद्यमों की परिसंपत्तियों को खरीदकर और सम्मत राशि का भुगतान करके उनकी देयताओं की ज़िम्मेदारी लेकर उन उद्यमों को अपने में मिला लेती है।

आंशिक समेकन (Partial Consolidation): संयोजन का एक प्रकार जिसमें विभिन्न फ़र्में अपना अलग अस्तित्व बनाए रखते हुए संयुक्त नियंत्रण और प्रबंध के अंतर्गत आ जाती हैं।

पूल (Pool): उन प्रतिस्पर्धी फ़र्मों के परिसंघ को पूल कहा जाता है जो परस्पर सहमति से कीमतों और संबंधित कारकों पर संयुक्त नियंत्रण रखती हैं और इस प्रकार के समझौते से लाभ उठाती हैं।

व्यापार संघ (Trade Association): किसी विशेष प्रकार के व्यापार या उद्योग में लगी हुई व्यावसायिक इकाइयों या परस्पर घनिष्ठ संबंध वाले व्यापारियों के एक वर्ग द्वारा बनाया गया स्वैच्छिक संघ जिसका प्रयोजन उनके आर्थिक हितों को बढ़ाना होता है।

ट्रस्ट (Trust): संगठन का एक रूप जिसमें अनेक व्यवसायी फ़र्में अपने व्यवसाय ट्रस्टियों को सौंप देती हैं।

ऊर्ध्वस्तर संयोजन (Vertical Combinations): उन अनेक इकाइयों का एकीकरण जो किसी उद्योग की अनुक्रमिक क्रियाओं में लगी होती हैं।

मताधिकारी ट्रस्ट (Voting Trust): संयोजन का एक रूप जिसमें विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों के अधिकांश शेयरों के धारक अपने शेयरों को ट्रस्टियों के ज़िम्मे इसलिए कर देते हैं कि वे उनके बदले में मत दे सकें।

14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल, **व्यावसायिक संगठन के सिद्धान्त**, (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 3 खण्ड तीन

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा एवं एस.सी. जोशी, **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध**, (दिल्ली : महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 14

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 i) ख, ii) ग, iii) घ, iv) क, v) च, vi) ङ,

ख 5 i) स्वैच्छिक ii) प्रदेश iii) एक ही क्षेत्र iv) प्रतिस्पर्धी v) बाजार vi) परिवहन vii) सिंडीकेट/केन्द्रीय एजेन्सी viii) फेडेरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर्स ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज।

ग 4 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) गलत v) सही vi) सही

14.8 स्वपरख प्रश्न

1 समस्तर और ऊर्ध्वस्तर संयोजनों के सापेक्ष गुणों और दोषों को स्पष्ट कीजिए।

2 व्यवसाय में विभिन्न प्रकार के कौन-कौन से संयोजन होते हैं? किन्हीं दो को स्पष्ट कीजिए।

3 नियंत्रक कंपनी क्या है? अपनी नियंत्रित कंपनियों पर यह किस प्रकार प्रभाव डालती है। इस प्रकार के संगठन के लाभ और दोषों को स्पष्ट कीजिए।

4 व्यवसाय में संयोजन के रूप मे नियंत्रक कंपनियों, ट्रस्ट और विलयन के सापेक्ष गुणों और दोषों को स्पष्ट कीजिए।

5 पूल क्या है? विभिन्न प्रकार के पूलों के संबंध में चर्चा करें। क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि आर्थिक दृष्टि से पूल कुशल नहीं होते?

6 निम्नलिखित के बीच क्या अंतर है:

क) ट्रस्ट और नियंत्रक कंपनी
ख) समस्तर और ऊर्ध्वस्तर एकीकरण
ग) पूल और कार्टेल
घ) संघ और व्यापार मंडल
ङ) विलयन और समामेलन
च) पूर्ण समेकन और आंशिक समेकन

7 समेकन क्या है? विभिन्न प्रकार के समेकनों को स्पष्ट करें।

नोट: ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इन का उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर आप स्वयं अपनी प्रगति की जांच कर सकते हैं।

इकाई 15 व्यवसाय की व्यवहार्यता

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 व्यवसाय की व्यवहार्यता क्या है ?
15.3 व्यवहार्यता के अध्ययन की आवश्यकता
15.4 व्यवसाय की व्यवहार्यता को निर्धारित करने वाले तत्व
15.5 व्यवहार्यता रिपोर्ट
15.5.1 तकनीकी व्यवहार्यता
15.5.2 आर्थिक व्यवहार्यता
15.5.3 वित्तीय व्यवहार्यता
15.5.4 वाणिज्यिक व्यवहार्यता
15.5.5 प्रबंधकीय व्यवहार्यता
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.10 स्वपरख प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- व्यवहार्यता का अर्थ स्पष्ट कर पाएँगे
- व्यवहार्यता के अध्ययन की आवश्यकता की व्याख्या कर सकेंगे
- व्यवसाय की व्यवहार्यता को निर्धारित करने वाले विभिन तत्वों का वर्णन कर सकेंगे
- व्यवहार्यता के अध्ययन के विभिन्न पहलुओं के बीच अंतर्भेद को स्पष्ट कर सकेंगे

15.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में आप पढ़ चुके हैं कि एक नया व्यावसायिक उपक्रम किस प्रकार अस्तित्व में आता है। इस संदर्भ में आप नए व्यावसायिक उपक्रमों के प्रवर्तन में प्रवर्तकों तथा उद्यमियों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप इस बारे में भी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं कि स्वामित्व व्यवसाय, साझेदारी फर्म अथवा एक कंपनी की संस्थापना के लिए कौन-कौन से कदम उठाए जाते हैं। साधारणतया उद्यमी/प्रवर्तक व्यावसायिक उपक्रम प्रारंभ करने का निश्चय तभी करता है जबकि उसे उस व्यवसाय के लाभप्रद होने की आशा हो। प्रवर्तक को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि विक्रय से प्राप्त आय समस्त लागतों को चुकाने के लिए तथा उचित लाभ अर्जित करने के लिए पर्याप्त होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उद्यमी के लिए सावधानीपूर्वक इस बात का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है कि प्रस्तावित व्यवसाय से पर्याप्त लाभ अर्जित हो सकेगा अथवा नहीं। यह कार्य व्यवहार्यता-अध्ययन (feasibility study) के माध्यम से किया जाता है। इस इकाई में हम व्यवसाय की व्यवहार्यता के अर्थ एवं महत्ता का, व्यवसाय की व्यवहार्यता को निर्धारित करते समय ध्यान में रखने योग्य बातों का तथा व्यवहार्यता रिपोर्ट के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

15.2 व्यवसाय की व्यवहार्यता क्या है?

व्यवहार्यता का अर्थ होता है – साध्यता। अतः व्यवसाय की व्यवहार्यता का अर्थ है, व्यवसाय

की साध्यता। जब किसी उद्यमी को व्यवसाय का अवसर प्राप्त होता है, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि वह व्यवहार में उस व्यवसाय को चालू रखने में समर्थ हो सकेगा। हो सकता है कि जो अवसर हमें उत्तम लगता हो, वही अवसर व्यवसाय के व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् हमें उतना उत्तम न लगे। अत: कोई भी व्यावसायिक उपक्रम प्रारंभ करने से पहले उद्यमी को इस बात पर गंभीरता से विचार करना चाहिए कि जिस व्यावसायिक उपक्रम के बारे में उसने सोचा है क्या वह वास्तव में सफल हो सकेगा। उसे विस्तृत रूप से इन बातों पर विचार करना होगा कि वह किन वस्तुओं का व्यापार करेगा, कौन सी उत्पादन प्रक्रिया अपनाएगा, किन बाज़ारों में उसकी वस्तु की माँग होगी आदि-आदि। उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि क्या व्यवसाय के लिए आवश्यक पूँजी पर लाभ के रूप में पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो सकेगा। मान लीजिए कि उद्यमी को इस बात का पता चलता है कि बाज़ार में एक नए प्रकार के उत्पाद की माँग काफी है। लेकिन इससे वह यह मानकर नहीं चल सकता कि उस व्यवसाय से संबंधित सभी कार्य उसकी आशा के अनुरूप होते रहेंगे। इसलिए किसी भी व्यवसाय को प्रारंभ करने से पहले कई तरह के प्रश्नों पर विचार करना होगा। ऐसे प्रश्न हैं – क्या उस उत्पाद की माँग उतनी ही रहेगी जितनी कि अब है अथवा समय के साथ वह बढ़ेगी या घटेगी? क्या उत्तम किस्म का कच्चा माल उसी मूल्य पर उपलब्ध होगा जो उसने सोचा है? उत्पादन प्रक्रिया कौन सी अपनायी जाएगी? बाज़ार में अपने पैर ज़माने में व्यवसाय को कितना समय लगेगा? यदि इन सभी प्रश्नों के उत्तर अनुकूल हैं तो उद्यमी विश्वास के साथ कह सकता है कि यह व्यवसाय साध्य अथवा व्यवहार्य होगा। इस प्रकार व्यवसाय की व्यवहार्यता से हमारा तात्पर्य तकनीकी, आर्थिक, वित्तीय, वाणिज्यिक एवं प्रबंधकीय दृष्टिकोणों से किसी व्यावसायिक उपक्रम की साध्यता से होता है।

15.3 व्यवहार्यता के अध्ययन की आवश्यकता

ऐसे प्रत्येक उद्यमी के मस्तिष्क में, जो व्यावसायिक अवसरों की तलाश में है तथा जो किसी व्यावसायिक विचार को पहचानने में समर्थ है, ऐसे बहुत से उद्देश्य होते हैं जिनकी वह पूर्ति करना चाहेगा। इनमें से एक उद्देश्य यह है कि व्यवसाय प्रारंभ करने के पश्चात् वह लाभप्रद हो। व्यवसाय को लाभप्रद बनाने के लिए इसका संचालन कुशलता से किया जाना चाहिए। उत्पादन प्रक्रिया तकनीकी दृष्टि से नवीनतम होनी चाहिए। उत्पादन लागत नियंत्रण में होनी चाहिए। उत्पादित वस्तुओं की किस्म संतोषजनक होनी चाहिए। जब भी वित्त की आवश्यकता हो, वित्त उपलब्ध होना चाहिए। ग्राहकों की आवश्यकताओं तथा प्राथमिकताओं का पहले से ही ज्ञान होना चाहिए। इन सभी कारणों को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि वास्तव में व्यवसाय प्रारंभ करने से पहले व्यवसाय की साध्यता का विश्लेषण किया जाना चाहिए। व्यवसाय की व्यवहार्यता का विश्लेषण करने के कई अन्य कारण भी हैं। प्रारंभ में प्रवर्तकों को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न पक्षों के साथ अनुबंध करने पड़ते हैं जैसे भूमि खरीदने के लिए, कारखाना स्थापित करने के लिए, मशीनरी तथा उपस्करों की प्राप्ति के लिए, कच्चे माल की आपूर्ति के लिए आदि-आदि। कोई भी ऐसा अनुबंध करने से पहले यह आवश्यक है कि प्रवर्तक स्वयं उस व्यवसाय की भावी प्रत्याशाओं से संतुष्ट हो जाए, जो व्यवसाय वे प्रारंभ करने जा रहे हैं। अन्यथा यदि बाद में व्यवसाय में कुछ समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं तो अनुबंधों के अंतर्गत समस्त दायित्वों के लिए उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अत: यह आवश्यक है कि व्यवसाय प्रारंभ करने से पहले प्रवर्तक व्यवसाय की व्यवहार्यता के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर लें।

दूसरे, प्रवर्तकों को निवेशकों से आवश्यक पूँजी एकत्रित करनी होती है तथा ऋणों का भी प्रबंध करना होता है। जो लोग विनियोग करना चाहते हैं उन्हें व्यवसाय की सफलता के बारे में भी विश्वस्त कराना होता है। इसका कारण यह है कि निवेशक हमेशा उनके द्वारा निवेशित पूंजी पर प्रतिफल की एक न्यूनतम दर की आशा करते हैं। यदि यह एक कंपनी है तो वह कंपनी से लाभांश की एक उचित दर की आशा करेंगे। यदि व्यवसाय लाभप्रद है तथा इसके कार्यकलापों में विस्तार की संभावना है तो अंशधारी (शेयरहोल्डर) अपने अंशों (शेयरों) के मूल्यों में वृद्धि की आशा करेंगे, जिसका अर्थ होता है – पूँजीगत लाभ। किसी भी अवस्था में निवेशक अपने निवेश की सुरक्षा के इच्छुक होते हैं तथा वे यह जानना चाहेंगे कि क्या व्यवसाय पर्याप्त आय अर्जित करने में समर्थ हो सकेगा। इसलिए निवेशक हमेशा

निवेश करने के इच्छुक जनसाधारण से पूँजी प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रवर्तक वित्तीय संस्थाओं से भी ऋण प्राप्त करते हैं जैसे, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, राज्य औद्योगिक वित्त निगम आदि। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वाणिज्यिक बैंकों से ऋण तथा अग्रिम राशि की व्यवस्था की जाती है। इन सभी अवस्थाओं में उधार देने वाली संस्थाएँ यह सुनिश्चित करना चाहेंगी कि क्या प्रवर्तकों के लिए नियमित रूप से ब्याज चुकाना तथा देय हो जाने पर ऋण का भुगतान करना संभव हो सकेगा। वे यह सुनिश्चित करना चाहेंगी कि व्यवसाय को किन्हीं गंभीर समस्याओं का सामना न करना पड़े तथा व्यवसाय पर्याप्त लाभ अर्जित कर सके। वास्तव में वित्तीय संस्थाओं से वित्तीय सहायता की याचना करते समय प्रवर्तकों को व्यवसाय के अस्तित्व में बने रहने की तथा लाभप्रद होने की क्षमता के बारे में वित्तीय संस्थाओं को संतुष्ट करने के लिए उनके सम्मुख एक विस्तृत व्यवहार्यता रिपोर्ट प्रस्तुत करनी पड़ती है।

जब प्रवर्तक करों में छूट, सरकारी अनुदान, आयात अनुज्ञा, नियंत्रित दरों पर माल खरीदने के लिए आज्ञापत्र आदि के लिए आवेदन करते हैं तो उन्हें संबंधित सरकारी विभागों को इस बारे में संतुष्ट करना पड़ता है कि प्रस्तावित व्यवसाय व्यावहारिक दृष्टिकोण से साध्य है। कई राज्य सरकारें लघु और मध्यम पैमाने के उद्योगों द्वारा स्थापित कारखानों के लिए कम दरों पर भूमि का आवंटन करती हैं तथा विद्युत एवं जल आपूर्ति की गारंटी देती हैं। इन उद्देश्यों के लिए भी व्यवसाय का व्यवहार्य होना आवश्यक है।

15.4 व्यवसाय की व्यवहार्यता को निर्धारित करने वाले तत्व

व्यावसायिक व्यवहार्यता के अर्थ एवं उद्देश्यों के बारे में आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आइये, अब हम व्यावसायिक व्यवहार्यता का निर्धारण करते समय ध्यान में रखने योग्य बातों का अध्ययन करें। जैसा कि आप जानते हैं कि भारत में पंचवर्षीय योजनाओं से उन उद्योगों का पता चलता है जिनके विकास को प्राथमिकता दी जाएगी इसलिए सर्वप्रथम इस बात की जाँच की जानी चाहिए कि प्रस्तावित व्यावसायिक उपक्रम पंचवर्षीय योजना में उल्लिखित प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों के अंतर्गत आता है या नहीं। यदि पंचवर्षीय योजना में इसे प्राथमिकता प्राप्त उद्योग (priority industries) माना गया है तो अनुज्ञा प्राप्त करना मुश्किल नहीं होगा। यदि यह एक छोटे पैमाने का औद्योगिक उपक्रम है तो प्रवर्तकों को यह पता लगाना चाहिए कि क्या उनके द्वारा बनाए जाने वाले तथा विक्रय किए जाने वाले उत्पाद छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए सुरक्षित मदों की सूची में शामिल हैं। यदि ऐसा है तो उस व्यावसायिक उपक्रम को स्थापित करने के लिए राज्य सरकार से विशेष छूट प्राप्त की जा सकती है। इन छूटों में कारखाने के लिए भूमि की उपलब्धता, कम दरों पर विद्युत एवं जल की आपूर्ति आदि शामिल हैं। यदि प्रस्तावित औद्योगिक उद्यम बड़े पैमाने का उद्योग है तो प्रवर्तकों को औद्योगिक अनुज्ञा के लिए आवेदन करना होगा।

एक अन्य ध्यान में रखने योग्य पहलू है – उत्पाद की माँग। अगले तीन से पाँच वर्षों के लिए प्रत्याशित विक्रय की गणना करते समय गत वर्षों की वास्तविक माँग तथा भविष्य की अनुमानित माँग को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता कारखाने के स्थान की स्थिति से घनिष्ठ रूप से संबंधित होती है। स्पष्ट है कि श्रेष्ठ स्थान वही होता है जहाँ व्यावसायिक कार्यों की लागत न्यूनतम हो तथा प्राप्त लाभ अधिकतम हो। इसीलिए भूमि, श्रम, कच्चा माल, जल, विद्युत, परिवहन, भंडारण तथा अन्य सुविधाओं की उपलब्धता एवं लागत से संबंधित विस्तृत जानकारी सहित वैकल्पिक स्थलों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

स्थापित की जाने वाली उत्पादन क्षमता भी समान महत्व का विषय है। स्थापित की जाने वाली उत्पादन क्षमता के संबंध में निर्णय लेने के लिए वर्तमान माँग एवं पूर्ति की स्थितियों को तथा वर्तमान प्रतियोगी फ़र्मों की उत्पादन क्षमता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। उत्पादन क्षमता अथवा उत्पादन तकनीक एक अन्य तत्व है जो उत्पादन के पैमाने का निर्धारण करता है। नवीनतम तकनीक का प्रयोग हमेशा वांछनीय समझा जाता है। लेकिन

जिस तकनीक का चयन किया जाए वह ऐसी होनी चाहिए जिसका सफलतापूर्वक प्रयोग हो चुका हो तथा जिसके लिए आवश्यक कुशल कर्मचारी उपलब्ध हों।

प्रत्याशित लाभों के अनुमानों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बेची गई प्रति इकाई उत्पाद पर लाभ की मात्रा एक ओर प्रति इकाई विक्रय मूल्य पर तथा दूसरी ओर प्रति इकाई कुल लागत पर निर्भर करती है। जैसा कि आप जानते हैं लागत हमेशा स्थिर नहीं रहती तथा प्रायः लागत की प्रवृत्ति घटने के स्थान पर बढ़ने की होती है। इसलिए भावी लागतों का अनुमान करते समय लागतों में वृद्धि की संभावना के लिए भी व्यवस्था की जानी चाहिए। यदि बढ़ती हुई लागतों के अनुरूप ही विक्रय मूल्य को समायोजित कर लिया जाता है तो लाभ पहले जितना ही रहेगा। लेकिन एक प्रतियोगी बाजार में बढ़ती हुई लागतों के अनुरूप विक्रय मूल्य बदलना हमेशा संभव नहीं होता। यदि ऐसा है तो लाभ की मात्रा घट भी सकती है। इसलिए लाभों का अनुमान करते समय लागत की भावी प्रवृत्तियों का तथा लाभों पर उनके संभावित प्रभाव का विश्लेषण करना आवश्यक है।

बोध प्रश्न क

1 व्यवसाय की व्यवहार्यता किसे कहते हैं?

....

....

....

....

....

2 व्यवसाय की व्यवहार्यता का निर्धारण करने वाले तत्वों का नाम बताइये।

....

....

....

....

3 सही विकल्प पर निशान लगाइये।

i) व्यवसाय प्रारंभ करने से पहले उद्यमी को गंभीरता से विचार करना होता है:
   अ) व्यवसाय की व्यवहार्यता पर
   ब) व्यवसाय के स्थल पर
   स) व्यवसाय की वैधता पर

ii) व्यवसाय की व्यवहार्यता का अर्थ है :
   अ) व्यवसाय की कुशलता
   ब) व्यवसाय की साध्यता
   स) निवेश की सुरक्षा

iii) पैसा लगाने से पहले निवेशक मुख्य रूप से जानना चाहते हैं :
   अ) व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता
   ब) निवेश की तरलता
   स) निवेश की हस्तांतरणीयता

4 बताइये कि निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सही हैं तथा कौन से गलत।

i) व्यवसाय की व्यवहार्यता में केवल निवेशकों की ही रुचि होती है।
ii) व्यवसाय की व्यवहार्यता का निर्धारण व्यवसाय प्रारंभ करने के बाद किया जाता है।
iii) यदि बेचे जाने वाले उत्पादों की पर्याप्त माँग है तो उद्यमी इस बात से आश्वस्त हो सकता है कि व्यवसाय सफल होगा।
iv) व्यवसाय की व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए व्यवसाय के समस्त पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

15.5 व्यवहार्यता रिपोर्ट

व्यवसाय की व्यवहार्यता की व्यवस्थित ढंग से जाँच करने के लिए प्रस्तावित व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत रिपोर्ट के आधार पर विचार किया जाता है। ऐसी रिपोर्ट तैयार करने के लिए प्रवर्तक साधारणतया विशेषज्ञों की सहायता लेते हैं। इन रिपोर्टों से उन भावी परिस्थितियों का सही ज्ञान हो जाता है जिनके अंतर्गत व्यवसाय का संचालन होना है। इस प्रकार प्रस्तावित व्यवसाय के तकनीकी, आर्थिक, वाणिज्यिक, वित्तीय एवं प्रबंधकीय प्रत्येक पहलू से संबंधित एक अलग रिपोर्ट उपलब्ध हो सकेगी। ये रिपोर्ट व्यवहार्यता रिपोर्ट कहलाती है क्योंकि इन्हीं रिपोर्टों के आधार पर व्यवसाय की व्यवहार्यता अथवा साध्यता का निर्धारण किया जाता है। आइये, अब हम देखें कि व्यवसाय की व्यवहार्यता की जाँच विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर किस प्रकार की जाती है।

15.5.1 तकनीकी व्यवहार्यता (Technical Feasibility)

तकनीकी दृष्टि से व्यवहार्यता की जाँच के लिए व्यवसाय के निम्नलिखित तीन पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाना चाहिए:

i) संयंत्र अथवा कारखाने का स्थल

ii) संयंत्र का आकार अथवा उत्पादन क्षमता

iii) उद्योग की तकनीकी आवश्यकताएँ

सर्वाधिक लाभप्रद स्थल का चयन करने के लिए वैकल्पिक स्थलों पर विचार करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि जल, विद्युत, शक्ति, भूमि, श्रम, कच्चा माल, परिवहन, निवास आदि अनिवार्य सेवाओं की उपलब्धता तथा आपूर्ति के संदर्भ में प्रत्येक वैकल्पिक स्थल के अपने-अपने लाभ तथा सीमाएँ होती हैं। हो सकता है कि इनमें से कुछ आवश्यक साधन कुछ स्थलों पर उपलब्ध ही न हों अथवा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हों। लागत की दृष्टि से कच्चे माल, ईंधन, विद्युत शक्ति आदि की आपूर्ति के लिए उनके स्रोत स्थानों की निकटता काफी लाभप्रद होती है। लेकिन अन्य बातों के संबंध में कुछ हानियाँ हों, जैसे, दूरस्थ बाजारों में निर्मित वस्तुओं को पहुँचाने की अतिरिक्त लागत आदि, तो लागत का यह लाभ इन हानियों की पूर्ति के लिए पर्याप्त होना चाहिए। अतः किसी विनिर्माण कार्यकलाप की तकनीकी व्यवहार्यता एक ओर तो कच्चे माल, ईंधन, विद्युत शक्ति आदि की उपलब्धता एवं सापेक्ष लागत पर निर्भर करती है तथा दूसरी ओर निर्मित वस्तुओं को बाजारों तक पहुँचाने की परिवहन लागत पर निर्भर करती है। एक आदर्श स्थल वह स्थल होता है जहाँ कच्चे माल आदि की तथा निर्मित वस्तुओं के परिवहन की संयुक्त लागत न्यूनतम हो।

संयंत्र का आकार अथवा उत्पादन क्षमता तकनीकी व्यवहार्यता का एक अन्य पहलू है। संयंत्र की संस्थापित उत्पादन क्षमता दो बातों के आधार पर निर्धारित की जाती है: (i) बाज़ार का आकार अर्थात् संभावित विक्रय तथा (ii) संयंत्र का अनुकूलतम आकार अर्थात् उत्पादन की वह मात्रा जहाँ प्रति इकाई उत्पादन लागत न्यूनतम हो। संयंत्र के आकार के संबंध में निर्णय लेने के लिए बाज़ार के आकार अथवा संभावित माँग को ध्यान में रखना चाहिए। यदि बाज़ार का आकार छोटा है तो आप एक बहुत बड़े संयंत्र के बारे में सोच भी नहीं सकते। यदि आप एक बड़ा संयंत्र स्थापित करते हैं तो जितना माल आप बेच सकते हैं, आपका उत्पादन उससे अधिक होगा। दूसरी ओर यदि आप बाज़ार के आकार अथवा संभावित विक्रय के अनुरूप एक छोटा संयंत्र स्थापित करते हैं तो संयंत्र का आकार अनुकूलतम आकार से छोटा हो सकता है। और यदि संयंत्र का आकार अनुकूलतम आकार से छोटा है तो उत्पादन को देखते हुए अत्यधिक पूँजीगत व्यय के कारण उत्पादन लागत अधिक आएगी। अतः संयंत्र के आकार अथवा उत्पादन क्षमता से संबंधित निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यह निर्णय संभावित बाज़ार को तथा संयंत्र के अनुकूलतम आकार को ध्यान में रखकर ही लिया जाना चाहिए।

तकनीकी व्यवहार्यता को निर्धारित करने वाला तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है — तकनीक की उपयुक्तता अथवा प्रयोग में लाई जाने वाली विनिर्माण प्रक्रिया। यदि यथार्थ परिस्थितियों में इसकी साध्यता के उचित परीक्षण के बिना किसी नई तकनीकी प्रक्रिया का तथा इसके लिए आवश्यक मशीनरी का उपयोग करने का प्रस्ताव है तो संभव है कि वास्तविक क्रियान्वयन के समय प्रत्याशित परिणाम न निकलें। इस प्रकार के जोखिम को कम किया जाना चाहिए। अतः नवीन प्रक्रियाओं तथा मशीनरी का उपयोग तभी किया जाना चाहिए जबकि अन्य उद्यमों में उनके सफल प्रयोग का प्रमाण मिल चुका हो। इसके विपरीत यदि व्यापक रूप से

प्रयोग में लाए जाने वाले उपस्करों तथा प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है तो तकनीकी रूप से अधिक प्रभावशाली प्रक्रियाओं के विकास के कारण उनके अप्रचलित होने की जोखिम बनी रहती है। एक प्रतियोगी बाज़ार में कोई व्यवसाय ठहर ही नहीं सकता यदि इसकी उत्पादन कुशलता उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि इसके प्रतियोगियों की। यदि नवीनतम तकनीक का उपयोग किया जाए तथा उत्पाद की लागत एवं किस्म को ध्यान में रखते हुए उत्पादन में कुशलता हो तो उत्पादन की तकनीकी व्यवहार्यता स्वयं निश्चित हो जाती है।

15.5.2 आर्थिक व्यवहार्यता (Economic Feasibility)

आर्थिक व्यवहार्यता का अध्ययन साधारणतया उत्पाद के बाज़ार विश्लेषण पर आधारित होता है। आर्थिक व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए उत्पाद से संबंधित बाज़ार के तीन पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित तीन पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए - (i) बाज़ार का आकार, (ii) बाज़ार का संभावित विकास, तथा (iii) बाज़ार का वह भाग जिस पर अधिकार कर सकने की आशा हो।

कुल बाज़ार का अथवा किसी नए उत्पाद के बाज़ार का निर्धारण बाज़ार अनुसंधान तथा बाज़ार सर्वेक्षण के आधार पर किया जा सकता है। यदि ऐसी संभावना है कि उत्पाद को किसी स्थानापन्न उत्पाद से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा तो उस स्थानापन्न उत्पाद की बाज़ार-माँग को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। बाज़ार प्रकृति का पता लगाने के लिए इस बात की भी जाँच की जानी चाहिए कि पिछले कुछ वर्षों में स्थानापन्न उत्पाद की माँग बढ़ी है अथवा नहीं। यदि आपके उत्पाद का उपयोग अन्य विनिर्माताओं द्वारा किया जाता है तो उन विनिर्माताओं की वर्तमान तथा भावी माँग का अध्ययन करना भी आवश्यक है। इसका कारण यह है कि आपके उत्पाद की माँग उन विनिर्माताओं द्वारा बनाए जाने वाले उत्पादों पर निर्भर करेगी। मान लीजिए कि आप साइकिल के टायर और ट्यूब बनाने का उद्योग शुरू करने की योजना बनाते हैं। इस स्थिति में टायर और ट्यूब की माँग ज्ञात करने के लिए आपको साइकिलों की वर्तमान माँग का अनुमान लगाना होगा।

किसी उत्पाद की माँग का निर्धारण करने के लिए बाज़ार का भौगोलिक फैलाव एक अन्य महत्वपूर्ण घटक है। कुछ परिस्थितियों में भावी ग्राहकों की एक बहुत बड़ी संख्या एक छोटे से क्षेत्र में केंद्रित हो सकती है। कुछ अन्य परिस्थितियों में थोड़े से भावी ग्राहक पूरे देश में फैले हुए हो सकते हैं। आपकी वितरण नीति भावी ग्राहकों के भौगोलिक फैलाव पर निर्भर करेगी। यदि आप एक नवीन निर्माण तकनीक को अपनाना चाहते हैं तो आपको इस बात का अध्ययन करना होगा कि क्या आपके उत्पाद का बाज़ार क्षेत्र प्रतियोगियों के बाज़ार क्षेत्र से अलग होगा। अतः बाज़ार के भौगोलिक फैलाव का अध्ययन भी निर्णायक होता है।

बाज़ार की प्रकृति का अध्ययन करने के पश्चात् उत्पाद की भावी माँग का अध्ययन करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्रत्येक वर्ष के अनुमान तैयार किए जाते हैं। किसी नए उत्पाद को बाज़ार में लाने के बाद की प्रारंभिक अवधि में उपभोक्ता उत्पाद की उपयोगिता से पूर्णतया अवगत नहीं होते। समय के साथ-साथ उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद की व्यापक स्वीकृति के कारण विक्रय में वृद्धि होती है। लेकिन कुछ समय बाद बाज़ार में प्रतियोगी उत्पादों तथा स्थानापन्न वस्तुओं के प्रवेश के कारण विक्रय में कमी हो सकती है। अतः भावी माँग का अनुमान लगाते समय कई मान्यताओं का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यह माना जा सकता है कि उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि के कारण अथवा अन्य उत्पादों के लिए स्थानापन्न उत्पाद के रूप में इस उत्पाद के व्यापक उपयोग के कारण माँग में अत्यधिक वृद्धि होगी। एक टिकाऊ उपभोज्य उत्पाद के लिए यह माना जा सकता है कि उपभोक्ता नियमित अन्तरालों पर इसका प्रतिस्थापन करेंगे। लेकिन इन सभी मान्यताओं का तथ्यों एवं तर्कों द्वारा अनुमोदन आवश्यक है।

बाज़ार अध्ययन का तीसरा पहलू है – बाज़ार का वह भाग जिस पर उत्पाद का अधिकार हो सकने की आशा हो। बाज़ार भाग का अनुमान लगाने के लिए प्रतियोगियों के बाज़ार भाग का अनुमान लगाना आवश्यक है। यदि नया उत्पाद अधिक अच्छी किस्म का है अथवा अधिक उपयोगी है तो भी उपभोक्ताओं द्वारा उसकी किस्म अथवा उपयोगिता की ग्राह्यता में समय लग सकता है। इस बात की जोखिम हमेशा बनी रहती है कि उपभोक्ता उस उत्पाद को पसंद न करें अथवा कुछ समय बाद इसे अस्वीकृत कर दें। इसके अतिरिक्त किसी नए उत्पाद के विपणन में भी काफी समय लग सकता है। उत्पाद की भावी माँग का अनुमान करते समय इन सभी तत्वों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

15.5.3 वित्तीय व्यवहार्यता (Financial Feasibility)

व्यवसाय की वित्तीय दृष्टि से व्यवहार्यता वित्तीय साध्यता कहलाती है। वित्तीय साध्यता का अध्ययन व्यवसाय स्थापित करने के प्रारंभिक खर्चे की गणना से प्रारंभ किया जाना चाहिए। प्रारंभिक खर्चे में स्थान के विकास की लागत, सड़कों एवं भवनों के निर्माण की लागत, संयंत्र एवं मशीनरी संस्थापना की लागत आदि लागतें शामिल होती हैं। यदि सभी प्रकार की लागतों को शामिल किए बिना अनुमान तैयार किए जाते हैं तो जब व्यवसाय व्यावहारिक रूप से स्थापित हो चुका होता है उस समय वित्त की कमी हो सकती है। यदि लागतों का अनुमान अधिक लगाया जाता है तो अतिरिक्त ऋण के कारण अधिक ब्याज देना पड़ेगा। अतः लागतों का अनुमान सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। निर्माण अवधि के दौरान लागतों की संभावित वृद्धि के लिए भी व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रारंभिक खर्चे के अतिरिक्त संयंत्र एवं मशीनरी, फर्नीचर आदि स्थायी संपत्तियों की लागतों का तथा आवश्यक अल्पकालीन वित्त अर्थात् कार्यशील पूँजी (working capital) का भी अनुमान लगाया जाना चाहिए। अल्पकालीन वित्त की रकम में वर्तमान उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल का स्टाक रखने की लागत, मजदूरी तथा वेतन, जिनका भुगतान किया जाना है, तथा व्यवसाय संचालन के लिए आवश्यक अन्य चालू व्यय शामिल होते हैं। व्यवसाय के कार्यकलापों के परिचालन के लिए तथा व्यवसाय स्थापित करने के विभिन्न चरणों पर पूँजी की आवश्यकताओं का अनुमान लगाना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वित्तीय साध्यता की रिपोर्ट में यह भी दर्शाया जाना चाहिए कि जितनी कुल पूँजी एकत्रित करनी है उसमें उधार ली हुई पूँजी (ऋण) तथा स्वामित्व पूँजी (अंश पूँजी) का क्या अनुपात होगा।

विक्रय से प्राप्त आय का तथा प्रत्याशित लाभों का अनुमान उत्पादन लागत तथा उत्पाद के विक्रय मूल्य के आधार पर लगाया जाना चाहिए। प्रारंभिक अवधि में तथा बाद के वर्षों में उत्पादन एवं विक्रय की प्रत्याशित मात्रा को ध्यान में रखकर ही बनाए जाते हैं। साधारणतया यह मानकर चला जाता है कि प्रथम वर्ष में उत्पादन क्षमता का उपयोग उचित दर से किया जाएगा और बाद में जब विक्रय में वृद्धि होगी तो धीरे-धीरे उत्पादन क्षमता भी बढ़ा दी जाएगी।

किसी व्यवसाय की वित्तीय व्यवहार्यता न केवल अर्जित लाभों पर निर्भर करती है अपितु काफी हद तक वर्तमान एवं भावी देयताओं जैसे ऋणों पर ब्याज, लेनदारों को भुगतान तथा देय होने पर ऋणों की वापसी आदि का भुगतान करने की क्षमता पर भी निर्भर करती है। यदि रोकड़ प्रवाह पर्याप्त है तो यह क्षमता बनी रह सकती है। अतः आगामी तीन से पाँच वर्षों तक के लिए रोकड़ के आगत प्रवाहों तथा निर्गत प्रवाहों के अनुमान तैयार करने होते हैं। रोकड़े के निर्गत प्रवाहों का अनुमान, किए जाने वाले व्यय, आवर्ती देयताओं का किया जाने वाला भुगतान (जैसे लेनदारों को भुगतान, करों का भुगतान, ऋणों का ब्याज आदि), दीर्घकालीन ऋणों से संबंधित वापिस की जाने वाली किश्तें आदि बातों के आधार पर लगाए जाते हैं। रोकड़ के आगत प्रवाहों का अनुमान देनदारों एवं ग्राहकों से वसूली, अतिरिक्त ऋणों अथवा अंश पूँजी की प्रत्याशित प्राप्ति तथा अन्य कोई आय जैसे, किराया अथवा दिए गए ऋणों पर ब्याज आदि के आधार पर किया जाता है।

15.5.4 वाणिज्यिक व्यवहार्यता (Commercial Feasibility)

क्या व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रस्ताव वाणिज्यिक रूप से सफल हो सकेगा, यह बात कई घटकों पर निर्भर करती है जैसे उत्पाद की प्रत्याशित माँग, उत्पादन लागत, वितरण एवं प्रशासन व्यय, व्यवसाय की प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य पर प्रत्याशित विक्रय कर सकने की क्षमता तथा समान अथवा स्थानापन्न उत्पादों के विनिर्माताओं से प्रतिस्पर्धा की प्रबलता। अतः वाणिज्यिक व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए कुछ समय बाद बाज़ार में जिस प्रकार की प्रतिस्पर्धा रहेगी उसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए परिचालन लागतो का अनुमान करना तथा विक्रय मूल्य को प्रत्याशित करना आवश्यक है। चूँकि समय के साथ-साथ कच्चे माल की लागत में तथा मजदूरी में साधारणतया वृद्धि होती है, अतः इन लागतों की भावी वृद्धि के लिए पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रत्येक वर्ष के लिए विक्रय से प्राप्त आय का भी अनुमान संभावित भावी प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखते हुए लगाया जाना चाहिए।

15.5.5 प्रबंधकीय व्यवहार्यता (Managerial Feasibility)

किसी भी व्यवसाय की सफलता अथवा असफलता अंतिम रूप से उन व्यक्तियों की कुशलता

एवं योग्यता पर निर्भर करती है, जो व्यावसायिक उपक्रम को चलाते हैं। यद्यपि तकनीकी, आर्थिक, वित्तीय तथा वाणिज्यिक दृष्टियों से व्यवसाय समृद्ध है तो भी प्रबंधकीय दृष्टि से इसकी व्यवहार्यता पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। जिन प्रबंधकों के पास आवश्यक कुशलता एवं अनुभव है केवल वे ही व्यक्ति अंततोगत्वा व्यवसाय को लाभप्रद बना सकते हैं। आवश्यक प्रबंधकीय एवं तकनीकी कर्मचारी उपलब्ध हैं अथवा नहीं, इस बात का पता लगाना भी आवश्यक है। उचित मात्रा में कुशल कर्मचारियों की उपलब्धता के अभाव में उत्पादन लागत अधिक हो सकती है, उत्पादन प्रक्रिया में हानि अथवा क्षय हो सकता है, उत्पादन तथा विक्रय के स्तर में गिरावट आ सकती है इत्यादि-इत्यादि। अतः प्रबंधकीय दृष्टिकोण से भी व्यवसाय की व्यवहार्यता की जाँच होनी चाहिए।

बोध प्रश्न ख

1 आर्थिक व्यवहार्यता एवं वित्तीय व्यवहार्यता में अंतर बताइये।

....

....

....

2 तकनीकी व्यवहार्यता एवं वाणिज्यिक व्यवहार्यता में अंतर बताइये।

....

....

....

....

3. स्तम्भ "अ" की मदों का स्तम्भ "ब" की मदों से मिलान कीजिए।

स्तम्भ अ	स्तम्भ ब
i) उत्पादन क्षमता	अ) वित्तीय व्यवहार्यता
ii) बाज़ार का आकार	ब) तकनीकी व्यवहार्यता
iii) देयताओं का भुगतान करने का सामर्थ्य	स) आर्थिक व्यवहार्यता
iv) परिचालन लागत तथा विक्रय मूल्य	द) वाणिज्यिक व्यवहार्यता

4. उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) व्यवसाय की .... व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए परिचालन लागतों का विक्रय से हुई आय का अनुमान लगाया जाना चाहिए।

ii) .... व्यवहार्यता निर्धारित करने के लिए बाज़ार सर्वेक्षण आवश्यक है।

iii) आर्थिक व्यवहार्यता के लिए .... के आकार का अनुमान लगाना आवश्यक है।

(iv) तकनीकी दृष्टि से व्यवहार्यता के लिए .... के स्थल की जाँच की जाती है।

v) वाणिज्यिक दृष्टि से व्यवयाय की व्यवहार्यता के लिए .... से प्राप्त आय तथा परिचालन .... का अनुमान लगाना आवश्यक है।

15.6 सारांश

जब किसी उद्यमी को व्यावसायिक अवसर प्राप्त होता है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता है कि वह व्यवहार में उस व्यवसाय को चलाने में समर्थ होगा। अतः व्यवसाय प्रारंभ करने से पहले उद्यमी को तकनीकी, आर्थिक, वित्तीय, वाणिज्यिक एवं प्रबंधकीय दृष्टिकोणों से व्यवसाय की साध्यता का अध्ययन करना पड़ता है। यह व्यवसाय की व्यवहार्यता

कहलाती है। वास्तव में व्यवसाय शुरू करने से पहले व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता एवं भावी प्रत्याशाओं का निर्धारण करने के लिए प्रवर्तकों के लिए ये व्यवहार्यता रिपोर्ट अत्यंत आवश्यक है। क्या इस व्यवसाय में विनियोग सुरक्षित एवं लाभप्रद होगा, इस बात का विश्लेषण करने के लिए व्यवसाय में विनियोग करने वाले जनसाधारण के लिए भी व्यवहार्यता-अध्ययन आवश्यक है। वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने के लिए भी उनके सम्मुख अनुज्ञा, नियंत्रित दरों पर कच्चा माल प्राप्त करने के लिए आज्ञापत्र आदि प्राप्त करने हेतु सरकार के सम्मुख व्यवहार्यता रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है।

व्यवसाय की व्यावहार्यता निर्धारण करने के लिए निम्न पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए – क्या प्रस्तावित उद्योग को पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक उद्योग के रूप में दिखाया गया है, गत वर्षों की माँग तथा प्रत्याशित भावी माँग, वर्तमान उत्पादन क्षमता, तकनीकी विकल्प, कुशल कर्मचारियों की उपलब्धता, लागत संरचना तथा लाभार्जन क्षमता आदि।

व्यवसाय की व्यवहार्यता का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करने के लिए प्रस्तावित व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण विस्तृत रिपोर्टों के आधार पर किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रस्तावित व्यवसाय के तकनीकी, आर्थिक, वाणिज्यिक, वित्तीय तथा प्रबंधकीय, प्रत्येक पहलू के लिए एक अलग रिपोर्ट तैयार की जाती है। तकनीकी व्यवहार्यता के अंतर्गत तीन पहलुओं की विस्तृत रूप से जाँच की जाती है। ये पहलू हैं: (1) संयंत्र अथवा कारखाने का स्थल (2) संयंत्र का आकार अथवा उत्पादन क्षमता तथा (3) तकनीकी विकल्प। आर्थिक व्यवहार्यता मुख्य रूप से उत्पाद के बाज़ार सर्वेक्षण से संबंध रखती है। आर्थिक व्यवहार्यता के अंतर्गत तीन पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है – (1) बाज़ार का आकार (2) बाज़ार का प्रत्याशित विकास तथा (3) बाजार का वह भाग जिस पर अधिकार कर सकने की आशा हो। वित्तीय व्यवहार्यता का संबंध मुख्य रूप से व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं के विस्तृत अनुमानों से तथा वित्त के विभिन्न स्रोतों से होता है। वाणिज्यिक व्यवहार्यता के निर्धारण के लिए समय के साथ बाजार में जिस प्रकार की प्रतिस्पर्धा रहेगी उसकी आकृति को ध्यान में रखते हुए परिचालन लागतों का अनुमान तैयार करना तथा विक्रय मूल्य को प्रत्याशित करना आवश्यक है। प्रबंधकीय व्यवहार्यता व्यवसाय संचालन के लिए आवश्यक तकनीकी तथा प्रबंधकीय कुशलता की उपलब्धता की जाँच करती है।

15.7 शब्दावली

व्यावसायिक व्यवहार्यता (Businesss Feasibility): तकनीकी, आर्थिक, वित्तीय वाणिज्यिक एवं प्रबंधकीय दृष्टियों से व्यावसायिक उपक्रम की साध्यता।

वाणिज्यिक व्यवहार्यता (Commercial Feasibility): समय के साथ बाज़ार में जिस प्रकार की प्रतिस्पर्धा रहेगी उसकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अनुमानित परिचालन लागतों की प्रत्याशित विक्रय मूल्य से तुलना करके व्यवसाय की वाणिज्यिक व्यवहार्यता की जाँच।

आर्थिक व्यवहार्यता (Economic Feasibility): बाज़ार के आकार, बाज़ार के प्रत्याशित विकास तथा जिस भाग पर अधिकार कर सकने की आशा है, उस बाजार भाग के विश्लेषण द्वारा व्यवसाय की आर्थिक व्यवहार्यता की जाँच।

वित्तीय व्यवहार्यता (Financial Feasibility): वर्तमान तथा भावी देयताओं को चुकाने की क्षमता सहित व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं का तथा इसे प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों का विस्तृत अनुमान।

प्रबंधकीय व्यवहार्यता (Managerial Feasibility): व्यवसाय चलाने के लिए तकनीकी तथा प्रबंधकीय कुशलताओं तथा आवश्यकताओं की जाँच।

तकनीकी व्यवहार्यता (Technical Feasibility): संयंत्र के स्थल, संयंत्र के आकार अथवा उत्पादन क्षमता तथा तकनीकी विकल्पों के विश्लेषण द्वारा व्यवसाय की तकनीकी व्यवहार्यता की जाँच।

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दीपक लाल: **मेथड्स ऑफ प्रोजेक्ट अनालेसिसः ए रिव्यू** , (वाशिंगटन – विश्व बैंक, 1974)

भारत सरकार : **औद्योगिक परियोजनाओं की व्यवहार्यता रिपोर्ट तैयार करने के लिये निर्देश**, (नई दिल्ली योजना कमीशन, 1975)

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 i) अ ii) ब iii) अ
4 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही

ख 3 i) ब ii) स iii) अ iv) द
4 i) वाणिज्यिक ii) आर्थिक iii) बाज़ार iv) संयंत्र/कारखाना v) विक्रय, लागत

15.10 स्वपरख प्रश्न

1 व्यवसाय की व्यवहार्यता किसे कहते हैं? किसी व्यवसाय की व्यवहार्यता की जाँच करना क्यों आवश्यक है?

2 किसी व्यवसाय की व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए कौन-कौन से मुख्य तत्वों पर विचार किया जाना चाहिए?

3 व्यवहार्यता रिपोर्ट के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

4 व्यवसाय की तकनीकी व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए जिन विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।

5 व्यवसाय की आर्थिक व्यवहार्यता से आप क्या समझते हैं? आर्थिक व्यवहार्यता का निर्धारण करने के लिए जिन विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है, उनका वर्णन कीजिए।

6 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये:
अ) वाणिज्यिक व्यवहार्यता
ब) प्रबंधकीय व्यवहार्यता
स) वित्तीय व्यवहार्यता

नोटः	ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए हैं। इन का उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। प्रश्नों के उत्तर लिखकर आप स्वयं अपनी प्रगति की जाँच कर सकते हैं।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-01
व्यावसायिक संगठन

खंड

5

सरकार और व्यवसाय

इकाई 16
व्यवसाय में सरकार की भूमिका 5

इकाई 17
सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप 23

इकाई 18
लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ 42

खंड 5 सरकार और व्यवसाय

मुक्त उपक्रम (Free Enterprise) और अहस्तक्षेप नीति (laissez faire policy) के कारण एकाधिकारियों की वृद्धि बिना रोकटोक के हुई तथा धन कुछ हाथों में केंद्रित होता गया। उद्योग भी कुछ स्थानों में केन्द्रित होते गये, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन (regional imbalance) की स्थिति पैदा हो गई। निजी उद्यमियों ने उन मूल और सामरिक महत्त्व के कुछ उद्योगों (basic and strategic industries) के प्रति भी रुचि नहीं दिखाई जिनमें लाभ की गुंजाइश कम होती है, जोखिम अधिक है तथा पूँजी की बहुत बड़ी रकम लगानी पड़ती है। परन्तु हम जानते हैं कि उद्योगीकरण के लिए ये उद्योग अति महत्वपूर्ण हैं। अत: एकाधिकारियों की वृद्धि को रोकने, धन का समान वितरण करने तथा असंतुलन को हटाने के उद्देश्य से सरकार को व्यावसायिक क्रियाओं के संवर्धक, संरक्षक और नियंत्रक की भूमिका निभानी पड़ी। सरकार एक ओर तो निजी उपक्रमियों के व्यावसायिक कार्यों का नियमन करने लगी और दूसरी ओर वह कुछ व्यवसायों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने लगी। इस खंड में निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण तथा कुछ व्यवसायों में सरकार की प्रत्यक्ष सहभागिता (direct participation) के कारणों के संबंध में विचार किया गया है। साथ ही सार्वजनिक उद्यमों और लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं के विभिन्न पक्षों के संबंध में भी विवेचन किया गया है। इस खंड में 16, 17 व 18 तीन इकाइयाँ हैं।

इकाई 16 में निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण के कारणों, ऐसे नियंत्रण के साधनों तथा व्यवसाय की सहभागिता के संबंध में विचार किया गया है। यहाँ पर सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों, उनके कार्य संपादन तथा उनसे संबंधित समस्याओं का भी विवेचन किया गया है।

इकाई 17 में सार्वजनिक उद्यमों के अनेक रूपों की विशेषताओं, गुणों और सीमाओं के संबंध में विचार किया गया है तथा किसी दी हुई स्थिति में कौन-सा रूप उपयुक्त है, इसका सर्वोचित विश्लेषण भी किया गया है।

इकाई 18 में लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं के संचालन के संबंध में चर्चा की गई है तथा यह भी बताया गया है कि ऐसे उद्यमों पर सरकारी विनियमन और नियंत्रण की क्यों आवश्यकता पड़ती है।

इकाई 16 व्यवसाय में सरकार की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण के कारण
16.3 सरकारी नियंत्रण के रूप
16.4 सरकार व्यवसाय में क्यों भाग लेती है ?
16.4.1 मूल कारण
16.4.2 सैद्धांतिक कारण
16.4.3 कुछ विशेष कारण
16.5 सार्वजनिक उद्यम क्या है ?
16.6 सार्वजनिक उद्यमों की विशेषताएँ और उद्देश्य
16.7 सार्वजनिक उद्यमों की प्रगति
16.8 सार्वजनिक उद्यमों का योगदान
16.9 सार्वजनिक उद्यमों की समस्याएँ
16.10 सारांश
16.11 शब्दावली
16.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.14 स्वपरख प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- बता पाएँ कि निजी उद्यमों के व्यावसायिक कार्यों का नियंत्रण सरकार क्यों करती है
- सरकारी नियंत्रण के अनेक रूपों का स्पष्टीकरण कर सकें
- सार्वजनिक उद्यम की परिभाषा दे सकें
- बता पाएँ कि किन मूल कारणों से सरकार स्वयं व्यवसाय में भाग लेती है
- सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों और विशेषताओं के संबंध में बता पाएँ
- भारत के सार्वजनिक उद्यमों की प्रगति, समस्याओं और दोषों के संबंध में बता सकें ।

16.1 प्रस्तावना

परंपरागत रूप से ही व्यवसाय संबंधी कार्य व्यक्तियों तथा निजी संगठनों के हाथ में होता था। यह मान लिया जाता था कि प्रतियोगी बाजार में व्यवसायी वर्ग के लाभ अभिप्रेरण (profit-motive) तथा माँग और पूर्ति की शक्तियों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने देने से उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता है तथा वस्तुओं और सेवाओं का वितरण इस प्रकार होता है कि समाज के सभी वर्ग के लोगों के हित की रक्षा होती है। परन्तु उपर्युक्त प्रकार की नीति के फलस्वरूप एकाधिकार में बेरोकटोक वृद्धि होती रही और कुछ थोड़े से व्यवसाय गृहों (business houses) के हाथ में धन संचित होता रहा। निजी उपक्रमियों का मुख्य प्रयोजन लाभ कमाना होता है। उनकी रुचि ऐसे उद्यमों में नहीं होती जिनमें लाभ की गुंजाइश कम होती है, पक्वनावधि (gestation period) लम्बी होती है तथा निवेश की राशि बहुत बड़ी होती है। उद्योगों का संकेन्द्रण कुछ ऐसे स्थानों में होता चला जाता है जहाँ पर कच्चे माल, तकनीकी कौशल,

आधारिक संरचना की सुविधाएँ (infrastructural facilities), बाजार की समीपता आदि प्राकृतिक सुलाभ उपलब्ध हों। चूँकि सभी क्षेत्रों में ये प्राकृतिक सुलाभ उपलब्ध नहीं होते, अत: क्षेत्रीय असंतुलन (regional imbalance) की स्थिति पैदा हो जाती है इस स्थिति में सरकार के लिए आवश्यक हो गया है कि वह एकाधिकार की वृद्धि और संपत्ति के संकेन्द्रण को रोकने तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ाने के संबंध में कुछ कदम उठाए। एक ओर तो सरकार निजी उद्यमकर्ताओं के व्यावसायिक कार्यों को विनियमित करने लगी और दूसरी ओर वह व्यवसाय में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने लगी। इस इकाई में जिन विषयों के संबंध में विचार किया जाएगा वे हैं : निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण के कारण, इन नियंत्रणों के अनेक रूप, व्यवसाय में सरकारी सहभागिता के मूल कारण, सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्य और विशेषताएँ तथा इनकी सीमाएँ।

16.2 निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण के कारण

अब हम उन कारणों के संबंध में विस्तार से चर्चा करेंगे जिनके फलस्वरूप सरकार को निजी व्यवसाय के क्रियाकलापों का विनियमन और नियंत्रण करना पड़ता है। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

1 **मुक्त उद्यम और निजी स्वामित्व के दोष :** मुक्त उद्यम एवं निजी स्वामित्व के निम्नलिखित दोष हैं :

i) उद्यम के मुक्त होने के कारण बड़ी-बड़ी व्यावसायिक फर्में कुछ एकाधिकारियों के स्वामित्व में आ गईं। एकाधिकारी शक्ति का प्रयोग उत्पादन पर प्रतिबंध लगाने तथा कीमतों को बढ़ाने के लिए किया जाने लगा जिससे अधिक लाभ कमाया जा सके।

ii) व्यवसाय पर निजी स्वामित्व के चलते संपत्ति का संकेन्द्रण कुछ थोड़े से व्यावसायिक गृहों के हाथ में हो गया। इस कारण लोगों के बीच आय और संपत्ति की बहुत असमानता आ गई।

iii) कंपनियों का आकार बड़ा होने लगा, जिसके फलस्वरूप बाजार में नई फर्मों के प्रवेश पर रोक सी लग गई।

iv) लाभ कमाने के लिए निजी उपक्रम या उद्यमी हानिकर विज्ञापन और अनुचित प्रतियोगिता का आश्रय लेने लगे।

v) व्यवसाय में समय समय पर तेजी और मंदी आने लगी। मंदी के कारण लोग बड़े पैमाने पर बेकार होने लगे जिससे उनकी परेशानियाँ बढ़ गईं। दूसरी ओर तेजी के समय में सट्टेबाजी के कारण व्यवसाय चौपट होने लगे और आर्थिक संकट आने लगे।

2 **कल्याणकारी राज्य की स्थापना :** सरकार पर जनता का दिन प्रति दिन दबाव बढ़ने लगा कि वह एकाधिकारियों पर नियंत्रण, उचित व्यापार प्रथाओं की स्थापना तथा आय और संपत्ति का समान वितरण करके समाज का कल्याण करे और सामान्य जनता के हितों की रक्षा करे।

3 **योजनाबद्ध आर्थिक विकास :** कुछ उन आधार भूत उद्योगों के तेजी से विकास के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है, जिनमें बहुत बड़ी राशि के निवेश की जरूरत पड़ती है या जिनका प्रतिफल बहुत ही कम होता है। इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था को सुनियोजित दिशा देने के लिए यह आवश्यक होता है कि कुछ उद्योगों की संवृद्धि को प्राथमिकता दी जाए। लेकिन निजी उपक्रमी का मुख्य उद्देश्य विकास की प्राथमिकता नहीं बल्कि लाभ कमाना होता है। इसके अतिरिक्त निजी उद्यमों का संकेन्द्रण ऐसे कुछ क्षेत्रों में होता है जहाँ पर सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध हों। इस प्रकार देश के पिछड़े क्षेत्र औद्योगिक विकास के लाभ से वंचित रह जाते हैं। इसलिए राष्ट्र के तेजी से आर्थिक विकास के लिए सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह निजी व्यवसाय को विनियमित करे तथा निजी निवेश को योजनाबद्ध कार्यों में लगाए। सरकार के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह औद्योगिक और व्यावसायिक कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग ले जिससे विकास की प्रक्रिया में तेज़ी आ सके।

4 अन्य कारण : निजी व्यवसाय पर सरकारी विनियमन के कुछ और भी कारण हैं, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है।

i) निजी फर्मों को अपने लाभ के लिए खनिज, वन आदि दुर्लभ प्राकृतिक साधनों का दुरुपयोग करने से रोकना।

ii) भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर दुर्लभ साधनों के समुचित उपयोग को निश्चित करना।

iii) लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा संरक्षण देना।

iv) विदेशी निवेशकों के प्रभुत्व से अर्थव्यवस्था को सुरक्षित रखना।

16.3 सरकारी नियंत्रण के रूप

पिछले पृष्ठों में आपने पढ़ा है कि किन कारणों से सरकार निजी व्यवसाय को विनियमित करती है। अब हम देखेंगे कि निजी उद्यम के विनियमन के लिए सरकार क्या उपाय करती है। निजी व्यवसाय पर सरकारी विनियमन निजी कार्यकलापों पर नियंत्रण तक ही सीमित नहीं होता। सच तो यह है कि नियंत्रण संबंधी इन उपायों का व्यवसाय पर नियंत्रण के साथ-साथ उत्प्रेरक प्रभाव भी पड़ता है। इन उपायों का उत्प्रेरक प्रभाव तब पड़ता है जब इनका उद्देश्य तकनीकी और वित्तीय सहायता, कर रियायतों, आर्थिक सहायता, बैंक ऋण, कच्चे माल या मशीनों के आयात के लिए विदेशी मुद्रा की पूर्ति, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा आदि के द्वारा किसी विशेष प्रकार के व्यापार या उद्योग कार्य को उत्तेजित, प्रोत्साहित, सरल या उत्प्रेरित करना होता है। इसके विपरीत इन उपायों का उस स्थिति में प्रतिबंधक प्रभाव पड़ता है जब उनका उद्देश्य कानूनी व्यवस्था और प्रशासनिक आदेशों के द्वारा निजी व्यापार और उद्योग पर रोक लगाना होता है। इसके उदाहरण हैं उद्योगों को शुरू या उनका विस्तार करने के लिए लाइसेन्स प्राप्त करना, पूँजी जारी करने पर नियंत्रण, अधिकतम कीमत का निर्धारण इत्यादि। परंतु कुछ उपायों का दोनों प्रकार से प्रभाव पड़ता है। जैसे कच्चे माल का आयात करने वाले उद्योग पर यदि ऐसे माल के आयात पर कुछ प्रतिबंध लगा दिया जाए या आयात करने से उसे बिल्कुल ही रोक दिया जाए तो उस उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। परंतु इनके प्रतियोगी वस्तुओं के उत्पादकों की स्थिति अच्छी रहेगी और वे अधिक लाभ कमा पाएँगे।

नियंत्रणों का वर्गीकरण दो श्रेणियों में इस आधार पर भी किया जा सकता है कि ये उपाय प्रत्यक्ष रूप से लागू होते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से। इस तरह नियंत्रण दो प्रकार के होते हैं : प्रत्यक्ष नियंत्रण और अप्रत्यक्ष नियंत्रण। अब हम इन दोनों के संबंध में संक्षेप में चर्चा करेंगे।

प्रत्यक्ष नियंत्रण

प्रत्यक्ष नियंत्रण वे उपाय हैं जिन्हें सरकारी अधिकारियों की मर्जी से लागू किया जाता है। इस प्रकार के नियंत्रण का उपयोग निजी संगठनों या उनकी श्रेणियों के कार्यों को संवर्धित, प्रतिबंधित या परिसीमित करने के लिए किया जाता है। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :

1 नए उद्यमों को लाइसेन्स देना या पहले से चल रहे बड़े उद्यमों का विस्तार।

2 पूँजी जारी करने के लिए कंपनियों द्वारा जारी किए गए शेयरों, ऋणपत्रों आदि पर नियंत्रण (पूंजी निर्गम पर नियंत्रण)।

3 प्रत्यक्ष निषेध या कोटा प्रतिबंध के द्वारा आयात तथा निर्यात पर नियंत्रण।

4 विशिष्ट वस्तुओं की अधिकतम और न्यूनतम कीमत का निर्धारण।

5 राशन-व्यवस्था के द्वारा वस्तुओं के वितरण पर नियंत्रण।

6 औद्योगिक संवृद्धि के लिए आर्थिक सहायता।

7 आर्थिक सहायता, ऋण सुविधाएँ आदि द्वारा निर्यात संवर्धन को प्रोत्साहन।

इन नियंत्रणों को विवेकी नियंत्रण (discretionary controls) कहा जाता है क्योंकि इनमें सरकारी कर्मचारियों का निर्णय सन्निहित होता है।

अप्रत्यक्ष नियंत्रण

ये अप्रत्यक्ष नियंत्रण निजी व्यावसायिक फर्मों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अप्रत्यक्ष नियंत्रणों के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं :

1 **कर की दर में परिवर्तन :** व्यवसाय को प्रोत्साहित करने या उन पर रोक लगाने के उद्देश्य से कर की दर को क्रमशः घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

2 **आयात और निर्यात शुल्कों में परिवर्तन :** कुछ वस्तुओं की कीमतों को बढ़ाने के लिए आयात शुल्क बढ़ा दिया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य होता है इन वस्तुओं के आयात को कम करना या विदेशी उद्यमों के साथ प्रतियोगिता में देशीय उद्योगों को संरक्षण देना। आयात शुल्कों को घटाने का प्रयोजन होता है कुछ वस्तुओं का बड़ी मात्रा में आयात होने देना। इसी प्रकार देशीय माँग और पूर्ति को प्रभावित करने के लिए निर्यात शुल्क घटाया या बढ़ाया जाता है। उदाहरणार्थ निर्यात शुल्क में वृद्धि से निर्यात घट जाता है और देश के अंदर अधिक मात्रा में माँग की पूर्ति होने लगती है, परन्तु निर्यात शुल्क घटाने पर निर्यात बढ़ जाता है।

3 **बैंक ऋणों पर ब्याज की दरों में परिवर्तन :** कीमतों पर नियंत्रण के लिए सरकार अपनी मुद्रा नीति में परिवर्तन कर सकती है। उदाहरणार्थ, बैंक ऋणों और साख की ब्याज दर को बढ़ाया जा सकता है, जिससे कि व्यवसायों के उद्यमियों पर अत्यधिक ऋण लेने और व्यय करने पर रोक लग सके और व्यावसायिक फर्में नया निवेश न कर पाएँ। इसके विपरीत बैंक ऋणों की ब्याज दर को घटाया जा सकता है जिससे व्यावसायिक फर्मों को ऋण लेने तथा व्यावसायिक कार्यों के विस्तार करने के संबंध में उत्प्रेरित किया जा सके।

अप्रत्यक्ष नियंत्रणों को **नियमगत नियंत्रण** (non-discretionary controls) भी कहा जाता है। सरकारी अधिकारियों के पास यह अधिकार नहीं होता कि वे अपने विवेक के अनुसार इन उपायों को किन्हीं विशेष फर्मों पर लागू करें और इसी श्रेणी की कुछ अन्य फर्मों पर न करें।

आर्थिक नियोजन

अनेक विकासशील देश अब आर्थिक विकास में नियोजन के महत्त्व को मानने लगे हैं तथा उन्होंने औद्योगिक विकास के लिए व्यापक आर्थिक नीतियों को अपना लिया है। भारत में यह कार्य पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा किया जाता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत 1951 ई. में की गई। तब से अब तक सात पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित कर लिया गया है और अब आठवीं योजना चल रही है। इन योजनाओं में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :

i) राष्ट्रीय आय की संवृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति जिससे जनता के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके।

ii) देश में औद्योगिक संवृद्धि लाना। यह कार्य कुछ विशेष प्राथमिकताओं के अनुसार और इस्पात, ईंधन और शक्ति, रसायन, उर्वरक और इंजीनियरी वस्तुएँ जैसे मूल और भारी उद्योगों पर विशेष बल देते हुए तथा परिवहन और संचार सुविधाओं की व्यवस्था करके किया जाएगा।

iii) बढ़ती हुई श्रमिक शक्ति को रोजगार देने के लिए और अधिक रोजगार के अवसरों को उपलब्ध कराना।

iv) कृषि उत्पादन को बढ़ाना तथा खाद्यान्नों के संबंध में स्वावलंबन की स्थिति लाना।

v) क्षेत्रीय असमानता को कम करना तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्राप्ति।

vi) सीमित साधनों का यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग करना।

आर्थिक नियोजन विभिन्न उद्योगों के विकास की प्राथमिकता का सामान्य सूचक होता है और इस नाते यह विकास की प्रक्रिया का मार्ग निर्देशन करता है। इसके अतिरिक्त वह यह भी बताता है कि निजी संगठनों को विकास कार्य के लिए ईंधन, बिजली, वित्त आदि दुर्लभ साधन किस मात्रा में दिए जाएँ।

पंचवर्षीय योजनाओं में यह भी निर्धारित होता है कि किन आर्थिक और सामाजिक कार्यों को सरकार स्वयं करेगी।

औद्योगिक नीति

हमारे देश के औद्योगिक विकास का मार्ग निर्देशन, विनियमन, नियंत्रण और संवर्धन औद्योगिक नीति के अनुसार होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने नीति संबंधी बहुत से बयान दिए हैं जिनमें औद्योगिक विकास में सरकारी, निजी, सहकारी और संयुक्त क्षेत्रक संगठनों की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। इन नीतियों में यह भी बताया गया है कि एक दूसरे की तुलना में बड़े, मध्यम और छोटे आकार की औद्योगिक इकाइयों का क्या महत्त्व होता है। अप्रैल 1948 में सरकार ने प्रथम औद्योगिक नीति प्रस्ताव (industrial policy resolution) स्वीकृत किया जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि देश के औद्योगिक विकास में सरकार की भूमिका दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाएगी परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी बताया गया था कि नीति की संरचना के अंतर्गत कार्य करते हुए निजी संगठनों की भूमिका पूरक (complementary) के रूप में होगी।

1956 में भारत सरकार ने एक नई औद्योगिक नीति संकल्प को दोहराया जिसमें निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए थे :

i) आर्थिक संवृद्धि की दर को बढ़ाना।
ii) औद्योगिक विकास की गति को बढ़ाना।
iii) औद्योगिक संवृद्धि में सरकारी सहभागिता के क्षेत्र को बढ़ाना।
iv) निजी एकाधिकार और आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाना।
v) छोटे, ग्राम और कुटीर उद्योगों की भूमिका को स्पष्ट करना।
vi) संतुलित क्षेत्रीय विकास लाना।

इस संकल्प के अधीन उद्योगों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया।

i) संकल्प की अनुसूची *क* में लिए गए उद्योगों को राजकीय एकाधिकार के रूप में विकसित किया जाएगा। इन उद्योगों के विकास के संबंध में केवल राज्य का ही दायित्व होगा। इस श्रेणी के उद्योग हैं परमाणु ऊर्जा, आयुध और गोला बारूद (arms and ammunition), भारी मशीन, रेलवे, हवाई परिवहन इत्यादि।
ii) अनुसूची *ख* में उन उद्योगों को लिया गया है जिन पर राज्य का दिन-प्रति-दिन स्वामित्व बढ़ता जाएगा और जिनकी नई इकाइयों की स्थापना के संबंध में सामान्य रूप से राज्य ही पहल करेगा, परंतु इसके साथ ही साथ निजी उद्यमों को भी अवसर दिया जाएगा कि वे इस क्षेत्र में अपने ही बल पर या राज्य के सहयोग से विकास करें। इस श्रेणी के अंतर्गत ये उद्योग हैं : एल्युमिनियम औषधियाँ, मशीन उपकरण (machine tools), उर्वरक, सड़क और समुद्री परिवहन, आदि।
iii) शेष उद्योगों की नई इकाइयों की स्थापना और वर्तमान इकाइयों के विकास के संबंध में निजी संगठन पहल करेंगे।

आगे चलकर सरकार ने 1956 में स्वीकृत की गई नीति के कुछ पक्षों में संशोधन किया। परन्तु मूल नीतियाँ लगभग पहले जैसी ही हैं।

उद्योग लाइसेंस

औद्योगिक नीति संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए सरकारी नियंत्रण और विनियमन के साधन के रूप में उद्योग लाइसेंस प्रणाली की शुरुआत की गई। इसके लिए उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 [Industries (Development and Regulation) Act, 1951] में व्यवस्था की गई। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए बिना किसी नई औद्योगिक इकाई की स्थापना नहीं की जा सकती तथा वर्तमान प्लान्टों में बहुत अधिक विस्तार नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था है कि नए उद्यमों को लाइसेंस देते समय उनकी अवस्थिति (location), न्यूनतम आकार आदि के संबंध में सरकार कुछ शर्तें लगा सकती है।

आशा की गई थी कि उद्योग लाइसेंस प्रणाली के अंतर्गत निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकेगी :

i) योजनाबद्ध प्राथमिकताओं और संवृद्धि के लक्ष्यों के अनुसार औद्योगिक विकास का विनियमन और उद्योगों में निवेश का मार्गदर्शन।
ii) एकाधिकार और धन के संकेन्द्रण पर नियंत्रण।
iii) बड़े उद्योगों के साथ प्रतियोगिता में छोटे पैमाने के उद्योगों का संरक्षण।
iv) कुछ थोड़े से स्थानों पर उद्योगों के संकेन्द्रण पर रोक और उद्योगों के क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन।
v) दुर्लभ विदेशी मुद्रा साधनों का सर्वोत्तम संभव उपयोग।

बोध प्रश्न क

1 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?
   i) व्यावसायिक कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप का मुख्य कारण था सभी आर्थिक क्रियाओं को सरकार के स्वामित्व और प्रबंध के अंतर्गत लाना।
   ii) आर्थिक विकास के लिए नियोजन एकमात्र कारण रहा है जिससे उद्योगों का विनियमन और नियंत्रण करना पड़ा।
   iii) आयात शुल्क टैरिफ को घटाना या बढ़ाना प्रत्यक्ष नियंत्रण का एक साधन है।
   iv) अप्रत्यक्ष नियंत्रण के अंतर्गत बैंक ऋण के लिए ब्याज दर में परिवर्तन भी शामिल होता है।
   v) उद्योग लाइसेन्स द्वारा छोटे पैमाने के उद्योगों का संरक्षण होता है।

2 खाली स्थानों को भरें :
   i) प्रत्यक्ष नियंत्रणों का .... या .... प्रभाव पड़ सकता है।
   ii) कोटा पद्धति के द्वारा आयात पर प्रतिबंध एक प्रकार का .... नियंत्रण है।
   iii) निर्यात के लिए नकद आर्थिक सहायता एक प्रकार का .... नियंत्रण है।
   iv) आर्थिक नियोजन औद्योगिक विकास की प्रक्रिया का .... करता है।
   v) 1956 के औद्योगिक नीति संकल्प में उद्योगों का वर्गीकरण .... श्रेणियों में किया गया है।
   vi) उद्योग लाइसेंस प्रणाली की शुरुआत .... को कार्यान्वित करने के लिए की गई।

16.4 सरकार व्यवसाय में क्यों भाग लेती है?

हमने पढ़ा है कि सरकार एक ओर तो निजी उद्यमों का नियंत्रण करती है और दूसरी ओर वह व्यवसाय में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती है। निजी व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण की आवश्यकता और नियंत्रण के रूप के संबंध में विचार किया जा चुका है। अब व्यवसाय में सरकारी सहभागिता के मूल कारणों के संबंध में विचार किया जाएगा।

इस समय सरकार विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक उपक्रमों को चला रही है। सरकारी संगठनों के अधीन अनेक प्रकार की सेवाएँ हैं, जैसे जल, डाक, दूरसंचार, परिवहन इत्यादि। इन संगठनों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के विनिर्माण उद्योग (manufacturing industries) भी सरकार के स्वामित्व और प्रबन्ध के अधीन हैं। वे इस्पात, रेल इंजन, मशीन औजार, घड़ी, रेल की कोच, टेलीफोन उपस्कर आदि वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। सरकारी उपक्रम उपभोक्ता वस्तुओं के पूर्ति कार्य में भी लगे हुए हैं, जैसे दूध (सरकारी दूध योजनाओं के द्वारा), ब्रेड (माडर्न बेकरीज़), कपड़ा (नेशनल टेकस्टाइल कार्पोरेशन), इत्यादि। अब प्रश्न उठ सकता है कि सरकार व्यवसाय में प्रत्यक्ष रूप से क्यों भाग लेती है। व्यवसाय और उद्योग में सरकार की प्रत्यक्ष सहभागिता के कारणों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है : (1) मूल कारण (2) सैद्धांतिक कारण (3) विशेष कारण। अब इन कारणों के संबंध में विस्तार से विचार किया जाएगा।

16.4.1 मूल कारण

भारत सरकार जानती थी कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता निरर्थक है। इसीलिए देश का यथाशीघ्र उद्योगीकरण करने का निर्णय लिया गया। सरकार ने महसूस किया कि इस दिशा में यदि केवल निजी क्षेत्रक को ही पहल करने दिया जाता है तो उद्योगीकरण के उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत समय लग जाएगा। यह इसलिए कि बड़े पैमाने के उपक्रमों को शुरू करने के लिए निजी उद्यमियों के पास पर्याप्त उद्यमवृत्ति (entrepreneurship) और साधनों की कमी होती है। इसीलिए सरकार ने इस संबंध में दो प्रकार के कदम उठाए। एक ओर तो उसने नए उद्योगों की स्थापना के लिए निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित किया और दूसरी ओर वह स्वयं ही बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना करने लगी।

निर्णय लिया गया कि स्टील प्लांटों, उर्वरक कारखानों तथा उद्योग और कृषि की समृद्धि के लिए आवश्यक अन्य इकाइयों की स्थापना की जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दस वर्ष के अंतर्गत सरकार ने जिन प्रमुख उद्यमों और शक्ति परियोजनाओं (power project) को स्थापित किया उनके नाम इस प्रकार हैं :

1 राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर में स्टील प्लांट।
2 चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स।
3 हिन्दुस्तान मशीन टूल्स।
4 सिन्दरी फर्टीलाइज़र फैक्टरी।
5 हिन्दुस्तान शिपयार्ड।
6 हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स
7 हिन्दुस्तान केबल्स।
8 इन्टीग्रल कोच फैक्टरी।
9 इन्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज।
10 शक्ति और सिंचाई परियोजनाएँ — तुंगभद्रा, भाखड़ा नंगल, हीराकुंड, दामोदर वैली, चम्बल इत्यादि।
11 निजी उद्यमियों को वित्त की व्यवस्था करने के लिए भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India)।
12 निजी क्षेत्रक में उद्योगीकरण की सहायता के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation)।

ऐसा करने में सरकार का आशय यह था कि यथाशीघ्र और अधिकाधिक क्षेत्रों में आर्थिक स्वावलंबन की स्थिति लाई जा सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत कुछ सफलता मिल चुकी है।

सरकार द्वारा स्थापित अधिकतर परियोजनाओं (i) में अधिक राशि में निवेश करना पड़ता है, (ii) उनके निर्माण में अधिक समय लगता है (उदाहरणार्थ स्टील प्लांट के निर्माण में 5-6 वर्ष लग जाते हैं) और (iii) के निवेश पर बहुत कम प्रतिफल मिलता है। इसके अतिरिक्त अनेक उद्यमों में अत्यधिक खतरा उठाने की भी आवश्यकता थी जिसके लिए अधिकतर निजी उद्यमी तैयार नहीं होते। इसीलिए सरकार ने देश के उद्योगीकरण के लिए प्रमुख उद्यमी की भूमिका निभाई। सरकार ने ऐसे अनेक उद्योगों की स्थापना की है जिनके लिए यदि निजी क्षेत्रक से अपेक्षा की जाती कि वे इनके लिए आवश्यक निवेश करें और खतरा उठाएँ तो उनकी स्थापना कभी भी न हो पाती।

16.4.2 सैद्धांतिक कारण

इस चित्र का दूसरा पक्ष भी है। आर्थिक और सामाजिक कारणों के अतिरिक्त सरकार इस बात के लिए वचनबद्ध थी कि उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की नीति में उसका विश्वास है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक इस देश पर कांग्रेस का शासन रहा है (1977-79 के वर्षों को छोड़कर, जब जनता पार्टी शासन में रही) और यह पार्टी इसी नीति पर चलती रही। इस संबंध में स्मरणीय है कि आज़ादी के पहले भी कांग्रेस वचनबद्ध रही कि उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के द्वारा समाजवाद लाया जाए। यह भी ध्यान देने की बात है कि 1956 के औद्योगिक नीति संकल्प ने, जो अभी भी लागू है, व्यवसाय में

सरकार की भूमिका पर बल दिया है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्यमों पर सरकारी स्वामित्व के महत्त्व का स्पष्टीकरण हो जाता है।

16.4.3 कुछ विशेष कारण

व्यवसाय में सरकार की सहभागिता के अन्य कारण भी हैं। इनका संबंध अलग-अलग निर्णयों के साथ अलग-अलग तरह से है। इनमें से कुछ यों हैं :

हवाई परिवहन व्यवसाय : 1953 तक इस देश में अनेक निजी कंपनियाँ थीं। इनमें से अनेक की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं थी और आधुनिक तथा अधिक कीमत वाले वायुयानों को ख़रीदने के लिए उनके पास धन नहीं था। इसीलिए 1953 में सरकार ने नौ हवाई कंपनियों का राष्ट्रीयकरण करके इन्डियन एयरलाइन्स कार्पोरेशन और एयर इण्डिया इंटरनेशनल कार्पोरेशन नामक कंपनियों को स्थापित किया।

बीमा व्यवसाय : इस समय समस्त बीमा व्यवसाय सरकार के अधीन है। जीवन बीमा व्यवसाय का प्रचालन भारतीय जीवन बीमा निगम के द्वारा तथा अन्य प्रकार के बीमा व्यवसाय का प्रचालन भारतीय सामान्य बीमा निगम और उसकी चार नियंत्रित कंपनियों द्वारा होता है।

सरकार ने जीवन बीमा व्यवसाय में 1556 में प्रवेश किया। ऐसा उसने उन अनेक निजी कंपनियों का राष्ट्रीयकरण करके किया जो जीवन बीमा व्यवसाय के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पा रही थीं :

i) जनता की बचत को सही ढंग से जुटाना।

ii) बीमा के संदेश का व्यापक रूप से प्रचार।

iii) आर्थिक विकास में बीमा के धन का उपयोग।

जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण 1955 में हुआ। उसके पहले इस देश में 47.8 लाख पॉलिसियाँ थीं, जिनकी कुल बीमाकृत राशि 1,220 करोड़ रुपये की थी। मार्च 1987 तक पॉलिसियों की संख्या बढ़कर 298.8 लाख तथा कुल बीमाकृत राशि 60,795 करोड़ रुपये की हो गई। इसके अतिरिक्त जीवन बीमा निगम की निधियों का निवेश राष्ट्रीय विकास कार्य में किया जाता है। उदाहरणार्थ मार्च 1987 के अंत तक 14,000 करोड़ रुपये के कुल निवेश में से 1,300 करोड़ रुपया राज्य विजली बोर्डों को ऋण के रूप में दिया गया था तथा 561 करोड़ रुपये जलपूर्ति (water supply), मल-अपवहन (sewerage) संबंधी योजनाओं में लगाए गए थे। निवेश का लगभग 50 प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में है।

इस प्रकार राष्ट्र की बचतों का उपयोग प्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है जैसा कि राष्ट्रीयकरण के पहले नहीं होता था। पॉलिसियों तथा बीमाकृत राशि का अत्यधिक हो जाना इस बात का द्योतक है कि बीमा का संदेश अब दूर-दूर तक फैल रहा है।

इसी प्रकार साधारण बीमा व्यवसाय, जिसका पूर्णत: संचालन अब सरकारी कंपनियों द्वारा होता है, का राष्ट्रीयकरण 1971 में हुआ। इसका उपयोग भी अब समाज की भलाई के लिए किया जा रहा है। इस व्यवसाय से संबंधित लगभग 100 निजी कंपनियों के हाथ में यदि यह व्यवसाय होता तो ऐसा करना संभव न होता।

व्यापारिक बैंक : आज सरकार बहुत बड़े पैमाने पर बैंक व्यवसाय कार्य में लगी है। आज 90% से अधिक व्यापारिक बैंकिंग सरकार के हाथ में है। यह विचारणीय है कि ऐसा करने में सरकार का क्या उद्देश्य है। सरकार चाहती थी कि राष्ट्रीय नीति और उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बैंकिंग प्रणाली अर्थव्यवस्था की विकास संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। वह यह भी चाहती थी कि ऋण देने के मापदण्ड में भी परिवर्तन किया जाए जिससे समाज के कमज़ोर वर्ग के लोग लाभान्वित हो सकें। लेकिन निजी क्षेत्रक के बैंक इस उद्देश्य की पूर्ति में सरकार की सहायता करने को तैयार नहीं थे। इसीलिए

सरकार ने 1969 में 14 प्रमुख बैंकों तथा 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इसके पूर्व 1955 में सरकार ने इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण करके उसे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया का रूप दे दिया था। सरकार को ऐसा इसलिए करना पड़ा था कि इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया सरकार की इस इच्छा की पूर्ति में सहायक नहीं हो पा रहा था कि ग्रामीण क्षेत्रों में इस बैंक की पर्याप्त शाखाएँ खोली जाएँ। सितम्बर 1987 तक समस्त देश में व्यापारिक बैंकों की कुल 54,163 शाखाएँ थीं, जिनमें ग्रामीण शाखाओं की संख्या 30,463 (56%) थी। इसकी तुलना में 1969 में ग्रामीण शाखाएँ कुल शाखाओं की 22% ही थीं। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि जून 1986 के अन्त तक राष्ट्रीयकृत बैंकों में कृषि कार्यों के लिए 166 लाख खाते खोले गये थे और इन पर 9,231 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया था। इसी प्रकार छोटे पैमाने के उद्योगों से संबंधित 18 लाख बैंक खाते थे जिन पर 7,836 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया था।

कोयला उद्योग : 1971 में कोकिंग कोल खानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया कि वह कोयला, लोहा और इस्पात के उत्पादन के लिए अत्यन्त आवश्यक है परंतु देश में इसका रिज़र्व अत्यन्त सीमित मात्रा में है। निजी क्षेत्रक इस दुर्लभ प्राकृतिक साधन, जो दिन-प्रतिदिन बड़ी तेज के साथ घटता जा रहा था, का खनन अत्यन्त हानिकर ढंग से कर रहा था। 1973 में अन्य कोयला खानों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसके कारण थे : (i) निजी क्षेत्रक के पास कोयला उत्पादन को बढ़ाने के लिए आवश्यक धन नहीं था, (ii) कोयला एक दुर्लभ प्राकृतिक साधन है परंतु इसका खनन अवैज्ञानिक ढंग से किया जा रहा था, (iii) निजी कोयला खान के मालिक इनमें काम कर रहे श्रमिकों का अत्यधिक शोषण कर रहे थे।

तेल उद्योग : 1970 ई. में वर्मा शेल, कालटेक्स और इस्सो नामक कंपनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। ऐसा यह सोचकर किया गया कि तेल जैसे सामरिक तथा अन्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण साधनों पर सरकार का नियंत्रण होना चाहिए। आज तेल के उत्पादन और वितरण पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण है। स्वावलंबन और अन्य साधनों को जुटाने के क्षेत्र में इसका बहुत अधिक योगदान रहा है।

अन्य प्रकार के अनेक व्यवसाय : विभिन्न प्रकार के उद्योगों को सरकार अपने हाथ में ले रही है इसका एक अन्य कारण भी है। आजादी के बाद लगभग एक सौ सूती वस्त्र मिलों तथा अनेक इंजीनियरी आदि उद्यमों को सरकार ने अपने अधीन ले लिया है। ऐसा इसलिए किया गया कि इन मिलों के मालिक इन्हें इसलिए बंद करना चाहते थे कि वे कमज़ोर (sick mill) हो गई थीं परन्तु सरकार इनकी उत्पादन क्षमता को नष्ट नहीं होने देना चाहती थी। इसके अतिरिक्त इनके बन्द हो जाने से लाखों लोग बेकार हो जाते जो सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से वांछनीय नहीं है।

ऊपर राष्ट्रीयकरण के अनेक उदाहरण दिए गए हैं जिनसे पता चलता है कि निजी उद्यमकर्ता इन स्थितियों का सामना नहीं कर सकते। इसीलिए सरकार को आगे आना पड़ा। इन सब पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आर्थिक और सामाजिक कारणों से बाध्य होकर सरकार को अनेक व्यवसायों को अपने हाथ में लेना पड़ा।

ऊपर किए गए विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि निम्नलिखित कारणों से सरकार व्यवसाय में भाग लेती है :

1. सरकार द्वारा व्यवसाय में भाग लेने के अनेक आर्थिक तथा सामाजिक कारण हैं।
2. अनेक प्रकार के औद्योगिक कार्यों में सरकार ने यदि पहल नहीं किया होता तो इस देश के पास वैसा दृढ़ आधार और स्वावलंबन नहीं हो पाता जैसा कि आज है।
3. सरकार के अधीन अनेक उद्यम इसलिए आए कि वे कमजोर हो गए थे, परन्तु आर्थिक और सामाजिक कारण ऐसे थे कि उन्हें बन्द होने नहीं दिया जा सकता था।
4. व्यवसाय में सरकार के होने के सैद्धांतिक कारण भी हैं। यदि ये न होते तो सरकार मार्गदर्शन तथा पहलकर्ता का काम पूरा करके कुछ व्यवसायों से हट जाती।
5. व्यवसाय में सरकार द्वारा प्रमुख रूप से जमे रहने के पीछे सैद्धांतिक कारणों के साथ-साथ आर्थिक तथा सामाजिक कारण भी हैं।

16.5 सार्वजनिक उद्यम क्या है?

यह बताया जा चुका है कि सरकार के अधीनस्थ उद्यमों को सार्वजनिक उद्यम कहा जाता है। सही अर्थ में व्यावसायिक अस्तित्व के रूप में "सार्वजनिक उद्यम" से अभिप्राय उस औद्योगिक या व्यापारिक उपक्रम से होता है जो केन्द्र, राज्य या स्थानीय सरकार के स्वामित्व और प्रबंध में होता है और जिससे उत्पादित वस्तुओं को निशुल्क रूप से बांटा नहीं जाता बल्कि उनका विक्रय किया जाता है। इस प्रकार सार्वजनिक उद्यमों के अंतर्गत विनिर्माण, व्यापार तथा सेवा संगठन आ जाते हैं जो वास्तव में व्यवसाय उपक्रम ही हैं।

सार्वजनिक उद्यमों के अंतर्गत राष्ट्रीयकृत निजी संगठन तथा वे नए उद्यम आते हैं जिनका संवर्धन सरकारी स्वामित्व और नियंत्रण के अंतर्गत होता है। निजी संगठनों का राष्ट्रीयकरण करके जिन सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की गई है उनके कुछ उदाहरण हैं — जीवन बीमा निगम, इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन, कोल इंडिया लिमिटेड, आदि। जिन सार्वजनिक उद्यमों का संवर्धन सरकार ने किया है उनके कुछ उदाहरण हैं — हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हिन्दुस्तान एंटिबायोटिक्स लिमिटेड तथा चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स।

सार्वजनिक उद्यम और निजी उद्यम के बीच अंतर

निजी उद्यम से अभिप्राय उन औद्योगिक या वाणिज्यिक संगठनों से होता है जिनकी स्थापना सरकारी कानूनों और नियमों के अनुसार एकल या समूह स्वामित्व के अधीन की जाती हैं। इसके अंतर्गत विनिर्माण और वाणिज्यिक कंपनियाँ तथा मध्यम और छोटी फर्में आती हैं, जिनका संगठन एकल स्वामित्व (Sole Proprietorship) और साझेदारी (Partnership) प्रतिष्ठानों के रूप में किया जाता है।

निजी उद्यमों का मुख्य प्रयोजन अपने लिए लाभ कमाना होता है। सार्वजनिक उद्यमों का संचालन सरकार द्वारा बनाई गई सार्वजनिक नीतियों के अनुसार होता है और उनका उद्देश्य होता है समाज कल्याण को अधिकाधिक बढ़ाना और लोकहित को बनाए रखना। भारत के सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों को विकास योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप ही निर्धारित किया गया है। ये अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार तथा संसद या राज्य विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। निजी उद्यमों को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे अपना उद्देश्य मनमाने ढंग से निर्धारित करें और किसी प्रकार के भी व्यावसायिक कार्य को, बशर्ते कि वह अवैध न हो, अपने हाथ में लें। परंतु यह स्मरणीय है कि निजी उद्यमों का विनियमन विभिन्न प्रकार के सरकारी नियंत्रणों के अनुसार होता है।

16.6 सार्वजनिक उद्यमों की विशेषताएँ और उद्देश्य

विशेषताएँ

सार्वजनिक उद्यमों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं जो उन्हें निजी उद्यमों से भिन्न करती हैं :

1 सार्वजनिक उद्यमों का स्वामित्व और प्रबंध सरकार या सरकार द्वारा बनाई गई एजेन्सियों के द्वारा होता है।

2 सार्वजनिक उद्यमों के लिए आवश्यक समस्त पूँजी या उसके बहुत बड़े भाग की व्यवस्था सरकार करती है।

3 सार्वजनिक उद्यमों का संगठन विभागीय उपक्रम, कानूनी निगम (statutory corporation) या सरकारी कंपनी के रूप में किया जा सकता है।

4 सार्वजनिक उद्यमों का संचालन सरकार द्वारा लोकहित में निर्धारित सार्वजनिक नीतियों के अनुसार होता है। इनका प्रयोजन लाभ कमाना मात्र ही नहीं होता।

5 सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्य विकास योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं। ये अपने कार्य-निष्पादन और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसद या राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

जिन कारणों से बाध्य होकर सार्वजनिक उद्यमों का विकास किया जा रहा है, उससे स्पष्ट है कि इनके मुख्य उद्देश्य अनेक हैं। इन उद्देश्यों को नीचे दिया जा रहा है :

1 विकास योजनाओं के अनुरूप औद्योगिक संवृद्धि के द्वारा द्रुत गति से आर्थिक विकास की प्राप्ति।
2 आर्थिक संवृद्धि के लिए संसाधनों का यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग।
3 जनकल्याण लाना और आय तथा संपत्ति के वितरण में असमानता को घटाना।
4 उद्योग और व्यापार का संतुलित क्षेत्रीय विकास करना।
5 एकाधिकार की वृद्धि और कुछ लोगों के हाथ में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाना।
6 आम जनता की कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से बाजार में आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण रखना।
7 वित्तीय संस्थाओं के द्वारा सार्वजनिक बचतों की इस प्रकार व्यवस्था करना कि सुनियोजित प्राथमिकताओं के अनुरूप सार्वजनिक और निजी उद्यमों की माँगों की पूर्ति की जा सके।
8 अपने कर्मचारियों की सेवा संबंधी स्थितियों को संतोषजनक बनाना जिससे सार्वजनिक उद्यमों को आदर्श नियोक्ता माना जाए।

बोध प्रश्न ख

1. सार्वजनिक उद्यम क्या है?

....

....

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?
   i) सार्वजनिक उद्यमों को मुख्यत: लाभ के उद्देश्य से चलाया जाता है।
   ii) भारत में जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण 1956 ई. में हुआ।
   iii) इंडियन एयरलाइन्स कार्पोरेशन इस बात का उदाहरण है कि सरकार व्यवसाय करती है।
   iv) सभी सार्वजनिक उद्यमों के लिए आवश्यक है कि वे पूर्णत: सरकार के स्वामित्व में हों
   v) सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों में एक है द्रुत गति से आर्थिक विकास की प्राप्ति।

3 खाली स्थानों को भरें।
   i) सार्वजनिक उद्यम मुख्यत: .... उपक्रम होते हैं।
   ii) भारत में व्यवसाय में सरकार की भूमिका को .... और .... कारणों से सही माना जा सकता है।
   iii) सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों को .... योजनाओं के अनुरूप निर्धारित किया गया है।
   iv) सरकार सामान्य बीमा व्यवसाय को .... के द्वारा चलाती है।

16.7 सार्वजनिक उद्यमों की प्रगति

अब तक आपने सार्वजनिक उद्यमों के अर्थ, विशेषताओं और उद्देश्यों के संबंध में पढ़ा। अब प्रश्न उठता है कि ये अपना कार्य-निष्पादन किस प्रकार कर रहे हैं।

इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है क्योंकि सभी इस संबंध में एकमत नहीं हैं कि सरकार का व्यावसायिक कार्य किसे कहा जाए। उदाहरणार्थ कुछ लोग पोर्ट ट्रस्टों, रेलों और डाकघरों को व्यावसायिक कार्य मानते हैं परंतु अन्य लोग ऐसा नहीं मानते। इसके अतिरिक्त सरकार की अनेक प्रमुख व्यावसायिक क्रियाएँ 25 राज्यों और 8 संघ राज्य क्षेत्रों (Union Territories) में होती हैं जिनके संबंध में आसानी से सूचना उपलब्ध नहीं हो पाती। अनेक प्रकार के व्यावसायिक कार्य नगर निगमों द्वारा होते हैं और उनसे संबंधित आंकड़ों को प्राप्त करना लगभग असंभव कार्य है।

सरकार के व्यावसायिक कार्यों (जिन्हें व्यावसायिक उद्यम कहा जाता है) के जिन आंकड़ों का उल्लेख प्राय: किया जाता है वे केंद्रीय सरकार की स्वायत्त इकाइयों से संबंधित है। ऐसा इसलिए कि इन उद्यमों से संबंधित "सार्वजनिक उद्यम सर्वेक्षण" (Public Enterprises Survey) नामक रिपोर्ट को प्रति वर्ष संसद में बजट के ठीक पहले पेश किया जाता है। सारणी 16.1 को ध्यानपूर्वक देखें। इसमें 1980-87 की अवधि के लिए सार्वजनिक उद्यमों की संख्या, उनके निवेश और उनमें नियोजित व्यक्तियों की संख्या संबंधी आँकड़े दिए गए हैं।

सारणी 16.1
कुछ सार्वजनिक उद्यम, उनके निवेश और उनमें रोजगार

31 मार्च को	इकाइयों की संख्या	कुल निवेश (करोड़ रु. में)	नियोजित व्यक्तियों की संख्या (लाख में)
1983	209	30,038	20.2
1984	214	35,394	20.7
1985	221	42,791	21.1
1986	225	50,362	21.5
1987	226	61,603	22.1

स्रोत : पब्लिक इन्टरप्राइज़ सर्वे (Public Enterprises Survey)

विनिर्माण क्षेत्र में सार्वजनिक उद्यमों (केन्द्र और राज्य सरकार दोनों के ही) अंशदान के संबंध में सारणी 16.2 देखें।

सारणी 16.2
1982-83 वर्ष में रजिस्ट्रीकृत फैक्टरियों में सार्वजनिक उद्यमों का अंश

स्वामित्व का प्रकार	कुल रजिस्ट्रीकृत फैक्टरियाँ		स्थायी पूँजी		कुल कर्मचारी	
	संख्या	कुल का प्रतिशत	करोड़ में रुपये	कुल का प्रतिशत	संख्या (लाख में)	कुल का प्रतिशत
केन्द्र, राज्य और स्थानीय सरकारें	5,116	5.5	26,735	65.2	21.9	27.3
संयुक्त क्षेत्रक	1,821	2.0	2,996	7.3	4.9	6.1
निजी क्षेत्रक	86,229	92.5	11,275	27.5	53.3	66.6
योग	93,166	100.0	41,006	100.00	80.1	100.0

नोट : स्थायी पूँजी उन परिसम्पत्तियों का ह्रासित मूल्य है जिनका औसत आर्थिक जीवन एक या उससे अधिक वर्षों का होता है;
स्रोत : ऐनुअल सर्वे ऑफ इन्डस्ट्रीज़ (Annual Survey of Industries)

सारणी 16.2 में हम देखते हैं कि देश की कुल फैक्टरियों की संख्या 93,116 थी और उनमें निजी क्षेत्रक का अंश 92.5% (86,229 फैक्टरियां) था, परंतु निजी क्षेत्र में लगी स्थायी पूँजी कुल फैक्टरियों की स्थायी पूँजी की 27.5% ही थी। मार्च 1983 तक निजी क्षेत्रक के कर्मचारियों की संख्या देश के कुल फैक्टरियों के कर्मचारियों (80.1 लाख) का 66.6% था। इसके विपरीत सार्वजनिक उद्यमों की फैक्टरियाँ देश की कुल फैक्टरियों की संख्या की केवल 5.5% ही थी परंतु इनमें 65.2% स्थायी पूँजी लगी थी तथा 27.3% कर्मचारी थे। इसका अर्थ यह है कि सार्वजनिक उद्यमों की संख्या तो कम है परंतु इनका आकार बड़ा है क्योंकि स्थायी पूँजी का बहुत बड़ा अंश इन्हीं में लगा है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उद्यम पूँजी प्रधान होते हैं, अर्थात् इनमें जनशक्ति (manpower) की तुलना में पूँजी अधिक लगती है।

सार्वजनिक उद्यमों का अधिक महत्त्वपूर्ण होने का एक दूसरा कारण है प्रदत्त पूँजी (paid-up-capital) में उनके अंश का अधिक होना। 1987 के अंत तक देश में कुल 1,066 सरकारी कंपनियां थीं जिनकी प्रदत्त पूँजी 33,793 करोड़ रुपये थी। संयुक्त पूँजी कंपनियों की संख्या 1,50,620 और उनकी प्रदत्त पूँजी 43,614 रुपये थी, इसका अर्थ यह होता है कि सार्वजनिक उद्यमों की कुल प्रदत्त पूँजी संयुक्त पूँजी कंपनियों की 77% थी, यद्यपि उनकी संख्या 10% से भी कम थी।

सार्वजनिक उद्यमों में बहुत बड़ी राशि के निवेश और बहुत बड़ी संख्या में नियोजन के अतिरिक्त उनके कार्य क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। वे निम्नलिखित प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन कार्य में लगे हैं : भारी, मध्यम और हल्की इंजीनियरी वस्तुएँ, परिवहन-उपस्कर, संचार-उपस्कर, मूल कच्चे माल (खनिज तथा धातु, इस्पात, कोयला, पेट्रोलियम, उर्वरक और रसायन), उपभोक्ता वस्तुएँ (वस्त्र, कागज, नमक, जूते, इत्यादि) और सेवाएँ। सच तो यह है कि ऊर्जा (कोयला, तेल, बिजली और परमाणु ऊर्जा) का समस्त उत्पादन और वितरण सार्वजनिक उद्यमों के द्वारा होता है। हवाई और रेल परिवहन तथा वायुयानों, जहाजों, रेल इंजनों तथा कोचों का निर्माण-कार्य पूर्णत: सार्वजनिक क्षेत्रक के अंतर्गत है। सार्वजनिक उद्यम देश के कुल इस्पात के 80% का उत्पादन करते हैं तथा 100% तांबे और प्राथमिक लेड का और 87% जिंक का उत्पादन करते हैं। जीवन बीमा तथा सामान्य बीमा की सभी कंपनियाँ और दीर्घ अवधि के लिए वित्त की व्यवस्था करने वाली सभी संस्थाएँ सार्वजनिक उद्यमों के रूप में हैं। व्यापारिक बैंकिंग का 90% सरकार के स्वामित्व में है।

चूँकि सार्वजनिक उद्यमों में अत्यधिक पूँजी लगी है, अत: प्राय: यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या ये उद्यम वित्तीय दृष्टि से सफल रहे हैं। इस प्रकार का उत्तर देना कठिन है क्योंकि सफलता का कोई एक या स्पष्ट मापदण्ड नहीं है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति सफलता का मापदण्ड भिन्न-भिन्न मानते हैं। किसी व्यावसायिक उद्यम की सफलता का सर्वाधिक प्रचलित माप है उससे सतत रूप में लाभ होते रहना। इस संबंध में भी मतभेद हो सकता है कि लाभ की मात्रा कितनी हो और इस मात्रा की गणना किस प्रकार की जाए।

वित्तीय दृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि सार्वजनिक उद्यमों में लाभ की मात्रा बहुत ही कम है। सारणी 16.3 में दिखाया गया है कि केन्द्रीय सरकार के कुल 214 उद्यमों में कुल कितनी पूँजी लगी थी और कुल निवल लाभ (कर भुगतान के पहले) कितना हुआ।

सारणी 16.3
1984-87 के बीच केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक उद्यमों में लगी कुल पूँजी और उनके द्वारा अर्जित कुल लाभ

विवरण	वर्ष		
	1984-85	1985-86	1986-87
लगी हुई पूँजी	36,382	42,965	51,931
कर के पूर्व लाभ	2,009	2,173	3,095
पूँजी पर प्रतिशत के रूप में लाभ	5.8	5.1	6.0

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि सबसे अधिक लाभ पेट्रोलियम, शक्ति तथा दूर संचार क्षेत्रकों से होता है जिन्हें बहुत कुछ एकाधिकारी स्थिति प्राप्त है। सारणी 16.4 को ध्यान से देखें। इसमें विस्तारपूर्वक दिखाया गया है कि केन्द्रीय सरकार के 214 सार्वजनिक उद्यमों को कर-भुगतान के बाद कितना लाभ/हानि हुई।

सारणी 16.4

1986-87 वर्ष में सार्वजनिक उद्यमों का वर्ग के अनुसार कार्य-निष्पादन

क्रमांक	वर्ग	वर्ग में उद्यमों की संख्या	निवल लाभ/हानि (करोड़ रुपये में)
1	इस्पात	6	(-) 26.4
2	खनिज और धातु	14	2.0
3	कोयला	7	(-) 331.0
4	शक्ति	3	233.8
5	पेट्रोलियम	12	2142.1
6	रसायन और उर्वरक	28	(-) 146.3
7	भारी इंजीनियरी	16	8.9
8	मध्यम और हल्की इंजीनियरी	20	54.8
9	परिवहन उपस्कर	13	(-) 50.6
10	उपभोक्ता वस्तुएँ	16	(-) 141.1
11	कृषि आधारित उत्पाद	5	(-) 4.0
12	वस्त्र	14	(-) 189.6
13	व्यापार और विपणन	19	40.4
14	परिवहन सेवाएँ	9	(-) 55.6
15	ठेका और निर्माण	7	(-) 27.5
16	औद्योगिक विकास और तकनीकी परामर्श	11	2.9
17	लघु उद्योगों का विकास	1	(-) 0.3
18	पर्यटन सेवाएँ	2	(-) 0.8
19	वित्तीय सेवाएँ	5	38.3
20	दूरसंचार सेवाएँ	2	201.8
21	कम्पनी अधिनियम की धारा 25 के अधीन अवाणिज्यिक सार्वजनिक उद्यम	4	17.2
	कुल	214	1,769.1

(-) हानि का सूचक

16.8 सार्वजनिक उद्यमों का योगदान

बहुत लोगों का कहना है कि सार्वजनिक उद्यमों के योगदान का लेखा-जोखा केवल वित्तीय दृष्टिकोण से ही करना उचित नहीं है। उनके योगदान के और भी अनेक महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सार्वजनिक उद्यमों के अवित्तीय लाभ अनेक तथा बहुत हैं। इनमें से कुछ को नीचे दिया जा रहा है :

1 इस देश के एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप में उभरने में सार्वजनिक उद्यमों ने बहुत कुछ किया है। आज भारत का स्थान विश्व के औद्योगिक राष्ट्रों में है। औद्योगिक उत्पादन के अनेक प्रमुख क्षेत्रों तथा अधिकतर उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं के मामले में हम आत्मनिर्भर हो गए हैं।

2 पिछड़े हुए क्षेत्रों के उद्योगीकरण और विकास में उन्होंने काफी सहायता की है।

3 पिछड़े वर्गों, विशेषत: अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, को रोज़गार के अवसरों को प्रदान करके उनके विकास में ये काफी सहायक रहे हैं।

4 सार्वजनिक उद्यमों के विस्तार के फलस्वरूप आय की असमानता बहुत कम हुई है। निजी उद्यमों की तुलना में सार्वजनिक उद्यमों में काम करने वाले कर्मचारियों के अधिकतम और न्यूनतम वेतन के बीच का अंतर कम होता है।

5 सपात का कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में संकेन्द्रण को रोकने के संवैधानिक उद्देश्य को पूरा करने में सार्वजनिक उद्यम बहुत कुछ सफल रहे हैं। ये उद्यम अगर न होते तो आर्थिक शक्ति कुछ बड़े व्यवसाय गृहों के हाथ में चली जाती। यह ध्यान देने की बात है कि बड़े व्यवसाय गृह सदा ही समाचार का विषय बने रहते हैं तथा देश की राजनीति पर इनका काफी प्रभाव भी रहता है, परंतु इनकी परिसम्पत्तियां सार्वजनिक उद्यमों की परिसम्पत्तियों के दसवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि आज सरकार के हाथ जो उद्योग हैं वे यदि निजी क्षेत्रक में होते तो उद्योगों के सरकार द्वारा निर्देशित होने की बजाय सरकार ही उनके नियंत्रण में होती।

6 सार्वजनिक उद्यम अपने पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों, कर्मचारियों तथा जनता के साथ जितनी नैतिकता से व्यवहार करते हैं उतना निजी उद्यम नहीं कर पाते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सार्वजनिक उद्यम राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक नीतियों को कार्यान्वित करने में महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करते हैं और उनकी सफलता को केवल उनके द्वारा अर्जित लाभ के रूप में ही नहीं मापा जा सकता।

16.9 सार्वजनिक उद्यमों की समस्याएँ

हमने देखा है कि इस देश में सरकार व्यवसाय के अनेक क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर भाग ले रही है। हमने सार्वजनिक उद्यमों के कार्य-निष्पादन और योगदान के संबंध में भी पढ़ा है। अब हम इन उद्यमों की सीमाओं के संबंध में विचार करेंगे।

1 सार्वजनिक उद्यमों का रजिस्ट्रीकरण प्राय: निजी क्षेत्रक की कंपनियों के समान ही संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में होता है, फिर भी उनकी कार्यविधि पूर्णत: व्यावसायिक नहीं होती। ऐसा इसलिए होता है कि ये उद्यम सरकारी प्रणाली के निकट होते हैं अत: इन्हें प्राय: सरकारी विभागों में प्रचलित कार्यविधियों, प्रक्रियाओं, प्रथाओं, आदि का पालन करना पड़ता है।

2 सार्वजनिक उद्यमों का निर्देशक मंडल पूर्णत: पेशेवर नहीं होता। इनके सर्वोच्च पदाधिकारी अपने पद पर प्राय: बहुत दिन तक टिक नहीं पाते।

3 निदेशक मंडल के निचले स्तर के प्रबंधकों की नौकरी बहुत कुछ सुरक्षित रहती है। इससे इन उद्यमों का कार्य-निष्पादन स्तर प्रभावित होता है।

4 सार्वजनिक उद्यमों की पुरस्कार और दण्ड प्रणाली निजी उद्यमों की अपेक्षा सरकारी विभागों से मिलती-जुलती होती है।

5 अनेक महत्त्वपूर्ण और बड़े सार्वजनिक उद्यम प्राय: उन क्षेत्रों में हैं जिनमें टेकनॉलोजी कठिन और नई होती है। इसके अतिरिक्त इनके स्थान का चुनाव कभी-कभी आर्थिक दृष्टि से नहीं किया जाता।

6 श्रमिकों के संघ प्राय: सशक्त और सुगठित होते हैं। इस कारण ये उन उद्यमों से अपने उचित अंश से अधिक लेने में समर्थ हो जाते हैं।

7 आवश्यकता से अधिक जनशक्ति और कर्मचारियों की कम उत्पादिता के कारण इन उद्यमों का कार्य-निष्पादन संतोषजनक नहीं हो पाता। ऐसा प्राय: सभी स्तरों में होता है, लेकिन निचले स्तर में अधिक होता है।

8 निजी उद्यमों की तुलना में सार्वजनिक उद्यमों का आकार बड़ा होता है। इस देश के सबसे बड़े प्रथम बीस औद्योगिक उद्यमों में (परिसंपत्तियों के अर्थ में), 16 सार्वजनिक उद्यम हैं। इन उद्यमों के आकार के बढ़ने के साथ ही साथ प्रबन्ध की समस्या की जटिलताओं में गुणोत्तर वृद्धि (geometric progression) होती जाती है। सार्वजनिक उद्यम प्राय: प्रबंध और प्रशासन संबंधी समस्याओं की जटिलताओं का सामना करने में सफल नहीं हो पाए हैं।

9 सार्वजनिक उद्यमों पर अनेक प्रकार की रुकावटें इसलिए भी आ जाती हैं कि इन्हें भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India) द्वारा लेखापरीक्षण और संसदीय जाँच के अधीन रहना होता है।

अब तक इनमें से अनेक समस्याओं से सही उत्तर नहीं मिल पाए हैं। समय-समय पर इस संबंध में अनेक प्रकार की युक्तियों और उपायों का सहारा लिया गया है परंतु सफलता नहीं मिली है।

बोध प्रश्न ग

1 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

i) अनेक सार्वजनिक उद्यमों ने आवश्यकता से अधिक पेशेवर निदेशकों को नियुक्त किया है।

ii) कुछ ही सार्वजनिक उद्यमों में लाभ हो पाता है।

iii) जनकल्याण में सार्वजनिक उद्यमों का कोई योगदान नहीं रहा है।

iv) सार्वजनिक उद्यमों और निजी उद्यमों में प्रबंधकों की नौकरी की सुरक्षा एक समान होती है।

v) सार्वजनिक उद्यमों में कर्मचारियों के लिए पुरस्कार और दण्ड की प्रणाली काफी प्रभावशाली रही है।

vi) सार्वजनिक उद्यमों की संख्या तो कम है लेकिन निजी उद्यमों की तुलना में उनमें पूँजी अधिक लगी है।

2 खाली स्थानों को भरें :

i) सरकारी विभागों के समान ही सार्वजनिक उद्यमों का लेखापरीक्षा .... के द्वारा होता है।

ii) 1986-87 वर्ष में सार्वजनिक उद्यमों के अंतर्गत जिन तीन उद्योगों में सबसे अधिक लाभ हुआ, उनके नाम हैं .... ।

iii) सार्वजनिक उद्यमों ने रोज़गार का अवसर प्रदान करके .... के विकास में सहायता की है।

iv) निजी उद्यमों की तुलना में सार्वजनिक उद्यमों में वेतन की असमानता .... है।

v) अधिकतर सार्वजनिक उद्यमों में .... प्रबन्ध की कमी है।

vi) .... प्रतिशत से अधिक व्यापारिक बैंकिंग सरकार के हाथ में है।

16.10 सारांश

जिन कारणों से बाध्य होकर सरकार को निजी व्यवसाय का विनियमन और नियंत्रण करना पड़ा, वे हैं मुक्त उद्यमों और निजी स्वामित्व के दोष; कल्याणकारी राज्य की स्थापना, योजनाबद्ध आर्थिक विकास, दुर्लभ, प्राकृतिक साधनों का इष्टतम उपयोग, छोटे पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहन और संरक्षण, विदेशी निवेशकों के आधिपत्य से अर्थव्यवस्था की रक्षा, इत्यादि। सरकारी नियंत्रण को दो कोटि में रखा जा सकता है : (i) प्रत्यक्ष नियंत्रण और (ii) अप्रत्यक्ष नियंत्रण। प्रत्यक्ष नियंत्रण के अधीन हैं। नए विनिर्माण उद्यमों की स्थापना या उनके विस्तार के लिए लाइसेंस देना, निर्यात संवर्धन के लिए आर्थिक सहायता, आयात और निर्यात पर कोटा प्रतिबंध, कीमत नियंत्रण और वस्तुओं की राशन व्यवस्था, इत्यादि। अप्रत्यक्ष नियंत्रण के अधीन आयात और निर्यात पर सीमा शुल्क, बैंक ऋण की ब्याज दर में परिवर्तन आदि आते हैं।

सरकार जिन कारणों से बाध्य होकर व्यवसाय में भाग लेती है, वे तीन प्रकार के होते हैं : (i) मूल कारण (ii) सैद्धांतिक कारण (iii) विशेष कारण। व्यावसायिक अस्तित्व के रूप में "सार्वजनिक उद्यम" से अभिप्राय उस औद्योगिक या वाणिज्यिक उपक्रम से होता है जो केन्द्र, राज्य या स्थानीय सरकार के स्वामित्व और प्रबंध में होता है और जिसके उत्पादनों को नि:शुल्क ही नहीं दिया जाता बल्कि उनका विक्रय होता है। उन उद्यमों का संचालन सरकार द्वारा बनाई गई लोकनीतियों के अनुसार होता है और

उनका उद्देश्य होता है अधिक से अधिक समाज कल्याण तथा लोकहित की रक्षा करना। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के संबंध में सरकार, संसद या राज्य विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सार्वजनिक उद्यमों के पक्ष में निम्नलिखित दलीलें दी जाती हैं :

1 निजी उद्यमकर्ताओं द्वारा उन उद्योगों में निवेश के प्रति असमर्थ या अनिच्छुक होना जो तेजी से औद्योगिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।
2 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता।
3 आय और संपत्ति में अधिक समानता लाना।
4 निजी क्षेत्रक में आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण और एकाधिकार पर प्रतिबंध लगाना।
5 विकास योजनाओं में निर्धारित प्राथमिकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति करना।
6 मूल और भारी उद्योगों के संवर्धन के लिए सरकार को अधिक साधन उपलब्ध कराना।

सार्वजनिक उद्यमों की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : सरकार का स्वामित्व और नियंत्रण, सरकार द्वारा पूँजी की व्यवस्था, लोकनीति द्वारा शासन, विकास योजनाओं के अनुरूप उद्देश्य, विधान मंडल के प्रति उत्तरदायित्व, इत्यादि। इन उद्यमों के उद्देश्य हैं : तेजी से उद्योगीकरण, संसाधनों को विकास कार्य में लगाना, आय और संपत्ति के वितरण में असमानता को कम करना, संतुलित क्षेत्रीय विकास करना, एकाधिकारी शक्ति और धन के संकेन्द्रण पर नियंत्रण, कीमत-वृद्धि पर रोक, सार्वजनिक बचतों का जुटाव, रोजगार की संतोषजनक स्थिति लाना, इत्यादि।

वित्तीय दृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि सार्वजनिक उद्यमों में लाभ की मात्रा संतोषजनक नहीं है। ऐसे अनेक उद्यम घाटे में चल रहे हैं। लेकिन पेट्रोलियम, शक्ति और दूरसंचार उद्योग, जिन्हें बहुत कुछ एकाधिकारी शक्ति प्राप्त है, लाभ कमा रहे हैं। इसके साथ ही कुछ क्षेत्रों में इनके योगदान की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। सार्वजनिक उद्यमों की अपनी कुछ समस्याएँ तथा सीमाएँ भी हैं।

16.11 शब्दावली

सार्वजनिक उद्यम (Public Enterprise) : सरकार के औद्योगिक, वाणिज्यिक या व्यावसायिक कार्यकलाप जिनमें निवेश पर प्रतिफल की आशा की जाती है।

समाज का समाजवादी स्वरूप (Socialist Pattern of Society) : व्यापक रूप में इससे अभिप्राय ऐसी प्रणाली से होता है जिसमें आर्थिक विकास का अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग को होता है तथा धन के संकेंद्रण को रोकने और आय की असमानता को कम करने का प्रयास किया जाता है।

निवेशित पूँजी (Capital employed) : कुल स्थायी परिसम्पत्ति में संचित मूल्य ह्रास (accumulated depreciation) को घटाने के बाद उसमें कार्यशील पूँजी (working capital) का योग। कार्यशील पूँजी का अर्थ होता है चालू परिसंपत्तियों में चालू देयताओं और प्रावधानों को घटाने के बाद बची राशि।

औद्योगिक नीति संकल्प (Industrial Policy Resolution) : संकल्प के रूप में सरकार का औपचारिक निर्णय जिसका संबंध औद्योगिक नीति के साथ होता है। इसमें यह भी स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक और निजी उद्यमों का क्या स्थान होगा।

16.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1 खंड 6.

वी.पी. सिंह एवं टी.एन. छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहाबाद किताब महल, 1988) अध्याय 23 खंड 6.

जी.एल. जोशी, जी.एल. शर्मा, एल.एस.सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 18.

पी.के. घोष : **पब्लिक इन्टरप्राइज़ इन इंडिया** (कलकत्ता बुक वर्ल्ड, 1982) अध्याय 1 और 26 (अंग्रेजी में).

लक्ष्मीनारायण : **प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ पब्लिक इन्टरप्राइज़ेज़ मैनेज़मेंट** नई दिल्ली (एस. चांद एंड कंपनी, 1986) अध्याय 1 और 2 (अंग्रेजी में).

16.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 (i) गलत (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) गलत
  2 (i) धनात्मक, ऋणात्मक (ii) प्रत्यक्ष (iii) अप्रत्यक्ष (iv) मार्गनिर्देशन (v) तीन (vi) औद्योगिक नीति संकल्प

ख 2 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही
  3 (i) व्यवसाय (ii) सामाजिक, आर्थिक (iii) विकासात्मक (iv) सामान्य बीमा निगम

ग 1 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) सही
  2 (i) भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (ii) पेट्रोलियम, शक्ति, दूरसंचार (iii) पिछड़े वर्ग (iv) बहुत कम (v) कुशल (vi) 90

16.14 स्वपरख प्रश्न

1 सार्वजनिक उद्यम क्या है ? इसकी विशेषताएँ क्या हैं ? निजी उद्यमों से यह किस प्रकार से भिन्न होता है ?

2 निजी व्यवसाय के कार्यकलापों पर सरकारी नियंत्रण के कारणों को स्पष्ट करें।

3 उदाहरण सहित निम्नलिखित के बीच अंतर बताएँ :
   i) उत्प्रेरक और प्रतिबंधक नियंत्रण
   ii) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियंत्रण

4 व्यवसाय और उद्योग में सरकार के लिए प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना क्यों आवश्यक होता है ?

5 निम्नलिखित के संबंध में संक्षिप्त टिप्पणी दें :
   i) व्यवसाय में सरकारी सहभागिता की मात्रा।
   ii) सार्वजनिक उद्यमों के पक्ष में दलीलें।

6 सार्वजनिक उद्यमों के चलाने से संबंधित समस्याएँ और सीमाएँ किस प्रकार की होती हैं, स्पष्ट करें।

7 भारत में सार्वजनिक उद्यमों के वित्तीय कार्यकलापों के संबंध में टिप्पणी दें। राष्ट्र के कल्याण में सार्वजनिक उद्यमों का क्या योगदान रहा है, बताएँ।

नोट : इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भलीभाँति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन ये उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 17 सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 विभागीय संगठन
- 17.2.1 विशेषताएँ
- 17.2.2 गुण
- 17.2.3 दोष

17.3 लोक निगम
- 17.3.1 विशेषताएँ
- 17.3.2 गुण
- 17.3.3 दोष

17.4 सरकारी कंपनी
- 17.4.1 विशेषताएँ
- 17.4.2 सरकारी और गैर सरकारी कंपनियों में भेद
- 17.4.3 गुण
- 17.4.4 दोष

17.5 संगठन के रूपों की तुलना
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.10 स्वपरख प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के विभिन्न रूपों के संबंध में बता सकें
- संगठन के प्रत्येक रूप की विशेषताओं को बता सकें
- प्रत्येक संगठन के गुणों को स्पष्ट कर सकें
- संगठन के प्रत्येक रूप के औचित्य का मूल्यांकन कर सकें।

17.1 प्रस्तावना

इकाई 16 में आपने सार्वजनिक उद्यमों के अर्थ, उद्देश्यों, विशेषताओं, गुणों और दोषों के संबंध में पढ़ा है। अब प्रश्न उठता है कि सार्वजनिक उद्यमों के क्या रूप होते हैं। क्या ये रूप निजी उद्यमों (private enterprise) के रूपों के ही जैसे होते हैं ? जैसा कि इकाई 2 में आपने देखा है, निजी उद्यमकर्ताओं द्वारा प्रवर्तित व्यावसायिक उद्यमों का संगठन निम्नलिखित तीन में से किसी एक रूप में किया जाता है : 1) एकल स्वामित्व (sole proprietorship) 2) साझेदारी (partnership) और 3) संयुक्त पूँजी कंपनी (joint stock company)। लेकिन सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप भिन्न होते हैं। ये हैं : 1) विभागीय संगठन (departmental organisation) 2) लोक निगम (public

सरकारी कंपनी (government company)। इन तीनों को ही चित्र 17.1 में दिखाया गया है। इस इकाई में संगठनों के इन तीन रूपों की विशेषताओं, गुणों और दोषों के संबंध में चर्चा की जाएगी तथा यह देखा जाएगा कि किसी विशेष स्थिति में कौन-सा रूप अधिक उपयुक्त होता है।

चित्र 17.1
सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप

सार्वजनिक उद्यम

- विभागीय संगठन
- सांविधिक/लोक निगम
- सरकारी कंपनी

17.2 विभागीय संगठन (Departmental Organisation)

सार्वजनिक उद्यमों का संगठन और प्रबंध जिस प्रकार से होता है उनमें विभागीय संगठन सबसे पुराना है। इस प्रकार के संगठन के अंतर्गत उपक्रमों के व्यावसायिक कार्यों का संचालन सरकार के किसी एक विभाग के अधीन होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि **किसी सार्वजनिक उद्यम का संगठन, वित्त व्यवस्था और नियंत्रण जब किसी अन्य सरकारी विभाग जैसा ही होता है, तब उसे विभागीय संगठन कहा जाता है।** संगठन के इस रूप का चुनाव प्राय: उन उपक्रमों के लिए किया जाता है जो सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह प्राय: उन उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है जिनका संचालन केवल व्यावसायिक सिद्धांतों के ही आधार पर नहीं किया जाता। विभागीय संगठन प्राय: निम्नलिखित स्थितियों में उपयुक्त होता है :

i) जब किसी उद्यम का मुख्य उद्देश्य सरकार के लिए आय कमाना हो।

ii) सार्वजनिक हित के लिए जब सरकार किन्हीं सेवाओं, जैसे डाक-तार, प्रसारण आदि को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहती हो।

iii) सामरिक महत्त्व की दृष्टि से जब गोपनीयता आवश्यक हो (जैसे परमाणु ऊर्जा, रक्षा उद्योग आदि)।

iv) जब परियोजनाओं संबंधी कार्य प्रारंभिक अवस्था में ही हों और उन पर प्रयास और धन की आवश्यकता हो, जिनकी व्यवस्था केवल सरकार ही कर सकती है। परंतु अब यह माना जाने लगा है कि रक्षा उद्योगों तक के क्षेत्र में भी गैर-सरकारी उद्यमों का भी सहयोग होना चाहिए। उदाहरणार्थ, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड में, जो सरकारी उपक्रम है, कंपनी जैसा प्रबंध है। 1981 ई. में दूर-संचार सेवाओं के एक भाग को संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में परिवर्तन कर दिया गया है। इनमें से एक का नाम "विदेश संचार निगम लिमिटेड" है, जिस पर विदेशी दूर-संचार सेवा का दायित्व है। दूसरा है "महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड" जो बम्बई और दिल्ली महानगरों में टेलीफोन सेवा का संचालन करता है।

17.2.1 विशेषताएँ

विभागीय संगठन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1 **सर्वोपरि नियंत्रण मंत्री के हाथ में होता है** : इस प्रकार के संगठन के अंतर्गत प्रबंध की कुल जिम्मेदारी उस मंत्री की होती है जिसके मंत्रालय के अधीन यह उपक्रम होता है। मंत्री प्राधिकार का प्रत्यायोजन (delegation of authority) संगठन में नीचे के विभिन्न स्तरों के बीच कर देता है। कुछ स्थितियों में कार्यों के दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए सरकार बोर्ड बना देती है। इस प्रकार के बोर्डों के उदाहरण हैं — रेल बोर्ड, डाक सेवा बोर्ड, दूर संचार बोर्ड इत्यादि। परंतु कुल जिम्मेदारी मंत्री की होती है जो उपक्रम के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

2 **कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं** : विभागीय संगठनों के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रशासनिक तथा पुलिस सेवाओं के ही समान रेल और डाक सेवाओं (जो विभागीय

संगठन हैं) के राजपत्रित अधिकारियों का चुनाव संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के द्वारा ही होता है। इन सेवाओं के कर्मचारियों के निबंधन और शर्तें (terms and conditions) अन्य सरकारी कर्मचारियों के ही जैसी होती हैं।

3 **इनकी वित्त व्यवस्था बजट विनियोजन** (Budget appropriation) **द्वारा होती है :** विभागीय संगठनों की वित्त व्यवस्था सरकार से स्वतंत्र नहीं होती। इनकी वित्त व्यवस्था वार्षिक बजट विनियोजन के द्वारा सरकारी खजाने से होती है और इनसे हुई आय को सरकारी खजाने में जमा कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, रेल और डाक (ये विभागीय संगठन हैं) बजटें सरकारी बजट के अंश होते हैं।

4 **लेखाकरण तथा अंकेक्षण प्रणालियाँ** (Accounting and auditing systems) : इस प्रकार के संगठन को बजट लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रण के अधीन रहना होता है। इस कार्य के लिए उपक्रम को अन्य सरकारी संगठनों जैसा ही माना जाता है।

5 **सम्पूर्ण छूट** (Sovereign immunity) : सरकार का अभिन्न अंग होने के नाते इसे राज्य की सम्पूर्ण छूट प्राप्त होती है। इसी कारण सरकार की सहमति के बिना इसके खिलाफ मुकद्मा नहीं किया जा सकता।

17.2.2 गुण (Merits)

आपने विभागीय संगठन के अर्थ और उसकी विशेषताओं के संबंध में पढ़ा। अब हम इसके गुणों के बारे में विचार करेंगे। इस प्रकार के संगठन के निम्नलिखित गुण हैं :

1 **अधिकतम सरकारी नियंत्रण** : इस प्रकार के संगठन पर सरकार का अधिकतम नियंत्रण होता है। अत: सरकार अपने सामाजिक दायित्वों को अच्छी तरह निभा सकती है।

2 **लोक-निधि** (public funds) **के दुरुपयोग की कम संभावना :** जैसा कि आप जानते हैं, विभागीय उपक्रमों का प्रबंधन संबंधित मंत्रालय के द्वारा होता है, अत: ये उपक्रम संसद के प्रति पूर्णत: उत्तरदायी होते हैं। आपने यह भी पढ़ा कि बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण कार्यों के लिए इन्हें अन्य सरकारी विभागों जैसा ही माना जाता है, अत: लोक निधि के दुरुपयोग का खतरा कम हो जाता है। कृष्णा मेनन समिति के शब्दों में "विभागीय उपक्रमों का प्रबंधन संबंधित मंत्रालय के अधीन होने के कारण संसद के प्रति उनका उत्तरदायित्व (accountability) पूरी तरह से होता है"।

3 **आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी नियंत्रण** : इन उपक्रमों की आर्थिक क्रियाओं पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है, अत: अपनी सामाजिक और आर्थिक नीतियों के साधन के रूप में इनका उपयोग वह निर्बाध रूप से कर सकती है।

4 **आर्थिक प्रगति में वृद्धि** : विभागीय उपक्रमों में होने वाली बचत से सरकार की आय बढ़ती है। इस प्रकार राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और जन-कल्याण में इन बचतों का उपयोग किया जा सकता है।

5 **संसद के प्रति उत्तरदायी** : विभागीय उपक्रम अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। संसद में पूछे जाने वाले प्रश्नों के संबंध में वह किसी विशेषाधिकार की शरण नहीं ले सकता। उदाहरणार्थ, कोई संसद सदस्य यदि किसी कर्मचारी की निगुक्ति, बरखास्तगी या पदोन्नति अथवा खरीद या बिक्री संबंधी किसी सौदे के संबंध में प्रश्न पूछता है तब इसे विभागीय उपक्रम के दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही के अंतर्गत माना जाता है। परंतु सांविधिक (statutory) निगम या सरकारी कंपनी के संबंध में ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।

17.2.3 दोष

विभागीय संगठन में निम्नलिखित दोष हैं :

1 **नौकरशाही और लाल फीताशाही** : आपको मालूम ही है कि इन विभागीय उपक्रमों के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं। अत: यह बहुत कुछ सरकार के नौकरशाही तंत्र जैसा ही होता है, जिसमें प्रत्येक निर्णय के दौरान नियमों, विनियमों और पूर्व निर्णयों पर बहुत जोर दिया जाता है। इसलिए इनमें कर्मचारियों के लिए पहल (initiative) की गुंजाइश बहुत कम होती है। व्यावसायिक उपक्रमों में निर्णय के संबंध में प्राय: लचीलेपन तथा शीघ्रता की ज़रूरत पड़ती है, परंतु विभागीय उपक्रमों में ऐसा करना संभव नहीं होता।

2 **राजनीतिक अस्थिरता का शिकार :** ये उपक्रम प्रायः सत्तारूढ़ दल के आश्रित होते हैं। इनका भाग्य भी शासक दल और विपक्ष के बीच के शक्ति-संतुलन के साथ जुड़ा होता है। अतः राजनीतिक परिवर्तन या राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति में इन पर किसी न किसी प्रकार का खतरा आने की संभावना बनी रहती है। इसीलिए राजनीतिक परिवर्तनों का इन पर भी प्रभाव पड़ता है और राजनीतिक कारणों से इन पर आक्षेप भी लगाए जाते हैं।

3 **अत्यधिक संसदीय नियंत्रण :** ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि विभागीय उपक्रम अपनी दिन प्रति दिन की कार्रवाइयों तक के लिए संसद के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए इनमें पहल और कुशलता की गुंजाइश कम होती है। केवल संसद में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी उनकी कार्रवाइयों के संबंध में विस्तारपूर्वक छानबीन और आलोचना की जाती है। इसी कारण इन उपक्रमों को निर्णय लेने में देर लगती है।

4 **व्यावसायिक निपुणता की कमी :** जैसा कि आप जानते हैं, उन उपक्रमों का प्रबंधन सरकारी कर्मचारियों द्वारा होता है, जिनके पास प्रायः व्यवसाय चातुर्य (business acumen) नहीं होता। उनका चयन और प्रशिक्षण सर्वथा भिन्न प्रयोजन से किया जाता है। कार्यविधियों और नियमों का सख्ती से पालन होने के कारण निर्णय लेने के कार्य में देर होती है, जो व्यावसायिक सिद्धांतों के प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त इन अधिकारियों के स्थानांतरण पर कोई रोक नहीं होती। इस कारण वे अपने कार्य में उतना निपुण नहीं हो पाते तथा अपने दायित्व को उतना नहीं निभा पाते जितना कि उनसे अपेक्षा की जाती है।

5 **प्रतिस्पर्धा और लाभ की प्रेरणा का अभाव :** विभागीय उपक्रमों का उद्देश्य सेवा करना होता है, इसलिए इनके संचालन में उन व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा कर दी जाती है जो इनकी सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा के अभाव में इनकी प्रचालन कुशलता को बढ़ाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होता।

6 **वित्तीय बाध्यताएँ :** आप जानते हैं कि इन उपक्रमों की वित्त व्यवस्था वार्षिक बजट विनियोजन के द्वारा होती है, जिसे विधान मंडल विनियोजित करता है तथा इनकी आय को सरकारी खजाने में जमा किया जाता है। ये स्वयं ही अपने लिए आवश्यक धन नहीं जुटा सकते। इसके लिए इन्हें पूर्णतः सरकार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसी कारण कभी-कभी इन्हें वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वित्तीय मामलों के संबंध में इनमें बहुत लचीलापन नहीं होता क्योंकि इन्हें बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रणों के अधीन रहकर कार्य करना होता है।

बोध प्रश्न क

1 सार्वजनिक उपक्रमों के संगठन के क्या रूप होते हैं?

....

....

....

2 सार्वजनिक उद्यमों में विभागीय संगठन किसे कहते हैं?

....

....

....

3 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

i) विभागीय प्रकार के संगठन में सर्वोपरि नियंत्रण प्रबंध निदेशक के हाथ में होता है।

ii) विभागीय रूप में गठित सार्वजनिक उद्यम जनता के बीच शेयरों को जारी करके पूँजी जुटा सकता है।

iii) विभागीय रूप में गठित सार्वजनिक उद्यम के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

iv) विभागीय, संगठन में किसी व्यक्ति को पूँजी का अंशदायी (subscriber) नहीं बनने दिया जाता।

v) विभागीय रूप तभी उपयुक्त है जब कोई सार्वजनिक उद्यम लाभ की प्रेरणा से कार्य करता है।

vi) विभागीय रूप उस स्थिति में उपयुक्त नहीं होता जहाँ सामरिक महत्त्व की दृष्टि से गोपनीयता को आवश्यक माना जाता है।

vii) विभागीय प्रकार के संगठन में लाल फीताशाही तथा नौकरशाही संबंधी दोष होते हैं।

viii) विभागीय उपक्रमों के कर्मचारियों का स्थानांतरण नहीं हो सकता।

17.3 लोक निगम (Public Corporation)

लोक निगम निगमित निकाय (Corporate body) होता है जिसका निर्माण, संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के द्वारा होता है, जिसमें निगम की शक्तियों, कर्तव्यों, कार्यों, छूटों और प्रबंध के स्वरूप का स्पष्टीकरण होता है। लोक-निगम को सांविधिक निगम (Statutory Corporation) के नाम से भी जाना जाता है। इसकी समस्त पूँजी सरकार द्वारा लगाई हुई होती है। इसका प्रबंध, प्रबंध समिति करती है, जिसका गठन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार होता है। लोक-निगम संसद या राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

जैसा कि रूज़वेल्ट ने कहा है, लोक-निगम ऐसा संगठन है जो सरकारी अधिकारों से सज्जित तो होता है, परंतु साथ ही साथ इसके पास निजी उद्यम का लचीलापन भी होता है। हरबर्ट मौरीसन के अनुसार **लोक निगम वह संगठन है जिसका निर्माण जनता की भलाई के उद्देश्य से सार्वजनिक स्वामित्व, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और व्यावसायिक प्रबंध के संयोजन से होता है।** इस प्रकार लोक निगम वह युक्ति है जिसके द्वारा निजी क्षेत्र में कार्यरत कंपनी के प्रकार के संगठन की कार्यप्रणाली के लचीलेपन के साथ सार्वजनिक हित का संयोजन किया जाता है। आमतौर पर लोग निगमों का गठन निम्नलिखित में से किसी भी प्रयोजन से किया जाता है :

i) किसी राष्ट्रीयकृत उपक्रम के व्यवसाय का निगम को हस्तांतरण।
ii) किसी वर्तमान कंपनी के उपक्रमों के अधिग्रहण (acquisition) कार्य को सरल बनाना।
iii) कुछ योजनाओं का संवर्धन, विकास और प्रचालन।
iv) कुछ सामाजिक सेवाओं और उपयोग सेवाओं (utility services) का विस्तार।
v) किसी संस्था की कार्यप्रणाली और उसके प्रचालन या तत्संबंधी अन्य मामलों का विनियमन और नियंत्रण।

लोक निगमों का विकास आजादी के बाद की घटना है। देश का सर्वप्रथम लोक निगम दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) है जिसकी स्थापना 1948 ई. में संसद द्वारा बनाए गए अधिनियम के अंतर्गत हुई। यह बहुउद्देश्य नदी परियोजना है। निजी क्षेत्रक के उद्योगों की वित्त व्यवस्था के लिए सरकार ने उसी वर्ष भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) की स्थापना की। 1953 ई. में जब इंडियन एयरलाइन्स और एयर इंडिया की स्थापना हुई तभी वायु निगम अधिनियम भी पारित हुआ। स्टेट बैंक आफ इंडिया अधिनियम के द्वारा 1955 ई. में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (State Bank of India) की स्थापना हुई तथा 1956 के जीवन बीमा अधिनियम के अधीन भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India) बनाया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार को जब भी कोई वाणिज्यक कार्य करना होता है तब वह संसद से इसके लिए अनुमति लेती है।

इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक निगम के लिए अलग से अधिनियम होना आवश्यक नहीं है। एक ही अधिनियम के अंतर्गत एक से अधिक सांविधिक निगमों की स्थापना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, 1948 के विद्युत (पूर्ति) अधिनियम के अधीन अधिकतर राज्यों में राज्य विद्युत बोर्डों (State

Electricity Boards) की स्थापना हुई है। उसी प्रकार अधिकतर राज्यों में 1951 ई. के राज्य वित्तीय निगम अधिनियम के अंतर्गत राज्य वित्त निगम बनाए गए हैं।

17.3.1 विशेषताएँ

लोक निगम किसे कहते हैं, इस संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब हम इन निगमों की मुख्य विशेषताओं के संबंध में विचार करेंगे।

1 **विधान मंडल के विशेष अधिनियम के अंतर्गत स्थापना** : लोक निगम स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) होता है, जिसकी स्थापना राज्य विधान मंडल या संसद द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के अंतर्गत होती है। निगम की शक्तियों, कर्तव्यों, विशेषाधिकारों, छूटों तथा अन्य सरकारी विभागों आदि के साथ इसके संबंधों का स्पष्टीकरण अधिनियम में दिया होता है।

2 **यह निगमित निकाय है** : संयुक्त पूँजी कंपनी (इकाई 2) के ही समान निगम भी एक विधिक एका (legal entity) होता है। यह एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका कानूनी दृष्टि से अपना अस्तित्व होता है। किसी जीवित व्यक्ति के ही समान यह संविदा कर सकता है तथा अपने नाम से कोई कारोबार कर सकता है। चूँकि इसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता, अत: इसका कार्य इसके एजेंटों यानी निदेशक मंडल के द्वारा होता है।

3 **राज्य का स्वामित्व** : इस पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व होता है और इसकी समस्त पूँजी राज्य द्वारा लगाई हुई होती है।

4 **निदेशक मंडल द्वारा प्रबंध** : इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है जिसका गठन अधिनियम के उपबंधों (provisions) के अनुसार होता है। निदेशक मंडल के सदस्य विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी नियुक्ति संबंधित सार्वजनिक प्राधिकरण (public authority) करता है।

5 **विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी** : लोक निगम उस विधान मंडल (संसद या राज्य विधानसभा) के प्रति उत्तरदायी होता है, जो इसका निर्माण करता है। अधिनियम में यह दिया होता है कि उत्तरदायित्व किस प्रकार का होगा। संसद से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह उसके दिन-प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप करे। फिर भी वह निगम की नीति संबंधी मामलों और उसके कुल कार्य-निष्पादन के संबंध में चर्चा कर सकता है परंतु संसद में कभी-कभी ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं और उनका उत्तर भी दिया जाता है जो किसी निगम की दिन-प्रतिदिन की कार्रवाइयों से संबंधित होते हैं। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों होता है? उत्तर यह है कि प्रजातंत्र में संसद को सर्वोच्च अधिकार है, अत: उससे कहना अत्यंत कठिन है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इसके अतिरिक्त किसी निगम में जब अव्यवस्था आ जाती है तब उसके कार्य-निष्पादन के संबंध में प्रश्न पूछने से संसद को रोका नहीं जा सकता, भले ही यह उक्त सिद्धांत का उल्लंघन हो जिसे संसद स्वयं ही स्वीकृत कर चुकी हो।

6 **सरकार के साथ संबंध** : हालांकि कानूनी निगम सरकार के स्वामित्व के अधीन होता है फिर भी यह सरकार के विभाग या अंग के रूप में कार्य नहीं करता। निगम के निगमन अधिनियम में यह दिया हुआ होता है कि सरकार और निगम के बीच किस प्रकार का कानूनी संबंध और संप्रेषण माध्यम होगा। उदाहरणार्थ, जीवन बीमा निगम, जो एक कानूनी निगम है, का जन हित संबंधी नीतियों के मामलों में मार्ग निर्देशन केन्द्रीय सरकार लिखित रूप में आदेश देकर करती है। इस प्रकार सरकार के साथ इसका संबंध औपचारिक तथा स्पष्ट होता है। परंतु व्यवहार रूप में हम देखते हैं कि कानूनी निगमों के साथ अनेक कार्य अनौपचारिक ढंग से ही हो जाते हैं। आगे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा कैसे होता है। मान लें कि इंडियन एयरलाइन्स दिल्ली और इम्फाल के बीच कोई विमान सेवा इसलिए नहीं चला रही है कि ऐसा करना अलाभकर है। परंतु सरकार चाहती है कि इंडियन एयरलाइन्स यह सेवा शुरू करे। वायु निगम अधिनियम के अधीन सरकार इंडियन एयरलाइन्स को लिखित आदेश दे सकती है कि वह ऐसा करे। परंतु सामान्यत: सरकार ऐसा नहीं करती बल्कि इस संबंध में केवल सुझाव दे देती है, क्योंकि सरकार के लिखित आदेश के पालन की स्थिति में इंडियन एयरलाइन्स को यदि घाटा उठाना पड़ा तो उसकी क्षतिपूर्ति

सरकार को करनी होगी। अत: अनेक मामलों में सरकार अपने ऊपर किसी प्रकार का दायित्व लिए विना ही अनौपचारिक ढंग से अपना काम करा लेती है।

7 **कर्मचारी भर्ती संबंधी निजी प्रणाली** : यद्यपि निगम का स्वामित्व और प्रबंध सरकार के अधीन होता है पर उसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। निगम द्वारा निर्धारित निबंधन और शर्तों के अनुसार उनकी भर्ती होती है, उन्हें पारिश्रमिक मिलता है और उन पर नियंत्रण रहता है। उनके वेतन तथा अन्य आर्थिक लाभ सरकारी नौकरों के समान नहीं होते। इस प्रकार अपने कर्मचारियों के संबंध में निगम के पास आवश्यक स्वतंत्रता होती है। फिर भी निगम के नियोजन संबंधी अवधि और शर्तों को सरकार बड़ी कड़ाई से नियमित करती है। ऐसा वह मुख्यत: इसलिए करती है कि अनेक निगमों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य लाभों के बीच एकरूपता बनी रहे।

8 **वित्तीय स्वतंत्रता** : कानूनी निगम की स्वायत्तता का मुख्य स्रोत है वित्तीय मामलों में उसका स्वतंत्र होना। विभागीय प्रकार के संगठन के विपरीत लोक निगम पर बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रण नहीं होते। इसकी अपनी निधि होती है, जिसमें उसकी आय को जमा किया जाता है तथा इसमें से राशि निकाल कर भुगतान किया जाता है। निगम को जो भी राशि प्राप्त होती है उसकी व्यवस्था वह अपने ढंग से करता है। अपने बजट की स्वीकृति के लिए उसे संसद के सम्मुख नहीं जाना पड़ता। सरकार की स्वीकृति लेकर निगम देश के अंदर तथा देश के बाहर से धन उधार ले सकता है।

17.3.2 गुण

लोक निगम विभागीय ढंग से चलने वाले सरकारी उपक्रमों और निजी स्वामित्व और प्रबंधन के अंतर्गत के निगमित निकायों के बीच का मार्ग दिखाता है। इन दोनों की कुछ मुख्य वांछनीय विशेषताओं को यह आत्मसात् कर लेता है जिससे इन दोनों के ही गुण इसमें आ जाते हैं। इसके साथ ही साथ यह इन दोनों के कुछ मुख्य दोषों को दूर कर देता है। अब हम निगम प्रकार के संगठन के गुणों के संबंध में विचार करेंगे। ये गुण निम्नलिखित हैं :

1 **पहल और लचीलापन** : चूँकि यह विधान मंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम के अधीन स्थापित स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) हैं अत: अपने पहल और लचीलेपन की सहायता से अपने मामलों का प्रबंध स्वतंत्र रूप में करता है। यह नए क्षेत्रों में प्रयोग करता है, व्यावसायिक मामलों में पहल करता है तथा निजी उपक्रमों में पाए जाने वाले प्रचालन संबंधी लचीलेपन से लाभ उठाता है।

2 **लाल फीताशाही को दूर करना** : विभागीय प्रकार के संगठन में पाए जाने वाले फीताशाही तथा नौकरशाही जैसे दोषों को लोक निगम दूर करता है। सरकारी व्यवस्था अनेक प्रकार के नियमों, विनियमों तथा कार्यविधियों के अधीन होती है अत: उसमें व्यावसायिक कार्यों को कुशलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। विभागीय संगठनों की तुलना में लोक निगम अपने कार्यों के संबंध में शीघ्रता से निर्णय लेकर उचित कार्यवाही कर लेता है।

3 **पूँजी जुटाने में आसानी** : लोक निगम सरकार के स्वामित्व में सांविधिक (कानूनी) निकाय होते हैं। जब भी आवश्यक होता है तब ये अपेक्षाकृत कम दर की ब्याज वाले बांड जारी करके पूँजी की रकम जुटा लेते हैं। आम जनता बड़ी तत्परतापूर्वक इन बांडों को खरीद लेती है क्योंकि इसमें उसे खतरा नहीं दिखाई देता।

4 **जनहित की रक्षा होती है** : आप जानते ही हैं कि विभागीय संगठन की तुलना में लोक निगम राजनीतिक हस्तक्षेपों, संसदीय जाँच तथा विभागीय पाबंदियों और नियंत्रणों से मुक्त होता है। प्रशासन के मामले में बहुत कुछ स्वायत्त होने के बावजूद इसकी नीतियों पर संसदीय नियंत्रण बना रहता है। इससे जनहित की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त लोक निगमों के निदेशक मंडल में विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्ति होते हैं, जैसे व्यवसाय के विशेषज्ञ तथा श्रमिकों और उपभोक्ताओं आदि के प्रतिनिधि, जिन्हें सरकार मनोनीत करती है। इस प्रकार किसी एक वर्ग के बदले में किसी अन्य वर्ग का शोषण नहीं हो पाता।

5 **सेवा भावना से कार्य :** लोक निगमों में मुनाफाखोरी, शोषण, अवैध सट्टा जैसे अवगुण नहीं होते, जो निजी उद्यमों में अक्सर ही पाए जाते हैं। लोक निगमों का मुख्य उद्देश्य होता है आम जनता की सेवा करना। लाभ अर्जन तो गौण बात है। कुशलतापूर्वक कार्य करने से इसमें बचत भी होती है, पर ऐसी बचत शोषण के फलस्वरूप नहीं होनी चाहिए। इस बचत का उपयोग उपभोक्ताओं और समुदाय के हित में होता है।

6 **कार्यकुशलता आती है :** लोक निगम अपने कर्मचारियों को अच्छी सुविधाएँ तथा नौकरी संबंधी आकर्षक शर्तें प्रदान करता है जिससे श्रम समस्याएँ कम हो जाती हैं, इस प्रकार इसमें कार्यकुशलता आती है।

7 **बड़े पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं :** बड़े पैमाने पर उत्पादन और कारोबार होने के फलस्वरूप बड़े पैमाने की किफायतें होती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक कंपनियों के एकीकरण के द्वारा प्रबंध में काफी किफायतें करना आसान हो जाता है। उदाहरणार्थ, बड़े-बड़े सरकारी उपक्रमों को यदि बैंकिंग, बीमा, परिवहन, आदि जैसी स्वायत्त इकाइयों के रूप में गठित किया जाता है तब कम लागत पर ही प्रबंध में सुधार लाया जा सकता है तथा अधिक कुशल कर्मचारियों की सेवा प्राप्त की जा सकती है।

17.3.3 दोष

आपने लोक निगम प्रकार के संगठनों के गुणों के संबंध में पढ़ा। इन संगठनों में कुछ दोष भी होते हैं जिनके संबंध में नीचे अध्ययन किया जाएगा।

1 **स्वायत्तता (autonomy) की कमी :** विभागीय उपक्रमों की तुलना में लोक निगमों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त होती है। फिर भी सरकार इनकी स्वायत्ता पर नियंत्रण रखती है। वह ऐसा उन क्षेत्रों में भी करती है जिनमें यह माना जाता है कि लोक निगम अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र है। उदाहरणार्थ, भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) और विभिन्न राज्यों के विद्युत बोर्ड (ये कानूनी निगम हैं) सरकार और जनता इन दोनों ही के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनके अधिनियम के अनुसार उनको जितनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए उतनी केन्द्रीय और राज्य सरकारें उन्हें नहीं देतीं।

2 **लोचहीनता :** किसी लोक निगम की स्थापना विधान मंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होती है। इसके उद्देश्य और शक्ति में किसी भी प्रकार के परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक होता है कि संसद या विधान मंडल अधिनियम में भी संशोधन करें। इसके फलस्वरूप यह निगम लोचहीन होने के साथ ही साथ बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति असंवेदनशील भी हो जाता है।

3 **विरोधी हितों के बीच संघर्ष :** जैसा कि आप जानते हैं, निगमों का स्वामित्व सरकार के अधीन होता है और इनका प्रबंध निदेशक मंडल करता है, जिनकी नियुक्ति सरकार करती है। यह निदेशक मंडल जब विरोधी हितों का प्रतिनिधित्व करता है, तब हितों के बीच संघर्ष हो सकता है। इसके फलस्वरूप निगम के सुचारू रूप में चलने में रुकावट आ सकती है। कभी-कभी तो निदेशक कुछ गलत काम करके निगम की स्वायत्तता और अधिकार का दुरुपयोग करने लगते हैं। इससे निगम के सामाजिक उद्देश्य पर पानी फिर जाता है।

4 **व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा :** लोक निगमों को किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता। उनका निर्देशन न तो लाभ के प्रयोजन से होता है और न ही क्षति के भय से वे ग्रस्त होते हैं। इसलिए इस बात की संभावना रहती है कि उनकी कार्रवाइयों के दौरान व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा कर दी जाए। ऐसा करने से निगमों में अदक्षता आ सकती है तथा इन्हें क्षति भी हो सकती है। इस क्षति की पूर्ति सरकार उन्हें आर्थिक सहायता देकर करती है।

5 **अत्यधिक सार्वजनिक जवाबदेही :** आप जानते हैं कि लोक निगमों का कार्य लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं बल्कि सेवा की भावना से होता है। उनका इस प्रकार का सार्वजनिक उत्तरदायित्व कभी-कभी उनकी कार्यकुशलता में बाधा का काम करता है।

बोध प्रश्न ख

1 लोक निगम क्या है?

....

....

....

....

....

2 लोक निगम की क्या विशेषताएँ हैं?

....

....

....

....

....

3 खाली स्थानों को भरें।

i) लोक निगम की समस्त पूँजी .... द्वारा लगाई हुई होती है।

ii) लोक निगम का निर्माण .... के द्वारा होता है।

iii) लोक निगम का प्रबंध .... द्वारा होता है।

4 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

i) लोक निगम के निदेशक मंडल के सदस्यों का चुनाव जनता करती है।

ii) लोक निगम की पूँजी का कुछ अंश निजी उपक्रमियों द्वारा लगाया हुआ होता है।

iii) लोक निगम आवश्यक पूँजी को स्वयं जुटा सकते हैं।

iv) लोक निगम के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

v) प्रति वर्ष संसद लोक निगम के बजट को स्वीकृति देती है।

vi) लोक निगम के निदेशक मंडल के सदस्यों को संबंधित सार्वजनिक प्राधिकरण मनोनीत करते हैं।

vii) लोक निगम लाभ के प्रयोजन से काम करते हैं।

17.4 सरकारी कंपनी (Government Company)

इंडियन कंपनी ऐक्ट के अनुसार **उस कंपनी को सरकारी कंपनी कहा जाता है जिसकी कुल प्रदत्त पूँजी (paid up capital) का 51 प्रतिशत या उससे अधिक भाग केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार, या अनेक राज्य सरकारों या अंशतः केन्द्रीय सरकार और अंशतः एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाया हुआ होता है। ऐसी कंपनी की नियंत्रित कंपनी (subsidiary company) भी सरकारी कंपनी कही जाती है।** इस प्रकार सरकारी कंपनी वह उपक्रम है जिसका प्रमुख शेयर होल्डर सरकार होती है, और जिस पर सबसे अधिक नियंत्रण सरकार के हाथ में होता है। सरकारी कंपनी का पंजीकरण इंडियन कंपनी ऐक्ट के अधीन होता है। जब सरकार किसी नई कंपनी की स्थापना के लिए रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनीज़ को दरख्वास्त देती है तब उसे उन सभी नियमों और कार्य विधियों का पालन करना होता है जो निजी व्यक्तियों पर भी लागू होते हैं। सरकारी

कंपनी होने मात्र से ही उसे पंजीकरण संबंधी औपचारिकताओं को पूरा करने से छूट नहीं मिल पाती। इकाई 4 में आप कंपनी के पंजीकरण संबंधी औपचारिकताओं और कार्यविधियों के संबंध में पढ़ चुके हैं। अब तो एक और प्रकार की कंपनी बनने लगी है जिसकी पूँजी पर सरकारी और गैर-सरकारी (भारतीय और विदेशी) दोनों ही क्षेत्रों का स्वामित्व संयुक्त रूप से होता है। वह सरकारी कंपनी जिसके शेयर होल्डर सरकार तथा निजी उद्यम और व्यक्ति होते हैं, संयुक्त स्वामित्व कंपनी (mixed-ownership company) के नाम से जानी जाती है। भारत सरकार ने अनेक व्यावसायिक और औद्योगिक उपक्रमों को प्रायः प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में पंजीकृत और गठित किया है, हालांकि इनके अधिकांश शेयरों के सरकार के स्वामित्व में होने के कारण ये सरकारी नियंत्रण और नियमन के अंतर्गत होती हैं।

इस संबंध में प्रश्न उठ सकता है कि व्यावसायिक उद्यमों को कंपनी के रूप में स्थापित करने के पीछे सरकार का क्या उद्देश्य होता है। निम्नलिखित कारणों से सरकार इनकी स्थापना कंपनी के रूप में करती है :

1 **लोक हित** : किन्हीं निजी उद्यमों के शेयरों को सरकार अपने हाथ में उस स्थिति में लेती है जब इनमें लाभ न हो रहा हो या ये वित्तीय संकट में हो। ऐसा वह देश के हित में करती है। इसके उदाहरण हैं — ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, जिन्हें सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है।

2 **संयुक्त स्वामित्व** : कभी-कभी तो किसी उपक्रम की स्थापना में सरकार निजी उद्यमों का सहयोग इसलिए लेती है कि उनसे पूँजी, तकनीकी जानकारी और विशेषज्ञ-मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। ऐसी स्थिति में सरकार संयुक्त पूँजी कंपनियों की स्थापना करती है। ऐसी कंपनियों के उदाहरण हैं — हिन्दुस्तान मशील टूल्स, हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, हेवी इन्जीनियरिंग कार्पोरेशन, हिन्दुस्तान केबुल्स आदि।

3 **औद्योगिक संवर्धन** : सरकार कभी-कभी कुछ कंपनियों की स्थापना औद्योगिक संवर्धन के लिए करती है। इन कंपनियों का निर्माण कार्य के साथ प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता, बल्कि उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रकों में व्यवसाय संगत परियोजनाओं की स्थापना में सहायक होगीं। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) और राष्ट्रीय लघु-उद्योग निगम (National Small Scale Industries Corporation) इसके उदाहरण हैं।

4 **व्यापार या वाणिज्य का संवर्धन** : सरकार कुछ कंपनियों की स्थापना व्यापार या वाणिज्य के संवर्धन के लिए कर सकती है। राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation), निर्यात ऋण तथा गारंटी निगम (E.C.G.C.) आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

5 **प्रेरणा का अभाव** : निजी उपक्रम अनेक तरह के उपक्रमों को शुरू नहीं करते। इसका कारण यह है कि इन उपक्रमों में दीर्घ पक्वनावधि (longer gestation period), बड़ी रकम के निवेश, स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में लाभ के न होने जैसे खतरे होते हैं। ऐसी स्थिति में सरकार सरकारी कंपनियों की स्थापना करती है।

17.4.1 विशेषताएँ

सरकारी कंपनी की विशेषताएँ कानूनी निगमों की विशेषताओं जैसी ही है। फिर भी इनके बीच एक मुख्य अंतर है। कानूनी निगम की स्थापना के लिए विधान मंडल (केन्द्र या राज्य का) द्वारा बनाया गया अधिनियम आवश्यक होता है। परंतु सरकारी कंपनी की स्थापना के लिए इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अंतर के कुछ संवैधानिक अभिप्राय हैं। लोक निगम तथा सरकारी कंपनी के बीच के अंतर के संबंध में आप इसी इकाई के आगे के पृष्ठों में पढ़ेंगे। इन दोनों की अन्य विशेषताएँ लगभग एक जैसी हैं। सरकारी कंपनी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1 **भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन स्थापित** : सरकारी कंपनी एक निगमित निकाय होती है, जिसकी स्थापना निजी क्षेत्र की अन्य संयुक्त पूँजी कंपनी के ही समान भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन होता है। इसके पंजीकरण, सीमा नियम (memorandum), अंतर्नियमों (articles), बैठकों, पूँजी संरचना, लेखा, अंकेक्षण, आदि के संबंध में कंपनी अधिनियम के उपबंध (provisions) लागू होते हैं। फिर भी सरकार यदि कंपनी अधिनियम के कुछ उपबंधों को हटाना

या उनमें संशोधन करना चाहती है तो ऐसा वह विधान मंडल की स्वीकृति के साथ विशेष अधिसूचना (special notification) जारी करके कर सकती है।

2 **यह निगमित निकाय है** : सरकारी कंपनी का विधिक अस्तित्व (legal existence) होता है। यह एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसकी कानूनी दृष्टि में अपनी अलग सत्ता होती है। किसी जीवित व्यक्ति के ही समान अदालत में यह किसी पर मुकद्मा दायर कर सकती है या इस पर भी कोई मुकद्मा दायर कर सकता है, कोई संविदा कर सकती है और अपने नाम से कोई संपत्ति ले सकती है।

3 **पूँजी में निजी सहभागिता** (Private participation) **की गुंजाइश** : सरकारी कंपनी पर सरकार का पूर्णत: या अंशत: स्वामित्व हो सकता है। परंतु किसी भी स्थिति में सरकार के शेयर 51 प्रतिशत से कम नहीं होते। यदि इस पर सरकार का अंशत: स्वामित्व है तब इसमें निजी व्यक्ति भी (व्यक्ति तथा निगमित निकाय) पूँजी लगा सकते हैं। इस प्रकार पूँजी में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है।

4 **निदेशक मंडल द्वारा प्रबंध** : इसका प्रबन्ध निदेशक मंडल करता है। सभी निदेशकों या उनमें से अधिकतर की (जो इस बात पर निर्भर करता है कि निजी सहयोग कितना है) नियुक्ति सरकार करती है। बोर्ड बनाते समय सरकार टेक्नोक्रैटों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं, विदेशी सहयोगियों आदि के हितों को भी प्रतिनिधित्व दे सकती है।

5 **वित्तीय स्वतंत्रता** : सरकारी कंपनी अपनी वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय से प्राप्त आय का उपयोग और पुन: उपयोग कर सकती है। आवश्यकता पड़ने पर वह वित्तीय संस्थाओं और आम जनता से उधार भी ले सकती है।

6 **स्वतंत्र कर्मचारी-भर्ती** : इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। कंपनी इनकी नियुक्ति अपने ही निबंधन और शर्तों (terms and conditions) के अनुसार करती है।

7 **स्वतंत्र लेखाकरण और अंकेक्षण प्रणाली** : सरकारी विभागों पर लागू होने वाले लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी नियम सरकारी कंपनी पर लागू नहीं होते। इसकी लेखाकरण प्रणाली बहुत कुछ व्यावसायिक उद्यमों जैसी होती है और इसके लेखा परीक्षक चार्टर्ड एकाउटेंट होते हैं जिनकी नियुक्ति सरकार नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) की सलाह पर करती है।

8 **वार्षिक रिपोर्ट** : कंपनी अधिनियम के अनुसार इसके अंकेक्षण रिपोर्टों के साथ-साथ वार्षिक रिपोर्ट और लेखों को विधान मंडल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

17.4.2 सरकारी और गैर-सरकारी कंपनियों में भेद

सरकारी कंपनी और अन्य संयुक्त पूँजी कंपनियों, जिन्हें गैर-सरकारी कंपनी कहा जाता है, में कुछ अन्तर होते हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1 **प्रदत्त पूँजी** : सरकारी कंपनी की कम-से-कम 51% प्रदत्त शेयर पूँजी (paid up share capital) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संयुक्त रूप से केन्द्रीय सरकार और एक या एक से अधिक राज्य सरकारों की होती है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा लगाई पूँजी का संयोजन अनेक प्रकार से हो सकता है फिर भी एक या एक से अधिक सरकारों के अधीन कुल प्रदत्त पूँजी कम-से-कम 51% होना आवश्यक होता है, जिससे कि इसका रूप सरकारी कंपनी बना रहे। यह उल्लेखनीय है कि कुछ सरकारी कंपनियों की इक्विटी में निजी सहभागिता भी होती है। गैर-सरकारी कंपनियों की प्रदत्त पूँजी का अधिकांश भाग गैर-सरकारी व्यक्तियों द्वारा लगाया हुआ होता है।

2 **अंकेक्षक** (auditor) **की नियुक्ति** : सरकारी कंपनियों के अंकेक्षक की नियुक्ति नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) की सलाह पर होती है। उसे यह भी अधिकार होता है कि वह अंकेक्षकों को हिदायत दे और उन्हें यह बताए कि कंपनी का अंकेक्षण किस प्रकार का होना चाहिए। कभी-कभी नियंत्रक और महालेखा परीक्षक सरकारी कंपनियों का अंकेक्षण कंपनी अधिनियम के अंतर्गत स्वयं ही करता है। गैर-सरकारी कंपनी के अंकेक्षक की नियुक्ति कंपनी की साधारण सभा (general body) करती है।

3 **वार्षिक रिपोर्ट** : केन्द्रीय सरकार की कंपनी के वार्षिक रिपोर्ट तथा अंकेक्षण रिपोर्ट संसद के सामने तथा राज्य सरकार की कंपनी के, ये रिपोर्ट राज्य विधान मंडल के सामने रखे जाते हैं। गैर-सरकारी कंपनी का अंकेक्षण रिपोर्ट इसकी साधारण सभा के सामने रखा जाता है।

4 **कंपनी अधिनियम के उपबंध** : केन्द्रीय सरकार को यह घोषित करने का अधिकार है कि कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अंकेक्षण संबंधी उपबंधों के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपबंध किसी सरकारी कंपनी पर लागू नहीं होगा। परंतु गैर-सरकारी कंपनियों पर लागू होने वाले कंपनी अधिनियम के उपबंधों के संबंध में केन्द्रीय सरकार ऐसी कोई कार्यवाही नहीं करती।

17.4.3 गुण

सार्वजनिक उद्यमों में सरकारी कंपनी प्रकार के संगठन के अर्थ और उसकी विशेषताओं के संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब हम इस प्रकार के संगठन के गुणों के संबंध में विचार करेंगे। सरकारी कंपनी के निम्नलिखित गुण हैं :

1 **इसका गठन सरल है** : भारत के अधिकतर सार्वजनिक उद्यम संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस प्रकार की कंपनी बनाना सरकार के लिए आसान होता है। जब भी किसी नए कार्य की शुरुआत की आवश्यकता होती है, तब सरकार एक नई कंपनी बना सकती है। इसके लिए विधान मंडल से किसी बिल को पास कराने की जरूरत नहीं पड़ती, जैसा कि किसी सांविधिक निगम की स्थापना के संबंध में करना होता है।

2 **संविधान में परिवर्तन करना आसान होता है** : सरकार इसे इसलिए पसंद करती है कि अंतर्नियमों में संशोधन के द्वारा संविधान में परिवर्तन करना आसान होता है।
अधिकतर कंपनियों पर सरकार का पूर्ण स्वामित्व होता है। एकमात्र शेयर होल्डर होने के नाते सरकार को पूर्ण अधिकार होता है कि जब भी आवश्यक हो तब वह बैठकें बुलाकर कंपनी के अंतर्नियमों में संशोधन तथा संकल्पों को पास करा ले।

3 **चालू उद्यम को अपने अधीन लेना आसान होता जाता है** : किसी चालू उद्यम की शेयर पूँजी के अधिकांश भाग को प्राप्त करके सरकार उसे अपने अधीन कर लेती है और उसे सरकारी कंपनी का रूप दे देती है। उदाहरणार्थ, बर्मा शेल ग्रुप की कंपनियों की इक्विटी को लेकर सरकार ने उनका नाम भारत पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड कर दिया जो आज सरकारी कंपनी के रूप में कार्य कर रहा है। इसी प्रकार निजी क्षेत्रक के लगभग एक दर्जन और कंपनियों को अपने अधीन करके सरकार उन्हें सरकारी कंपनी के रूप में चला रही है। इनमें से कुछ के नाम बदल दिए गए हैं और कुछ के पहले ही जैसे हैं।

4 **निजी सहभागिता में सुविधा** : इस प्रकार के संगठन से सार्वजनिक उद्यमों की इक्विटी में निजी सहभागिता का होना आसान हो जाता है। सरकार यदि चाहे तो वह सरकारी कंपनी की इक्विटी के कुछ अंश को जनता के बीच बेचकर ऐसा बड़ी आसानी से कर सकती है।

5 **स्वामित्व का हस्तांतरण करना आसान होता है** : संगठन के सरकारी कंपनी के रूप में होने से सार्वजनिक उद्यम को बेचना आसान होता है। शेयरों की कीमत तय होते ही इन शेयरों को निजी पार्टियों को बेचकर कंपनी का स्वामित्व बड़ी आसानी से हस्तांतरित कर दिया जाता है।

6 **अधिक स्वायत्तता** : इसमें लोक निगम प्रकार के संगठन के प्राय: सभी गुण होते हैं। इसके पास अपना चार्टर, प्रचालन की स्वायत्ता (autonomy of operation), वित्तीय मामलों में आत्मनिर्भरता तथा कार्मिक मामलों में स्वतंत्रता होती है।

7 **प्रचालन में लचीलापन** : आप जानते हैं कि सरकारी कंपनी के कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। अत: विभागीय प्रकार के संगठनों के लाल फीताशाही तथा नौकरशाही जैसे दोषों से बचना आसान हो जाता है। इस प्रकार सरकारी कंपनी अपने व्यावसायिक मामलों में तुरंत निर्णय और कार्यवाही करने की स्थिति में होती है।

17.4.4 दोष

सरकारी कंपनी के रूप में संगठन के निम्नलिखित दोष हैं :

1 **संवैधानिक दायित्व से बचना** : सरकारी कंपनी की स्थापना संसद की स्वीकृति लिए बिना ही की जा सकती है। इसके निर्माण के कारणों और उसके संविधान के संबंध में संसद में विचार नही किया जाता। इस प्रकार सरकारी कंपनी संवैधानिक दायित्व से बच जाती हैं।

2 **सरकारी हस्तक्षेप :** सरकार अधिकतर सरकारी कंपनियों की एकमात्र शेयर होल्डर होती है, इस नाते जब भी आवश्यक होता है, वह किसी कंपनी के सीमा नियम (memorandum) और अंतर्नियम (articles of association) में संशोधन कर सकती है। इस प्रकार जनता के बीच किसी प्रकार का विचार-विमर्श किए बिना ही, जो कानूनी निगम की स्थिति में आवश्यक होता है, सरकारी कंपनी के संविधान में परिवर्तन किया जा सकता है। इससे कंपनी की स्वायत्तता पर असर पड़ सकता है।

3 **सार्वजनिक जवाबदेही का भय :** सरकारी कंपनी के निदेशकों और उच्च अधिकारियों को सदा ही सार्वजनिक उत्तरदायित्व का भय बना रहता है। इस कारण किसी नए क्षेत्र में पहल करने तथा कोई नया कार्य करने में उन्हें हिचक होती है।

4 **जनता के बीच आलोचना :** संबद्ध मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट में सरकारी कंपनी के कार्यों का उल्लेख रहता है। इस रिपोर्ट को संसद या राज्य विधान मंडल के सामने रखा जाता है। इस प्रकार यह रिपोर्ट सार्वजनिक दस्तावेज बन जाती है, जिससे सरकारी कंपनी की जनता के बीच आलोचना हो सकती है।

5 **पेशेवर प्रबंधक वर्ग का अभाव :** जैसा कि आप जानते हैं सरकारी कंपनी के निदेशकों की नियुक्ति प्रायः सरकार करती है। इस कारण निजी क्षेत्रक के उद्यमों में पाई जाने वाली व्यावसायिक दक्षता सरकारी कंपनियों में नहीं आ पाती।

बोध प्रश्न ग

1 सरकारी कंपनी किसे कहते हैं?

....

....

....

....

....

2 खाली स्थानों को भरें।

i) .... सरकारी कंपनी के लेखा परीक्षकों की नियुक्ति .... की सलाह पर करती है।

ii) सरकारी कंपनी होने के लिए प्रदत्त पूँजी में सरकार का हिस्सा कम से कम .... होना आवश्यक होता है।

iii) भारत में अधिकतर सार्वजनिक उद्यमों का गठन .... के रूप में होता है।

iv) सरकारी कंपनी का निर्माण .... अधिनियम के अधीन होता है।

v) सरकारी कंपनी का प्रबंध .... द्वारा होता है।

3 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

i) भारतीय सामान्य जीवन बीमा निगम सरकारी कंपनी है।

ii) सरकारी कंपनी निगमित निकाय (corporate body) होती है।

iii) सरकार को अधिकार होता है कि वह सरकारी कंपनी का संचालन मनमाने ढंग से करे।

iv) सरकार कंपनियों के लिए आवश्यक सम्पूर्ण राशि की व्यवस्था सरकार करती है।

v) सरकारी कंपनी अपने कर्मचारियों की नियुक्ति सरकार से सलाह किए बिना कर सकती है।

vi) जिस कंपनी के 51% या उससे अधिक शेयर सरकार के स्वामित्व में होते हैं वह सरकारी कंपनी कही जाती है।

vii) कंपनी अधिनियम के कुछ उपबंधों को सरकारी कंपनियों पर लागू होने के संबंध में सरकार उन्हें छूट दे सकती है।

17.5 संगठन के रूपों की तुलना

संगठन के तीन रूपों यानी विभागीय संगठन, कानूनी निगम और सरकारी कंपनी में से प्रत्येक की विशेषताओं और उनके दोषों के संबंध में पहले ही विचार किया जा चुका है। अब हम इन तीनों की विशेषताओं की तुलना करेंगे और जानने का प्रयास करेंगे कि दी हुई स्थिति में कौन-सा रूप अधिक उपयुक्त होगा। सारणी 17.1 में इन तीनों की विशेषताएँ संक्षेप में दी गई हैं।

सारणी 17.1

सार्वजनिक उद्यमों से संगठन के तीन रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	आधार	विभागीय संगठन	लोक निगम	सरकारी कंपनी
1	निर्माण	इसकी स्थापना सरकार करती है और यह किसी विशेष मंत्रालय से संबद्ध होता है।	विधान मंडल के विशेष अधिनियम के अधीन इसकी स्थापना होती है।	मंत्रालय इसकी स्थापना कंपनी अधिनियम के अधीन करता है।
2	विधिक अस्तित्व	अलग से विधिक अस्तित्व नहीं होता।	इसका पृथक् विधिक अस्तित्व होता है।	इसका पृथक् विधिक अस्तित्व होता है।
3	प्रबन्ध	सरकार का संबद्ध मंत्रालय इसका प्रबंध करता है।	इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है, जिसे सरकार मनोनीत करती है।	इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है जिसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य और शेयरहोल्डरों द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं।
4	पूँजी	इसकी समस्त पूँजी की व्यवस्था सरकार बजट विनियोजन से करती है।	समस्त पूँजी सरकार लगाती है।	कम से कम 51% पूँजी सरकार द्वारा लगाई गई होती है।
5	निजी सहभागिता की गुंजाइश	निजी सहभागिता की कोई गुंजाइश नहीं होती।	निजी सहभागिता की कोई गुंजाइश नहीं होती।	इसकी शेयर पूँजी में और अत: इसके मामले में भी निजी (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय) सहभागिता की गुंजाइश होती है।
6	प्रचालन स्वायत्तता	स्वायत्तता (autonomy) कम से कम होती है या बिल्कुल ही नहीं होती। सरकार के अनिवार्य अंग के रूप में कार्य करता है।	अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत स्वायत्त निकाय के रूप में कार्य करता है। इसे काफी हद तक स्वतंत्रता प्राप्त होती है क्योंकि इसके दिन-प्रतिदिन के कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता।	निजी उद्यम के समान इसका संचालन व्यावसायिक सिद्धांतों के अनुसार होता है तथा सरकारी हस्तक्षेप से इसे कुछ हद तक स्वतंत्रता होती है।
7	लचीलापन	इस पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है। इस पर बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू होती हैं।	इस पर सरकार का कुछ नियंत्रण होता है। इस पर बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू नहीं होती हैं।	सरकारी नियंत्रण से कुछ हद तक स्वतंत्र होती है। बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू नहीं होतीं।
8	सार्वजनिक उत्तरदायित्व	संबद्ध मंत्री विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।	विधान मंडल के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।	सरकार और संबद्ध मंत्रालय जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
9	वित्त व्यवस्था और उधार लेने की शक्ति	केवल बजट विनिधान (budgetary allocation) होता है। इसके पास उधार लेने की शक्ति नहीं होती। इसकी आय को सरकारी खजाने में जमा कर दिया जाता है।	यह स्वयं ही अपनी वित्त व्यवस्था करता है तथा इसके पास उधार लेने की शक्ति भी होती है। इसे अपनी आय का उपयोग करने का भी अधिकार होता है।	यह स्वयं ही अपनी वित्त व्यवस्था करती है तथा इसके पास उधार लेने की शक्ति भी होती है। इसे अपनी आय का उपयोग करने का अधिकार होता है।
10	कर्मचारी भर्ती तथा सेवा की शर्तें	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं और उन पर सिविल सेवा संहिता लागू होती हैं।	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। इन पर लोक निगम की सेवा संहिता लागू नहीं होती है।	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। इन पर सरकारी कंपनी की सेवा संविदा लागू होती है।

इन तीन प्रकार के संगठनों की विशेषताओं के बीच तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायित्व और सरकारी नियंत्रण, विभागीय संगठन में अधिकतम और सरकारी कंपनी में न्यूनतम होते हैं। कर्मचारी, भर्ती, वित्त व्यवस्था और दिन-प्रतिदिन के प्रचालन (operation) के संबंध में विभागीय प्रकार के संगठन को कम से कम स्वायत्तता होती है जबकि कंपनी प्रकार के संगठन के पास यह अधिकतम होती है। उसी प्रकार विभागीय संगठन कम से कम लचीला होता है जबकि सरकारी कंपनी अधिकतम लचीली होती है। लोक निगम और सरकारी कंपनी की मुख्य विशेषताएँ लगभग एक जैसी होती हैं। इन दोनों के कार्य-संचालन में शायद ही कोई अंतर होता है। उदाहरणार्थ, भारतीय जीवन बीमा निगम सांविधिक निगम है, और भारतीय सामान्य बीमा निगम सरकारी कंपनी है, परंतु इन दोनों के ही कार्य-संचालन और प्रबंध एक जैसे हैं। लोक निगम और सरकारी कंपनी के बीच मुख्य अंतर यह है कि इनमें से पहले की स्थापना विधान मंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होती है जबकि दूसरे का निगमन (incorporation) विधान मंडल का आश्रय लिए बिना ही कंपनी अधिनियम के अधीन होता है। सरकारी कंपनी की पूँजी और प्रबंध में निजी सहभागिता (private participation) की गुंजाइश होती है परंतु लोक निगम के संबंध में ऐसा नहीं होता। इसके अतिरिक्त कंपनी प्रकार का संगठन संसदीय नियंत्रण से बच जाता है।

संगठन के इन तीन रूपों की विशेषताओं के तुलनात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक और व्यावसायिक उपक्रमों के लिए कंपनी के रूप का संगठन सर्वाधिक उपयुक्त होता है जबकि लोकोपयोगी उपक्रमों के लिए सांविधिक निगम ठीक रहता है। औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यमों को यदि कुशलतापूर्वक चलाना है तो आवश्यक है कि प्रबंध को अधिकतम स्वायत्तता दी जाए और प्रबंधक पेशेवर व्यक्ति हों। इनके दिन-प्रतिदिन के कार्यों में मंत्रालय या संसद की ओर से हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नीति निर्धारण तथा कार्यविधियों के संबंध में नम्य दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। कंपनी की तरह के संगठन में इन आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कुछ इसलिए हो जाती है कि कंपनियों का विधिक अस्तित्व होता है तथा इनकी नीतियों और कार्यविधियों में परिवर्तन के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती। इसके विपरीत लोकोपयोगी सेवाओं को कानूनी निगम के रूप में गठित करना इसलिए उचित होता है कि उनका स्वरूप एकाधिकारी होता है तथा उनकी दरों पर सरकार का कड़ा नियंत्रण होना आवश्यक होता है।

कुछ सरकारी संगठन प्राय: अपने नाम के साथ निगम (राज्य व्यापार निगम), कंपनी (हिन्दुस्तान फोटोफिल्म्ज मैनुफैक्चरिंग कंपनी), प्राधिकरण (भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि.) और आयोग (तेल और प्राकृतिक गैस आयोग) जैसे शब्दों को लगाते हैं। लेकिन ऐसा करने का कोई कानूनी आशय नहीं होता। इन शब्दों से यह पता नहीं चलता कि इनके गठन का रूप क्या है। उदाहरणार्थ, निगम शब्द सांविधिक निगमों के साथ लगता है और सरकारी कंपनियों के साथ भी। जीवन बीमा निगम सांविधिक निगम है, जब कि सामान्य बीमा निगम सरकारी कंपनी है। इस प्रकार हम देखते हैं नाम के साथ इन शब्दों के होने से ही सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी में अंतर नहीं किया जा सकता।

सरकारी कंपनियों के नाम के साथ प्राय: लिमिटेड शब्द जुड़ा होता है। कुछ हद तक इसी शब्द के द्वारा सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी के बीच भेद किया जाता है। परंतु इसके भी कुछ अपवाद हैं। यदि कंपनी का रजिस्ट्रीकरण कंपनी अधिनियम के सेक्शन 25 के अंतर्गत हुआ है तो उसके लिए अपने नाम के साथ "लिमिटेड" शब्द जोड़ना आवश्यक नहीं होता। ऐसा इसलिए कि इन कंपनियों की स्थापना केवल सांस्कृतिक, सामाजिक और अव्यावसायिक कार्यों के लिए की जाती है। अपने सदस्यों को ये लाभांश नहीं देतीं तथा अपनी आय का उपयोग ये कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए करती हैं। इस देश में चार केन्द्रीय सरकारी कंपनियाँ हैं। उनके नाम हैं (1) भारत का राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम (National Research Development Corporation of India) (2) इंडियन डेरी कार्पोरेशन, (3) भारतीय व्यापार मेला प्राधिकरण (Trade Fair Authority of India), और (4) आर्टिफिशियल लिम्ब मैनुफैक्चरिंग कार्पोरेशन ऑफ इंडिया। कंपनी अधिनियम के अंतर्गत निगमित होने के बावजूद ये कंपनियाँ अपने नाम के साथ "लिमिटेड" शब्द को नहीं लगातीं।

बोध प्रश्न घ

1 खाली स्थानों को भरें।

i) .... का निर्माण विधानमंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होता है तथा .... का निगमन कंपनी अधिनियम के अंतर्गत होता है।
ii) संगठन के अन्य रूपों की अपेक्षा .... रूप नौकरशाही प्रणाली के अधिक निकट होता है।
iii) .... की पूँजी में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है।
iv) .... प्रकार के संगठन पर सरकार की बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण कार्यविधियाँ लागू होती हैं।

2 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत?
i) व्यवहार रूप में सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी के बीच कोई अंतर नहीं होता।
ii) सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी निगमित निकाय हैं।
iii) संगठन के अन्य रूपों की तुलना में विभागीय संगठन के पास अधिक वित्तीय स्वायत्तता होती है।
iv) सार्वजनिक उद्यम के नाम के साथ "निगम" तथा "कंपनी" लगे होने से पता चलता है कि ये संगठन के भिन्न रूप हैं।
v) विभागीय संगठन की तुलना में सांविधिक निगम के पास प्रचालन स्वायत्तता (operational autonomy) अधिक होती है।

17.6 सारांश

सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के तीन रूप होते हैं : (1) विभागीय संगठन, (2) लोक (सांविधिक) निगम और (3) सरकारी कंपनी।

विभागीय प्रकार के संगठन में उद्यम का गठन, वित्त व्यवस्था और नियंत्रण सरकारी विभाग जैसा ही होता है। इसका कुल नियंत्रण संबद्ध मंत्री के हाथ में होता है और इसके कुशल संचालन के लिए वह विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है। इसकी वित्त व्यवस्था विधान मंडल द्वारा किए गए वार्षिक बजट विनियोजन से होती है और इसकी आय को सरकारी खजाने में जमा किया जाता है। अन्य सरकारी विभागों पर लागू होने वाले बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण नियंत्रण इस पर भी लागू होते हैं। इस संगठन के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

विभागीय संगठन के लाभ इस प्रकार हैं : चूँकि विधान मंडल के प्रति यह पूर्णतः उत्तरदायी होता है, अतः इसके कार्यों पर सरकार का अधिकतम नियंत्रण होता है। इस कारण लोक-निधि (public funds) के दुरुपयोग की गुंजाइश कम होती है। सरकार विभागीय उपक्रमों को अपनी सामाजिक और आर्थिक नीति का साधन बना सकती है। इनकी बचतों को सरकार राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के कार्यों में लगा सकती है। विभागीय संगठन के कुछ दोष भी हैं, जैसे इनमें नौकरशाही और लाल फीताशाही का होना, विधान मंडल का इन पर अत्यधिक नियंत्रण, राजनीतिक अस्थिरता का शिकार बने रहना, इनमें पेशेवर निपुणता की कमी, लोचदार न होना, वित्तीय मामलों में स्वायत्तता की कमी और प्रतिस्पर्धा तथा लाभ की प्रेरणा का अभाव।

लोक (सांविधिक) निगम निगमित निकाय होता है जिसका निर्माण संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के द्वारा होता है, जिसमें शक्तियों, कर्त्तव्यों, कार्यों, छूटों और प्रबंध के स्वरूप का स्पष्टीकरण होता है। इसे कानूनी निगम भी कहा जाता है। यह निगम पूर्णतः सरकार के स्वामित्व में

होता है और इसकी समस्त पूँजी सरकार द्वारा लगाई हुई होती है। इसका प्रबंध सरकार द्वारा मनोनीत निदेशक मंडल करता है। इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। यह विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है, जो इसका निर्माण करता है। फिर भी विधान मंडल से अपेक्षा की जाती है कि वह लोक निगम के दिन-प्रतिदिन के संचालन में हस्तक्षेप न करे।

लोक निगम प्रकार के संगठन के गुण इस प्रकार हैं : स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) होने के नाते यह पहल तथा लचीलेपन के साथ स्वतंत्र रूप से अपने मामलों का प्रबंध कर सकता है, तथा लाल फीताशाही से बच सकता है। चूँकि इसके पास वित्तीय स्वतंत्रता होती है, अत: जब भी आवश्यक हो तब वह आसानी से पूँजी जुटा सकता है। चूँकि यह सेवा की भावना से कार्य करता है तथा विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है, अत: लोक हित की रक्षा करता है तथा मुनाफ़ाखोरी, शोषण, अवैध सट्टा आदि दोषों से बचा रहता है। इसके चलते कार्यकुशलता आती है तथा बड़े पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं। लोक निगमों के दोष हैं — सरकार की ओर से अत्यधिक हस्तक्षेप, नीति संबंधी मामलों में लोचहीनता, निदेशक मंडल के सदस्यों के बीच हित का संघर्ष, अत्यधिक सार्वजनिक उत्तरदायित्व तथा व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा।

सरकारी कंपनी निगमित निकाय होती है जिसका रजिस्ट्रीकरण इंडियन कंपनी ऐक्ट के अधीन होता है तथा जिसकी कुल प्रदत्त पूँजी (paid-up-capital) का कम से कम 51% केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या अनेक राज्य सरकारों या अंशत: केन्द्रीय सरकार और अंशत: एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाया हुआ होता है। ऐसी कंपनी की नियंत्रित कंपनी (subsidiary company) भी सरकारी कंपनी कही जाती है। सरकारी कंपनी की स्थापना के लिए सरकार के लिए आवश्यक नहीं होता कि वह विधान मंडल से स्वीकृति ले। इस प्रकार के संगठन की पूँजी तथा प्रबंध में निजी सहभागिता की भी गुंजाइश होती है। इसका प्रबंध निदेशक मंडल करता है, जिसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य होते हैं तथा जिस कंपनी में निजी शेयरधारी भी होते हैं, उसके निदेशक मंडल में उनके द्वारा निर्वाचित सदस्य भी होते हैं। इसमें वित्तीय स्वायत्तता तथा स्वतंत्र कर्मचारी भर्ती प्रणाली होती है। विभागीय संगठनों पर लागू होने वाले लेखाकरण (accounting), अंकेक्षण (auditing) तथा बजट नियंत्रण इस पर लागू नहीं होते।

सरकारी कंपनी से मुख्य लाभ यह है कि एक ओर तो यह विभागीय संगठन के सभी अवगुणों से बचती है और दूसरी ओर लोक निगम के सभी गुणों को लाती है। सरकारी कंपनी को गठित करना तथा आवश्यकता पड़ने पर उसके संविधान में परिवर्तन करना आसान होता है। इसकी पूँजी और प्रबंध में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है। किसी चालू उद्यम को सरकार के अधीन करने या स्वामित्व को निजी उद्यमकर्ताओं को हस्तांतरित करने का काम आसान हो जाता है। वित्तीय, कर्मचारी भर्ती और लेखा संबंधी मामलों में स्वायत्त होने के कारण इसमें प्रचालन संबंधी लचीलापन अधिक होता है। सरकारी कंपनी का मुख्य दोष यह है कि यह संसदीय जाँच-पड़ताल से बची रहती है। अन्य दोष हैं — व्यावसायिक प्रबंध का अभाव, सरकारी हस्तक्षेप तथा इसके उच्च अधिकारियों के बीच सार्वजनिक जवाबदेही का भय।

सार्वजनिक उद्यमों के तीनों रूपों की विशेषताओं के तुलनात्मक मूल्यांकन से पता चलता है कि विभागीय प्रकार का संगठन उन उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है जो जनहित और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। कंपनी प्रकार का संगठन व्यावसायिक और औद्योगिक उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है, जबकि लोकोपयोगी उपक्रमों के लिए लोक निगम को ठीक समझा जाता है।

17.7 शब्दावली

स्वायत्तता (Autonomy) : सार्वजनिक उद्यम के संदर्भ में स्वायत्तता शब्द से अभिप्राय होता है किसी प्रकार के राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना स्वतंत्र रूप से प्रबंधन, नीति-निर्धारण और नीतियों को कार्यान्वित करना।

निगमित निकाय (Body corporate) : वह संगठन जिसका विधिक अस्तित्व हो और जिसका निर्माण विधान मंडल के अधिनियम के द्वारा या कंपनी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण के द्वारा हो।

विभागीय संगठन (Departmental organisation) : संगठन का एक रूप जिसमें किसी सार्वजनिक उद्यम का संगठन, वित्त व्यवस्था तथा नियंत्रण किसी सरकारी विभाग के ही समान किया जाता हो।

सरकारी कंपनी (Government company) : भारतीय कंपनीज़ अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई कंपनी जिसकी कम से कम 51% प्रदत्त पूँजी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या अनेक राज्य सरकारों या अंशत: केन्द्रीय सरकार और अंशत: एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाई गई हो।

संयुक्त स्वामित्व कंपनी (Mixed ownership company) : वह उद्यम जिसकी पूँजी सरकार और निजी हितों (भारतीय या विदेशी) के संयुक्त स्वामित्व में हो।

सार्वजनिक जवाबदेही (Public accountability) : संसद या राज्य विधान मंडलों के द्वारा जनता के प्रति सार्वजनिक उद्यमों की जवाबदेही।

लोक निगम (Public corporation) : संसद या राज्य विधान मंडल के विशेष अधिनियम द्वारा निर्मित स्वायत्त निगमित निकाय, जिसके कार्यों और शक्तियों का स्पष्टीकरण कर दिया गया हो।

भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India) : सरकारी संगठनों के लेखा के अंकेक्षण के लिए भारत के संविधान अधीन एक प्राधिकारी।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ऐडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म्स कमीशन : **रिपोर्ट ऑफ दी स्टडी टीम ऑन पब्लिक सेक्टर अंडर टेकिंग्स** (नई दिल्ली : गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1967) अध्याय 2 अंग्रेजी में।

घोष पी. के. : **पब्लिक इंटरप्राइजेज़ इन इंडिया** : (कलकत्ता, बुक वर्ल्ड, 1982) अध्याय 3 अंग्रेजी में।

यदुकुल भूषण एवं ओ. पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 2 खंड 6

बी. पी. सिंह एवं टी. एन. छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहाबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 23 खंड 6

जी. एल. जोशी, जी. एल. शर्मा, एवं एस. सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 18

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत

ख 3 (i) सरकार (ii) विधान मंडल के विशेष अधिनियम (iii) निदेशक मंडल

4 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) गलत (vi) सही (vii) गलत

ग 2 i) सरकार, भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक
- ii) 51%
- iii) संयुक्त पूँजी कंपनियों
- iv) भारतीय कंपनी
- v) निदेशक मंडल

3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) सही

घ 1 i) सांविधिक निगम, सरकारी कंपनी
- ii) विभागीय संगठन
- iii) सरकारी कंपनी
- iv) विभागीय

2 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही

17.10 स्वपरख प्रश्न

1 सार्वजनिक उद्यमों में संगठनों के क्या रूप होते हैं? प्रत्येक रूप की विशेषताएँ बताइये।
2 सांविधिक निगम क्या है? उसकी विशेषताओं, गुणों और दोषों को स्पष्ट कीजिए।
3 सरकारी कंपनी क्या है? सरकारी कंपनी और गैर-सरकारी कंपनी के बीच अन्तर बताइये।
4 सरकारी कंपनी की क्या मुख्य विशेषताएँ होती हैं? सांविधिक निगम की विशेषताओं से ये किस रूप में भिन्न होती हैं?
5 सरकारी कंपनी क्या है? इसकी विशेषताओं, गुणों और दोषों का वर्णन कीजिए।
6 विभागीय संगठन किसे कहते हैं? इस संगठन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इस प्रकार का संगठन लोकप्रिय क्यों नहीं होता?
7 कंपनी संगठन और सांविधिक निगम के बीच तुलना कीजिए। आपके विचार से सार्वजनिक उद्यमों के प्रबंध कार्य के लिए इनमें से कौन और क्यों उपयुक्त होगा?

नोट : इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भलीभाँति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 18 लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 लोकोपयोगी सेवा संस्थाएं क्या हैं ?

18.3 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की विशेषताएँ

18.4 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं का संगठन और प्रबंध

18.5 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की कीमत-निर्धारण नीति

18.6 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की विक्रय नीति

18.7 सार्वजनिक नियंत्रण और सरकारी विनियमन

18.8 सारांश

18.9 शब्दावली

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.12 स्वपरख प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं के अर्थ और विशेषताओं को स्पष्ट कर पाए
- लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं के संगठन और प्रबंध के रूप बता सकें
- लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की कीमत-निर्धारण और विक्रय नीति का वर्णन कर सकें
- लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं पर नियंत्रण और विनियमन की आवश्यकता को उचित सिद्ध कर पाएं।

18.1 प्रस्तावना

अपने रोज़मर्रा के जीवन में हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अनेक आवश्यक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। नगरों में हम नल का जल काम में लाते हैं। रोशनी, वातानुकूलन आदि कार्यों के लिए बिजली की आवश्यकता पड़ती है। इसका उपयोग कल-कारखानों, ट्रामों तथा रेलों को चलाने और सिंचाई के लिए भी होता है। क्या आपने कभी सोचा है कि इन सब की व्यवस्था कैसे होती है? ये सभी सेवाएँ लोकोपयोगी सेवाएँ या सार्वजनिक सेवाएँ कही जाती हैं और जो संगठन इनकी व्यवस्था करते हैं उन्हें लोकोपयोगी संस्था/उपक्रम कहा जाता है। इस इकाई में लोकोपयोगी संस्थाओं के अर्थ, विशेषताओं, संगठन के रूप, प्रबंधन, कीमत-निर्धारण नीति और विक्रय नीति के संबंध में चर्चा की जाएगी। इसके अतिरिक्त लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं पर राज्य विनियमन और नियंत्रण के संबंध में भी विचार किया जाएगा।

18.2 लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ क्या हैं?

जल, गैस, विजली, परिवहन, संचार, आदि वस्तुएँ आज हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक हो गई हैं। इन वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति के संवंध में जब भी रुकावट आती है तब लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। नल में पानी न आने की स्थिति में कुंआ या हैंडपंप का आश्रय लेना पड़ता है, जिसके कारण हम अपने कार्यालय में या अन्य किसी कार्य स्थल पर देर से पहुँचते हैं। इसी प्रकार विजली या परिवहन के संवंध में किसी प्रकार की गड़बड़ी होने पर लोगों को बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। अत: ये सेवाएँ समाज के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई हैं। इसीलिए इन्हें अनिवार्य सेवाएँ या अपरिहार्य आवश्यकताएँ कहा जाता है। जिन व्यावसायिक उपक्रमों की स्थापना का मूल उद्देश्य यह होता है कि सभ्य समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कुशलतापूर्वक और निरंतर की जा सके उन्हें लोकोपयोगी संस्था कहा जाता है। यह कहा जा सकता है कि लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ जनहित की पर्यायवाची हैं। **इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ वे व्यावसायिक उपक्रम हैं जो आम जनता के प्रतिदिन काम में आने वाली आवश्यक वस्तुओं की सेवाओं की पूर्ति के काम में लगे होते हैं।** गैस, जल, विजली, नगर परिवहन आदि जैसी अनिवार्य सेवाओं की पूर्ति कार्य में लगी संस्थाएँ लोकोपयोगी उपक्रमों के कुछ उदाहरण हैं। सभी लोकोपयोगी उपक्रमों का दायित्व होता है कि किसी प्रकार का भेदभाव किए विना वे समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को उनके लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करें तथा उनसे उनकी उचित कीमत लें।

18.3 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की विशेषताएँ

आपने देखा है कि लोकोपयोगी उपक्रमों का संवंध अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं के साथ होता है। इसी कारण ये उपक्रम अन्य व्यावसायिक उद्यमों से विल्कुल ही भिन्न प्रकार के होते हैं। अब हम लोकोपयोगी सेवाओं संस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

1 **अपरिहार्यता** (Indispensability) : लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं का संबंध जल, गैस, विजली, परिवहन, टेलीफोन तार, डाक सेवा आदि के साथ होता है। इन संस्थाओं की जरूरत इसलिए पड़ती है कि समुदाय की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा जाति और संप्रदाय के आधार पर अंतर किए विना प्रत्येक नागरिक के लिए सभ्य और सुखी जीवन की व्यवस्था की जा सके। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि इन सेवाओं को नियमित, एक समान और पर्याप्त रूप में उपलब्ध कराया जाए। इसीलिए सभी आधुनिक समाजों में लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं का होना अनिवार्य समझा जाता है।

2 **कार्य क्षेत्र** (Field of operation) : लोकोपयोगी उपक्रमों का कार्यक्षेत्र प्राय: स्थानीय होता है। ये प्राय: किसी नगर, शहर या अधिक से अधिक किसी जिले के नागरिकों की जरूरतों को पूरा करते हैं। जैसे दिल्ली दुग्ध योजना (Delhi Milk Scheme) और मदर डेरी, दिल्ली नगर के विभिन्न इलाकों में स्थित अपने बूथों के द्वारा लोगों तक दूध पहुँचाते हैं।

3 **एकाधिकारी या अर्ध-एकाधिकारी स्थिति** (Monopolistic or semi-monopolistic position) : अनिवार्य जन सेवाओं की पूर्ति करने वाले उपक्रम स्वभावत: ही एकाधिकारी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उनके कोई प्रतिस्पर्धी नहीं होते। दिल्ली इलैक्ट्रिक सप्लाई कंपनी इसी का एक उदाहरण है। बिजली की पूर्ति के मामले में इस नगर में इसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है। प्राय: यह माना जाता है कि अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप बेकार में ही दोहरेपन तथा सामाजिक क्षति की स्थिति आ सकती है। किसी शहर में पेय जल आपूर्ति का ही उदाहरण लीजिए। इसके लिए कुंआ खोदने, प्लांटों को लगाने और पाइप लाइनों को डालने में काफी खर्च लगता है। ये सब कार्य प्राय: संवंधित नगरपालिका के नियंत्रण में होते हैं। यदि इसी शहर में इसी कार्य को अन्य कोई उपक्रम भी करे तो व्यर्थ में इतना ही और धन लगाना पड़ेगा। इसी प्रकार

के अपव्यय से बचने के लिए लोकोपयोगी उपक्रमों को एकाधिकारी शक्ति दी जाती है। लेकिन इस प्रकार के उपक्रमों के कुछ प्रतिस्पर्धी भी होते हैं, जैसे दिल्ली में दुग्ध आपूर्ति व्यवस्था। इस नगर में मदर डेरी के साथ ही साथ दिल्ली दुग्ध योजना तथा नानक मिल्क सप्लाई कंपनी भी दूध की पूर्ति का कार्य करती हैं। इस प्रकार मदर डेरी की स्थिति अर्ध-एकाधिकारी जैसी हो गई है।

4 **विनियमन और नियंत्रण** (Regulation and control) : आप जानते ही हैं कि इन उपक्रमों के पास एकाधिकारी या अर्ध-एकाधिकारी शक्ति होती है। प्राय: वे अपनी शक्तियों का दुरुपयोग तथा ग्राहकों का शोषण करने की स्थिति में होते हैं। उदाहरणार्थ वे घटिया किस्म की वस्तुएँ या सेवाएँ दे सकते हैं, पूर्ति कार्य को अनियमित कर सकते हैं या इनके लिए अधिक कीमतें ले सकते हैं। अत: सरकार को ऐसी व्यवस्था करनी पड़ती है कि उचित कीमतों पर अच्छी तरह की वस्तुएँ और सेवाएँ उपलब्ध हो सकें। जनता को विश्वास दिलाना होता है कि बिना किसी प्रकार के भेदभाव के उसे नियमित और पर्याप्त रूप में वस्तुएँ और सेवाएँ मिलती रहेंगी। अत: लोकोपयोगी उपक्रमों की कार्यविधियों तथा कीमत और पूर्ति संबंधी नीतियों को विनियमित करना आवश्यक हो जाता है। इसीलिए तो इन उपक्रमों के संबंध में सरकार के पास नियामक शक्ति (regulatory powers) होती है जिनकी व्यवस्था विशेष प्रकार के अधिनियम के अधीन होती है।

5 **विशेषाधिकार** (Franchise) : लोकोपयोगी उपक्रम अच्छी तरह से चल सकें इसके लिए उन्हें कुछ विशेषाधिकार दिए जाते हैं, जैसे यह अधिकार कि अपने कार्य के सिलसिले में वे सरकारी संपत्ति (भूमि, भवन, सड़क, आदि) में दखल दे सकें। उदाहरणार्थ रेलवे, जो कि लोकोपयोगी उपक्रम है, सड़कों पर अवरोध लगाकर लेवेल क्रासिंगों पर यातायात के आने जाने पर प्रतिबंध लगा सकती है। इसी प्रकार पाइपों को डालते समय जल आपूर्ति उपक्रम सड़कों पर गड्ढे खोद सकता है। इन उपक्रमों को कुछ विशेष प्रकार की सुविधाएँ देने के साथ ही साथ सरकार इनके कर्तव्यों और दायित्वों का भी निर्धारण कर देती है। ये कार्य वह चार्टर के द्वारा करती है, जिसे विशेषाधिकार भी कहा जाता है। इस विशेषाधिकार या चार्टर में स्पष्ट कर दिया जाता है कि इन उपक्रमों के पास कौन-कौन सी शक्तियाँ, विशेष सुविधाएँ और अधिकार होंगे तथा उन्हें किन-किन कर्तव्यों और दायित्वों को निभाना होगा। ऐसा इसलिए किया जाता है कि ये सुचारूपूर्वक और संतोषजनक ढंग से कार्य कर सकें। ये उपक्रम यदि विशेष अधिकार से संबंधित विनियमों और प्रतिबंधों के अनुरूप कार्य नहीं करते तो उन्हें दिए हुए विशेषाधिकार को वापस लिया जा सकता है।

6 **अत्यधिक पूँजी निवेश** (Huge capital investment) : इन उपक्रमों में स्थायी परिसंपत्ति के रूप में बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी लगानी पड़ती है। हम मदर डेरी का ही उदाहरण लें जो दिल्ली नगर में दूध देने का काम करती है। इस कार्य के लिए इसे दुग्ध प्लांट और भंडार प्लांट लगाने पड़े हैं तथा इसे अपने पास बहुत बड़ी संख्या में वैन और टैंकर रखने होते हैं। दूध के वितरण के लिए इसने इस नगर के विभिन्न इलाकों में जगह-जगह पर दूध के डिपो भी बनाए हैं। इसे ऐसी व्यवस्था भी करनी पड़ती है कि उपभोक्ताओं के बीच दूध का समुचित रूप से वितरण होता रहे। इन सभी कार्यों के लिए काफी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार अन्य लोकोपयोगी उपक्रमों में भी स्थायी परिसंपत्ति के रूप में बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी लगानी पड़ती है।

7 **लोचहीन माँग** (Inelastic demand) : लोकोपयोगी सेवाओं की माँग प्राय: लोचहीन होती है। इसका अर्थ यह है कि इनकी कीमतों के घटने या बढ़ने से माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता। घरों में काम में आने वाली बिजली का ही उदाहरण लें। प्रति यूनिट इकाई दर के घटने या बढ़ने के बाद भी इसका उपयोग प्राय: पहले जैसा ही बना रहता है। लोकोपयोगी सेवाओं की माँग की निम्नलिखित विशेषताएँ भी हो सकती हैं।

क) इन **सेवाओं को बाँटा नहीं जा सकता,** अत: उनकी माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

ख) ये सेवाएँ **अपना विक्रय स्वयं ही कर लेती हैं।** इनकी माँग पैदा करने के लिए विज्ञापन देने या सेल्समैनों को रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ग) इन सेवाओं के लिए **प्रत्यक्ष और व्युत्पन्न** (direct and derived) **दोनों ही प्रकार की माँगें होती हैं।** बिजली का प्रयोग जब घरों में रोशनी, शीतलन (cooling), तापन (heating),

पकाने आदि कार्यों के लिए होता है तब यह प्रत्यक्ष माँग की कोटि में आती है। परन्तु कारखानों में इसका उपयोग जब नियंत्रण या उत्पादन के लिए होता है तब व्युत्पन्न माँग की स्थिति होती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष माँग प्रत्यक्ष और तात्कालिक उपभोग की जरूरतों के कारण होती है, जबकि व्युत्पन्न माँग इन्हीं सेवाओं का उद्योग और वाणिज्य संबंधी कार्यों में उपयोग के फलस्वरूप होती है।

घ) ऐसी लोकोपयोगी सेवाओं के लिए व्युत्पन्न माँग विशेषत: लोचदार तथा प्रत्यक्ष माँग प्राय: लोचहीन होती है। घरों में काम में आने वाली गैस और बिजली के लिए माँग लोचहीन होती है। परन्तु बिजली के बहुत महंगी हो जाने की स्थिति में कारखानों में उसकी माँग घट जाती है।

8 **उपभोक्ता की अनंतरणीय माँग** (Non-transferable demand by the customers) : उपभोक्ता की माँग अनंतरणीय होती है। कोई भी उपभोक्ता अपने घर में काम में आने वाली बिजली के उपयोग का अधिकार अपने पड़ोसी को नहीं दे सकता। प्रत्येक उपभोक्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह विद्युत उपक्रम के नियमों और विनियमों का पालन करते हुए अलग से बिजली का कनेक्शन ले।

9 **अंतर्निहित खतरे** (Risks involved) : अन्य उद्योगों की अपेक्षा लोकोपयोगी उपक्रमों के कार्यों में कम खतरे होते हैं। ऐसा इसलिए कि अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की माँग के घटने की संभावना कम होती है। यह तो समय के साथ-साथ बढ़ती ही जाती है। उदाहरणार्थ जल, गैस, दूध, बिजली आदि के लिए माँग घटती नहीं बल्कि जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है।

10 **उपक्रम का आकार** (Size of the undertaking) : इन उपक्रमों की स्थापना काफी बड़े आकार पर करनी होती है जिससे कि उस इलाके के लोगों की मांगे पूरी की जा सकें। इसके अतिरिक्त इकाई का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि वह किफ़ायती दरों पर सदा आपूर्ति करने की स्थिति में बनी रहे।

11 **स्थान का चुनाव** (Choice of site) : लोकोपयोगी उपक्रमों के स्थान के चुनाव के संबंध में इनके संस्थापकों का विशेष हाथ नहीं होता। अपने उद्यमों की स्थापना उन्हें उन्हीं स्थानों पर करनी पड़ती है जहाँ के लिए सरकार अनुमति देती है। इसके अतिरिक्त उन्हें स्थानीय स्थितियों और विनियमों का ध्यान रखते हुए ही कार्य करना होता है।

बोध प्रश्न क

1 लोकोपयोगी उपक्रमों का अर्थ स्पष्ट करें।

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन-कौन सी लोकोपयोगी सेवाएँ हैं? (√) का निशान लगाइये।

क) जल-पूर्ति

ख) समाचार-पत्र देना

ग) ब्रेड का उत्पादन और उसकी पूर्ति

घ) बिजली की पूर्ति

च) दूध की पूर्ति

छ) वस्त्र का निर्माण और पूर्ति

ज) रेल परिवहन

3 निम्नलिखित में से कौन-कौन सी विशेषताएँ लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं पर लागू होती हैं?
   क) सेवाओं का लोचहीन होना
   ख) विशेषाधिकार
   ग) राष्ट्रव्यापी संचालन
   घ) अनेक प्रतिस्पर्धी

4 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?
   क) मांग पैदा करने के लिए लोकोपयोगी सेवाओं के संबंध में विज्ञापन देना आवश्यक होता है।
   ख) लोकोपयोगी सेवाओं को बाँटा नहीं जा सकता।
   ग) लोकोपयोगी सेवाओं के लिए प्रत्यक्ष माँग लोचदार होती है।
   घ) उपभोक्ता के लिए बिजली की माँग अनंतरणीय होती है।

18.4 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं का संगठन और प्रबंध

लोकोपयोगी उपक्रमों के अर्थ और उनकी विशेषताओं के संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब इनके संगठन और प्रबंध के बारे में हम चर्चा करेंगे। लोकोपयोगी उपक्रमों का संगठन इनमें से किसी एक रूप में होता है : (1) पब्लिक या प्राइवेट लिमिटेड कंपनी, (2) सांविधिक निगम (statutory corporation) और (3) सरकार अथवा नगरपालिका जैसे किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के विभागीय उपक्रम (departmental undertaking)। जब ये उपक्रम प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में होते हैं तब इनका स्वामित्व और प्रबंध गैर-सरकारी लोगों के हाथ में होता है। परंतु पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में संगठित होने की स्थिति में स्वामित्व और प्रबंध सरकार के हाथ में होता है। बहुत बड़े आकार के लोकोपयोगी उपक्रमों का संगठन प्राय: विधान मंडल के विशेष अधिनियम के अधीन सांविधिक निगमों के रूप में होता है। इस अधिनियम में नियमों और उपनियमों की व्यवस्था होती है जो उपक्रम के संविधान के अंग होते हैं। इसका स्वामित्व और प्रबंध निगम एवं उसके संचालन मंडल (governing board) के हाथों में होता है। अपेक्षाकृत छोटे प्रतिष्ठान कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन पंजीकृत होते हैं तथा उनके अपने सीमा नियम (memorandum of association) और अंतर्नियमों (articles of association) होते हैं। यदि किसी लोकोपयोगी प्रतिष्ठान की स्थापना सरकार या नगरपालिका के विभाग के रूप में होती है तब उसका स्वामित्व सरकार या नगरपालिका के हाथ में होता है और प्रबंध का काम उनके अधिकारी करते हैं।

प्रत्येक लोकोपयोगी उपक्रम को संबंधित सरकार से लाइसेंस लेना आवश्यक होता है। यह लाइसेंस उन्हें एकाधिकार तथा विशेषाधिकार (franchise) प्रदान करता है। लाइसेंस को समय-समय पर नवीकृत कराना होता है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि उपक्रम का संचालन संतोषजनक ढंग से हो रहा है या नहीं। विशेषाधिकार के अनुसार उन्हें अधिकार होता है कि आवश्यकता होने पर वे गैर-सरकारी संपत्ति को अपने अधीन ले सकते हैं तथा सार्वजनिक संपत्ति (भूमि, भवन, सड़क, आदि) में दखल दे सकते हैं। उपर्युक्त प्रकार के संगठनों और प्रबंधों में कुछ गुण और दोष होते हैं। परन्तु चूँकि इनके साथ सार्वजनिक हित भी जुड़े होते हैं अत: इन उपक्रमों के प्रबंध और कार्य-संचालन पर सरकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नियंत्रण रख सकती है। इन्हीं कारणों से उचित यही समझा जाता है कि ऐसे उपक्रमों का कार्य संचालन सरकारों (केन्द्रीय या राज्य), नगरपालिका जैसी स्थानीय निकायों (local bodies) या सांविधिक निगमों (statutory corporations) द्वारा हो। उपर्युक्त प्रकार के संगठनों के गुणों और दोषों के संबंध में अब हम संक्षेप में विचार करेंगे।

प्राइवेट लिमिटेड कंपनी : जैसा कि आप जानते हैं, प्राइवेट लिमिटेड कंपनी व्यवसाय संगठन का वह रूप है जो कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन पंजीकृत होती है और जिसमें कम से कम दो और अधिक से अधिक 50 व्यक्ति होते हैं। इसके अपने मेमोरेन्डम तथा आर्टिकल्स आफ एसोसिएशन होते हैं। एक ओर तो इसके पास कुछ विशेषाधिकार होते हैं और दूसरी ओर इसे कुछ प्रतिबंधों के अन्तर्गत

कार्य करने होते हैं। इकाई 2 और 4 में आप प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों की विशेषताओं और उनके निर्माण के संबंध में पढ़ चुके हैं। सड़कों पर माल ढोने का काम प्राय: प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों द्वारा होता है। अन्य लोकोपयोगी सेवाओं का गठन भी प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार के संगठन की सबसे प्रमुख गुण वस्तुओं या सेवाओं की गुणवत्ता को बनाए रखना है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि जनता के प्रति ऐसी कंपनियों की कोई जवाबदेही नहीं होती।

पब्लिक लिमिटेड कंपनी : जैसा कि आप जानते हैं, पब्लिक लिमिटेड कंपनियों का गठन कम से कम सात व्यक्तियों से होता है तथा अधिकतम व्यक्तियों के संबंध में कोई सीमा नहीं होती। प्राइवेट कंपनियों के विपरीत पब्लिक कंपनियों पर शेयरों के हस्तांतरण तथा जनता के बीच अपनी विवरण-पत्रिका को जारी करने के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं होता। इकाई 2 और 4 में आपने पब्लिक लिमिटेड कंपनियों की विशेषताओं और उनके गठन के संबंध में विस्तार से पढ़ा है। इन कंपनियों ने यूरोप, अमेरिका तथा भारत में अनेक प्रकार की लोकोपयोगी सेवाएँ प्रदान की है। भारत में इनके कुछ उदाहरण हैं भारतीय रेल तथा अनेक नगरों के विद्युत पूर्ति उपक्रम (electricity supply undertakings)। लेकिन इनमें दोष यह है कि ये जनता और समाज के प्रति उत्तरदायी नहीं होतीं। इनमें से अनेक उपक्रमों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है।

विभागीय प्रबंध (Departmental Management) : कुछ लोकोपयोगी सेवाओं का संचालन सरकारी विभागों द्वारा होता है जिन पर मंत्रालयों का नियंत्रण और निदेशन होता है। इसके उदाहरण हैं भारतीय रेलवे, जिसका संचालन रेलवे बोर्ड के द्वारा रेल मंत्रालय करता है तथा संचार मंत्रालय द्वारा संचालित डाक और तार, इत्यादि।

इकाई 17 में आपने संगठन के विभागीय रूपों के संबंध में विस्तार में पढ़ा है। लोकोपयोगी सेवाओं को इस प्रकार से गठित करने के निम्नलिखित लाभ हैं :

1 इन पर सरकार के जिम्मेदार अधिकारियों का नियंत्रण रहता है।
2 इनकी वित्त व्यवस्था सरकार वार्षिक बजट अनुदानों द्वारा करती है जो संसद या संबंधित राज्य विधान मंडलों द्वारा पारित किए जाते हैं।
3 इनके राजस्व को राजकोष में जमा किया जाता है।
4 जनता के प्रति इनकी जवाबदेही बनी रहती है क्योंकि उनके संचालन संबंधित रिपोर्टों को संसद या राज्य विधान मंडलों में पेश किया जाता है, जहाँ पर उनके संबंध में बहस होती है।

स्थानीय प्राधिकरणों के स्वामित्व के अधीन और उनके द्वारा संचालित कुछ लोकोपयोगी प्रतिष्ठानों के नाम यों हैं : बम्बई इलेक्ट्रिक सप्लाई ऐंड ट्रान्सपोर्ट अंडरटेकिंग (BEST), जो बम्बई नगर निगम के स्वामित्व के अधीन तथा उसके द्वारा संचालित होता है तथा दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग (DESU) जो दिल्ली नगर निगम के स्वामित्व के अधीन तथा उसी द्वारा संचालित होता है। इनका प्रबंध नगरपालिकाओं द्वारा निर्वाचित समितियाँ करती हैं। नगरपालिकाओं द्वारा इनके प्रबंध को इसलिए सही नहीं माना जाता है कि यह कार्य जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों द्वारा होता है। परन्तु नगरपालिकाओं द्वारा नियंत्रण के निम्नलिखित दोष हैं :

1 निर्वाचित सदस्यों में आवश्यक कौशल और क्षमता का अभाव हो सकता है।
2 राजनीतिक वाद-विवाद कभी-कभी लोगों के कष्ट को और भी बढ़ा देते हैं।
3 कभी-कभी कुछ क्षेत्र इतने छोटे होते हैं कि उनमें लोकोपयोगी उपक्रम कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाते। प्रचालन के लिए प्रतिबंधित क्षेत्र होने के कारण ऐसे क्षेत्र में प्लांट अपनी अधिकतम क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर पाते जिससे प्रचालन लागत (operation cost) बढ़ जाती है।

लोक निगम (Public corporation) : जैसा कि आप जानते हैं, लोक निगम स्वायत्त निकाय (autonomous body) होते हैं जिनकी स्थापना संसद या राज्य विधान मंडलों के विशेष अधिनियम के अधीन होती है। यह अधिनियम उनके अधिकारों, व्यक्तियों और कार्यक्षेत्र का निर्धारण कर देता है। निगमों

पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता। इसके पास अपना वित्त तथा प्रबंध-मंडल होता है। यह सयुक्त पूँजी कंपनी के समान कार्य करता है। फिर भी यह संसद या राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है क्योंकि इसके परीक्षित वार्षिक रिपोर्ट को संसद या राज्य विधान मंडल में पेश किया जाता है। इकाई 17 में आपने लोक निगमों के संबंध में विस्तार से पढ़ा है। लोक निगमों के रूप में गठित लोकोपयोगी प्रतिष्ठानों में निम्नलिखित गुण होते हैं :

1 इनमें निजी उद्यमों के समान कुशलता और लचीलापन होता है।
2 संसद/विधान मंडल के प्रति ये प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार समुदाय का व्यापक हित सुरक्षित रहता है।

ऐस प्रतिष्ठानों में निम्नलिखित दोष होते हैं :

1 इनके कार्यों में शासक दल के नेता प्रत्यक्ष रूप से दखल देते हैं।
2 प्रबंध निदेशकों या कार्यपालक निदेशकों की नियुक्ति प्रायः सरकारी अधिकारियों या राजनीतिज्ञों के बीच से की जाती है, जिनके पास व्यावसायिक कार्यों संबंधी ज्ञान और बुद्धि की कमी होती है।

बोध प्रश्न ख

1 लोकोपयोगी संस्थाओं का संगठन और प्रबंध किन-किन विभिन्न रूपों में होता है?

....

....

....

2 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

क) सरकारी आदेश के द्वारा लोक निगमों की स्थापना लोकोपयोगी उपक्रमों के प्रचालन के लिए की जाती है।

ख) नगर निगमों द्वारा लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं का प्रबंध सरकारी विभाग के द्वारा प्रबंध के समान होता है।

ग) सरकार द्वारा चलाए जाने वाले लोकोपयोगी उपक्रमों द्वारा अर्जित आय को इन उपक्रमों के रिज़र्व के रूप में रखा जाता है।

घ) प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के रूप में गठित लोकोपयोगी उपक्रमों का मुख्य दोष यह है कि ये जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होते।

18.5 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की कीमत-निर्धारण नीति

किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण मुख्यत: दो कारकों से होता है : (1) उस वस्तु के लिए माँग और (2) उस वस्तु की पूर्ति। लेकिन लोकोपयोगी उपक्रमों से मिलने वाली सभी वस्तुओं और सेवाओं के साथ ऐसा नहीं होता। कीमत-निर्धारण के संबंध में कुछ अन्य बातों का भी बहुत कुछ हाथ होता है। ये उपक्रम जो सेवाएँ देते हैं उनकी कीमतों का निर्धारण **सेवा-लागत सिद्धांत** (Cost of Service Principle) अर्थात् सेवाओं के उत्पादन और उनकी पूर्ति पर होने वाली लागत के अनुसार नहीं होता। इनका निर्धारण तो **उपभोक्ता के सामर्थ्य सिद्धांत** (What the traffic will bear principle) के आधार पर होता है। आप जानना चाहेंगे कि ऐसा क्यों होता है? नीचे इसी संबंध में चर्चा की जाएगी।

जैसा कि आपको मालूम है, लोकोपयोगी संस्थाओं से मिलने वाली वस्तुएँ और सेवाएँ अनिवार्य वस्तुएँ और सेवाएँ होती हैं। इनका उपयोग अमीर-गरीब सभी करते हैं। अमीर लोग तो इनके लिए कुछ भी कीमत देने को तैयार रहते हैं लेकिन गरीबों की स्थिति भिन्न होती है। इन सेवाओं की कीमतें यदि लागत के आधार पर निश्चित की जाएँ तो उन्हें खरीदने में वे असमर्थ भी हो सकते हैं। अत: सरकार को ऐसे

कदम उठाने पड़ते हैं जिससे गरीब लोगों का हित सुरक्षित रहे। यह कार्य वह वस्तुओं और सेवाओं पर इस प्रकार से नियंत्रण करके करती है जिससे निर्धन वर्ग भी उनका उपयोग कर सके। उपभोक्ता प्राय: उचित कीमत देना चाहता है। इस संबंध में प्रश्न उठता है कि उचित कीमत किसे कहते हैं? इसका उत्तर देना आसान नहीं है। उचित कीमत का निर्धारण अनेक बातों पर निर्भर करता है, जैसे उत्पादन लागत, लाभ की उचित दर, उपभोक्ता की भुगतान क्षमता, सामान्य कीमत स्तर में उतार-चढ़ाव, आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि कीमत निर्धारण सरल प्रक्रिया नहीं है। इसका निर्धारण काफी सोच-विचार तथा संबद्ध हितों के साथ विचार-विमर्श के बाद किया जाता है। फिर भी लोकोपयोगी उपक्रमों की कीमत नीति संबंधित निम्नलिखित तीन प्रमुख पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है :

1 **संवर्धनात्मक पक्ष** (Promotional aspect) : इस पक्ष का संबंध लोकोपयोगी संस्थाओं से मिलने वाली सेवाओं की माँग के संवर्धन के साथ होता है। संवर्धनात्मक पक्ष से अभिप्राय होता है वस्तुओं और सेवाओं की माँग को बढ़ाना। उपक्रम की उत्पादन क्षमता का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए माँग को बढ़ाना आवश्यक होता है। इससे उत्पादित वस्तु या सेवा की बहुत बड़ी संख्या के बीच उपरि लागत (overhead cost) को बाँटने में सहायता मिलती है। आप जानते हैं कि सड़क परिवहन तथा रेलवे जैसी परिवहन सेवाएँ असंख्य नियमित यात्रियों को रियायती दर पर मासिक टिकटें (मियादी टिकटें) जारी करती हैं।

2 **कीमत विभेद** (Price discrimination) : आप पहले पढ़ चुके हैं कि किसी लोकोपयोगी उपक्रम के उत्पादों के लिए माँग कुछ बाजारों में लोचदार तथा अन्य में लोचहीन होती है। परिवहन सेवाओं का ही उदाहरण लें। आम जनता तथा पर्यटकों के लिए बस की माँग लोचदार होती है क्योंकि ये लोग केवल बस पर ही निर्भर नहीं करते। ये तिपहिया स्कूटरों तथा टैक्सियों पर भी सफर करते हैं। लेकिन कार्यालय-कर्मचारियों या छात्रों की बहुत बड़ी संख्या प्रतिदिन बस से ही सफर करती है, अत: उनके लिए माँग लोचहीन होती है। इसीलिए परिवहन उपक्रम कार्यालय-कर्मचारियों और छात्रों से कम किराया लेता है तथा पर्यटकों और आम जनता से अधिक। दूसरा उदाहरण विद्युत पूर्ति उपक्रम का है। वे कृषि कार्यों के लिए बिजली की पूर्ति के लिए कम तथा घरों में उपयोग के लिए अधिक चार्ज करते हैं। कुछ स्थितियों में लोकोपयोगी उपक्रम एक बाजार में कम कीमत तथा अन्य में अधिक कीमत ले सकते हैं, या एक वर्ग के उपभोक्ता से कम कीमत तथा अन्य वर्ग के उपभोक्ताओं से अधिक कीमत ले सकते हैं।

3 **सामाजिक विचार** (Social consideration) : कुछ लोकोपयोगी संस्थाओं का संबंध लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी तथा लोकहित के साथ होता है। इस स्थिति में कीमतों का निर्धारण केवल आर्थिक आधार पर ही नहीं होता। इस संबंध में सामाजिक कल्याण की बहुत बड़ी भूमिका होती है। कम आय वाले उपभोक्ताओं और निर्धन व्यक्तियों को रियायती या इमदादी (subsidised) दर पर सेवाएँ प्रदान की जाती हैं।

18.6 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की विक्रय नीति

आप पढ़ चुके हैं कि लोकोपयोगी उपक्रमों की कीमत-निर्धारण नीति अन्य व्यावसायिक फर्मों से भिन्न होती है। इसी प्रकार इन उपक्रमों की विपणन नीति भी अन्य वाणिज्यिक उपक्रमों से कुछ भिन्न प्रकार की होती है। अब हम लोकोपयोगी उपक्रमों की विक्रय नीति के संबंध में विचार करेंगे :

1 लोकोपयोगी उपक्रमों का संबंध जिन वस्तुओं और सेवाओं के साथ होता है वे जनता के लिए अत्यंत आवश्यक होती हैं तथा लोगों के बीच उनकी बहुत माँग होती है।

2 लोकोपयोगी उपक्रमों का प्राय: कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी नहीं होता। किसी एक क्षेत्र में किसी विशेष वस्तु की पूर्ति कोई एक ही उपक्रम करता है। अत: इस क्षेत्र में विभिन्न उत्पादकों द्वारा अलग-अलग दर पर कीमतें माँगने का प्रश्न नहीं उठता। ऐसी स्थिति में छूट देने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

3 ऐसे उपक्रमों को सरकार विशेषाधिकार प्रदान करती है, जिसके अनुसार उन्हें अधिकार होता है कि आवश्यकता पड़ने पर वे गैर-सरकारी संपत्ति में हस्तक्षेप कर सकें तथा सरकारी संपत्ति (सड़क, भूमि, भवन, आदि) का उपयोग कर सकें।

4 अपने उत्पादों या सेवाओं को बेचने के लिए उन्हें बिचौलियों (middlemen) का आश्रय नहीं लेना पड़ता। इन्हें वे अपने उपभोक्ताओं को सीधे बेचते हैं या अपने वितरण जाल के माध्यम से। उदाहरणार्थ, जल पूर्ति, विद्युत पूर्ति और परिवहन उपक्रमों का अपने उपभोक्ताओं के साथ सीधा संपर्क होता है। अत: उनका प्रयास रहता है कि ये उपभोक्ता उनकी सेवाओं से संतुष्ट रहें।

5 वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों को अपनी उधार राशि वसूल करने में कभी-कभी कठिनाई होती है। परंतु लोकोपयोगी उपक्रमों के सम्मुख ऐसी कोई समस्या नहीं होती। उदाहरणार्थ, निर्धारित तिथि तक यदि कोई बिजली के बिल का भुगतान नहीं करता है तो विद्युत उपक्रम उसके यहाँ बिजली की लाइन काट देता है। रेल तथा सड़क यात्रा के दौरान तो नकद अदायगी ही करनी होती है, अत: उन स्थितियों में उधार का प्रश्न ही नहीं उठता।

6 अन्य व्यावसायिक इकाइयों के समान लोकोपयोगी उपक्रमों को अपनी वस्तुओं और सेवाओं के संबंध में प्रचार करने या विज्ञापन देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर भी अपनी सेवाओं के संबंध में उन्हें जनता को सूचित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ परिवहन उपक्रम जनता को बताता रहता है कि विभिन्न रूटों पर उसने कौन-कौन सी नई सेवाएँ चलाईं, रूटों में क्या परिवर्तन हुए तथा सेवाओं के समय में क्या परिवर्तन किए गए। इससे इन सेवाओं को उपयोग में लाने में ग्राहकों को सुविधा होती है, जिसके फलस्वरूप ये सेवाएँ अपनी पूरी क्षमता से काम कर पाती हैं।

18.7 सार्वजनिक नियंत्रण और सरकारी विनियमन (Public Control and State Regulation)

आपने पढ़ा है कि लोकोपयोगी उपक्रम जनता के लिए अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति का काम करते हैं। ऐसी वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति नियमित रूप से करना आवश्यक होता है। यह भी जरूरी होता है ये अच्छी किस्म की हों और उनकी कीमतें उचित हों। आपने यह भी पढ़ा है कि लोकोपयोगी उपक्रमों की स्थिति एकाधिकारी या अर्ध-एकाधिकारी जैसी हो जाती है। अपनी एकाधिकारी स्थिति का यदि वे दुरुपयोग करने लगे तब क्या परिणाम होगा? मान लें कि जल पूर्ति उपक्रम गंदे जल की पूर्ति करने लगता है। उसका फल होगा हैजा, अतिसार, पीलिया आदि रोगों का प्रसार। उसी प्रकार रेल गाड़ियाँ यदि समय पर नहीं चलती तो लोगों का सामान्य जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। कार्यालयों, स्कूलों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों आदि के काम में कुछ समय के लिए बाधा होगी। अपनी एकाधिकारी शक्ति की आड़ में ये लोकोपयोगी सेवाएँ अपनी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ा भी सकती हैं, जिसे देने में आम जनता असमर्थ हो सकती है। इन्हीं सब कारणों से लोकोपयोगी उपक्रमों के कार्यों पर नियंत्रण और विनियमन करना आवश्यक हो जाता है।

केन्द्र या राज्य सरकारें या स्थानीय प्राधिकरण लोकोपयोगी उपक्रमों के कार्यों का विनियमन करते हैं। इस प्रकार के विनियमन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :

1 वस्तुओं और सेवाओं की किस्म और उनकी नियमित पूर्ति को बनाए रखना।
2 जनता के हित में उचित कीमत निश्चित करना।
3 उपस्कर और मशीन का उचित रख-रखाव जिससे उनमें अवरोध पैदा न हों तथा जनता को असुविधा न पहुँचे।

सरकार लोकोपयोगी सेवाओं संस्थाओं का विनियमन अनेक प्रकार से करती है। लोकोपयोगी सेवाओं के निजी प्रवर्तकों को सरकार से लाइसेंस लेना होता है। इन लाइसेंसों में सरकार की नियंत्रक शक्ति की व्यवस्था होती है। इसके अतिरिक्त ऐसी दरें निर्धारित कर दी जाती हैं कि उपक्रमों की नीति जनहित के अनुरूप ही हो। आवश्यकता पड़ने पर सरकार कुछ गैर-सरकारी उपक्रमों का राष्ट्रीयकरण करके उन्हें लोक निगमों या ऐसे बोर्डों के संचालन के अधीन दे देती है जिनमें जनता के प्रतिनिधि पर्याप्त मात्रा में

हो। लोकोपयोगी उपक्रमों का सरकार के विभागीय उपक्रम के रूप में होना प्राय: इसलिए अच्छा माना जाता है कि इस प्रकार इन पर सरकार का सीधा नियंत्रण रहता है। इस तरह लोकोपयोगी उपक्रम जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं क्योंकि ये जनहित की वस्तुओं और सेवाओं के संबंध में कार्य करते हैं। इसलिए अधिकतर देशों में इनका संचालन लोक प्राधिकरणों के द्वारा होता है।

बोध प्रश्न ग

1 लोकोपयोगी उपक्रमों की कीमत-निर्धारण नीति के प्रमुख पक्षों के नाम बताएँ।

....

....

....

....

2 खाली स्थानों को भरें।

क) लोकोपयोगी सेवाओं की कीमतों का निर्धारण .... के सिद्धांत के आधार पर होता है।

ख) लोकोपयोगी सेवाओं की माँग कुछ बाजारों में .... और अन्य में .... होती है।

ग) घरों में उपयोग में आने वाले जल की माँग .... होती है।

घ) एक ही जैसी वस्तु या सेवा के लिए जब विभिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न कीमतें ली जाती हैं तब उस स्थिति को .... कहा जाता है।

3 निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

क) औद्योगिक कार्यों के लिए बिजली की माँग लोचहीन होती है।

ख) लोकोपयोगी उपक्रमों के सामने उधार राशि की वसूली की समस्या नहीं होती।

ग) सरकारी विभागो द्वारा संचालित लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं के विनियमन और नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती।

घ) लोकोपयोगी सेवाओं से संबंधित गैर-सरकारी प्रतिष्ठानों को दिए जाने वाले लाइसेंस में सरकार की नियंत्रक शक्ति की व्यवस्था होती है।

18.8 सारांश

लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ ऐसे उपक्रम हैं जो जनता को अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करते हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि किसी प्रकार का भेद-भाव किए बिना वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करें। गैस, जल, बिजली, रेल तथा सड़क-परिवहन, डाक-तार, दूध पहुँचाने आदि जैसी अनिवार्य सेवाओं की पूर्ति कार्य में लगी संस्थाएँ लोकोपयोगी उपक्रमों के कुछ उदाहरण हैं। लोकोपयोगी उपक्रम अन्य वाणिज्यिक उपक्रमों से भिन्न होते हैं। उनमें निम्नलिखित कुछ खास विशेषताएँ होती हैं : (1) वस्तुओं और सेवाओं की अनिवार्यता, (2) सीमित कार्यक्षेत्र, (3) एकाधिकारी या अर्ध-एकाधिकारी स्थिति, (4) सरकार द्वारा विनियमन और नियंत्रण, (5) विशेषाधिकार, (6) अत्यधिक पूँजी निवेश, (7) लोचहीन माँग, (8) उपभोक्ता की अनंतरणीय माँग, (9) कम खतरे, और (10) आकार और स्थान के चुनाव संबंधी सीमित विकल्प।

चूँकि लोकोपयोगी उपक्रम जनहित के लिए होते हैं, अत: वे लोक प्राधिकारी वर्ग (public authority) के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए उनका स्वामित्व और प्रबंध प्राय: लोक-प्राधिकरण के हाथ में होता

है। लोकोपयोगी उपक्रमों के संगठन और प्रबंध के प्राय: चार विकल्प है : (1) पब्लिक या प्राइवेट लिमिटेड कंपनी, (2) लोक निगम, (3) सरकारी विभाग, और (4) नगरपालिका, बोर्ड या काउंसिल जैसे स्थानीय प्राधिकरण।

लोकोपयोगी वस्तओं और सेवाओं का कीमत-निर्धारण इनकी माँग या पूर्ति के आधार पर नहीं होता। इसका निर्धारण तो उपभोक्ता के सामर्थ्य के सिद्धांत के आधार पर होता है। साथ ही साथ इस संबंध में सेवा की लागत, कीमत विभेद, संवर्धनात्मक पक्ष तथा सामाजिक विचार जैसे कारकों का भी प्रमुख हाथ होता है। लोकोपयोगी उपक्रमों की विपणन नीति अन्य वाणिज्यिक उपक्रमों से भिन्न होती है। इन उपक्रमों को अपनी वस्तुओं और सेवाओं के संबंध में विज्ञापन देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनके सम्मुख उधार-वसूली की समस्या भी नहीं होती। कुछ लोकोपयोगी उपक्रमों की वस्तुओं और सेवाओं का विक्रय नकद होता है, अत: इन्हें अशोध्य ऋण के संबंध में चिंता नहीं होती। कुछ स्थितियों में निर्धारित अवधि के अंतर्गत यदि भुगतान नहीं होता तो उधार में सेवा करने से मना कर दिया जाता है। आमतौर पर इनके विक्रय कार्य में विचौलिये की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये उपभोक्ताओं को अपनी वस्तुओं और सेवाओं का विक्रय सीधे करते हैं।

चूँकि लोकोपयोगी उपक्रमों का संबंध जनता की अत्यावश्यक वस्तुओं और सेवाओं के साथ होता है अत: उन्हें सरकारी विनियमन और नियंत्रण के अधीन कार्य करना होता है। सरकारी विनियमन का उद्देश्य यह होता है कि सेवाओं की किस्म विगड़ने न पाए तथा उचित कीमत पर उनकी पूर्ति निरंतर होती रहे।

18.9 शब्दावली

सेवा-लागत सिद्धांत (Cost of service principle) : किसी वस्तु या सेवा की कीमत का इस आधार पर निर्धारण कि उसकी पूर्ति करने में संबंधित प्रतिष्ठान की कितनी लागत होती है।

विशेषाधिकार (Franchise) : सरकार द्वारा किसी लोकोपयोगी उपक्रम को दिया गया अधिकार पत्र जिसमें यह व्यवस्था होती है कि उन्हें क्या शक्ति, विशेषाधिकार या अधिकार पत्र दिए गए हैं तथा उनके क्या कर्तव्य और दायित्व हैं जिनके लिए वे सरकार के प्रति जिम्मेदार हैं।

एकाधिकारी या अर्ध-एकाधिकार स्थिति (Monopolistic or semi monopolistic position) : प्रतिस्पर्धी उद्यमों से प्रतिस्पर्धा का अभाव या एक या दो प्रतिस्पर्धियों का होना।

कीमत विभेद (Price discrimination) : एक ही वस्तु के लिए विभिन्न बाजारों में या एक ही बाजार में विभिन्न ग्राहकों से अलग-अलग कीमतें लेना।

उपभोक्ता-सामर्थ्य सिद्धांत (Principle of what the traffic will bear) : किसी वस्तु या सेवा की कीमत का इस आधार पर निर्धारण कि उपभोक्ता कितना मूल्य दे सकता है।

सार्वजनिक दायित्व (Public accountability) : अपने कार्य निष्पादन के संबंध में संसद या राज्य विधान मंडलों के प्रति लोकोपयोगी प्रतिष्ठानों की उत्तरदायिता।

लोकोपयोगी सेवा संस्थाएँ (Public utilities) : वे व्यावसायिक उपक्रम जो जनहित के लिए होते हैं तथा गैस, जल, बिजली, आदि जैसी अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करते हैं।

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ. पी. अग्रवाल : **फण्डामेन्टल्स ऑफ बिज़नेस आर्गनाइज़ेशन एण्ड मैनेज़मैंट** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1987) अध्याय 6 खंड 9 अंग्रेजी में

जी.एल.जोशी, जी. एल. शर्मा, एल. एस.सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 12

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 क, ग, घ, ज

3 क, ख

4 (क) गलत (ख) सही (ग) गलत (घ) सही

ख 2 (क) गलत (ख) सही (ग) गलत (घ) सही

ग 1 क) संवर्धन पक्ष

ख) कीमत विभेद

ग) सामाजिक विचार

2 क) उपभोक्ता-सामर्थ्य

ख) लोचदार, लोचहीन

ग) लोचहीन

घ) कीमत विभेद

3 (क) गलत (ख) सही (ग) गलत (घ) सही

18.12 स्वपरख प्रश्न

1 लोकोपयोगी उपक्रम क्या हैं ? उनकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

2 लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की कीमत नीति के विभन्न पक्षों पर प्रकाश डालें।

3 "लोकोपयोगी उपक्रमों की विक्रय और कीमत नीति अन्य संगठनों से भिन्न होती है"। इस कथन पर प्रकाश डालें।

4 क्या आप इस मत से सहमत हैं कि लोकोपयोगी उपक्रमों का स्वामित्व और प्रबंध गैर-सरकारी हाथों में होना चाहिए। यदि हाँ, तो क्यों ?

5 निम्नलिखित को संक्षेप में स्पष्ट करें :

क) लोकोपयोगी उपक्रम

ख) लोकोपयोगी सेवा संस्थाओं की एकाधिकारी स्थिति

ग) विशेषाधिकार (Franchise)

घ) लोकोपयोगी उपक्रमों के सम्मुख समस्याएँ

> **नोट :** इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भलीभाँति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।